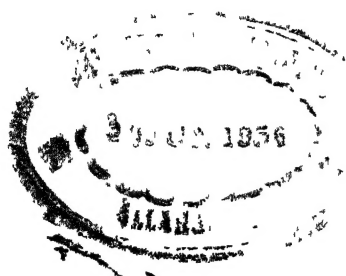


# चलते-चलते

आत्मकथा के रूप में लिखित मौलिक सामाजिक उपन्यास ]



लेखक

श्रीभगवतीप्रसाद राजपेयी

प्रकाशक

गौतम बुक-डिपो, नयी सड़क,  
देहली

प्रकाशक :—

गौतम बुकडिपो  
दिल्ली



## प्रेरणा

एक दिन की बात है, गगन अपना प्रशस्त लोक देख रहा था। इतने में पवन बड़े वेग से चलने लगा। गगन ने मेघ का चरमा निकाला और आँखों पर चढ़ा लिया। उसके बाद कुछ ऐसा हुआ कि पवन और भी वेग से चलने लगा; बल्कि एक तरह से अन्वड ही आ गया। यहाँ तक कि गगन के लिए स्थिर रहना कठिन हो गया। तब वह एक पहाड़ के नीचे खड़ा हो गया। उसके बाद जब धीरे-धीरे अन्वड शान्त हो गया, तब पवन गगन के निकट जा पहुँचा। उस समय गगन अपनी आँखें मिचमिचा रहा था। पवन ने पूछा—“दादा, क्या हुआ?”

गगन ने उत्तर दिया—“कुछ नहीं, आँख में तिनका पड़ गया था।”

“तिनका पड़ गया था।” पवन के कथन में आश्चर्य था।

“फिर निकला कि नहीं?” पवन के प्रश्न में चिन्ता की झलक थी।

गगन बोला—“तिनका तो निकल गया, लेकिन देर तक वह आँख में पड़ा जो रहा, उसका प्रभाव कब तक नहीं गया है।”

पवन ने उत्तर दिया—“बड़े बदमाश हो गये हैं ये तिनके। देखो तो, आप जैसे तस्वी को भी तज्ज करने लगे हैं! अच्छी बात है। मैं उन्हें आज ही ठीक कर देता हूँ। ज्यों ही वे आज घर आये, मैं उन्हें कुएँ में अधिक उलटी लटका दूँगा।

गगन मन-ही-मन मुसकराने लगा। उसने कहा कुछ नहीं।

संध्या हुई, रात आयी। तिनके भी घर पहुँचे। पवन ने एक से पूछा—“आज किस देश की ओर बढ़ गया था रे?”

तिनका आश्चर्य में पड़कर बोला—“बाबू, यह क्या पूछ रहे हो आज ! मैं तो सदा तुम्हारे ही संकेत पर उड़ता हूँ ।”

इतने में किसी का अट्टहास स्वर बनकर फूट पड़ा ।

पवन ने इधर देखा, उधर देखा । जब उसे कहीं कोई न देख पड़ा, तो उसके मुँह से निकल गया—“यहाँ इस तरह छिपकर कौन हँस रहा है ? जो कोई भी हो, सामने आ जाय ।”

इतने में गगन ने सामने आकर उत्तर दिया—“मैं हूँ गगन । मैं हँस इस बात पर रहा था कि इधर नये युग ने प्रगति की है !”

पवन को गगन के इस कथन में कुछ असंगति का भान हुआ । इसलिये उसने पूछा—“पर इसमें हँसने की क्या बात है दादा ?”

गगन ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कह दिया—“यही कि ये तिनके तो अब वीर पुरुष हो गये हैं—अपने पिता पवन के संकेत पर उड़ते खूब है !” और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह अन्तर्धान हो गया ।

यहाँ पवन के स्थान पर ‘राजनीति’ और गगन के स्थान पर ‘साहित्य’—बस, इतना संशोधन आप स्वीकार कर लें, तो मुझे यह बतलाने में सुविधा होगी कि इस उपन्यास-लेखन की प्रेरणा का यही एक मुख्य आधार है ।

## पूर्वकथा

कारण चाहे जो हो, पर बात कुछ ऐसी अप्रिय है कि कहने में स्वयं मुझे संकोच हो रहा है। लेकिन जब जीवन की सुगम-दुर्गम, ऊँची-नीची पगडंडियों पर चलने तक की सारी कथा मुझे कहनी ही है, तब मैं यह बात छिपा ही कैसे सकता हूँ कि सचमुच इधर कुछ दिनों से मैंने पूज्य पिताजी के सम्बन्ध में सोचना छोड़ दिया था।

हो सकता है कि इसका एक कारण यह भी हो कि जीवन में पिता मिलने का सुख होता कैसा है, यह जानने का सुअवसर मुझे मिला ही नहीं।

लेकिन एक दिन सुदूर परदेश से लौटकर जो मैं अपनी जन्म-भूमि में आया, तो वे प्रसन्न बहुत हुए थे। और सुनने में यह बात कुछ विचित्र-सी अवश्य लगेगी, पर है बिल्कुल सत्य कि उस प्रसन्नता के आधिक्य से ही उनका आकस्मिक स्वर्गवास हो गया था।

उनके इस स्वर्गवास का सम्बन्ध मनुष्य के प्रयत्न के साथ अधिक है, या विभिन्न अमिट विधान के साथ, यह मैं नहीं जानता। हाँ, मरने के अनन्तर अपने विषय में जैसा कुछ रहस्य वे छोड़ गये हैं, उसका थोड़ा-सा इतिहास अनुमान, कल्पनाओं और प्रकृत सम्भावनाओं के निष्कर्षों द्वारा आज यहाँ उपस्थित किये बेटा हूँ।

इस प्रयास में मैंने अपने आपको भी देखने का अवसर पाया है। इसलिए इस कथा का मूल्य मेरे लिए कितना अधिक है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, इस स्थल पर एक बात स्पष्ट कर देना अवश्य आवश्यक हो गया है। वह यह कि जैसे मूर्तिकार किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष अथवा फोटोग्राफ के रूप में देखकर उसकी मूर्ति बनाता है, ठीक उस प्रकार से तटस्थ रहकर इस कथा के नायक की मूर्ति मैंने नहीं बनायी है। इसमें मेरा वह राग-द्वेष भी कम नहीं है, समय-समय पर मेरे मन पर पड़ी हुई प्रतिक्रियाओं ने जिनकी सृष्टि की है। इसलिये मैं जैसा कुछ अपने जीवन में बन पाया हूँ, इस रचना में उसकी झलक यदि कहीं काल्पनिक मात्र है, तो जैसा मैं बहुत चेष्टा करने पर भी नहीं बन पाया, उसकी असफलताओं से सलग्न अनेक दृश्यावलियों और घटनाएँ ऐसी भी हैं, जिन्होंने मेरे मन के तार-तार को झंकृत किया है। इसलिये यह कथा न तो एकदम से काल्पनिक ही है, न सत्य कथन। वास्तव में यह दोनों का एक मिश्रित रूप है।

जान-बूझकर इस कथा का सूत्रपात उस स्थल से कर रहा हूँ, जहाँ मेरे मन का मोह नहीं है। यों साधारण रूप से, दुःख के अगाध का - अगाध के ज्वार की भाँति—ऊपर से निकल जाने का विस्मय अवश्य है। और ज्वार के पश्चात् भाटा आने पर, अगणित जल-धाराओं के उतार की भाँति, जैसे सब कुछ शान्त हो जाता है, वैसे ही जब मेरा मानस-क्षितिज एक प्रकार से सर्वथा निर्विकार हो गया है, तभी आज उन घड़ियों की चिन्ता-धारा व्यक्त करने बैठा हूँ।

गाँव का एक छोर है और अधेरी रात है।

कुछ ऐसी बात है कि अधेरी राते मुझे प्रिय रही है। दिवस और चोंदनी रात में आकाश की जो सत्ता है, उसकी व्यापक महत्ता को विनयावनत होकर स्वीकार करता हूँ। किन्तु जहाँ तक प्रकृति के सर्जन, दृष्टि के साम्य, नयनों के विश्राम और मुख और आधुनिक सभ्यता की नाना

केलि-क्रीड़ाओं में मानवात्मा के यथार्थ दर्शन का सम्बन्ध है, अंधेरी रात की बात ही कुछ और है ।

फिर भी वह रात मुझे प्रिय नहीं हो सकी । बल्कि इस बात का ज्ञान प्रथम बार उसी रात को हुआ कि जीवन में अत्यधिक प्यारी लगनेवाली वस्तुएँ भी, समय के फेर से, असीम अप्रिय भी हो जाती हैं ।

हवा धीरे-धीरे झकोरे ले रही है और मैं सोच रहा हूँ कि ये झकोरे ठोठ कितने होते हैं । किसी के तन और वस्त्राभरण की सुगन्ध उस व्यक्ति के निकट भी पहुँचा देते हैं, जो उनका प्रभाव सहन नहीं कर पाता—निल-मिला उठता है ।

लेकिन आज के ये झकोरे !

दूर—बड़ी दूर से—कुत्तों के भूँकने की आवाज़ अभी-अभी आयी थी; अब फिर सन्नाटा छा गया है । ऐसा सन्नाटा, जिसमें मृत्यु अपनी तृष्णा पूर्ण करती है—जिसमें शान्ति अपनी श्वेत वेष-भूषा त्यागकर काजल के वर्ण में लीन हो जाती है ।—जिसकी स्वर-लहरी धीरे-धीरे डूबता हुआ एक ऐसा क्रन्दन है, जिसके हास की छवि में कुटिलता का आभास विकास बनता है; जिसकी मोंग का सिन्दूर लाल-लाल धूल-सा न होकर रक्त की वह गहन सरिता बन जाता है, जिसमें अन्धकार युग बनकर स्नान करता है । हृदय के पत्थर पथ के टुकड़े बनकर केवल इसलिये पड़े रहते हैं कि पदाघात सहते-सहते अहंकार की सत्ता नष्ट हो जाय । फिर जो एक नया क्षण भी सँस लेने को मिले, तो उसमें और चाहे जो कुछ हो, पर मनोविकार बिल्कुल न हो ।

पास ही एक बैलगाड़ी खड़ी है और बैल चुपचाप बैठे जुगाली कर रहे हैं ।

इस बैलगाड़ी में नीचे तो खपले और आम की सूखी लकड़ी के मोटे चैले पड़े हैं; ऊपर फूस और अरहर की खादू बिछी हैं । उसके ऊपर बॉसों और बॉस की ही खपच्चियों का बना हुआ एक विमान है । उसके

ऊपर पिताजी का शव रक्खा हुआ है, जिसकी शान्तिकर दाह-क्रिया के लिए हम सब जमना के एक घाट पर जा रहे हैं ।

बैलगाड़ी पर रक्खा शरीर तो चिरनिद्रा में लीन हो चुपचाप, सदा के लिए सो गया है, पर उसकी पवित्रात्मा पता नहीं कहाँ, कितनी दूर, चली गयी है ! यहाँ मृत्यु उसकी थोड़ी देर की मेहमान है ।

सोचता हूँ, जीवन की महाकाय प्रलम्ब अवस्थाओं को देखते हुए यह मृत्यु वय में कितनी लघु है ! फिर भी जीवन अनिश्चित है और यह क्षण-भंगुर मृत्यु निश्चित ! ऐसे ही जीवन क्षण-भंगुर है, यद्यपि वह निश्चित है ।

तो दोनों की क्षण-भंगुरता ही क्या इन बैलों को जुगाली करने के लिए प्रेरित कर रही है ?

नहीं, जीवन को न इस अनिश्चितता की परवा है, न क्षण-भंगुरता की । वह तो अपने व्यापार में लीन है । जीवन किसी एक का रहे, अथवा न रहे—मृत्यु आये तो आती रहे, जाय तो चली जाय; लेकिन जीवन की सार्वभौमिक व्यापकता का क्रम, उसकी क्रियाशीलता का रूप, सदा गतिशील और प्रवहमान रहेगा ।

यही इन बैलों को जुगाली का मूक कथन है ।

यहाँ गाँव के जो अनेक साथी हैं मेरे साथ, वे यही पड़े सो रहे हैं । प्रत्येक से अलग-अलग आग्रह किया है मैंने, कि वे अब सो जायें । उनके जागरण की अब और अधिक आवश्यकता नहीं है । उनकी इतनी ही कृपा मेरे लिए बहुत है ।

इन साथियों में एक वृद्ध जन है, जिन्हें मैं गाँव-पड़ोस के नाते मामा कहता हूँ । मुझ अकिंचन पर यह उनकी अपार अनुकम्पा है कि उन्होंने गाँव से पन्द्रह मील दूर पिताजी की इस महायात्रा में साथ देना स्वीकार किया; सो भी पैदल । और सवारी के लिए उनके यहाँ जो अश्व था, वह उन्होंने मुझे दे दिया है । सोचता हूँ, उनका यह उपकार मैं अपने पैरों से कैसे उतार पाऊँगा ।

शेष साथियों में सभी नवयुवक हैं और वय में मुझसे छोटे हैं । एक

आध तो थोड़े अबोध भी हैं। यहाँ तक कि जब रात में अधेरा प्रा-  
धिर गया और फिर भी हम लोग दो मील चले ही आये, तो अकेले में  
रामलाल इस गाड़ी के निकट आने में हिचकिचाता-सा प्रतीत हुआ।  
लेकिन इस बचपन में भी मेरे प्रति—और मेरे इन पिता के प्रति विशेष रूप  
से—उसमें कितनी श्रद्धा है ! पर वह उस घने अन्धकार में पिताजी के  
शव के पास आने में डरा क्यों, यह मैंने उससे नहीं पूछा—न उसे इस  
विषय में कुछ समझाया ही। क्योंकि मैं सोचता था, उसके मन में कहीं-  
न-कहीं मृतात्मा के प्रेत हो जाने की आशका है। सम्भव है, वह सोचता  
हो कि यह प्रेतात्मा उसके लिये अनिष्ट का कारण हो सकती है। तभी  
तो इस पीपल के वृक्ष की घनी छाया के नीचे जब लेटने का अवसर आया,  
तो उसने गाड़ी से सबसे अधिक दूरी पर, खंडहर की खाली पड़ी एक  
दालान में, लेटना स्वीकार किया।

कुछ भी हो। रामलाल चला आया मेरे साथ, इतना ही कौन  
कम है। मैं उसका यह सहयोग कभी नहीं भूल सकूँगा।

यह रामलाल रेशमी खादी का कुर्ता पहनता है। तबियत का इतना  
शौकीन है कि जाड़े के प्रारम्भ में भी इस रेशमी कपड़े का मोह उससे नहीं  
छूटता। ऊनी जाकेट भले ही ऊपर धारण करनी पड़े।

आया तो है मेरे पिताजी की महायात्रा जैसे शान्त-कर्म में साथ  
देने ; लेकिन पान और उसको बनाने की सम्पूर्ण सामग्री उसके साथ  
अवश्य होगी। और आश्चर्य नहीं कि इतर का फाहा भी उसके कान  
में खुँसा हो। कहते हैं, जब वह जेल गया था, तब तिकड़म से, वहाँ  
भी इस सामग्री का उपयोग करने की सुविधा उसे प्राप्त हो गयी थी !

गोरा सुन्दर वर्ण है, नाक के दाये ओर एक काला मसा। बदन  
छंहरा है। बालों का श्रृंगार साधारणतया दिन में दो बार, किन्तु  
घर से बाहर चलते समय प्रत्येक बार। तेल तिल का खरीदकर,  
उसमें गुलाब का इत्र मिलाकर, प्रयोग करता है। प्रातःकाल पेशावरी  
सैन्डिल, सायंकाल काला फुल-स्लीपर। चाय रेस्तरों में प्रायः अकेला-

बैठकर पी आता है। मित्रों के चक्कर में फँस जाने पर यदि बिल चुकता करने को कोई स्वतः प्रेरित नहीं होता, तो पैसा देने का क्षण आने से पहले उसे नौ-दो-ग्यारह होते ढेर नहीं लगती। लेकिन मित्रता में पड़कर वह पाप-पुण्य का भेद नहीं जानता। जिसका एक बार सगा बन गया, अक्सर आने पर उसके लिए वह कुछ भी कर सकता है। यहाँ तक कि जान भी निछावर करनी पड़े, तो उसके लिए भी वह तैयार हो जायगा।

गौरीशंकर का शरीर इस रामलाल की अपेक्षा कुछ अधिक तगड़ा है। वर्ण गेहुँआ है। मस्तक पर चन्दन कभी-कभी दिखलायी पड़ जाता है। चोटी टोपी के बाहर भी बनी रहती है। न उसका ध्यान कपड़ों पर रहता है—न हजामत पर। कुरता अगर आज धुला हुआ धारण किये हुए है, तो धोती दो दिन से नहीं बदली। जूते पर पालिश महीने भर से नहीं हुई, सो भले न हो; पर हृदय उसका दर्पण की भाँति स्पष्ट है। मनुष्यमात्र के प्रति ममता, सहानुभूति, उदारता और न्याय के निर्वाह में उसकी विशेष रुचि है। यदि उसे कोई धोखा न दे, तो ससार भर में जो भी वस्तु उसके लिये सुलभ है, वह आवश्यकता पड़ने पर उसे अवश्य दे सकेगा, चाहे चौदिस से चालिस घंटे तक का अथक परिश्रम—और साथ में निराहार ही—उसे क्यों न रहना पड़ जाय !

एक दिन मैने कहा था—“यार, धी चुक गया है। कहीं से दो-चार सेर ही दिलवा दो न ? सुनता हूँ, तुम चाहो तो गाँव के लोग तुम्हें आकाश के नक्षत्र भी ला सकते हैं। सो, उन लोगों का यह कथन मेरे जीवन काल में कभी सही उतरेगा—या केवल सुनने-भर की चीज़ ही बना रहेगा।”

तब तम्बाकू की चुटकी होटों के बीच में रखते-रखते गौरीशंकर ने हँसने हँसते कहा था—“दो-चार सेर तो तुम कभी भी मँगवा लेना। यों जब कभी किसी चीज़ की ज़रूरत पड़े, तो दो-चार दिन पहले से बता दिया करो। ऐन पौके पर अच्छी चीज़ ज़रा मुश्किल से मिलती है। फिर



चाहे जैसा गुच्छा निकालो, एक-न-एक अंगूर साला मुँह पर ही सड़ा हुआ ज़रूर निकलता है। यही हाल आदमी की नीयत का है। कोई भरोसा नहीं, कब दौव दे जाय।”

और इस बातचीत के बाद सालभर जब बीत गया, तब गौरीशकर ने बतलाया कि तुम्हारे घर सारा घी भिजवा देने के बाद मैंने तीन दिन तक बिना घी के ही भोजन किया था !

सोचता हूँ—यह गौरीशकर भी जब आज मेरे साथ है, तब चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

एक त्रिवेणी भी है, जिसके हाथ में छै अँगुलियाँ हैं। बदन दिया—सलाई-सा पतला, लेकिन काम करने में फुर्तीला इतना कि मशीन को मात करदे। जाति का ब्राह्मण, लेकिन काम सलाई का करता है। दिन में चार बार चाय पीता है और खाना सिर्फ एक बार खाता है। पैरो में हमेशा चपल रहते हैं। बैठा रहेगा, पर उधार काम नहीं करेगा।

इसके पिता ने दो ब्याह किये और द्वितीय विवाह इस हठ में पड़कर किया कि प्रथम पत्नी आज्ञापालन में दास-वृत्तिके विरुद्ध थी। तदनन्तर जब द्वितीय पत्नी की कोख को पवित्र करने के लिए आपने जन्म लिया, तो बारह वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते आप अपनी परित्यक्ता माँ को ससम्मान घर ले आये। पिता ने जब इस पर आपत्ति की, तो आपने उत्तर दिया था—“पिता के पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए अगर आपने सतान को मना किया, तो याद रखिये, उस सन्तान को अपने इकलौते होने का विचार न कर, पिता के श्राद्ध-भार से, उनके जीवन-काल में ही मुक्त होते देर न लगेगी !”

हवा अभी ठटी चल ही रही थी कि बादल भी घिर आये। हवा ने और तेज़ी का रुख पकड़ लिया तो मैंने आग के अलाव पर ईंटें रखदी, जिसमें उसकी चिनगागियों कोई अग्निकांड न कर बैठे। अब रास्ते के पत्ते, तिनके, कागज़ लत्ते, फूस टूटी पड़ी हुई दियासलाई की डिब्बी, छोटी-मोटी दहनियाँ, काँ उदार भाँखरों के टुकड़े हवा के साथ उड़ने लगे।

बिजली चमकने लगी। बादलों ने भी गरजना शुरू कर दिया। मामा जी की नींद उचट गयी। वे यकायक उठ बैठे और बोले—“राजेन् !”

मैने कहा—“हो मामाजी !”

वे बोले—“जान पड़ता है पानी बरसेगा।” और फिर एकदम घबराकर पेड़ की डाल में बँधी हुई लालटेन की ओर देखते बोल उठे—  
“अरे-अरे पकड़ना तो ज़रा लालटेन को, कहीं हवा के झोंके से गिरकर टूट-फूट न जाय !”

और मैने देखा—सचमुच लालटेन ज़ोरो के साथ झोंका खा रही है।

इसी क्षण बात-की-बात में एक ऐसा बवडर आया कि दालान के अन्दर ढेर-का-ढेर कूड़ा उन साथियों और विशेषकर रामलाल के लिहाज़ और बिस्तर पर जा गिरा। फिर बादल के गर्जन के साथ-साथ बिजली चमकी और पानी बरसने लगा।

मैं जबतक उठकर डाल से लटकती लालटेन की रस्मी खोलूँ, तबतक मेरा कम्बल जहाँ-तहाँ भीग गया और जिस पुलओवर को मैं पहने हुए था, वह भी भीगे बिना बच न सका। फिर एक भयानक हाहाकार-सा मच गया। सभी लोग उट-उठकर हड़बड़ाहट में अपने-अपने बिस्तरों को समेटकर जैसे-तैसे दालान में आकर सिमट-सिमटाकर बैठ गये। बैलगाड़ी पर रखे पिताजी के शव पर पानी पड़ने की आशंका से मैने अपना वह कम्बल उस पर डाल दिया। मन-ही-मन एक विचार आता, एक जाता। कभी-कभी मुँह से निकल पड़ता—हे भगवान् ! सब तेरी लीला है।

मामाजी बोले—“देखो तो कैसा दुर्दिन आ गया !”

उधर रामलाल सदी के कारण कौपने लगा, यद्यपि वह अपने शरीर को काफी ढके हुए था।

चिन्ता प्रकट करते हुए त्रिवेणी बोला—“फूफाजी तो देवता-पुरुष थे। फिर भी उनके क्रिया-कर्म में देखो तो ईश्वर कितने विघ्न डाल रहा है ! लकड़ी गीली हो गयी है। कसे काम चलेगा, समझ में नहीं आता !”

और गौरीशंकर छत से टपकते पानी से हटकर “यह पानी आज ही बरसने को था” कहता हुआ मेरे निकट आ गया।

उस समय एक तो ओधी बहुत तेज़ चल रही थी, दूसरे पानी भी बरस रहा था। बादलों के गर्जन और बिजली की चमक से एक महा-भयानक, विनाशात्मक, अकल्पित संकट की आशंका से उसका रोआं-रोआं कॉप रहा था। उसके दाँत बज रहे थे, मैं यह स्पष्ट सुन रहा था। मैंने अपने ऊपर दोहरा और बिछानेवाला कम्बल डाल लिया था। उसी समय रामलाल बीच-बीच में कह उठता—“आज मालूम नहीं क्या होनहार है! अगर मैं ऐसा जानता तो कभी न आता।”

इसका जवाब गौरीशंकर ने दिया—“ऐसा मत कहो रामलाल। यह दिन कभी-न-कभी सभी पर आ पड़ता है। मनुष्य यदि मनुष्य का साथ न देगा, तो वह पशु हो जायगा। आराम और सुख किसे प्रिय नहीं होता! पर जो कर्त्तव्य सामने आ पड़े, आराम के विचार से उससे मुँह मोड़ना भी कोई मनुष्यता है?”

“भाड़ में जाय ऐसी मनुष्यता!” रामलाल ने गरजकर उत्तर दिया। “मैं इस वक्त घर में इतने आराम से सोता होता कि मुझे इस ओधी-पानी का पता भी न चलता!”

“सो तो ठीक है रामलाल, लेकिन ज़रा यह भी सोचो” मामाजी कहने लगे—“गाँव में छपर उठाने की जब कभी ज़रूरत पड़ती, पाण्डेय जी सब से पहले दौड़ पड़ते थे। जिन्होंने हज़ारों व्यक्तियों को धूप, शीत और पानी से बचाया, आज उनका शव भी हम इस ओधी-पानी में नहीं बचा पाये!”

सम्भव था कि वे कुछ और कहते। किन्तु इतने में रामलाल चिल्ला उठा—“अरे बापरे!” यकायक बड़े ज़ोर के धमाके के साथ दीवाल का एक भाग गीली मिट्टी और पानी का बौछार से उसके पास आ गिरा और उसी क्षण पास रखी लालटेन भी बुझ गयी। अब बिना बोले यह समझना भी कठिन हो गया कि कौन कहाँ खड़ा है!

त्रिवेणी बोला—“दियासलाई तो मेरे पाम है । लेकिन बेकार है । एक ही बौछार में वह भीग जायगी । और ऐसी हवा में लालटेन का टिकना भी कठिन है । ऐसे मे टार्च अलबत्ता काम दे सकता था; लेकिन चलते समय ले आने का खयाल ही न रहा ।”

चारो ओर अन्धकार । तेज़ हवा का अर्राटा, पानी की बौछार और पड़-पड़ शब्द करते छोटे-छोटे ओले । तभी मामाजी मर्माहत स्वर में बोले—“विधि का विधान तो देखो । पाण्डेयजी के अन्त को ही ऐसा दुर्दिन देखना था !” त्रिवेणी कहने लगा—“हम लोग तो किसी तरह यह रात जाड़ा और पानी सह भी लेगे, लेकिन कल फूफाजी की क्रिया कैसे होगी !”

इसी समय फिर एक ज़ोर का अर्राटा आया और बिजली की रोशनी में ऐसा मालूम हुआ, जैसे गाड़ी का पिछला भाग नीचा हो गया है और अगले भाग का जुआ अपने आप ऊपर उठ गया है !

लेकिन मैंने किसी से कुछ कहा नहीं । अलबत्ता एकबार यह अवश्य मन में आया कि ब्रैल कही सरदी न खा जायें । पर उस समय परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी कि प्रकृति के इस प्रकोप के आगे हम सब विवश और असहाय हो रहे थे । साथ ही अन्दर-ही-अन्दर इतने आदमियों के सह-योग का बल घड़ी-घड़ी मुझे यह आश्वासन भी दे रहा था कि कुछ भी हो, पिताजी का स्कार तो अब रुकेगा नहीं । वह होकर रहेगा । और उस समय तक वे सब असुविधाएँ भी दूर हो जायेंगी, जो इस समय भयानक-से-भयानक रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो-होकर हमें डरा रही हैं ।

देर तक हम लोग उसी तरह बैठे रहे । त्रिवेणी ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—“गाँव बिल्कुल पास है । किसी भले आदमी के यहाँ जाकर ऐसे संकट से बचाव के लिए आश्रय पाँगे, तभी रक्षा सम्भव है । नहीं तो पीछे से फूफाजी का साथ देने के लिये हममें से कोई एक ज़रूर तय्यार हो जायगा !”

तभी झट से गौरीशंकर बोल उठा—“क्योंकि स्वर्ग में भी सेवा के लिए उन्हे एक चेला जरूर चाहिए।”

सुनकर मामाजी ने कह दिया—“हँसी-मज़ाक का समय नहीं है गौरी। पता नहीं यह पानी कब बन्द हो। इसलिये रक्षा का उपाय जरूर होना चाहिए। त्रिवेणी तुम्ही कुछ करो। हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से तो कुछ होगा नहीं।”

त्रिवेणी यह कहता हुआ कि “तो फिर मैं जाता हूँ” साहस करके तैयार हुआ ही था कि एक लालटेन के साथ, कई आदमियों की आकृतियों, कुछ फुसफुसाहट के साथ दिखाई पड़ा। और गौरीशंकर बोला—“ये लोग जान पड़ता है, कहीं जा रहे हैं। निकट आने पर इन्हीं से कहना ठीक होगा। छाते भी इनके साथ हैं।”

मैं सोच रहा था कि यही कौन निश्चित है कि ये लोग इसी ओर आ रहे हैं कि इतने में गौरीशंकर के मुँह से निकल गया—“लेकिन यहाँ देहातवाले मृतक की गाड़ी तक को तो अपने दरवाजे से गुज़रने देते नहीं दस-बारह आदमियों की हमारी इस असगुनियों पार्टी को कौन शरण देगा !

गौरीशंकर का कथन बिलकुल सही था। इसलिए एक काला ज़हर सा मेरे अन्दर-ही-अन्दर घुलने लगा।

गौरीशंकर बोला—“यही हमारा अर्धशिक्षित, अर्धसभ्य, निकम्मा देश और समाज है, जिसके झण्डे के लिए ‘विजयी विश्व तिरंगा प्यारा’ गाते समय हम गौरव से फूल उटते रहे हैं।”

मामाजी समन्वयवादी है। गौरीशंकर की बात सुनकर बोले—“इसमें सदेह नहीं कि यह हमारी संस्कृति के पतन का ही एक चिन्ह है; लेकिन है यह बहुत बिगड़े हुए रूप में। हमारी पुरातन संस्कृति एक दम से मर नहीं गयी है। उसके शेष चिह्न जो आज तक मौजूद हैं, उन पर विचार किये बिना हमारे ग्राम-जीवन पर ऐसा लाछन लगाना उचित नहीं है गौरी।”

इतने में जो लोग लालटेन लिये, दूर से कुछ फुसफुसाने हुए प्रतीत हो रहे थे, वे सचमुच हम लोगों के सामने आ खड़े हुए। उनमें से एक बोला—“आप सब लोग हमारे छातों के अन्दर आ जायें। और प्रकाश और जोधा, तुम इनका सब सामान उठा लो।”

इस अयाचित आगत अवलम्ब को अकस्मात् प्रत्यक्ष देख त्रिवेणी बोला—“आप लोगों को हमारे इस सकट का पता कैसे चला?”

मामाजी मारे प्रसन्नता के फल गये। बोले—“कहाँ हो गौरीशकर, देख लो अब अच्छी तरह से हमारे गाँवों की शेष सभ्यता को।” फिर उन लोगों की ओर देखकर मानों सहस्रों वाणियों, मुद्राओं और ध्वनियों से अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे—“धन्य है आप लोग, जा आज हमारी लाज तो रह गयी! नहीं तो इन लोगों के सामने मैं कभी बात करने योग्य न रह जाता! लालटेन ज़रा इधर दिखाना भाई, हमारे बीच एक लड़का रामलाल है। सबसे पहले उसी का कुछ प्रबन्ध करना होगा। क्योंकि यह हमारे मुहल्ले-भर का मान्य और सुखी घर का है। पर वह तो यहाँ कहीं दिखलाई ही नहीं पड़ता। कहाँ गया रे शैतान।”

तब उन्हीं आदमियों के बीच से निकलकर रामलाल यह कहता आ खड़ा हुआ—“मैं यह सामने ही तो हू नाना।” और तब वे सब आगन्तुक भी एक साथ हँस पड़े।

फिर उनमें से एक ने बतलाया कि यही लड़का तो हमारे यहाँ जाकर हमें यहाँ ले आया है।

मैं आश्चर्य से रामलाल को देखता रह गया। उसी को मैं सबसे अधिक डरपोक समझता था। सहायक लोगों के साथ-साथ चलता हुआ गौरी बोला—“रामलाल ने सचमुच तारीफ़ का काम किया।”

त्रिवेणी कहने लगा—“तभी एक बार मेरे मन में आया था कि रामलाल बोल क्यों नहीं रहा है। मैं जानता था कि जो बात हम लोग केवल सोचते रह जायेंगे, रामलाल उसे करके दिखा देगा।”

एक दालान में हम सब पहुँचा दिये गये। नीचे पयाल बिछा था।

ऊपर उसके पुरानी रुई से बनी हुई एक लम्बी दरी बिछा दी गयी, उसके बाहर दालान में अलाव सुलगा दिया गया। ओढ़ने के लिये कई लोई, लिहाफ और कम्बल आ गये।

इतने में खिचड़ो मूँछ, स्थूल शरीर, बदन पर रुई की बंडी डाले हुए एक वृद्धजन आकर बोले —‘आप लोगों के खाने के लिये तत्काल प्रबन्ध हो सकता है। क्योंकि मेरा खयाल है आप लोगों ने खाना तो...।’  
“नहीं-नहीं”, इतना ही बहुत है। यों भी...”मामाजी बोले—“भोजन करके एक भाग को हम लोग ले चुके हैं। पर कौन जानता था, ऐसा संकट आ पड़ेगा !” कहते-कहते वे अभा दीवाल से लभकर बैठे ही थे कि सहसा कह उठे—“अरे हॉ, अच्छी याद आयी। गौरी, न हो उस गाड़ी को भी यहीं कड़ी पास ही लगा लो। कौन जानता है, कब क्या हो जाय ! इसके सिवा बैज्ञों को भी छाया में ही बँधना होगा। बेचारे बहुत ठिठुर गये होंगे !”

गौरी के साथ मैं भी चला गया। आगन्तुक ने लालटेन प्रकाश के हाथ में दे दो। आँधो-पानो का वह वेग यद्यपि कम हो गया था; फिर भी बूँदे अभी पड़ रहों थो। मेरे मन में आया—ऐसा ही अक्सर होता आया है। जब सस र हमें सहारा दे देता है, तब प्रकृति की कुटिलता और निर्ममता भी शान्त पड़ जाती है। अन्यथा जब आपत्ति आती है, और हमारे लिये उसका भोग आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है, तब सम्भव और सुलभ सहयोग और सहानुभूति के खुले द्वार भी बन्द हो जाते हैं। मनुष्य और उसकी सभ्यता के सारे उद्योग, प्रयत्न और प्रयोग जान पड़ता है, उसी समय के लिये हैं, जब प्रकृति हमारे ऊपर दारुण कोप किया करती है।

क्षण भर बाद जो हम लोग उस गाड़ी के पास पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि गाड़ी ज्यों-की-त्यों खड़ी है। विमान भी रक्खा है उसके ऊपर; लेकिन कम्बल और उसके नीचे पड़ा पिताजी का शव गायब है।...जिस वस्त्र और रस्सियों से उनके निष्प्राण शरीर को उस विमान में कसकर बँधा गया था, वह भीगा और धूल से सना हुआ गाड़ी के पहिये के नीचे पड़ा है !

रस्सियाँ कुछ उलभी पड़ी हैं, कुछ टूटी हुई । बैल एक बैठा जुगाली कर रहा है, दूसरा खड़ा हुआ नित्यकर्म में लीन है ।

एक बाग जैसे मेरे सिर पर बिजली गिर गयी हो !

गौरीशंकर के मुँह से निकल गया—“अरे ! पाण्डेयजी का शव तो जान पड़ता है कोई उठा ले गया । लेकिन यह सब हुआ क्या ? कितने आश्चर्य की बात है कि ऐसे आँधी-पानी में... !”

तब मन में आया, जैसे गौरीशंकर का वाक्य अधूरा रह गया है, वैसे ही कहीं पिताजी का जीवनान्त भी तो अधूरा नहीं रह गया । किन्तु गौरी के इस वाक्य की समाप्ति से पहले प्रकाश ने लालटेन दौंये घुमा दी और कहा—“घबराने से काम न चलेगा । सावधानी से हमको इधर-उधर देखना चाहिए । जंगली जानवर तो ऐसे कोई यहाँ... लेकिन कौन जानता है ?”

कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, मानो अन्तरिक्ष से कोई कह रहा हो—“हाँ—, कौन जानता है कि आदमी कब जानवर बन जायगा ।”

प्रकाश का वाक्य भी अधूरा रह गया, तब अत्यन्त सन्तप्त स्वर में मेरे भीतर भी कोई बोल उठा—“अगर भावान की यही इच्छा है कि पिताजी का शरीर पंचतत्वों में मिलने से पहले मानवोत्तर जीवधारियों के काम आये, तो हम लोग कर ही क्या सकते हैं !”

परिणाम-स्वरूप शेष रात-भर हम लोग दूर-दूर तक इधर-उधर शव की खोज में भटकते रहे । लेकिन पिताजी के शव का पता लगना तो दूर, किसी प्रकार के मानवी अथवा अमानवी वन्य पशु के चिह्न तक दिखाई न दिये ।

मामाजी यह परिणाम देखकर रो पड़े । रुँधे हुए कंठ और अत्यन्त आर्तवाणी में वे बोल उठे—“प्रभू, तेरी इच्छा पूर्ण हो !”

तब प्रातःकाल हम सब निरुपाय, निराश, खिन्नमन, नतशिर, अपने-अपने घर लौट आये ।



## एक

उन घड़ियों को मैं अधिक सौभाग्यशाली नहीं मानता, जिनमें मेरा जीवन रंगीन बना है। जीवन में उन्होंने कोई बहुत व्यापक परिवर्तन कर दिया हो, ऐसा भी मैं नहीं समझता। आज मैं जो कुछ हूँ, उसके निर्माण में ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उनका कोई हाथ रहा है, ऐसी बात भी नहीं है। लेकिन एक बात मैं अस्वीकार नहीं करूँगा। वह यह कि मुझे प्यार बहुत मिला है।

यहाँ मैं कोई बात बढ़ाकर नहीं लिखूँगा। एक तो ऐसा करने का मोह अब रह नहीं गया है। दूसरे, देखना हूँ, इसमें कोई मार भी नहीं है। मनुष्य ने एक दूसरे को समझने में जो भूले की है, उनका इतिहास स्वयं इतना रंगीन और मोहक है कि उस पर और रंग चढ़ाना व्यर्थ है।

गॉव त्यागकर अब हम नगर में आ बसे हैं।

छोटी बहिन माधवी के विवाह के दिन है। घर मेहमानों, सम्बन्धियों तथा हितैषियों से भरा पड़ा है। बाज़ार से साग-भाजी लदवाकर ज्यों ही मैं अन्दर आया, त्यों ही माँ ने किवाड़ की ओट के सहारे खड़ी एक युवती का परिचय देते हुए कह — “अपने वंशी को तो तूने देखा है राजेन ? तेरे जनेऊ में वह आया भी था।”

मेरा जनेऊ हुए इतना अधिक समय बीत गया है कि मैं उस बाल्य-काल की बहुतेरी बातें बिल्कुल भूल गया हूँ। उस समय मैं एक तरह से बच्चा था। स्मृति-पट पर पता नहीं कितने व्यक्तित्व आये और चले गये। वंशीधरजी की स्मृति भी मालूम नहीं कि धर जा छिपी। यहाँ तक कि उनकी मुखाकृति का भी स्मरण नहीं रह गया। इसलिये माँ के उपर्युक्त प्रश्न पर चुप रहकर जब मैं कुछ सोचने लगा, तो माँ ने स्वयं ही बतलाया कि वंशी तेरा मौसेरा भाई है। पहले विवाह से अनेक वर्षों तक उसके

कोई सन्तान नहीं हुई, तब उसकी उस बहू ने ही अनुरोध करके उसका दूसरा विवाह कराया है। वही ये तेरी छोटी भाभी हैं। अभी पर साल ही तो गौना हुआ है।

सुनकर उत्साह के साथ मैं बोल उठा—“अच्छा तो ये मेरी भाभी है।” और उसी ओर मुड़ गया, जिधर वे खड़ी हुई थी। साथ ही मैंने कह दिया—“तो आओ, तुम्हारे चरणों की धूल.....।”

वाक्य भी पूरा नहीं होने पाया था कि उन्होंने मेरे उस हाथ को आगे बढ़ने से रोक लिया, जो उसके अलङ्कृत गुलाबी चरणों की ओर बढ़ा हुआ था। और अवगुण्ठन की एक कोर को पतली दो अँगुलियों से छूते हुए ओस के बूँदों से धुली हुई मन्द मुसकान से उत्तर दिया—“बस-बस, इतना बहुत है !”

मैं उनका उत्तर सुनकर सब रह गया। कभी उसके नयनों की ओर देखता, तो देखता रह जाता। दृष्टि उन पर से हटाने की इच्छा ही न होती। कभी सोचता—मैं सौन्दर्य-द्रष्टा हूँ। इसलिये हो सकता है कि गह चलते हुए मेरी दृष्टि रूप की, किसी कोटि-विशेष पर स्थिर हो जाय। कभी सोचता—और हाँ, मैं सौन्दर्य-स्पर्ष्टा भी तो हूँ। इसलिये हो सकता है कि सुन्दर प्रतिमाओं के अध्ययन में इतना आत्मलीन हो जाऊँ कि अपने आप को भी भूल बैठूँ। किन्तु तब भी इतना ध्यान तो मुझे रखना ही पड़ेगा कि मेरे इस महान देश की जो आत्मा है, वही मेरी माँ है। और माँ की उन आशाओं का ध्यान रखना मेरा परम पावन कर्त्तव्य है, थपकी दे-देकर मुझे सुलाते क्षण जो उनके मुखपर अंकित रही हैं और स्वप्न बन-बन कर जिन्होंने एक अपूर्व महत्वाकाङ्क्षा का रूप धारण कर लिया है।

कदाचित् इसलिये सोचने लगता—“अब क्या बात करूँ। क्योंकि जो कोई भी बात मन में आती, वही मुझे अनुपयुक्त जान पड़ती।

किन्तु उन्होंने जैसे मेरे इस धर्म-सकट को ताड़ लिया। क्षण-भर तो वह तद्वत् स्थिर रही; फिर सिलाई से बचे-बचाये डोरे को दाँत की धार से खुटक डालने की भोंति आप-ही-आप, चिरपरिचित-सी कहने

लगी—“भट से स्नान कर लो । तब तक साग भी तैयार हो जायगा । पता है, आज तुमको कितने काम करने है ? बरात टहराने का जहाँ प्रबन्ध है, वहाँ न तो बल्स है, न टेबिलफ़ैन्स । आखिर यह सब कब होगा !”

उनकी इस बात को सुनकर मैं अवाक् रह गया । अभी इनको यहाँ आये हुए एक घंटा भी नहीं हुआ है और प्रबन्ध की त्रुटियों का उन्होंने परिचय भी पा लिया !

मैं अभी इस आश्चर्य में ही पड़ा था कि वे इतना कहकर चल दीं । वे चली जा रही थी और मैं एक साथ शिष्टता, आत्मीयता और व्यवस्था के प्रति, उनकी उचित सतर्कता का अनुभव करके, चकित-विस्मित और मुग्ध-दृष्टि से उनकी स्फूर्ति देख रहा था; और देख रहा था उसमें विकसित प्रस्फुटित उनके रूप-लावण्य का तरंगित वैभव ! एक अमित आभा जैसे मेरे भीतर-बाहर फैल गयी । सारा वातावरण मेरे लिये अत्यन्त स्निग्ध, मधुर और मनोरम हो उठा ।

किन्तु उस समय इन सब बातों पर विशेष सोचने का अवसर ही कहाँ था । वे जो आदेश कर गयी है, केवल उसकी पूर्ति मुझे करनी है । यही सोचता हुआ मैं सीढ़ी स्नानागार की ओर चल दिया ।

चलते क्षण मेरे भीतर एक माधुर्य घुल रहा था । नाना प्रश्नों और कल्पनाओं के तार जुड़ते जा रहे थे और उनका सिलसिला दूर तक फैलता जा रहा था ।

आते ही तुमको मेरी इतनी चिन्ता हो गयी ! कहती हो—“स्नान कर लो भट से; तब तक साग भी तैयार हो जायगा ।” आते-आते तुमने जिस व्यवस्था की बागडोर अपने हाथ में ले ली, उसके अधिकारी से उसके विषय में पूछने की आवश्यकता भी न समझी ! उस अधिकारी का आधार तुम्हें अपने आप मिल कैसे गया !

कहती हो—“पता भी है, तुमको आज कितने काम करने है ?”... इस कथन का यह ‘तुम’ शब्द क्या तुम जन्म से ही मेरे लिये अपने अंक में भरकर ले आयी हो !... तुम मेरी हो कौन ? मैं तुम्हें क्या

समझूँ ? फिर, इतने दिनों तक तुम थी कहाँ ?...जाने दो । अच्छा, अब चार दिन बाद तुम यहाँ से चली जाओगी तब ?—हाँ तब ?

बड़ी देर से मैं पाइप का फौवारा खोलकर नहा रहा हूँ । हो सकता है कि उन्होंने इस बीच मेरी तलाश की हो । ये लो, पाइप चला भी गया । खैर झटपट मैंने बाल सँवारे, वस्त्र बदले । चापल पैरो में डाल ही रहा था कि दरवाजे पर किसी ने किया कुट-कुट-कुट-कुट । मैंने दरवाजा खोला, तो चँदिया बोली—“बहूजी कबसे बुला रही है । मैं यह चौथी बार आयी हूँ ।”

यकायक, पता नहीं मेरे मस्तिष्क के कुछ तन्तु क्यों तन गये ! मैंने कह दिया —“जा, मुझे भूख नहीं है अभी । मैं अपने वस्त्र से ही खाना खाऊँगा ।” यद्यपि इस कथन ने मेरी आत्मा की अनुकूलता नाममात्र को भी न थी । यह केवल उस कथन की प्रतिक्रिया थी जो इतनी तीव्रता से मेरे मानस में प्रविष्ट हो गया था । और अभी तो मैं उसकी तरंग-संकुल लहरों का अवलोकन ही कर रहा था ।

चँदिया चल दी ।

मैंने एक बार सोचा—“क्या त्रैसा कहने के लिए मैं इसे मना कर दूँ ?” लेकिन तब तक वह चली गयी थी । तीर कमान से निकल चुका था ।

इस घटना का मेरे ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसकी प्रतिक्रिया से मैं अपने आपको बचा नहीं सका । सबसे अधिक आश्चर्य मुझे इस बात पर था कि भाभी ने मेरे मन पर अधिकार कर लेने का साहस किया कैसे ! सच पूछिये तो मैं मन-ही-मन कही-न-कही एक गौरव का अनुभव कर रहा था । क्योंकि उन्होंने अपनी ओर से ही मुझ पर मोहन-मंत्र जैसा प्रयोग कर डाला था । लेकिन इस गौरव की बात न सोचकर अन्तर्मन में कदाचित् मैं सोचता यह था कि उनकी मोहकता की इस अच्युत गरिमा को मैं क्यों स्वीकार करूँ । जो नारी अपने असाधारण गुणों के कारण एक शिष्ट और शिक्षित, विवेकशील और संयमी पुरुष पर सहज ही अपना प्रभाव

स्थापितकर उसके मन को मुठ्ठी में कर लेने का अभिमान रखती है, उसके मन्तव्यों का अनुसरण करके मैं केवल अपने आप को ही नहीं, समस्त पुरुष जाति को अपदस्थ कर रहा हूँ।

रास्ते में कई ऐसे मनोरम स्थल मिले, जहाँ अनेक स्त्रियों अपनी सहेलियों तथा अपने पतियों के साथ नाना प्रकार की वस्तुएँ खरीदती हल्की-फुल्की चुहलें करती जाती थी। उनमें अनेक ऐसी भी थी, जिन पर मेरी ये बावली आँखें अस्थिर हो उठती थी। परन्तु प्रत्येक की मुख-छाँबि में मुझे कोई-न-कोई दोष मिलता ही गया। यहाँ तक कि मुझे भाभी के समान सुन्दर उनमें कोई भी न देख पड़ी। तब मेरे मन में आया—उनके साथ इनमें से किसी की तुलना ही क्या!

पर जब मैं सौन्दर्य के आकर्षण का अनुभव करता हूँ, तब यह भूल नहीं जाता कि संसार में कितनी कुरूपता है।

रास्ते में ही उस दिन आज की सभ्यता के एक केन्द्र-स्थल होटल-डी-लक्स के ठीक सामने, स्वच्छ राजपथ पर, चल-दल विटप की शीतल छाया में, एक नर-कंकाल देखा था। पैरों के नाखूनों से खून—खून क्यों, मांस का लोथड़ा झलक रहा था। आँखों और बरोनियों में कीचड़, खिचड़ी हो रहे बालों में धूल और मिट्टी; कान, नाक और मुँह पर कोयले के दाग और समस्त शरीर में गली-गली की राख, धूल और खाद्यान्नाद्य पदार्थों के जूठे चिह्नों का मूक बधिर इतिहास आज भी हृदय पर एंटीप्लाजिस्टीन के प्लास्टर की तरह बँधा है। निरन्तर सोचता हूँ कि आज के जगत् में ऐसे मनुष्य का अस्तित्व क्यों है? इसका निर्माता कौन है? जिन परिस्थितियों ने मनुष्य को इस परिणाम पर पहुँचाया है, उनका मूल आधार क्या है और उस आधार के प्रति उत्तरदायी कौन है?

लेकिन किसे इस ओर देखने का अवकाश है? कौर के भीतर बैठी हुई परम पावन शुभ्र गांधी टोपियों से देखेगी कि एरोप्लेन के अन्दर बंसे वाले कार्यक्रमों के बीच विंशत वर्षीया होस्टेसेज़ के नयन-कटोरोँ पर जा पड़ने वाली आँखें!

फिर सोचता हूँ कि जिन्हे भगवान की इस अनोखी सृष्टि ने एरोप्लेन और कार से उतारकर धूल, मिट्टी और कीचड़-भरी इस धरती पर दस क़दम चलाने की भी आवश्यकता नहीं समझी, उन्हें जनता जैसी अदृष्ट किन्तु सर्वव्यापी, असहाय किन्तु अजेय सत्ता की याद दिलाकर उनकी इस मनोवांछित स्थिति के प्रति द्वेष-मुखर बनने का अपराध मैं क्यों करूँ !

तब तक न माँ ने खाना खाया, न उसने, जब तक मैं बाहर से लौटकर नहीं आया। माँ की तो सदा से यही प्रकृति रही है। इसमें कोई नयी बात न थी। लेकिन उस समय मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि माँ के सिवा ऐसा और भी कोई प्राणी हो सकता है जो मेरी इतनी प्रतीक्षा करेगा। इसलिये यह बात भी मुझे सुखकर ही प्रतीत हुई कि माँ के अतिरिक्त भाभी ने भी मेरी इतनी प्रतीक्षा की।

उस समय मैं पसीने से तर-बतर हो रहा था; क्योंकि तत्काल बाहर से लौटा था। बिजली के बल्बों और पंखों का प्रबन्ध मुझे करना था। इसी के लिए मैं बाहर गया भी था। मैंने मन-ही-मन स्थिर कर लिया था। पहले व्यवस्था, उसके बाद मैं और मेरी दिनचर्या। और इसी में दो बज गये थे।

पहले माँ मेरे पास आयीं। बोली—“अरे राजेन् ! आज तुझे हो क्या गया है ? खाना खायगा कि उपवास करेगा ? कुछ ठीक है !—तीसरा पहर बीतने आया। बहू बेचारी कब से तेरे लिए बैठी है !”

उत्तर में पहले तो मैंने एक बार आश्चर्य से कह दिया—“अच्छा !” फिर क्षण भर के मौन के बाद एक उपेक्षा के साथ मैंने पूछ दिया—“और कुछ ?”

मेरा इतना कहना था कि भाभी तीर की भोंति वहीं आ पहुँची। बोली—“मुझे माफ़ करदो लाला ! मुझसे बड़ी भूल हो गयी !” मैंने लक्ष किया, इस कथन में क्षमा नहीं, नीतिमत्ता है। फिर वे मेरी माँ से कहने लगीं—“भौसी, मैंने इनसे इतना ही कह दिया था कि तुमको जनवासे के लिए बिजली की बत्तियों और पंखों का प्रबन्ध शीघ्र ही करना

है। पर क्या मेरा मतलब यह था कि इस काम के पीछे वक्त से खाना भी ढाल दिया जाय ? लेकिन मैं अपनी ग़लती स्वीकार करती हूँ । मैं यह मानती हूँ कि अच्छा होता, मैंने यही बात तब कही होती, जब ( पहले ) इन्हे खाना खिला देती ।”

इस कथन के बाद वे एक भेद-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगीं । उस दृष्टि का मर्म मैं उस समय उतना नहीं समझता था, जितना अब समझता हूँ । फिर मेरे निकट आकर मन्द स्वर में आप ही बोली—‘ मैं जानती हूँ, तुम इसी काम के लिए बाहर गये थे । मैं यह भी जानती हूँ कि तुम इसे पूरा करके ही लौटे हो !’ और इस कथन के साथ एक निर्मल हास उनके मुखपर खेलने लगा ।

मां से न रहा गया । बोली—“पगली ! देखने में अभी बिलकुल नन्हीं-सी बतिया है । लेकिन काम लेने में कितनी चतुर है ! चल-चल, जल्दी से परोस चलके ।—चलरे राजेन्, मैं तुम्हें इससे भी चतुर बहू ला दूँगी ।” और चलती हुई फिर जैसे अपने कथन के मर्म में स्वयं ही संशोधन कर कहती गयी—“मेरा मतलब यह कि ऐसी ही; इससे ज़रा भी कम नहीं ।”

इस तरह मां मुझे रसोईघर ले गयीं और मैं थान पर बँधी हुई गाय बनकर जैसे चारा थथोलने लगा । उस समय मेरी दृष्टि तो थाली पर थी, पर मेरा मन कहीं और था । माँ कह रही थीं—“यह कोई अच्छी बात नहीं है राजेन् कि घर में जो कोई मेहमान आये, तो तू उसके साथ लड़ाई कर ले । बहू को तू अभी जान नहीं पाया । जान पाता, तो आज उसे अबतक भूखा न रखता ! देखो तो, बेचारी का मुँह जैसे पीला पड़ गया है ! मेहमान लोग काम-काज में सहायता देने के लिए आते हैं, जान देने के लिए नहीं !”

इसी क्षण मैंने जो सिर उठाकर भाभी की ओर देखा, तो जान-बूझकर उन्हें अपनी दृष्टि नीची करली । कदाचित् इसीलिए कि मैं किसी प्रकार उनके मनोभावों का परिचय न पा सकूँ । फिर भी मुझे यह समझने देर न

लगी कि नयन उनके कुछ कह रहे हैं। कुछ ऐसी शरासत करने को आतुर हैं कि वार तो करना चाहते हैं, लेकिन स्पष्ट कहना कुछ नहीं चाहते।

और तब मैंने पहले सिर उठाकर, चुगके से, फिर कुछ तिरछे होकर स्पष्ट रूप से भांकते हुए पूछ दिया—“देखूँ तो भाभी, क्या सचमुच तुम्हारा मुँह पीला पड़ गया है !” फिर दायें-बायें, ऊपर-नीचे, भोंक-भोंक-कर यह भी कह दिया—“हाय सचमुच अम्मा, पीला पड़ने के बाद फिर उस पर सफ़ेदी भी छा गयी है !”

मेरा इतना ही कहना यथेष्ट हो गया ! भाभी खिलखिलाकर हँस पड़ी ! और मैं यह कहती हुई अन्दर चली गयीं—“तुम दोनों-दोनों बने हुए हो ! ऐसी ही बात थी, तो मुझे क्यों परेशान किया !”

...

...

...

यह लग्न-मंडप है। इसकी पावन भूमि के कण-कण पर आज ये जो नाना प्रकार के स्वर गूँज रहे हैं, उनमें कितना उत्साह, कैसी उमंग, कितना आह्वान और आकर्षण है ! नयन है जो यत्र-तत्र भोंकते, चलते और दौड़ते हैं। वाणी है, जो फूटती, खिलती और संकोच-विचार और व्यवहार का रूप प्राप्तकर अन्तरिक्ष में मिल जाती है। मुद्राएँ और भंगिमाएँ हैं, जो मन पर पानी की भोंति चढ़कर कभी लहरा उठती और कभी तन के तुरंग पर ओंधियों के छन्द बन जाती है। इन स्वरों, नयनों, वाणियों और मुद्राओं की सामूहिक छवि को एक बार आत्मा के शुभ्र पावन पट पर उतार लेना चाहता हूँ। एक बार इस परममांगलिक रूप-राशि के निखिल शोभा-पुञ्ज को रंग-मंच का पटोत्तोलन मान उसे इकट्ठे निहारता हुआ युग-युग तक इसी भोंति खड़ा रहना चाहता हूँ।

यह मेरे घर का द्वार है। यह बन्दनवार, मंगल-कलश, यह रोचना की थाली, ये आरती के दीप, ये पुष्पों के दल, कलियों और नन्ही-नन्ही पत्तियों के अकुर, आशीर्वचनों के श्रुत, इन नवयुवतियों और प्रौढ़ नर्तनारियों का मन्द सुख कुनूहल, शोभन आलोक-रश्मियों के बीच, जिस शुभाकांक्षा पर केन्द्रित है, एकबार उसकी अन्तर्व्यापी स्वरधाराओं के मूक रूप को पूर्णतया हृदयंगम कर लेना चाहता हूँ।



नाना प्रकार की अभिनव वेश-भूषा में सजी हुई उल्लासमुखी प्रौढ़ाओं, ललनाओं, प्रमदाओं और अनंग लतिकाओं के इस अपूर्व कोलाहल में यह बात, इसकी लोच और रुचि-माधुरी जिन-जिन की है, उन्हें मैं जानता हूँ। लेकिन मैं बोलूँगा नहीं इस समय। देखता हूँ, यह खिचड़ी पकती कैसी है !

“बरात आ गयी। वह आ रही है .....वह। ऐसे समय ऐसा कोई देख पड़ता, जो दूल्हे की पहली झलक का एक बढ़िया-सा पोज़ ले लेता !”

शब्द नहीं है, स्वर भी नहीं है; लेकिन किसी का यह - यह इधर-उधर देखना भोंकना और निहारना मानो बार-बार यही कह रहा है। और तारीफ़ यह है कि इस बात को केवल मैं ही समझ सकता हूँ ! चमकते झलक़ारों के साथ गोरी ग्रीवा के मुड़ने, तीर की भोंति नयनों के चलने फिर प्राण से लगने और जहाँ-तहाँ खोजती मुद्राओं के बनने और बदलने में सचमुच मुझे मज़ा आ रहा है।

लो, वह बोल ही उठी—“जाने गये कहों ! दिखलायी ही नहीं पड़ते !”

उसे उत्तर मिला —“कौन ? कौन है वो तुम्हारे ? नाम लेते शरमाती हो भाभी रानी ?”

ये मिस लाज हैं और कमल-हॉस्पिटल में नर्स का काम करती हैं। वायोलिन बहुत अच्छा बजाती हैं। हैं सॉवले रंग की, लेकिन ओखों में कुछ ऐसा जादू है कि अकारण बात न करने का संयम स्थिर रखना दुष्कर हो जाता है।

इन्हे उत्तर मिला—“शरमाओ तुम, जिसकी चितवन बाण बरसाती चलती है। मैं तो अपने राजेन्द्र को पूछ रही हूँ।”

इतने में यकायक कोलाहल बढ़ गया। कई आवाजे एक साथ गूँज उठी। इतना गुल-गपाड़ा मचा कि बात सुनना कठिन हो गया।

“लो आ गयी बरात। दूल्हा पालकी में बैठा है। वह, जिसके

सिर पर मौर रखवा है ।...बैठ तो बड़े नक्शे का है कि एक रेला इधर से उधर—चल हट, यह कौन आगे आ गया । मैया तो कहते थे—वे काग्रेस पंथी है, आतिशबाज़ी नहीं छुड़वायेगे ।...हूँ, बड़े कहनेवाले । आतिशबाज़ी के बिना कहीं ब्याह होता है !...अरे ठीक तरह से ठाढ़ी रहो बिट्टो । उचको मत बहुत । सबको देखने दो । अकेली देखोगी, तो आँखों में मिरचे लग जायँगे ! फिर सन्-सन्-सन्न-न्-न् । फौव्वारा छूटा । फिर बम के गोलों के गगन-भेदी स्वर । यह आभी पालकी । अलग हटो तो यहाँ से बढ़ी... । फिर सन्-सन्-सन्न-न्-न् फौव्वारा छूटा । आइये आचार्यजी ।...लेकिन एक मिनट । मुझे अपना केमरा फ़िट करना है ।...आप यह चँवर डुलाना ज़रा रोक तो दीजिये ।...आप भी थोड़ा-सा हटिये । हॉ, बस ।...बड़ी कृपा होगी, यदि आप थोड़ा-सा मुसकरा दें । - यस्, यस्, रेडी ।...एक क्षण को तेज़ लाइट । थैक्स । - हॉ आचार्य जी, अब आप शुरू कीजिये अपना गोरखबंधा ।...मंगलम् भगवान विष्णुं, मंगलम् गरुड्वज्ज ।...तनि माधवी क्यार भाग तौ घाखौ दिद्रा, दुलहा अस नीक लागत है, जैसे हमरे राजा साहब क छोटका बेटवा होय । जौन सात समुन्द्र चौदह नदियों पार करिके पढ़िके लउटतै खन कलहटर हुइ गवा रहा ।

...

...

...

यह प्रीति-भोज है । स्पष्ट है कि इसका आयोजन हमारी पारस्परिक प्रीति ने किया है । किन्तु इस उपस्थित समुदाय में कुछ ऐसे भी देवता हैं, जो हमारी इस पारस्परिक प्रीति का भी भोग लगाने में परम प्रवीण हैं । ये जो गेरुआरङ्ग का कुरता और उसी की टोपी सिर पर धारण किये हुए बैठे हैं, उनका शुभनाम विपिनविहारी है ।

ज्येष्ठ मास की नङ्गी भूखी दोपहर थी । मैं घण्टाघर के पास छाता लगाये मुँह लटकाने खड़ा हुआ था । माधवी के विवाह का सारा उत्साह कन्ट्रोल-व्याघ्र की रक्त-पिपासु लपलपाती जिह्वा ने चाट-चाटकर साफ़ कर दिया था । पन्द्रह दिन की दौड़-धूप में, इष्ट मित्रों से भीख की तरह माँग-माँगकर इक्कीस सेर मात्र चीनी संग्रह कर पाया था और बीस सेर मात्र

विमानसे प्राप्त हुई थी। तो उस दिन यकायक वहाँ, आगकी दिव्य मूर्ति दृष्टिगत हो गयी। निकट आते-आते आप बोले—“यहाँ कैसे?”

मेरे मुँह से निकल गया—“चीनी के लिए दौड़-धूप कर रहा हूँ चाचाजी! आप भी थोड़ी मदद कर दीजिये।”

आपने तगक से उत्तर दिया—“मदद की इसमें क्या बात है? यह तो अपना धर्म है। फिर, तुम तो घर के लड़के हो। ... कितनी चाहिये?”

उत्तर की मिठास चीनी से अधिक प्रतीत हुई। जैसे इनसे अधिक परोपकारी आज मेरे लिए जगत् में दूसरा सम्भव नहीं है। तब अपनी आवश्यकता जानबूझकर संकुचित बनाकर मैंने कह दिया—“एक बोरा भी मिल जाती तो जैसे-तैसे काम चल जाता।” और मन-ही-मन मैं अनुभव करने लगा—एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के आगे, इस प्रकार कृपा का भिखारी बनना, जीवन के साधारण से साधारण व्यवहारों के लिए उसका यत्र-तत्र इस तरह गिड़गिड़ाना आज की सभ्यता और आज़ादी के स्वप्न का कितना सुन्दर विकास है!

आप बोले—“बस एक ही बोरा न?”

मैंने प्रसन्नतापूर्वक कह दिया—“जी, बस एक ही...।”

तब आपने कहा—“अच्छी बात है। जब ज़रूरत हो चले आना। मैं उसी वक्त हाल-की-हाल दिलवा दूँगा।”

मैं मन-ही-मन सोचने लगा—ऐसे साधु और परोपकार-परायण पुरुष आज भी इस दुनियाँ में मौजूद हैं!

उस दिन के बाद पन्द्रह दिन बीत गये। जब मिठाई बनानेवाले घर के आँगन में आ बैठे, तब मैं इन्हीं चाचाजी के पास गया।

दरवाज़े पर पीपल का पेड़ है। उसकी डाल पर से हड्डी का एक टुकड़ा पास के मकान की टीन पर गिरकर नाली में आ रहा। मकान की दूसरी मंज़िल पर चढ़ रहा हूँ। बाहर कुत्तों के लड़ने की गुराहट सुनाई पड़ रही है।

पन्द्रह फ्रीट के वर्गाकार कमरे में तख्त के ऊपर गद्दा, गद्दे पर सफ़ेद खादी की चादर, सिरहाने दो मसनदें, दायी ओर महात्मा गांधी का चित्र, बायी ओर पंडित नेहरू का। बाहर ख़स की टट्टियों पर पानी छिड़का जा रहा है, भीतर पंखा चल रहा है। चाचाजी मसनद पर सिर टिकाये अख़बार पढ़ रहे हैं। दाये ओर एक तश्तरी में छिले-कटे आम के टुकड़े रखे हैं, दूसरी में लखनऊ के सफ़ेद ख़रबूजों की आठ दस फाकें और पीपल की डाल से कौवे का कौंव-कौंव स्वर सुनायी दे रहा है। और पड़ोस के दरवाज़े से कुत्तों के विचार-विनिमय की सुखद आवाज़ आ रही है !

मैं- चाचाजी के पास ही तख़्त पर बैठ गया और भुककर हाथ बढ़ाकर उनके चरणों की रज लेकर मस्तक पर लगाने लगा।

वे मेरी ओर देखकर कुछ आश्चर्य और कुछ-कुछ प्रसन्नता से बोले—“ओः राजेन्द्र ! कहो कैसे ?” और उठकर बैठ गये। मैंने लक्ष किया—देर से पहचानना और पूर्व प्रसंग को बिलकुल भूलजाना भी बड़प्पन का एक चिह्न है। तब मैंने कह दिया—“उस दिन आपने चीनी दिलवा देने का वचन दिया था।”

वे कुछ-कुछ आश्चर्य और किंचित विस्मृतिके-से भाव से प्रारम्भ करके इस प्रसंग की महत्त्व-हीनता दिखाते हुए बोले—“वचन तो उसे नहीं कहा जा सकता !—और फिर उस दिन के बाद इधर तुम मिले भी नहीं।”

“बार-बार मिलने की तो कोई बात तब नहीं हुई थी, चाचाजी।” मैंने गम्भीरता से कह दिया—“बल्कि आप के शब्द थे—“जिस दिन ज़रूरत पड़े, सीधे मेरे पास चले आना। मैं तत्काल दिलवा दूँगा।” बड़े आश्चर्य की बात है कि आपको अपने इन शब्दों तक का ध्यान नहीं रहा !”

तब वे आम का टुकड़ा मुँह में रखते हुए बोले—“वो, बात असल में ये है कि चीनी तुमको एक ज़गह से मिल ज़रूर जाती; लेकिन अचानक

खन्नाजी के यहाँ ब्याह आ पड़ा। दो बोरे उन्हें दिलवानी पड़ी। जोगी !  
अरे ए जोगी !”

थोड़े अन्तर से आवाज़ आयी—“आया मालिक ।” और काले  
नग्न शरीर पर एक मैली और फटी धोती मात्र धारण किये जोगी आ  
गया ।

तब चाचाजी बोले—“सुपारी अन्दर से ले आना इनके लिए ।”

भुक्कर “बहुत अच्छा मालिक” कहता हुआ जोगी जव्र जाने लगा,  
तब मेरे मुँह से निकल गया—“आपकी कृपा से मैं सुपारी नहीं खाता ।”

“ऐं ! सुपारी नहीं खाते ! बड़ी अजीब बात है ।” विस्मय से भौंहे  
उठाते और सतर-सी करते-करते हुए चाचाजी बोले—“अच्छा खैर,  
पानी तो पियोगे। देखो जोगी, इनको कुएँ का ताज़ा जल ले आ !  
समझा कि नहीं ?”

वह बोला—‘समझ गया मालिक !’ और चला गया। तब  
खरबूजे का टुकड़ा मुँह में खोंसते-खोंसते चाचाजी कहने लगे—“हाँ,  
तो फिर खन्नाजी के बाद एक दिन तिवारीजी आ धमके। उनके साले  
की नातिन का जन्मदिन था।—सो वे खुद घर आकर मेरी निजी  
चीनी ज़बरदस्ती उठा ले गये। ज़्यादा तो थी नहीं। यही दस-बारह  
सेर पड़ी होगी। अभी चार दिन पहले की तो बात है। इसके बाद  
मौक़ा ही न मिला..। फिर आम की फाँक मुँह में डालकर मेरी  
ओर जैसे एक अभिप्राय-विशेष से देखने लगे।

उनका यह भाव देखकर मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे मेरे पैरों के नीचे  
की धरती खिसक रही है। एकबार मन में आया, दो चार फ़रमायशी  
जुमले जमा दूँ। पर फिर उस स्थिति का ध्यान आ गया, जब मिठाइयों  
बाज़ार से मँगानी पड़ेगी और दाम एक के बदले चार मजबूर होकर देने  
ही पड़ेंगे। और तब वनस्पति के प्रताप से, इष्ट-मित्र और स्नेही, अतिथि  
और मान्य, किसी भौंति सन्तुष्ट न होंगे। अतएव मैंने कह दिया—“अब  
चाहे जैसे दिलवाइये, लेकिन दिलवाइये ज़रूर। सो भी इसी वक़्त ।”

मेरा इतना कहना था कि उन्होंने ग्राम और खरबूजों की दोनों तश्तरियों मेरी ओर बढ़ा दी। बोले—“लो खाओ। चिन्ता मत करो। कुछ-न-कुछ इन्तिज़ाम हो ही जायगा।”

और तब अन्त में वही हुआ, जो स्लाटरहाउस में आये पशु के साथ होता है।

...

...

...

आज जब ऑर्गन में लग्न-मंडप के नीचे श्रीवर अपने लघुभ्राताओं के साथ कलेऊ कर रहे थे, तब अकस्मात् गौरीशंकर तथा त्रिवेणी आ गये। आये तो थे कुछ गम्भीर से होकर, पर लग्न-मंडप के पास आते आते साधारणतया प्रकृत हो गये।

मैंने पूछा—“कहो भोलानाथ, मर्त्यलोक में क्या हो रहा है?”

मेरे कथन में मनोविनोद का जो भाव था, उसका स्वागत करना गौरीशंकर के लिए सर्वथा स्वाभाविक था। किन्तु उससे थोड़ा-सा भी प्रभावित हुए बिना वे पूछने लगे—“मनोज को तुम जानते हो न?”

मैंने फिर भी मनोविनोद की ही भावना से उत्तर दिया—“मनोज को क्यों न जानूँगा। जीवन की गति में सर्वत्र उसे देखता हूँ। फिर भी क्या देवाधिदेव का त्रिनेत्र उस पर कोई विशेष कृपा करनेवाला है?”

इस बार गौरीशंकर को स्पष्ट कहना पड़ा—“मज़ाक छोड़ो। ठीक-ठीक बताओ, याद है उसकी?”

तब मैंने भी स्पष्ट कह दिया—“अरे तुम उसी मनोज को पूछ रहे हो न, जिसने केवल इस विचार से अपना एक वर्ष बरबाद हो जाने दिया कि वह एम्. ए. में फ़र्स्ट क्लास ही पाना चाहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि द्वितीय वर्ष विश्वविद्यालय के फ़र्स्टक्लासवाले छात्रों में उसका स्थान द्वितीय आया।” •

गौरी बाबू बोले—“हॉ-हॉ वही। कल उसने आत्मघात कर लिया।”

“आत्मघात कर लिया !”—मैंने विस्मय और दुःख से अधीर हो पूछा—“केसे ?”

गौरी ने जवाब दिया—“हमारे एक पूज्य नेता श्रीमान् १००८ श्री...ने उसे एक उच्च पद पर नियुक्त करा देने का वचन दिया था । लेकिन जब उनके पास एक सजातीय उम्मेदवार की सिफारिश पहुँची, तो वे अपना वचन भूल गये । वे सत्य की वह प्रतिष्ठा भूल गये, जिसे उन्होंने मन, वचन और कर्म से अबतक अपने जीवन का परमादर्श मान रखा था । वह प्रतिज्ञा भी वे भूल गये, जिसका उन्होंने शपथ लेते क्षण, बड़े गौरव के साथ, उच्चारण किया था । बेचारा मनोज इस आघात को सहन न कर सका ! ”

रूमाल से सिर का पसीना और मुँह पोंछता-पोंछता एक कोने में खड़ा होकर त्रिवेणी धीरे से बोला—“यह समाचार सुना मैंने भी है, पर इसमें सत्यांश कितने आने भर है, यह मैं नहीं कह सकता । हाँ, इतना जरूर मुझे कहना पड़ेगा कि वह मनोज तो कहने भर को था । असल में था वह नपुंसकजाति का पुरुष । अन्यथा जातीय पक्षपात, घूसखोरी और स्वार्थों के बटवारों की लूट-खसोट की इस बहती गंगा में तबियत भर कर हाथ धोने से बढ़कर पुण्य इस युग में और दूसरा है नहीं !”

गौरीशङ्कर बोला—“क्या कहते हो त्रिवेणी ?” प्रभुता पाने पर देवता, ऋषियों, आचार्यों ने यही तो किया है सदा । इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? जीवन से लगे मोहों से कब वे सर्वथा निस्संग रह पाये ?

तब त्रिवेणी ने पुनः कह दिया—“पर जब उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो प्रायश्चित्त में उन्होंने क्या नहीं किया ?”

तब हाथ पकड़कर दरवाजेकी ओर बढ़ता हुआ गौरीशङ्कर बड़बड़ाने लगा—“आज हमारे इन राजनैतिक देवताओं को भी अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं है । नित्य वे उसी प्रकार के अपराध करते हैं, जिनको मिटा देने के लिए कारागार-वास तक का दण्ड भोगने में वे कभी नहीं हिचके थे । जिस भूमि पर उनका विकार-ग्रस्त थूक और बलगम पड़ा हुआ है,

आज उसी को सूँघते हुए वे सुवास का अनुभव करते हैं। उनके मानसिक सन्तुलन की स्थिति यह है कि सच्ची आलोचना से कुछ सीखने के बजाय वे चीख-चीख उठते हैं। पक्षपात करते क्षण वे यह भूल जाते हैं कि ईश्वर की इस विचित्र-सृष्टि की रचना ही कुछ ऐसी हुई है कि सर्वथा गुप्त प्रसंग भी सहज ही प्रकट हो जाते हैं। यहाँ तक कि मन के अन्दर-ही-अन्दर छिपे पड़े रहनेवाले पाप-सङ्कल्प भी कभी-कभी हमारे किसी कथन विशेष से स्पष्ट झलक उठते हैं।

अभी तक चुनचाप खड़ा हुआ मैं यही सब सोच रहा था कि अकस्मात् मेरा ध्यान लग्नमण्डप के नीचे एक दृश्य-विशेष पर आकृष्ट हो गया।

परम्परा और रीति के अनुरूप कलेवा के उपलक्ष्य में श्रीवर को कुछ रुपये दिये जा रहे थे। इस अवसर पर पहले तो वह चुप रहे, पर जब सब रुपये इकट्ठे हो गये, जो कुल मिलाकर एक-सौ-उन्नीस होते थे, तब उन्होंने सौ रुपये का एक नोट उसमें और मिलाकर सब-का-सब रुपया माँ को दे दिया। बोले—“मेरी इच्छा है कि दरवाजे पर नाई, धोबी, बारी, कहार, माली, मेहतर आदि दासवर्ग के जितने भी बच्चे देख पड़ते हैं, ज़रूरत पड़ने पर ये रुपये उनकी दवा में खर्च किये जायें।”

सारा घर एक अभिनव कोलाहल से भर गया। चारों दिशाओं से धन्य-धन्य के स्वर आने लगे। माँ ने इसी क्षण श्रीवर की आरती उतारी, आशीर्वाद दिया और बलैयाँ ली। उनकी रुद्धवाणी फूट पड़ी। सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—“लाल मेरे, सदा दीन-दुखियों का ऐसा ही ध्यान रखना। पूजा और प्रतिष्ठा पाने पर उनको कभी न भूलना, जिनकी आशाएँ आज हमारे न्याय की बाट देख रही हैं।”

तब कानों में कोई कहने लगा—“एक यह नवकुमार है, हमारी नयी पौध का लघु अंकुर ? और एक वे महामहिम राजपुरुष ।”

...

...

...

कल बारात को ज़रा जल्दी निपटा दिया था। ग्यारह बजे हम लोग फ़ुरसत पा गये थे। हमारी ओर के भी सब लोग भोजन करके इधर-उधर



स्थान खोजकर ठिकाने लग गये थे। छत पर चौंदनी छिटकी हुई थी और पवन मन्द-मन्द डोल रहा था। थकान इतनी अधिक थी कि मैं एक कुर्सी पर ही बैठा हुआ सोने लगा। भूषकी लगी ही थी कि अकस्मात् मेरे होठों से कोई ऐसी शीतल वस्तु आ लगी कि मैं चौंक पड़ा। वह वस्तु और कुछ नहीं, बरफ़ की डली थी और अब प्रशं पर जा गिरी थी। उधर कुर्सी के पीछे तरल हास का क्रमशः मन्द पड़ता हुआ एक मृदुल स्वर भी मैं सुन रहा था। फिर यकायक आँख जो खुली, तो देखता क्या हूँ शीतलगटी पर बैठी दो थालियों में खाद्य-सामग्री लगाती हुई भाभी चँदिया से कह रही है—“बस, अब तू जा। और देख, सदर दरवाज़े के किवाड़ भेड़ देना। और कल सबेरे ज़रा जल्दी आ जाना, सूर्योदय से पहले। समझी? तो बस जा।”

चँदिया चली गयी। अब भाभी बोली—“हाँ, अब आ जाओ।”

मैं नींद के भोंके में था। कुछ नहीं बोल सका। केवल इतना मालूम हुआ कि कोई कुछ कह रहा है। भाभी ने पुनः कहा—“ऐसे चुप हैं, जैसे कुछ सुन ही न रहे हों! अरे मैं कहती हूँ, आ जाओ।”

अन्तिम वाक्य वे ज़रा ज़ोर से बोलीं।

मैं अँगड़ाई लेता हुआ बोल उठा—“कहाँ?”

उन्होंने निस्संकोच कह दिया—“इधर, यहाँ, मेरे पास। खाना खाने।”

मैंने बिना सोचे-बिचारे उत्तर दिया—“मैं किसी के पास जाकर खाना नहीं खाता। खाना खुद ही मेरे पास चला आता है।”

“तो मुझे भी कम नींद नहीं है” वे बोली—“मैं थाली ढककर रखे देती हूँ।”

“रख दो न? इसमें पूँछने की क्या बात है? जिसे भूख लगेगी, वह अपने आप खाने बैठ जायगा।”

भाभी चुप रह गयी। फिर क्षण भर बाद एक निःश्वास के-से स्वर में मानो अपने आप से ही कहती हुई बोल उठी—“दो दिन कट ही गये हैं। दो-तीन दिन और हैं। सो भी कट जायेंगे।”

बात के मर्म को हृदयंगम करते हुए मैंने तब पूछ दिया—“उसके बाद ?”

“उसके बाद” उन्होंने कह दिया—“कहाँ तुम, कहाँ मैं !”

मैं स्तब्ध रह गया। सोचने लगा—इस वाणी का मूलस्रोत जहाँ है, जहाँ से यह स्वर फूटकर निकल रहा है, क्या वहाँ जाने, उस स्थल पर इधर-उधर भौंकने और तबियत लगे तो थोड़ी देर के लिए रम जाने का अधिकार मुझे है ? फिर प्रकट में कह दिया—“भूख तो मुझे नहीं थी, लेकिन अब तुम्हारी इस बात ने पैदा कर दी।”

और उठकर मैं भोजन पर बैठ गया।

खुली छत पर जो पलंग बिछा हुआ था, जब उस पर जाकर मैं लेट गया, तब दालान की बत्ती जल रही थी। कब वह बुझाई गयी, मुझे इसका बिल्कुल पता न चला। लेकिन इतना ध्यान बना रहा कि सुराही में कदाचित् पानी कम रह गया है। तभी लेटते ही मैंने कह दिया—“सुराही में पानी ज़रूर भरवा देना। कभी-कभी रात में इतनी ज़ोर की प्यास लगती है कि अचानक नींद ही उचट जाती है।”

फिर कब नींद आ गयी, मुझे कुछ नहीं मालूम। लेकिन थोड़ी देर बाद मेरी पलकों पर पानी की कुछ अतिशीतल धूँदें जो आ लगीं, तो मैं यकायक चौंक पड़ा और भट से उठकर बैठ गया। बैठते ही मैंने पूछा—“क्या है यह सब ?” मेरे स्वर में प्रकट रूप से कुछ अरुचि थी, मानता हूँ। किन्तु भीतर-ही-भीतर मैं जैसे मधुरता का अनुभव कर रहा था।

मंदिर मुसकान दबाती-सी भाभी ने जवाब दिया—“बिकार बिगड़ते हो। बरफ़ थोड़ी-सी बच रही थी, उसी का कोई बूँद उड़कर जा पहुँचा होगा तुम्हारे पास। अजीब दुनियाँ है। होम करते हाथ जलते हैं। रात में तुम्हें कभी-कभी प्यास अधिक लगती है। इसीलिए मैंने सोचा, सम्भव है, तुम्हें प्यास लग आयी हो !

“हूँ, तो यह बात है !” मैंने कह दिया।

“बात-बात तो कुछ नहीं है।” वे मानो अपने को सम्हालती हुई बोली—“पानी पीना हो तो ले आऊँ!”

“प्यास-व्यास तो कुछ है नहीं” मैंने भी कह दिया—“लेकिन जब तुमने जगाने की ही कृपा की है, तो लाओ, पी ही लूँ!”

तब गिलास में पानी देती हुई वे बोली—“अगर मैं ऐसा जानती कि तुम्हें बिल्कुल प्यास नहीं है, तो सच कहती हूँ, मैं कभी न जगाती।”

तब उत्साहपूर्वक मैंने भी गिलास हाथ में लेते हुए कह दिया—“हो सकता है, न जगाती। पर मुझे जगाना ऐसा सहज भी नहीं है। आज की बात दूसरी है। आज तो सच पूछो, मैं सोता हुआ भी, कुछ-कुछ जग ही रहा था।”

मेरी इस बात का उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। हाँ, पान खिलाना वे न भूलती।

अब बड़ी देर तक मुझे नींद नहीं आयी। नाना प्रकार के विचार मेरे मन पर कुछ इस तरह तैरने लगे, जैसे सरोवर पर बतखें तैरा करती हैं और हम यह सोचते रह जाते हैं, काश हम ऐसे बतख ही होते। इतनी गहरी जल-राशि पर स्वच्छन्द विचरण तो करते!

छत के इस चालीस फीट चौड़े भाग के समान पूर्व की ओर जो छत है, उसमें दस-बारह चारपाइयों के बीच मेरी भाभी लेटी हुई हैं। सोचता हूँ, वे अब सो गयी होंगी। उनको भी तो प्यास लग सकती है। लेकिन जिस तरह उन्होंने मुझे जगाकर पानी पिलाया है, क्या उस तरह मैं भी उन्हें...। अरे! यह मैं क्या सोच रहा हूँ!

फुटपाथ पर अब भी लोग आ-जा रहे हैं।...अच्छा, क्या इनमें कोई मेरे परिचय का न होगा? क्या इनमें कोई मेरे कॉलेज का न होगा? क्या इनमें कोई ऐसा पंखी न होगा, जिसने मेरे साथ कभी पंख पसारकर उड़ने की चेष्टा की हो?

लेकिन किसी ने मुझे, इतनी रात को, इतना शीतल जल, इस तरह

पलकों पर छींटे डाल-डालकर कभी नहीं पिलाया। और किसीने मुझे रात की पहली घड़ियों में इस तरह सोते से जगाया भी नहीं।

फिर भी जब नींद नहीं आयी, तो उठा और उसी छत पर इधर-से-उधर टहलता रहा। टहलते-टहलते बिल्कुल भूल गया कि किस ओर आगे न बढ़ने का ध्यान रखना मेरे लिए आवश्यक है। पर अब तो उस ओर जा ही पड़ा था। अतः अकस्मात् एक विस्मय के-से भाव से जो पीछे हट कर लौट पड़ा, तो भाभी आश्चर्य से बोल उठी—“क्यों, क्या हुआ?”

तब मुँह बनाकर मैंने कह दिया—“हूँ, पूछती हो, क्या हुआ? पान में चूना इतना ज्यादा और कत्था इतना कम कि बिल्कुल रंग-मे-भङ्ग हो गया।”

“हाय सचमुच!” आश्चर्य के साथ भाभी बोली और पल्लेग से तत्काल उठकर एक अटूट विश्वास के साथ कहने लगी—“नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।...देखो लाला, हमसे ऐसी ठठोली मत करो। ठीक-ठीक बतलाओ, क्या सचमुच?” भाभी के कथन में एक क्रम-विकास था विस्मय, विश्वास, संशय और स्नेह की मिश्रित मिठास का।

“रहने दो, अब ज़रूरत नहीं है।” मानो अपने कथन की रक्षा के मिस मैंने उत्तर मे कह दिया—“पानी अलबत्ता चाहो तो और पी लो। प्यास का मामला ठहरा। जैसी मेरी, वैसी तुम्हारी।”

वे क्षण भर चुप रही। फिर दालान में रखे पनडब्बे से पान लगाकर मुझे देती और अपने मुँह में रखकर चलती हुई बोली—“बारात में अभी-अभी किसी ने एक बहुत बढ़िया रिकार्ड बजाया था।”

आश्चर्य-मिश्रित इकटक दृष्टि से मैंने कह दिया—“अच्छा!” और फिर पूछा—“गीत की आदिम शब्दावली क्या थी भला?”

वे किञ्चित ठिठकी, रुकीं और फिर तरल हास के साथ बोली—“हिरना, समझ-समझ बन चरना।” और तत्काल लौट पड़ीं।

भाभी का यह कथन मुझे काँटा-सा चुभ गया। अपने आपको मैं बहुत वाक्पटु समझ रहा था। मेरा विश्वास था कि अबसर पर समुचित

उत्तर देने में कोई मुझे जीत नहीं सकता। पर उनके इस एक ही कथन से मेरा सारा दर्प जैसे चूर-चूर हो गया। देर तक पल्ले पर लेटा-लेटा मैं यही सोचता रहा—क्या आजकल मैं किसी नाटक का रिहर्सल कर रहा हूँ? या इस दृश्यावली के अन्तर्पट में जीवन-व्यापी कोई रहस्य छिपा हुआ है? मेरे साथ ऐसा क्यों होता है? मैं इनके साथ इतना उच्छ्वल क्यों बन जाता हूँ? क्यों इनसे बातें करने में मैं अपने मन-प्राण को इतना उत्तरंग बना लेता हूँ? मेरी इस स्वच्छन्दता को इनके द्वारा जो इतना बल मिलता है, उसका मूल कारण क्या है? क्या मैं...क्या वे...?

लेकिन इससे पूर्व मैं इतना छिछला कभी नहीं बना! प्रश्न यह है कि ये यहाँ आयी ही क्यों? किन सम्भावनाओं और भावी घटनाओं की ये भूमिका हैं? इस रचना का दायित्व मेरे ऊपर है, उनके ऊपर है, या किसी के ऊपर नहीं है? क्या यह सब एक खेल है—तमाशा भर है। एकांकी? या यह एक सम्पूर्ण नाटक का शुभारम्भ है?

पर यह तो आदि ही है अभी। मध्य कितनी दूर है, कौन जानता है? और अन्त क्या होगा इसे कौन कह सकता है?

दो का घण्टा बज रहा है। घण्टे का गम्भीर स्वर जैसे-जैसे मन्द पड़ता जाता है, वैसे-वैसे कोई... यह... यह... मेरे मानस-पट पर लिख रहा है, अमिट अक्षरों से—

हिरना, समझ-समझ बन चरना !

## दो

कभी-कभी हमारे जीवन में विचित्र क्षण आ जाते हैं। हम यह स्थिर ही नहीं कर पाते कि हमें करना क्या चाहिये।

यदि हम सोचते हैं कि ऐसे अवसर पर हमें अपने आपको स्पष्ट करना चाहिए, तो होता यह है कि हम अपने चारों ओर एक ऐसा वातावरण बना लेते हैं जो हमको उत्तरोत्तर अस्पष्ट ही करता जाता है।

और इसके विपरीत यदि हम अपने आपको गुप्त रखना चाहते हैं, तो अनायास कोई ऐसा प्रसंग आ जाता है कि हमारे अन्तः का सारा भेद स्वतः खुल जाता है।

उस दिन मैं सोचने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि अपने आप को बचाये रखने का उपक्रम करता हुआ भी मैं गहराई की ओर ही बढ़ता चला जा रहा हूँ ? तब मैं अपने आपसे पूछने लगा—क्या मैं वास्तव में मौन हूँ ? मौन यदि मैं नहीं हूँ और मैंने इनको भी मौन नहीं रहने दिया है, तो इस मुखर स्पष्टता का परिणाम क्या होगा ? जो मेरा पथ नहीं है, उसके प्रति इस स्पष्ट अनुरक्ति का अर्थ क्या है ? चाहे जैसे हो, इसी अर्थ को आज सोच लेना है और बिना किसी भ्रिभ्रक और संकोच के उनके समक्ष उपस्थित कर देना है।

रात हुई। हम लोग फिर उसी छत पर खाना खाने साथ-ही-साथ बैठे। बातों का कुछ ऐसा सिलसिला जमा कि भरे हुए कलश में से जैसे एक बूँद बोल उठे, वैसे ही चाहते-न-चाहते हुए, मेरे मुँह से एक बात निकल गयी—“तुम मुझको तंग बहुत करती हो भाभी !”

मेरी बात सुनकर एकबार उन्होंने मुझे ध्यान से देखा। उनकी दायी ओर की मुख-संधि ज़रा हिली और फिर इस विषय को जैसे टालते हुए उन्होंने सामने की ओर संकेतकर कह दिया—“अच्छा बोलो, आज चौदनी कैसी छिटकी हुई है !” और साथ ही उनके मुख पर एक अभिनव

शोभा खेलने लगी। सच पूछिए तो वैसी विमल शोभा मैंने अब तक किसी नारी में न पायी थी। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे समुद्र की हिलोर के साथ मैं तट से बहता-बहता अनन्त अगाध जलराशि में जा पहुँचा हूँ। जगह आने पर तट पर आ ही जाऊँगा, इसका कुछ ठीक नहीं है।

संयोग से उसी क्षण कोयल बोल उठी—कु...हू...ऊ।

मैंने पूछ दिया—“अच्छा भाभी, यह कोयल हमेशा एक-ही-सा बोल क्यों बोलती है? क्या इसके पास कहने के लिए केवल एक ही बात है?”

उन्होंने बरक़्त से तर किये हुए शीतल आमों की फाँकों की दूसरी डिश मेरे समक्ष रखते हुए उत्तर दिया—“वह चिड़िया है। उसकी बात में निरन्तर उड़ने और उड़ाने का प्रसङ्ग होना ही चाहिए। उसके जीवन में समस्याएँ भी अधिक नहीं हैं। इसलिये अन्य बातों को छोड़कर अगर वह मतलब की ही बात बारम्बार कहती रहे, तो इसमें क्या आश्चर्य है?”

मैं सोचने लगा—कहती तो ठीक है। पर फिर उन्होंने कह दिया—“और मनुष्य ही के पास कहने के लिए कौन ऐसी बहुत-सी बातें हैं? जीवन-भर की सारी बातें मन और पेट की आवश्यकताओं, समस्याओं की सीमा में आ जाती हैं। कहने के लिए तब हमारे पास केवल एक बात बच रहती है!”

लेकिन अब तक मैं इसी बात का अर्थ लगा रहा था कि—“अच्छा बोलो, चाँदनी कैसी छिटकी हुई है!” फिर इस बात को लेकर मैं और भी उलझन में पड़ गया। प्रतीत होने लगा—इनकी कोई बात गूढ़ अर्थ से ज़ाली नहीं होती। तब एक विस्मय और आश्चर्य मेरे अन्दर उठ-उठकर अनन्त माधुर्य धोलने लगा।

मेरे मन के तार-तार से खेलती इस नारी में विचार और दृष्टि के साथ-साथ समाधान भी कही होगा, अब तक मैं यह स्थिर नहीं कर पाया था। सम्भव था कि मैं उनकी ज्योत्स्ना-फुल्ल मुद्रा की ओर इकट्ठ

देखता ही रहता। किन्तु कोयल ने बोलकर मूल प्रश्न की ओर पुनः मेरा ध्यान आकृष्ट कर दिया।

तब मैंने पूछ दिया—“कौन सी बात?” आँख-मे-आँख डाले हुए उन्होंने उत्तर दिया—“जैसे कोई अपने आप पर विचार किये बिना दूसरे से पूछ बैठे कि तुम्हें प्यास तो नहीं लगी है !”

उत्तर सुनकर मैं हतप्रभ-सा हो उठा। एक पराभव का भाव अनुभव करता हुआ मैं जैसे यह स्पष्ट देखने लगा कि मेरे मन के भीतर जो एक कालिमा का कुण्ड उत्पन्न हो गया है, ये उसे जानती हैं। तब अपने ही लिए एक ग्लानि-सी मेरे अन्तःकरण में फैल-फलकर गहरी होने लगी। एक प्रश्न बार-बार मेरे भीतर उदय हो-होकर हलचल मचाने लगा कि एक क्षण, एक वाक्य और एक ही चितवन में जो नारी अपनी संचित राशि का समस्त अमृत एक साथ उँडेल देती है, वही दूसरे क्षण इतनी कठोर, रहस्यमयी, मायाविनी और निर्मम कैसे हो जाती है? प्रेम और तिरस्कार के प्रयोग ये एक क्रम से क्यों करती है? क्या ये इस प्रकार अपने आपसे ही लड़ती हैं? क्या इनकी सारी अभिव्यक्ति केवल अपने लिए है? या जो कुछ यह दान करती हैं, अन्त में उसे स्वयं ही प्राप्त भी कर लेती हैं?

प्रायः जब भाभी को कोई काम न होता, अथवा जब वे भोजन करके आती तब एक पनडब्बा लेकर बैठ जाती। ऐसा भी अक्सर आया है, जब मैं काम में लग गया हूँ और बाहर आकर मैंने पान खा लिया है। पर उसके बाद जब कभी मैं भीतर पहुँचा हूँ, तब इधर-उधर डोलते हुए मेरे निकट आकर वे धीरे से कहती गयी है—“पनडब्बे में पान लगे रक्खे है।” •

मैं सोचने लगता कि कहने के बदले वे मुझे पान दे ही क्यों नहीं जाती! तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कर्तव्य के मार्ग में ये समन्वयवादिनी है। जब देखती है कि किसी परिस्थिति में सम्पूर्ण प्रतिदान, निमन्त्रण अथवा आह्वान का अवसर नहीं है, तो जितने अंश तक वह



सम्भव होता है उसी अंश तक उसका उपभोग करने में वे संकोच नहीं करतीं। पर आज इस समय तो ऐसी कोई बात न थी।

सरोता उनके हाथ में था और वे डली काट रही थीं। इतने में जनवासे से ग्रामोफोन-संगीत की एक कड़ी फूट पड़ी—“तुम प्यार की बतियाँ क्या जानो !”

सुनकर मैंने उनकी ओर देखकर हँस दिया। लेकिन उन्होंने मेरे हँसने को कोई महत्त्व नहीं दिया। वरन् संकेत से कुछ ऐसा भाव व्यक्त किया, जैसे यह कथन कोई उनसे न करके मुझी से कर रहा है। पर अभी मुझे उनका ‘उस बात’ से सम्बन्धित उत्तर भूला नहीं था। कदाचित् इसीलिये मेरे मन में आया—“मुझे जानने की ज़रूरत भी नहीं।” तब प्रतिक्रिया मेरा एक ऐसा रूप बनाकर प्रकट हुई कि मैं स्वयं अपने प्रति एक हीन भाव से भर गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि इस नारी के सामने मैं उत्तरोत्तर एक खिलौना-सा बनता जा रहा हूँ। मेरा अस्तित्व दिन-प्रति-दिन क्षीण—हीन-से-हीन—होता जा रहा है। मैं इसके आगे सब तरह से एक अपदार्थ बनता जा रहा हूँ।

अब एक चिरस्थायी उदासी मेरे भीतर व्याप्त हो गयी थी और क्षण-क्षण पर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरा मुँह काला करने के लिए ही नियति अपने दोनों हाथों में बैसलीन का पुट देकर काबल पोत रही है।

इतने में मैं क्या देखता हूँ कि भाभी पान स्वयं खाकर उठ खड़ी हुई हैं।

उस समय मैं छत की मुँडेर के पास खड़ा हुआ एकाकार हुए गहरे काले क्षितिज की ओर देख रहा था। तभी वे भी मुझसे कुछ फ़ासले पर आकर खड़ी हो गयी। मेरे मन में आया—आज यह मुझे पान देने में जान-बूझकर टाल-मटोल कर रही हैं। पर उसी क्षण वे—“पनडब्बे में पान लगा रक्खा है” कहकर चली खड़ी हुई।

पहले तो सदा की भोँति मैं यही सोचता रह गया कि इतना निकट चले आने के बाद भी ये मुझे पान दे ही क्यों नहीं जाती। परन्तु फिर

मेरे मुँह से निकल गया—“रक्खा रहने दो । मुझे उसकी ज़रूरत नहीं है ।”

कहने को कह तो दिया, पर फिर मैं स्वयं अपने आप से पूछने लगा—“यदि यह उपालम्भ का स्वर है, तो—और यदि इसमें मान और अहंकार है, तो भी—मुझे उनके साथ ऐसा व्यवहार करने का क्या अधिकार है, यदि मैं स्वतः उनसे कुछ चाहता नहीं ।

वे मूक, स्तब्ध, जड़वत् स्थिर खड़ी हुई मेरी ओर इकट्ठक देखती रह गयी और मैं चुपचाप अपने पलंग की ओर चल दिया ।

एक बार मेरे मन में आया, वे मेरे पीछे चली आयेंगी, उन्मद-मन्द्र भङ्गावात-सी, मिलन-व्याकुल यामिनी-सी, दिवाकर के पीछे हॉफती-हँसती, शैल-शृंग पर अञ्जल पसारती-फहराती सुरभित धूप-सी, महासागर के उज्ज्वल उच्छल ज्वार-सी ।

एक बार सोचा, वे मुझे जाने से रोकेंगी; जैसे आषाढ़ मास की प्रतिपदा निदाघ के समक्ष आकर उसका पथ रोक दे; कुछ भी न कहे, तो भी जान पड़े, हाथ फैलाकर कह रही है—“देखती हूँ, कैसे आगे बढ़ते हो !”

जैसे गुलाब की खिलती हुई कली पास उड़ते गुन-गुन गाते हुए अमर का निकलना रोक दे । कहने को चाहे एक शब्द भी न कहे—अधर-भर खोल दे ।

किन्तु ऐसी कोई बात नहीं हुई । तब मैं स्थिर होकर सोचने लगा—“क्या मैं स्वयं विकारग्रस्त हूँ ? उनमें ऐसी कोई बात नहीं है ।”

फिर कब मैं सो गया, मुझे नहीं मालूम ।

उस दिन पानी बरस गया था । आकाश में अब भी श्यामघटाँ छाया हुई थी । मेरा पलंग कमरे के अन्दर बिछा हुआ था । बिजली की बत्ती बुझाकर मैं लेटा था । लेकिन पखा चल रहा था । प्रारम्भ में दस-पॉच मिनट तक पलंग पर पड़ा हुआ मैं कुछ सोचता-सोचता निद्रालीन हो गया था, इतना भर याद है । फिर ऐसा जान पड़ा,

धीरे-धीरे, रुक-रुककर, पग-ध्वनि मन्द, मन्दतम करता हुआ कोई मेरे शयन-कक्ष में आ रहा है। यह आ रहा है, यह...यह। लो, फिर रुक गया, ठिठुककर खड़ा हो गया। फिर वह पग-ध्वनि एक शून्य में, एक सघन-मूक-अन्धकार में, एक निविड़-स्तब्ध-अनावृत यामिनी में आप-ही-आप समा गयी है। मैं यह भी नहीं जान सकता कि वह पग-ध्वनि केवल मेरे मन में थी, या उसका कोई वास्तविक दृश्यमूलक स्पष्ट अस्तित्व भी था। किन्तु उड़ते श्यामघनों-सी यह कुन्तल राशि, यह रेशम के उलझे हुए गुच्छों-सी मुलायम और चिकनी लच्छियों मेरे गर्वीले खुले कंधों और मूक-तप्त वक्ष पर कैसी आ पड़ी हैं ! आखिर यह है क्या ? मैं वास्तविक जगत की बात सोच रहा हूँ, या यह सब कोरी कल्पना है !

लो, फिर आया किसी की उठती-गिरती साँसों का स्पष्ट स्वर ! कुछ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मेरे स्नायु-केन्द्र का रक्त जमने लगा है। मैं बोल नहीं सकता—हिल नहीं सकता।—यहाँ तक कि जोर से साँस भी नहीं ले सकता ! फिर ऐसा प्रतीत हुआ, किसी की कोमल अँगुलियों मेरे लम्बे-लम्बे घने केशों के बीच पड़कर—कुछ रुक-रुककर—मानों कुछ सोच-सोचकर मेरा सिर सहला रही है !

एक बार मन में आया कि क्यों न आँखें खोलकर देख लूँ, यह है कौन ? क्यों न स्पष्ट जान लूँ कि यह वास्तव में किसी का गोप्य आत्म-दान है या मेरे ही मन का भ्रम ! पर फिर स्वतः मेरे ही मन में एक मोह उत्पन्न हो गया—यदि यह स्वप्न भी हो, तो इसे स्वप्न की ही स्थिति में क्यों न रहने दूँ ! यथार्थ में ही कौन आनन्द की चरम सीमा उपलब्ध होती है ! वास्तविक जीवन में तो असम्भव कभी सम्भव बना नहीं, बन सकता भी नहीं। तब वास्तविक तक चले आये सम्भव-असम्भव को भी स्वप्न के ही रूप में क्यों रुक जाने दूँ ! जो बात जीवन में सम्भव नहीं है, क्या यह आवश्यक है कि मनुष्य उसे कल्पना और स्वप्न में भी देखना पसन्द न करे ? नहीं नहीं, मानवात्मा को इतना कठोर दंड देना मैं कभी पसन्द न करूँगा।

लो, फिर किसी की लट मुख पर—कपोल पर—आ गई। और फिर मैं अपने आप से भगड़ने लगा—नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह स्वप्न है, माया है, छलना है। भाभी के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना ! छि, ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह सत्य भी हो, तो असत्य हो जाय। यह यथार्थ भी हो, तो मिथ्या बन जाय। यह असत्य है, मिथ्या है, भ्रम है, प्रमाद है, व्यर्थ है।

मन मे आया, चिह्ना उठूँ। पर ऐसा जान पड़ा, मानो किसी ने मेरा मुँह दबा लिया हो। पर मुँह दवाने में जिस कठोरता का अनुभव होता है, उसके स्थान पर अनुभव हुआ कमल-दलों की कोमलता का। और साथ ही सौरभ का भान हुआ, सो अलग। वाह ! तब तो यह दमन भी मधुर है, आघात भी मृदुल। लेकिन मेरा मुँह क्यों नहीं खुल रहा है ! न भी खुले, अथवा कुछ देर बाद ही खुले, तो क्या हानि है ? जो प्राप्य है, उसका तिरस्कार मैं क्यों करूँ ! यह फुल्ल-सुमन-सौरभ-सा मेरे चारों ओर जो दिख रहा है, फैल रहा है, लित हो-होकर उड़ रहा है, उसकी उपेक्षा ? ना भई, यह मुझसे न होगा। मैं योगी नहीं हूँ।

एक बार पुनः मन मे झटका-सा लगा। अब भी देख ले—देख ले मूर्ख—आँख खोलकर प्रत्यक्ष देख ले—कि यह स्वप्न है या यथार्थ। परन्तु फिर एक अगाध, असीम, अनंत लज्जा का भाव मेरे अन्तस्तल मे फैल गया। मैं सोचने लगा—भाभी केवल भाभी हैं। और कुछ वे कैसे हो सकती हैं ? सम्भव है, कभी किसी विशेष अभाव की ज्वाला से झुलस उटती हों। पर वह ज्वाला जो वासना की अतृप्ति, तृष्णा के उद्रेक और अवाञ्छनीय असंतोष से उत्पन्न होती है, उसकी सीमा कहाँ है ? प्रत्येक युग, प्रत्येक समाज, प्रत्येक संस्कृति उसे एन-केन-प्रकारेण सीमा और संतुलित रखेगी। कोई भी सामाजिक संगठन असीम वासना की इस उद्दाम स्थित मे पड़कर ध्वस्त हो जायगा।

किन्तु यह हुआ क्या ! मेरी शीतल पलकों, भृकुटियों और नासिका की नोक पर यह निःश्वास कैसा ! नहीं-नहीं, यह मेरा भ्रम है। किन्तु भ्रम

भी क्या इतना विलक्षण, रंगीला, सुरभित, कोमल और मादक होता है ?  
क्या भ्रम भी मनुष्य के लिए इतनी प्यारी वस्तु है ?

फिर कब मैं सो गया था, कब तन्द्रा में था, कब स्वप्न-दर्शन की स्थिति में आया, मैं सोचने लगा—क्या इन साधारण बातों की चेतना भी मैं खोता जा रहा हूँ ?

फिर सोचा—कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं सचमुच प्रमाद-ग्रस्त हो गया हूँ ? क्या मेरा मस्तिष्क ठीक तरह से काम नहीं कर रहा ?

नहीं नहीं, अब ऐसी कोई बात नहीं है । सब निष्पन्न हो गया है । प्रातःकाल हो रहा है । सूर्य की किरणें फूट निकली हैं । एकान्त का सूनापन अपने आप ही तिरोहित हो गया है । चिड़ियों ने चहकना प्रारम्भ कर दिया है । सारसों की जोड़ी मंगल गान कर रही है । कोयल गदराये आम पर चोंच मार-मार कर कुछ बोल क्या रही है—अमृत घोल रही है और जैसे मेरे मन के तार-तार को ट्योल रही है !... रात में बहुत अंशों में मनुष्य व्यक्ति रहता है । तब मैं भी व्यक्ति मात्र था । मेरी ये कल्पनाएँ, सम्भावनाएँ और अनुभूतियाँ व्यक्तिगत थीं । अब मैं व्यक्ति नहीं हूँ । समाज के समक्ष मैं उत्तरदायी हूँ । व्यक्ति होकर भी मैं समाज हूँ ।

लेकिन पल्लेग से उठकर मैं यह देख क्या रहा हूँ ! सिरहाने गुलाब के फूलों का ढेर पड़ा है । तकिये पर पान के कुछ दाग हैं । और तो और—मुझे स्वयं पता नहीं था कि पान भी मेरे मुँह में भरा हुआ है !

...

...

...

आज प्रातःकाल माधवी की विदा थी । पिताजी की याद करके माधवी बहुत रोयी थी । मेरी आँखों ने भी मेरे अन्तः को प्रकट कर दिया था । बारम्बार मेरे मन में यही बात आ खड़ी होती थी—काश वे बने होते !

एक बात और है । कभी-कभी कुछ ऐसी कल्पनाएँ भी मेरे मन में उटती रहती हैं, जो संसार की दृष्टि में असम्भव हैं । कभी-कभी मेरे मन

मे आता है—सम्भव है, मेरे पिता अब भी इस संसार में कहीं-न-कहीं जीवित बने हों ।

लेकिन अदृष्ट को कौन देख पाया है ? कौन जाने, यह भी तो हो सकता है कि वन्य प्रकृति ने ही उनका उपभोग किया हो !

लेकिन घटनाओं की अमांगलिक कल्पनाओं को भी मैं मानसिक रोग ही क्यों न मानूँ ? उनके शव की इस दुर्गति को मेरा मन किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता । कानों में कोई कहने लगता है—ऐसे सच्चे, साधु और देव-पुरुष का देहान्त इतना अवाञ्छनीय हो, ईश्वर की ईश्वरता भी एक बार इसे स्वीकार न करेगी ।

लेकिन फिर प्रश्न उठ खड़ा होता कि इस असम्भव का सम्भव क्या है ? यही न कि वे इस संसार में जीवित हैं ? अच्छा तो वे, अगर जीवित हैं, तो फिर हैं कहाँ ? अगर छिपे हैं, तो प्रकट क्यों नहीं होते ?

अर्थात्, न यही निश्चित है कि वे हैं—न यही निश्चित है कि वे नहीं हैं । तो फिर निश्चित क्या है ? और यदि वे जीवित नहीं हैं, तो उनके शरीर का फिर हुआ क्या ?

तो सम्भव-असम्भव और निश्चित-अनिश्चित की इसी मध्यस्थिति के लिए क्या माधवी रोयी थी ?

माधवी के विवाह के समस्त कृत्य धीरे-धीरे सम्पन्न हो गये । बीच-बीच में भाभी के नयन, उनका स्वाभाविक सलोनापन, उनकी श्लेषमयी रसमयी बातें, युक्तियों और चुहलभरे वाक्य और सब से अधिक उनकी आत्मीयता ने इस अवसर को और भी अधिक सरस बना दिया । सच पूछिये तो उन्होंने पिताजी की याद को बहुत उभरने नहीं दिया—एक तरह से उसे दबाये ही रखा ।

लेकिन माधवी रोती हुई मुद्रा, कल्पना-रंजित अनिश्चित भविष्य के हाथ में पड़ जानेवाली नाना सम्भावनाओं की प्रकृत आशङ्का, अपनी

सरल चपल क्रीड़ाओं की एक पवित्र, अद्वैत और विलक्षण स्मृति छोड़कर कुछ काल के लिए मानो रङ्गमंच के एक पार्श्व में जा छिपी ।

...

.

..

...

इसी प्रसङ्ग से एक तिनके-सी छोटी बात मेरे मन पर उतर आयी है । मेरे हाथ में यह जो क्रीमती घड़ी बँधी रहती है, एक दिन तीन बजे यह यकायक बन्द हो गयी । मुझे सन्देह हुआ, क्या मैंने चाभी नहीं भरी ? तब खयाल आया कि चाभी तो मैं नित्य प्रातःकाल उठते क्षण ही भर देने का आदी हूँ । इसमें भूल कभी होती नहीं । फिर भी मान लिया कि हो सकता है, भूल हो ही गयी हो । अतः जब फिर चाभी दी, तो उसने केवल छै चक्कर स्वीकार किये । तब स्वतः सिद्ध हो गया कि भूल हुई नहीं थी । लेकिन परिणाम इसका यह हुआ कि घड़ी चलने लगी । और फिर वह बराबर चलती रही ।

मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ ।

उसी दिन सायंकाल मुझे जान्स्टनगंज जाने का अवसर मिला । यहाँ चौद-वाच-कम्पनी के अपने चिर-परिचित मिस्त्री मिस्टर सुलेमान से मेरी बातचीत हुई । उसने माइक्रास्कोप को दायी ओंख की पलकों में दबाकर उस घड़ी की परीक्षा ली । फिर घड़ी ज्यों-की-त्यों वापिस करदी । उसका कहना था कि कोई खराबी नहीं मालूम होती । हाँ, सफ़ाई की ज़रूरत हो सकती है । अब जो कभी बन्द हो, तो दे जाइयेगा ।

मैंने कहा—मगर यह तो अभी नयी घड़ी है ।

इस पर सुलेमान मुसकराया । बोला—अरे साहब, क्या आप समझते हैं, नयी घड़ियाँ कुछ कम शरारती होती हैं ? जैसे कोई घड़ी पुरानी होने की वजह से दुरुस्ती के लिए चली आती है, बिल्कुल उसी तरह अकसर नयी घड़ी भी आ पहुँचती है । बिल्कुल आदमी का-सा हाल समझिये । उसका बहुत पुराना हो जाना, जैसे एक बड़ा ऐब है, वैसे ही एकदम नया होना भी एक छोटा ऐब है । फिर आप यह क्यों भूल जाते हैं

कि मैशीन की फिटिङ्ग भी तो एक चीज़ है। उसका ऐब भी तो आदमी की ही ग़लती हुआ करती है।

सुलेमान के इस कथन पर जब मैंने विचार किया तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पुरानी मैशीन का ऐब है अधिकाधिक उपयोग के कारण उसका घिसाव और घिसाव से उत्पन्न शिथिलता—ढीलापन। इसी प्रकार नयी मैशीन का दोष है, गति के सम्बन्ध का अनभ्यास—जड़ता। क्योंकि सब कुछ दुरुस्त होने पर भी मुमकिन है, पुरज़ों की फिटिङ्ग में ही कहीं बल रह गया हो।

इस सुलेमान का कथई वर्ण है। क्लीन शेव्ड रहने पर भी अकसर दाढ़ी बढ़ी मिलती है। मैं जब-जब उधर से गुज़रा हूँ, मैंने सुलेमान को सिर झुकाये, आँख की पलकों के भीतर माइक्रास्कोप डाले काममें बिल्कुल जुग हुआ पाया है। अमनी ही नहीं, मित्रों की घड़ियों भी अनेक बार मैंने उसी से सुधरवायी है। पैसे का उसे लालच नहीं है। छोटो-मोटे काम मुफ्त में बना देना उसकी आदत है। वादे पर काम देने में कभी फ़र्क़ नहीं पड़ा। जो कह दिया, उससे टस-से-मस हुआ नहीं। पैसे कम पड़ने पर व्यवहार में अन्तर पैदा करना वह जानता नहीं और दो दिनका वादा अगर दस दिन में भी पूरा कर दिया, तो उसने कभी शिकायत की नहीं।

तब सोचा, आज अनेक वर्ष बीत गये, कभी सुलेमान के इन गुणों की ओर मेरा ध्यान क्यों नहीं गया ?

घड़ी हाथ में बाँधे चुपचाप चला जा रहा हूँ और सोचता जाता हूँ—जीवन के सारे सम्बन्ध क्या केवल अवसर-भर के लिए हैं ? क्या उसके बाद सब शून्य है ?

दिनभर अनेक कामों में व्यस्त बना रहा। व्यस्तता में भी सुलेमान की बात मन को छूती रही। सिलसिले और क्रम जुड़ने लगे।

कटरा में एक मित्र रहते हैं। उनके यहाँ एक बहुत पुरानी टाइमपीस टेबिल पर पड़ी रहा करती थी। उसमें एक विचित्र गुण उत्पन्न हो गया था।



जब उसे पेट के बल रक्खा जाता, तब वह बराबर काम देती रहती, किन्तु जब सीधी रख दी जाती, तभी बन्द हो जाती ।

सिलसिले और क्रम बोल रहे हैं ।

बम्बई में एक बार जब मैं सड़क पर फिसलकर गिर पड़ा था—मेरा यही हाथ, जिसमें मैं घड़ी बोंधता हूँ, शरीर के सारे वज़न के भार से भोंका खाकर एक भारी पत्थर पर जा पड़ा था । उस समय भी यह घड़ी बन्द हो गयी थी । पर उसके बाद जब मैं अपने रामलाल के ठहरने के स्थान में उस मकान की दूसरी मंज़िल पर चढ़ने लगा था, तब यह घड़ी पुनः चलने लगी थी ।

इन सब छोटी-मोटी बातों और घटनाओं के मूल आधारों पर जो मैंने विचार किया, तो मेरे अन्दर एक शङ्का, एक प्रश्न, एक समस्या ने जन्म ग्रहण कर लिया । मैं सोचने लगा—जैसे यह घड़ी जरा-सा धक्का खाकर कभी बन्द हो जाती और परिस्थितियों और गति-विधियों के उतार-चढ़ाव में बल खाकर पुनः चल उठती है, वैसे ही क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि किसी मानव-हृदय की मैशीन भी इसी लक्षण की हो ?

क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि घड़ी की भाँति किसी व्यक्ति की हृद्गति बन्द हो जाय और परिस्थिति-परिवर्तन से वह पुनः यथावत् गतिशील हो उठे ? यदि मनुष्य का हृदय एक मैशीन है, तो मैशीन का यह गुण भी मनुष्य के हृदय को मिलना ही चाहिये । क्यों न पता लगाकर यह जानने का प्रयत्न किया जाय कि एक बार हृदय की गति रुक जाने के अनन्तर क्या कभी कोई व्यक्ति पुनर्जीवन में आया है ?

विश्वास तो नहीं हुआ कि ऐसा सम्भव हो सकता है ; क्योंकि कभी ऐसा सुनने में नहीं आया । किन्तु फिर सोचा कि इस आशय की किंवदन्तियों की हमारे देश में कमी नहीं है । बहुधा यह सुनने में आया है कि दो-दो चार-चार घंटे का मृत शरीर पुनः संप्राण हो उठा है । इतना ही नहीं, वह फिर पूर्णायु के पश्चात् ही स्वाभाविक शरीरान्त को प्राप्त हुआ है ।

तब एक आशा की क्षीण ज्योति पुनः मेरे मन में जग उठी। विश्वास-सा हो उठा कि मेरे पिताजी भी इस संसार में संदेह, सप्राण जीवित हो सकते हैं। यह एक ऐसा अटूट विश्वास मेरे मन में स्थिर होकर बैठ गया कि निरन्तर मैं उस घड़ी की कल्पना करने लगा, जब मुझे पिताजी कहीं अनायास मिल जायेंगे।

...

...

...

सदा की भोति पुनः कई दिन से मुझे नीद नहीं आ रही थी। इसलिये शरीर में थकान बढ़ती ही चली जा रही थी। चिन्ताएँ मेरे मानस पर तैरती थी। कल्पनाओं के स्फुलिंग मेरे ऊपर उड़ते थे। विचारों ने मनोमंथन की गति को इतना तीव्र बना दिया था कि खाना-पीना भी महत्वहीन हो गया था। विश्राम के लिए शरीर की नस-नस इतनी व्याकुल हो उठी थी कि एक दिन ज़रासा अवकाश मिलते ही मुझे नीद आगयी।

उस दिन मैंने भाभी की कोई खोज-खबर नहीं ली थी। यों मकान के भीतरी कमरों से कई बार गुज़र गया था। पर न भाभी मेरे सामने पड़ी, न मैंने ही किसी से पूछा कि वे कहाँ छिपी बैठी गुप लड़ा रही है। सच पूछिये, तो मुझे इतना अवकाश ही नहीं था कि मैं उनकी याद भी करता।

बारह बज गये थे और माँ भोजन के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहीं थीं। किन्तु मैं तो सो रहा था, भोजन करने कौन जाता! फिर उस समय कैसे जाता, जब पेट की अपेक्षा मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों को विश्राम की ही अधिक भूख थी। और सोते समय किसी को जगाना मुझे पसन्द नहीं है, माँ यह बात अच्छी तरह जानती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वे रसोई में चुपचाप बैठी रही, केवल उस क्षण की प्रतीक्षा में कि कब बेटे की आँख खुले और भूख का अनुभव करके वह स्वयं यहाँ दौड़ा चला आये।

एक बात और थी। उस दिन केवल माँ ही नहीं, भाभी ने भी मेरी प्रतीक्षा में भोजन नहीं किया था। पर मुझे इस बात का बिल्कुल

ध्यान न रहा। ध्यान होता तो भाभी को चाहे टाल जाता। पर माँ को तो किसी प्रकार कष्ट न देता।

अच्छा, यह जो मैंने अभी कह डाला कि भाभी को चाहे टाल जाता, इसका भी एक कारण है। और वह यह कि कभी-कभी मेरे मन में आया है—किसी की मोहकता में प्यार की जो कल्पनाएँ उठती हैं, मानता हूँ उनमें अद्भुत सौन्दर्य होता है। लेकिन मोहकता के विपरीत विराग में, स्त्री के उत्तेजन से, कल्पनाओं का जो रूप निखरता है, उसकी छटाभी कम मोहक नहीं होती। भले ही उसका मूलाधार केवल एक चुहल या कुतूहल-शान्ति का कोई अटपटा प्रयोग हो।

हाँ, तो उस दिन बड़ी प्रतीक्षा के बाद मेरी आँखें जो खुलीं, तो क्या देखता हूँ, साड़ी की फरफराहट के बीच पल्लव के पास खड़ी हुई भाभी कह रही हैं—

“चलो, खाना खा लो; फिर सोना।”

और मैंने देखा, प्रकाश शिथिल और मन्द है। दीवाल पर एक छाया-चित्र बन रहा है। तत्काल मुझे ध्यान आ गया कि कल रात को जो एक स्वप्नमय भ्रान्ति मेरे मन के ऊपर छा गयी थी, अगर वह यथार्थ हो तो—और यदि चित्त-भ्रम ही हो, तो भी—उसका छाया-चित्र था कुछ इसी प्रकार का।

इतने में भाभी ने स्विच ऑन कर दिया। प्रकाश से कमल भर गया। और तभी यकायक मेरे मन में आया कि उस छाया-चित्र की जो सत्ता थी, उसकी मूल प्रतिमा (भाभी) ने बात जो मुझसे की, वह इस पूर्ण प्रकाश से पूर्व क्यों की? वे यहाँ मुझे चुपचाप खड़ी देख ही क्यों पड़ी? मेरी चेतना से संलग्न जो प्रकाश है, क्या उसकी अपेक्षा मेरी उपचेतना से संलग्न अंधकार से उन्हें विशेष प्रीति है? फिर खाना खाकर सोने के प्रस्ताव का उस अंधेरे के साथ सम्बन्ध क्या?

मैं तो एक सीधी बात जानता हूँ।

\* पहले स्विच ऑन करो—जब प्रकाश हो जाय, तब कुछ गान करो।

किन्तु फिर अपने को भी मैंने क्षमा नहीं किया : सबसे भले है मूढ़, जिन्हें न ब्यापहि जगत् गति । इस प्रकार उसके प्रत्येक आचरण में मैं अपनी प्रीति ही क्यों अनुभव कर रहा हूँ ?

इतने में भाभी स्वयं पल्लेग के सिरहानेवाली लकड़ी की मुँडेर पर टुलक पड़ी । बोली — “आज तुम कहीं देख नहीं पड़े । मिलने की भी तुमने ज़रूरत नहीं समझी । इस समय अपनी ओर से जो मैंने एक बात कही भी, तो चुपचाप सुन लिया । आखिर यह सब क्या है ? मुझसे कोई भूल हो रही हो, तो साफ-साफ़ कह दो । ... सच-सच बतलाओ, क्या मैंने तुमको कोई तकलीफ़ दी है ?”

तब मालूम नहीं क्यों, मेरी कल्पना में एक वाक्य बनकर, दीवाल पर जैसे एक मोटो के रूप में, लिख गया हो — “बिगड़ी हुई घड़ियों का हिसाब-किताब ही कुछ विचित्र होता है । सीधी रखी जाने पर वे बन्द हो जाती और उलटी रख देने से खटाखट चलने लगती है !”

और तभी पल्लेग से उठते हुए मैंने कह दिया — “तुम इसी तरह बोलती रहो, तो नाराज़ होने की कौन कहे, मैं बिना भोजन किये हजार वर्ष तक जी सकता हूँ !”

सुनकर भाभी तरल हास की लहरों से खेलती-खेलती, फिर यका-यक गम्भीर हो गयी ।

...

...

सिविल-लाइंस में मिस्टर जी० यस्० मोदी नामके एक फ़ोटोग्राफ़र है । घूमता-फिरता हुआ कल यकायक मैं उनके यहाँ जा पहुँचा । यह पहुँचना बहुत कुछ वैसा ही था, जैसे किसी सखा के यहाँ बैठे है । यकायक पूछ दिया गया — “पानी पीजियेगा ?” तब ज्ञात हुआ कि सचमुच प्यास तो लगी है । यद्यपि प्यास लगने के लिए यह आवश्यक नहीं कि कोई स्मरण ही दिलाये, तभी उसका जागरण हो ।

मतलब यह कि पहले से ऐसी कोई इच्छा या प्रवृत्ति न थी कि आज अमुक फ़ोटो-आर्टिस्ट के यहाँ जाना ही है । पर उधर से निकलना

ही पड़ा, तो फिर वहाँ होते जाना भी जैसे आवश्यक जान पड़ा। इसका एक कारण कदाचित् यह भी रहा हो कि आजकल भाभी आयी हुई हैं और यह सोच लेना मेरे लिए स्वाभाविक ही है कि उनके साथ एक फोटो क्यों न खिंचा लिया जाय। कुर्सी डालकर आगे उन्हें बिठाया जाय और पीछे खड़े होकर, कुर्सी की पीठ पर हाथ रखकर, मैं अपना फोटो खिंचवाऊँ।

लेकिन फिर मैं इस बात को सोचकर ही रह गया। क्योंकि एक तो जल्दी-जल्दी में कोई ऐसी रचना कर डालने में मुझे अच्छा नहीं लगता, दूसरे फोटो खिंचा लेने की बात भाभी से कह देने का साहस भी अभी तक मुझमें उत्पन्न हो नहीं पाया था।

खैर, इतने पर भी मोदी साहब से वार्तालाप बड़े अच्छे ढंग से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने पूछा—“कैसा फोटो खिंचाना चाहते हैं आप?” और सि-रेट-केस मेरे सामने कर दिया। कुछ अजीब-सी बात है कि ऐसे समय मैं कुछ चुहल के झकोरे में आगया। मन में आया, कह दूँ—“जो उस शैतान की नज़रों में जैचकर रह जाय, जो मुझे देवता से मनुष्य बनानेवाली है।” पर ऐसा न कहकर मैंने कह दिया—“जो गुणों की अपेक्षा दोषों को ही मेरे चेहरे पर उतारकर रख दे।”

‘शर्त बड़ी बेटव है।’ मोदी साहब ने अँगरेज़ी में उत्तर दिया और साथ ही थोड़ी-सी मुसकराहट भी उसमें घोल दी।

“क्योंकि एक्सेशनल थिंग्स पर मैं ज्यादा विलीव करता हूँ।” मेरा जो एक निश्चित मत था, वही मैंने कह दिया।

जान पड़ा, उनको मेरी बात ने प्रभावित किया है। यद्यपि अभी कथन से उन्होंने ऐसा कुछ प्रकट नहीं किया।

इतने में झुण्ड-की-झुण्ड वयस्क लड़कियों वहाँ आ पहुँचीं। और उन्होंने मोदी साहब को घेर लिया।

हकलाती हुई एक लड़की बोली—“म-म-म-म मेरी फोटो त-त-त-त तैयार हो गयी?”

मिस्टर मोदी हँसी दबाते हुए बोले—“अभी तो नहीं तैयार हुआ । शायद कल हो जाय ।”

तब एक फोटोग्राफ वापस करती हुई, दूसरी बोली—“मेरा खयाल था, मेरा फोटोग्राफ आप चाकलेट कलर में प्रिंट करोगे । लेकिन हाइट-एंड-ब्लैक प्रिंट करके आपने मेरे सारे उत्साह पर पानी फेर दिया ! मैं इस कॉपी का दाम आपको क्यों दूँ ? मेरा यानी मेरी अम्मी का पैसा क्या फ़ालतू है ।”

“मेरा—यानी मेरी अम्मी का । ऐ है ! क्या के'ने है !” एक बॉक-पन के साथ तीसरी कुछ इस तरह बोली कि सब-की-सब तरल हँसी की लहरों में लोट-पोट हो गयी ।

अट्टहास शान्त होते ही मिस्टर मोदी बोले “मैं आपके लिए एक दो कॉपी चाकलेट कलर में भी प्रिंट कर दूँगा । लेकिन लेते जाइये इनको भी आप । क्योंकि ब्लाक बनवाने की ज़रूरत पड़ने पर काम यही देगा ।”

“बहुत-बहुत शुक्रिया” कहती हुई वह युवती टॉफी की एक गोली मुँह में डालकर उसका रस चूसने लगी ।

इतने में चौथी युवती बोल उठी—“मैं तो अपनी खिड़की पर बैठकर फ़ोटो खिंचना चाहती हूँ । क्या आप मेरे साथ—आई मीन—मेरे घर आकर फ़ोटो खिंचने का इन्तिज़ाम नहीं कर सकते ?” और इतना कहकर उसने अपने बैग में से एक डार्क चश्मा निकालकर आँखों पर चढ़ा लिया ।

इस पर दो लड़कियों आपस में कानाफूँसी करने लगी । लेकिन मिस्टर मोदी ने उनकी तरफ़ ध्यान न देकर उत्तर दिया—“अफ़सोस है कि आजकल ऐसा कोई इन्तिज़ाम हो नहीं सकता । क्योंकि मेरा राइट हैड बाम्बे गया हुआ है ।”

बात यही समाप्त हो जानी चाहिए थी । लेकिन ये लड़कियों नहीं, चिड़ियों थी और सब उड़ने लगी थी । इसलिये हुआ यह कि एक दूसरी लड़की ने चोंच मार ही दी ।

“तो लेफ्टहैंड से ही काम ले लीजियेगा ।”

तब बिना किसी तरह की हिचक के मिस्टर मोदी बोले—“माफ कीजियेगा वह इस वक़्त बुरी तरह लोडेड है ।”

तब कुछ लड़कियाँ तो रूमाल मुँह से लगाकर संकुचित हो उठी । पर एक ने कह दिया—“क्यों, और मुँह लगोगी ?”

तब मिस्टर मोदी की ओर देखते और रूमाल से मुँह पोंछते हुए उसने जवाब दिया —“मुँह लगनेकी नहीं, यह तो मिठाई खाने की बात है । लेकिन मौक़ा तो आये । क्यों मोदीसाहब—है कि नहीं ?”

हँसते हुए मिस्टर मोदी बोले—“बेशक-बेशक ।”

इसके बाद एक लड़की ने सबके लिए लेमन मँगवाया । और एक खासे अच्छे गुल-गपाड़े के बाद सब-की-सब चली गयी । तोंगे पर बैठकर अभी वे सब जा ही रही थी कि मेरे मुँह से निकल गया—“आप को याद होगा, जॉन रस्किन ने एक स्थल पर कहा है —

मोस्ट ब्यूटीफुल थिंग्स आव द वर्ल्ड आर द मोस्ट यूज़लेस । \*

आपका क्या ख्याल है ?”

तब पेपरबेट घुमाते हुए मिस्टर मोदी बोले—“मेरे ख्याल से तो एक फिलॉसफ़र ही ऐसा कह सकता है ।” फिर उठकर एक अलमारी का ताला खोलते हुए कहने लगे—“क्यों क्या किसी लड़की में आपको कुछ ज्यादा अट्रैक्शन मालूम हुआ ?”

उस समय पहले तो मैं बिचार में पड़ गया, पर फिर मैंने निस्संकोच कह दिया—“सिर्फ़ एक लड़की में, जिसका शरीर मक्खन-सा, रङ्ग कुछ कुछ गुलाबी-सा—और साड़ी वह ज़ाख़ेट पर काले-काले उड़ते बादलों के प्रिन्ट की पहने हुए थी और जिसने सारी सखियों को लेमन पिलाया था ।”

मन में आया—तन को तो मक्खन कह दिया; अब मन को क्या कहूँगा, अगर कभी उसको भी परखने का अवसर पा सका ।

फिर भाभी का ध्यान आ गया । विशेष रूप से उनकी मादक

\* विश्व की अन्यतम सुन्दर वस्तुएँ उपयोगिता से सर्वथा हीन हैं ।

हँसी का। फिर लाजो का, जिसकी आँखें इतनी प्यारी हैं कि उन्हें चूम लेने की तबियत होती है।

मूर्ख, कहीं आँखों का भी चुम्बन होता है ?

क्यों, आँखों में क्या मन नहीं खेलता ? आँखों की धार पर जीवन साथी के साथ काट-छाँट नहीं होती ? आँखों के कगारों पर खड़े हो-होकर जीवन-सरिता में कूद पड़ने और फिर घण्टों तैरने में जैसा आनन्द आता है, उसकी समता विश्व को किस क्रीड़ा से हो सकती है ? आँखों के संकेत पर आज्ञापालन करने में आकस्मिक वेतन-वृद्धि का भान नहीं होता ? मैं तो आँखों द्वारा सारा कुमार-सम्भव पडा सकता हूँ। पढ़नेवाली आँखें होनी चाहिए।

मोदी साहब मुसकराने लगे, लेकिन फिर कुछ सोचकर तुरन्त गम्भीर हो गये।

मैं सन्देह में पड़ गया। मैंने पूछा—“क्यों ? क्या बात है ? आप का खयाल कुछ दूसरा है ?”

तब उन्होंने कह दिया—“खयाल का सवाल ही नहीं उठता; क्योंकि वह मेरी बहिन है। यूनिवर्सिटी में पढ़ती है। Painting Class उसने Join कर रखी है।”

सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा। कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे मैंने अपने मुख पर कालिख पोत ली है। एक तरह की ग्लानि से मेरा अन्तःकरण ओतप्रोत हो उठा। मैं कुछ कह नहीं सका। बड़ी देर तक मेरे मुँह से एक शब्द नहीं निकला। बड़ी मुश्किल से नौकर से मैंने एक गिलास पानी मँगा।

लेकिन मोदी साहब ने ऑर्डर दिया—“साहब को लेमन पिलाओ।”

मैं सोचने लगा, अदृष्ट की यह लीला तो देखो कि दूसरों की घटनाओं की आलोचना करता-करता मैं स्वयं एक घटना का शिकार बन गया।

चलते समय भी जब मैं चुप ही बना रहा, तब मोदी साहब स्वयं कहने लगे—“यह मत सोच बैठियेगा कि आपने कोई गलती की है।



मैंने जानबूझकर आप से वैसा सवाल किया था and I am proud of it. कल वह फिर आयेगी और उसी वक़्त मैं आपका एक Snapshot ले लूँगा। पर आप कल अर्रें ज़रूर। टीक पाँच बजे शाम को”।

और अब शाम ही नहीं, रात हो गयी है। मैं वहाँ गया नहीं।

## तीन

दूसरी कचौड़ी का पहला कौर मुँह में डाला था कि एकदम नीचे सड़क से आवाज़ आयी—“पांढे जी !”

आवाज़ परिचित थी। खाने के क्रम को बन्द करती-करती नाक की कील की हीरा-कनी को ज़रा-सा संकुचितकर भाभी बोलीं—“इतनी रात को भी—देखती हूँ—तुम्हारे मिलनेवालों की कमी नहीं है।”

कथन में जो हलकी चोट है उसे समझ रहा हूँ। मन में आता है—“कह दूँ, सिर्फ़ मिलनेवालों की ही नहीं—एकसाथ बैठकर, मन से खेल-खेल कर, साथ-साथ खाना खानेवालों की भी !” किन्तु कहा इतना ही कि—“मुँडेर पर जाकर आवाज़ देदो, खाना खा रहे है। ज़रा ठहरे।”

“वाह, बड़े अच्छे हो ! मैं कह दूँ, जो अपरिचित हूँ; और आप...”।

उत्तर ठीक जान पड़ा। तब मैंने ही उठकर अपना उत्तर दे दिया।

रामलाल बोला—“अरे भले आदमी, मुझे भी तो खाना खाना है।”

यह उत्तर भी कुछ बेजा नहीं जान पड़ा। तब विवश होकर मुझे मकान के नीचे जाना ही पड़ा। इस बीच में कब भाभी नीचे चली आयी, कुछ नहीं मालूम हुआ।

इस बार रामलाल मैं कुछ परिवर्तन देख पड़ा। जूतों में धूल भरी है, बटूक कन्धे पर टोंग रखी है। धोती का पहनावा कुछ इस ढंग का है, जैसे वह पढ़ी-लिखी जाति का व्यक्ति ही न हो। असवात्र साथ में थोड़ा-बहुत भी नहीं है और फाटक खोलने के साथ ही, बहुत सावधानी से, किवाड़

स्वयं उसी ने झट-से बन्द कर लिये हैं। बात कुछ इस ढंग से प्रारम्भ की है कि वह जितनी गम्भीर है, उतनी ही गोपनीय भी।

“गाँव में फौजदारी हो गयी है। चार तो ठौर पर ही खतम हो गये ! दो हास्पिटल दाखिल हो गये होंगे। मैं भी जब तक बचा हूँ, तभी तक...”

सुनकर सन्न रह गया। फिर भी अधिक रुके बिना कहना ही पड़ा—  
“सब सुनूँगा। पहले ऊपर तो चलो। और तो कोई साथ में नहीं है ?”

“आदमी तो कई हैं ! पर उन्हें धर्मशाले के हवाले कर आया हूँ।”  
सीढ़ियों चढ़ते-चढ़ते रामलाल कहता जाता है—“सब साले लट्ठ-गोवार है। यहाँ कैसे ले आता ?”

मैने कह दिया—“तुम्हारे साथी जो हैं।” यों चाहे न कहता, पर उसकी वेशभूषा और रंग-ढंग देखकर मुझे कहना ही पड़ा। इसके सिवा भामी की उक्ति अभी भूली भी नहीं थी।

“तुम्हारे जैसे कायर नहीं है, लेकिन। जान पर खेलकर उन्होंने हमारी रक्षा की है। तुम होते, तो तीन हफ्ते तक घर के बाहर कोई तुम्हारी शकल भी न देख पाता। अन्दर रहते, तो वक्त पर खाना खाने की भी हिम्मत न पड़ती।” एक बड़ी सीढ़ी पर यकायक चढ़ते-चढ़ते रुक गया और हाँफता हुआ-सा कहने लगा—“बीस सिपाहियों, तीन थानेदारों और एक सरकिल-इन्स्पेक्टर के बीच में पड़कर, जवाब देते वक्त मुँह से बोल निकालना मुश्किल हो जाता। और चेष्टा देखकर तो लोग कह उठते—ऐसा मालूम होता है, जैसे चार दिन के बुखार के बाद आज ही चारपाई छोड़ी है।”

बहुतेरी बातें प्रायः ऐसी सामने आ जाती हैं, जो केवल सुन लेने भर की क्रीमत्त रखती हैं। उत्तर देने मात्र से उनका मूल्य बढ़ जाता है। इसलिए मैने अभी तक कुछ कहा नहीं था कि रामलाल आगे बढ़ गया। बोला—“इनमें से एक आदमी तो नामी डाकू है। कहा जाता है कि अग्तक उसने अधिक नहीं तो बीस खून किये होंगे। कल जब

लाठी बजी, तो उसके हथकड़े टूटते बनते थे। कहते हैं, बदन से खून की पिचकारी निकालने में उसे खास मज़ा आता है !”

“ऐसे खूँखार आदमी को मैं पशु समझता हूँ; आदमी नहीं।” मेरे मुँह से निकल ही गया।

“यह बापूजी के तथाकथित पथानुगामी ही सोच सकते हैं। पर जिन्होंने ऐसे पशुओं की सेनाओं का आक्रमण तक सहन किया है, उनके दिल से पुछिये, वे क्या कहते हैं ?” रामलाल बिना किसी हिचक के कह रहा था—“आज के युग में देवता कहलाते हुए कायर और निकम्मा बनने की अपेक्षा वे जानवर कहलाकर वीर बनना अधिक पसन्द करते हैं।”

अब हम यथास्थान आ गये थे। बराण्डे की ओर संकेतकर मैंने कह दिया—“कपड़े उतारकर एक ओर उधर ढोंग दो। वह बाल्टी में पानी रखी है। उससे हाथ-पैर धो डालो और यही मेरे पास आ जाओ। खाना—तुम्हारे लिए—अभी आया जाता है।” लेकिन गोली की तरह लगा हुआ उसका यह कथन मेरी छाती पर खून की तरह तब भी बह रहा था कि “तुम्हारे जैसे कायर नहीं है, लेकिन !” समय निकालकर इस गोली का बदला चुकाना चाहता था।

इतने में रामलाल कपड़े उतारकर चारपाई पर बैठता हुआ बोला—“और अगर घंटे-दो-घंटे बाद खाऊँ तो कोई हर्ज है !”

‘हर्ज क्यों नहीं है ? सवा बारह यों भी हो गये हैं। घंटे-दो-घंटे बाद दो बजेगे। आजकल पाँच बजे सुबह हो जाती है। तुम्हारी तरह घर से फालतू आदमी तो हूँ नहीं। हाँ, फौजदारी की पूरी कथा विस्तार-पूर्वक सुनाने का ताव कहीं ठंढा न पड़ जाय, तुम अगर यही सोचकर रतजगा करने पर उतारू हो गये हो, तो बात दूसरी है।”

“ताव की बात नहीं. बात सिर्फ़ परिस्थितियों और घटनाओं के उस तारतम्य की है जिनको सोच-सोचकर दिल में पड़े फ़ज़ोले आप-से-आप फूटने लगते हैं। और न जाने कहाँ से कोई उनपर नमक-मिर्च छोड़कर घने अंधेरे में भयानक रूप से अट्टहास कर उठता है ! सबरे पाँच-छै

बजे पौजदारी हुई थी। उस समय सोलह मील दूर मैं एक दूसरे गाँव में था। सूचना मिलते ही मैं भट्ट दौड़ा आया। फिर पुलिस की जाँच में भी मदद देनी ही पड़ी। इस जाँच-पड़ताल में जीवन और उसके संघर्ष, संघर्ष और उसके अप्रत्याशित परिणाम—फिर उन परिणामों की जो प्रतिक्रियाएँ देखने में आयी, उनसे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य का जीवन केवल एक सपना है !”

“कविता की दृष्टि से यह कथन एकबार सुना जा सकता है” मैंने सहज भाव से उत्तर दिया—“लेकिन कथन जैसा गोल-मोल और कविता जैसी मूक और कल्पित है, जीवन वैसा निरीह और कृत्रिम नहीं है। कविता से तृप्ति शरीर और देह-धर्म की भूख कभी शान्त हो नहीं सकती। और अभी-अभी तुमने कहा था ..।”

तब तत्काल रामलाल बोल उठा—“हाँ, कहा था; क्योंकि भूख ज़रूर मुझे लगी है। यहाँ तक कि मस्तक की नसों में तनाव का अनुभव करने लगा हूँ। लेकिन हृदय की स्थिति बिल्कुल दूसरी है। जिन मित्रों ने केवल पार्टी के खयाल से अपनी जाने दे दी, उनके परिवारों की दुर्दशा के वर्तमान और भावी दृश्य मेरी आँखों के सामने से हट नहीं रहे हैं। खाने की बात उठते ही खयाल आ जाता है—त्रिवेणी की लड़की प्रेमाने अवलक रोटी का एक कौर भी नहीं तोड़ा होगा ! पिता का नाम ले-लेकर वह ऐसा क्रन्दन कर रही थी कि सड़क से गुज़रनेवाले मुसाफिरों के कदम रुक-रुक जाते थे !”

और इतना कहते-कहते रामलाल सचमुच रो पड़ा !

इसी समय जीने के दरवाज़े पर कुण्डी के खटकने का शब्द हुआ। तब उठकर उधर जाने पर मैं क्या देखता हूँ कि भाभी रामलाल के लिए थाली लिये खड़ी है।

आँखू और थाली—उस समय क्षणभर को सोचता रह गया ! अन्त में वह थाली तो मैंने रामलाल के आगे कर दी और भाभीवाली थाली जो अलग रखी थी, उठाकर उन्हें दे दी।

भाभी लौट गयी। और हम लोग भी अपनी-अपनी थालियों पर आ गये।

भोजन के बीच में गम्भीर वार्तालाप में बहुधा कम करता हूँ। केवल इसलिये कि भोजन का क्रिया-कलाप केवल भोज्य पदार्थ को ही नहीं, कभी-कभी विचार-पदार्थ को भी चाट जाता है।

इसके सिवा एक बात और है। वह यह कि अत्यधिक भावुक व्यक्ति स्वयं भोजन से कम रोचक नहीं होता।

लेकिन मुझे इस विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जब रामलाल ने कहना शुरू किया - “त्रिवेणी मेरा कितना घनिष्ठ मित्र था, जम सोचता हूँ।” उसी समय भाभी ने आकर पूछ दिया—“चटनी चाहिये?” स्टोव जलाकर उन्होंने टंटी पड़ी हुई सब चीज़ों को पुनः गरम तो कर ही दिया था, साथ ही कुछ पके हुए आलू भी मसाले के साथ घी में भून लिये थे। इसका फल यह हुआ कि दो ही मिनट बाद रामलाल बोल उठा—

“संयोग की बात तो देखो, मैं यहाँ माल उड़ा रहा हूँ। और त्रिवेणी के घर में आज चूल्हा भी नहीं जला होगा।”

मैंने लक्ष किया, रामलाल सचमुच बहुत दुखी है। तब मैंने जानबूझकर उपस्थित प्रसंग की बाग मोड़ दी। रामलाल की थाली में परवल ज्योंही कम हुआ, मैंने उसकी पूर्ति के लिये चम्मच का हाथ बढ़ाया, त्योंही उसने कह दिया—“नहीं नहीं, अब मुझे कुछ नहीं चाहिये।”

और उसने दोनों हाथों से अपनी थाली टक ली। मैंने भी हाथ हटा लिया। तब उसने पानी का गिलास समाप्त करते हुए कह दिया—“बस, मेरा तो भोजन हो चुका।”

फिर इस कथन के साथ ही रामलाल उठकर खड़ा हो गया और बोला—“मेरा आज का यह व्यवहार चाहे असभ्यतापूर्ण ही क्यों न हो, पर मुझे क्षमा तो करना ही होगा। तुम नहीं जानते राजेन्, भोजन के जितने भी कौर मैंने खाये हैं, सब में प्रेमा के आँसू सम्मिलित हैं।”

कण्ठ-स्वर से स्पष्ट प्रतीत हुआ, रामलाल के कथन में आँखों का ही नहीं, अन्तःकरण का रुद्धघोष भी मिश्रित है। तभी एक बार फिर मन में आया—थाली और आँसू! प्रत्येक आँसू का आधार थाली होता है।

सबेरा होने पर जब मैं उठा, भाभी ने बतलाया, रामलाल इतने सबेरे चला गया कि चाय के लिए टहरना भी उसने स्वीकार नहीं किया।

...

...

...

आज सारी रात रामलाल की भावुकता ने ले डाली। बड़ी देर तक वह लेटा-लेटा बकता ही रहा। थोड़ी देर तक तो मैंने हॉ-हूँ ज़ारी रखी। पर जब मैं भी जान-बूझकर मौन हो गया, तब वह भी विवश होकर शान्त हो गया।

सबेरे चाय के समय भाभी ने जब कहा, आज वे भी सो नहीं सकी, तो मैंने समझ लिया कि रामलाल ही इसका मूल कारण है। पर उन्होंने जो कारण बतलाया, उसे सुनकर तो मैं दंग रह गया।

उन्होंने धीरे-धीरे, मीठी हँसी के साथ, कहा—“खाना खा लेने पर जानते हो, क्या मालूम हुआ मुझे?”

“नहीं तो। मालूम तुम्हें हो और जान मैं जाऊँ—अजीब सवाल करती हो!”

“बात ही अजीब हो, तो मैं क्या करूँ! खाना खा लेने पर मालूम हुआ, हम दोनों के भोजन की थालियाँ बदल गयी हैं। चौदनी रात में खाते समय तो कुछ नहीं मालूम पड़ा, पर आचमन के लिए जो स्नानागार में गयी और बिजली की बत्ती का बटन दबाया, तो पता चला कि खीर-वाली चोँदी की कटोरी तो मैंने तुम्हारी थाली में रखी थी!”

तत्काल मेरे मुँह से निकल गया—“तो क्या हुआ? तुम्हारा प्रसाद पाकर मैं भी धन्य हो गया!”

उस समय तो मैंने यह बात हँसते-हँसते कह डाली, पर उसके पश्चात् इस घटना ने मुझे जैसे पागल बना दिया।

भाभी बोली—“और मैं ?”

मैने कह दिया—“यह तुम जानो और तुम्हारा काम जाने ।”

“तुम नहीं जानते ?”

“मेरे जानने का विषय जो नहीं है ।”

“हो तो ।”

“जो है नहीं, वह अब हो ही कैसे सकता है ? और हो भी सके, तो होने को परिस्थिति उत्पन्न होने से पहले उसका जानना और वैसा समझना दुष्कर कितना है ?”

“जो भी हो । बुरा हुआ यह—तुमने मुझे बेधरम कर डाला !”

मुझे इस कथन में उपालम्भ के साथ एक मधुर स्वीकृति का-सा आभास मिला । क्योंकि कथन के प्रकार मैं भाभी के मुख पर वह गम्भीरता नहीं थी, जो व्रत-भंग के अवसर पर एक सती नारी के लिए अनिवार्य है । थी तो एक मन्द मुसकान, जो अनायास मेरे मन-प्राण में पुलक-संचार कर रही थी । बारम्बार मैं यही सोचने लगता था, क्या यह एक मधुर स्वीकृति नहीं है ? और क्या यह स्वीकृति मेरे लिए किसी निमन्त्रण से कम है ?

तब मैंने कह दिया—“एक तो मैंने बेधरम किया नहीं । और अगर किया भी हो तो अज्ञान में ।”

“और मैंने ज्ञान में ? इसके बाद शायद यही कहना चाहते हो ?”

“इण्डियन-पिनल-कोड में, अज्ञान में किये गये अपराधों के लिए जानती हो, क्या विधान है ?”

“जानतो हूँ कि भोला, अबोध और अवयस्क सिद्ध होने पर अपराधी के साथ काफी रियायत होती है ।”

“तो बस वही स्थिति मेरी है ।”

वक्त पर पड़े हुए धानी रङ्ग के रेशमी अंचल को सम्हालती-सम्हालती भाभी तब यकायक कुरसी से उठती हुई बोल उठी—“तो तुम अपने को भोला, अबोध और अवयस्क मानकर छुट्टी ले लेना चाहते हो !”

और मैंने कह दिया—“समाज और संसार के विधान में चाहे मुझे

छुट्टी न मिले लेकिन भगवान् के राज्य-विधान में न्याय और सत्य की जो परिभाषा है, आशा है, उसमें मैं सर्वथा निर्दोष ही रहूँगा। ... खैर, जाने दो इस बात को। अब यह तो बताओ कि फिर नींद क्यों नहीं आयी ?”

“यह तुम नहीं जान सकोगे।” यह कह, भाभी चल दी।

मैंने कहा — “बैठो न, ऐसी जल्दी क्या है ?”

वे बोली — “यह तुम्हारे जानने की बात नहीं है।”

तब मैं बड़ी देर तक मूर्खित स्थिर बैठा रहा।

फिर सोचा — ..... ने इस विषय में एक बार कुछ कहा था। शब्द चाहे ये न रहे हों, पर भाव उसका ऐसा ही कुछ था कि सनी नारी की वेदना मेरी समझ में नहीं आती। वेदना तो अभाव, अतृप्ति और आघात से सम्बन्ध रखती है। इसलिए विवाहित नारी जब ऐसी कविता लिखती है, जिसके छन्द-छन्द में वियोग का क्रन्दन बोलता है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह कविता मनोविकार से लित है। और मैं यह कभी स्वीकार न करूँगा कि साहित्य मनोविकार का दूसरा नाम है।

मैं भी नहीं मानता कि साहित्य का नाम मनोविकार भी है। पर साहित्य में मनोविकारों की व्याख्या नहीं है, तो मैं कहूँगा कि वह शास्त्र भले ही हो, न तो वह आत्मज्ञान है न अन्तर्नाद, जिसे हम प्रायः साहित्य समझते हैं।

फिर मन में आया — मन में जो कुछ आता, बसता और बनता बिगड़ता रहता है, वह सब वाणी पर आ ही कहाँ पाता है ? सच पूछो तो मनोभावों को छाप हमसे आधी भी प्रकट नहीं हो पाती। सदा ही हम मन में कुछ छिपा रखते हैं। हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो उन्हीं बातों से रहता है, जो कार्यरूप में प्रकट हुआ करती हैं।

आज जब रामलाल शाम को आया तो मैंने पूछा — “तुम्हारे गाँव से



थाना कितनी दूर है ?” यद्यपि तब तक वह कुरसी पर बैठ नहीं पाया था । कदाचित् इसीलिए वह कुछ चकिन भी हुआ ।

उसने जवाब दिया—“केवल एक मील” और उत्तर के साथ उसने तश्तरी से पान उठा लिया ।

“अच्छा फौजदारी हुई, तब कितनी देर बाद वहाँ पुलिस पहुँची ?” मैने पूछ दिया ।

“फौजदारी सबेरे पाँच-छै बजे हुई और पुलिस पहुँची नौ-दस बजे । और रोज़नामचे के अनुसार चार बजे ।” अंतिम वाक्य उसने कुछ धीमे स्वर में कहा । इस बात को लक्ष्य करके मैने पूछा—“फौजदारी होने की सूचना पुलिस को किस समय मिली ?”

“करीब साढ़े छै बजे ।”

तब यकायक मेरे मुँह से निकल गया - “मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस केस में पुलिस शामिल है । मेरे विचार से पुलिस को घटनास्थल पर सात बजे तक अवश्य पहुँच जाना चाहिए था ।”

रामलाल ने उत्तर दिया—“पुलिस को जो रिपोर्ट मिली, वह दस वर्ष के एक बच्चे ने दी थी । ऐसी रिपोर्टों पर अगर पुलिस तुरन्त कार्रवाई करने लगे, तो वह काम ही न कर सके । और रोज़नामचा तो वहाँ तब भरा जाता है, जब केस की रूप-रेखा तै हो जाती है । और इन घटनाओं की रूप-रेखा तै करने में ये पुलिसवाले बहुधा सारा दिन लगा देते हैं । क्योंकि उस पर उनकी योग्यता ही नहीं, आमदनी भी निर्भर रहती है । यह पद्धति अँगरेज़ी-शासन-काल से बराबर चली आयी है और अब तक बराबर चली जा रही है ।”

इतना कहकर उसने कमर में लटकती हुई पिस्तौल टेबिल पर रख ली । इस पर विशेष ध्यान न देते हुए मैने उत्तर दिया—“क्योंकि शासनाधिकार की कुर्सियों पर जो लोग आसीन है, वे पुरानी मैशीनरी का हृदय नहीं बदल पाये । जो लोग पहले विलायती पोशाक में कचहरी आते थे, वे सिर्फ़ चापलूसी के विचार से अगर खादी या देशी पोशाक में आने लगे,

तो शासनाधिकारियों ने समझ लिया कि मन्चा स्वराज्य हमने स्थापित कर लिया !”

सुनकर रामलाल कुरसी से उठकर खड़ा हो गया । बोला—“माफ़ कीजियेगा, इस शिकायत में कुछ दम नहीं है । यह लाञ्छन तो प्रत्येक युग में शासनाधिकारियों पर लगता आया है और लगता रहेगा ।” रामलाल कुछ उत्तेजित-सा होकर भृकुटियों के तनाव के साथ बोला—“जो लोग अधिकार और शासन पर न होंगे, उन्हें जब कभी कोई व्यक्तिगत असुविधा होगी, तभी वे चिल्ला-चिल्लाकर कहेंगे कि सत्ताधारी अयोग्य है । उन्हें शासन करने का ज्ञान नहीं है । रामराज्य में अगर एक धोबी को शिकायत हो सकती है, तो कोई कारण नहीं कि सन ४६ ई० के स्वतंत्र भारत में उस धोबी के वशजों को शिकायत न हो !”

“लद गये वे दिन, जब खलील खाँ फ़ारुख़ता उड़ाया करते थे । समझे रामलाल !” मैंने भी ज़रा तेज़ी के साथ कहा—“प्रत्येक युग की बात कहकर बड़े-से-बड़े अन्यायों और अत्याचारों को शाश्वत और चिरन्तन सत्य की सीमाओं से घेर लेने का बहाना अब बहुत पुराना हो चुका है । जो लोग मताधिकारियों के आगे कभी सेवा और त्याग का ढिंढोरा पीट कर अधिकार का आसन पा गये हैं, उन्हें आज यह तै कर लेना पड़ेगा कि वे जनता की पुकार को अधिक महत्व देते हैं, या रिस्ते-घिस्ते तथाकथित इस बहाने को, कि शिकायत करनेवाले तो सदा रहे हैं और सदा बने रहेंगे । इसका मतलब तो आप हमको यह पढ़ाना चाहते हैं कि शिकायत हम इसलिए नहीं कर रहे हैं कि हमें शिकायत है; बरन् इसलिए कि शिकायत करना हमारा पेशा है ।”

सुनकर रामलाल फिर बैठ गया और टेबिल का पेपरखेट टटोलता, हुन्ना, स्वर को थोड़ा गिराकर बोला—“इसमें बुरा मानने की तो कोई बात है नहीं पाण्डेय जी । दुनियां में सदा एक जाति ऐसी रही है, जिसने हमेशा अन्याय के विरुद्ध नारा लगाया है । आप हों, या मैं होऊँ; ऐसी

जाति मे यदि हमें शामिल होना ही पड़े, तो यह हमारे लिए गौरव की बात होगी ।”

मैने कह दिया—“और धोबी बनने की बात न होगी ?”

इस पर नाक-भौ सिकोड़ता हुआ रामलाल बोला—“भाषा का संयम तो भंग न कीजिए कम-से-कम ।”

“चाहे नैतिकता का मान भंग करके उसे धूल मे ही मिला दिया जाय ।” मुझे कहना पड़ा—“चाहे सत्य की हुंकार का, शक्ति-प्रदर्शन के हिंसक प्रमाद द्वारा, गला ही क्यों न घोट दिया जाय ! क्यों ? बदमाश मुझे भाषा के संयम का पाठ पढ़ाने चला है ।”

“बस-बस, हमारी बहस यही खतम होती है । आपने गाली-गलौज शुरू कर दी है; लेकिन हमको तो ठण्डे दिल से सारे मसलों को समझना और सुलझाना है । सवाल यह है कि यह जो कहा जाता है कि सरकार अधिकार पाकर अपनी सामर्थ्य और असामर्थ्य, योग्यता की वास्तविकता और उसके प्रचारात्मक आडम्बर की हीनता को भूल रही है । उसे होश ही नहीं है कि वह आधारित किस पर है । ये सब लाञ्छन उचित कहाँ तक हैं ?”

“लेकिन यह सब सोचना, इन पर विचार करना, सरकार के लिए सम्भव कहाँ है ! मैं रुकूँगा नहीं, मुझे कहना ही पड़ेगा—क्योंकि जिनके हाथ में शक्ति है, उनके दिल साफ़ नहीं रह गये । वे व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति दिन-दहाड़े करते हैं, वे रिश्ते और मित्रता निभाते हैं और उन्हें इस बात का अनुभव ही नहीं होता कि यह अन्याय राष्ट्र की अज्ञोघ जनता के साथ कितने बड़े विश्वासघात की भूमिका है ।”

“जाने दीजिये इस भूमिका को । मैं जो कहता हूँ, पहले उसे सुनिए ।” रामलाल बोल उठा ।

“कहिए” मैंने कहा—“बल्कि अच्छा हो, मुँह से कहना छोड़कर, कार्य के रूप में कहिए । मुझे कोरी बकवास पसन्द नहीं । आपको पता होना चाहिए कि घर मे रेडियो रखने पर भी मैं नेताओं के भीषण-भाषण कभी

नहीं सुनता। मेरी ओखें केवल कर्म खोजती हैं, मेरी नाक कर्म ही की बास को सुगन्ध मानती है, मेरे ये कान केवल कर्म का ही निर्घोष सुनना चाहते हैं।”

मेरी इस बात पर रामलाल हँस पड़ा। बोला—“आप तो इस तरह बोलते हैं, जैसे कोई नाटक लिखा रहे हों। लेकिन आपको मालूम होना चाहिए कि मैं नाटक लिखता नहीं, खेलता हूँ।” और इतना कहकर उसने पान की तश्तरी साफ़ कर दी। फिर बोला—“अच्छा, अब मूल विषय पर आ जाइए।”

मैंने कहा—“आ जाओ न, मना कौन करता है?”

तब उसने कहा—“अच्छा सुनिए। इस अवसर पर मैं सिर्फ़ एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ कि मैं न सही, आप ही आज किसी पद पर होते, तो पहले अपनी कुर्सी सम्हालते या हमेशा दौड़े पर रहते? आदर्श-पालन में अपने अधीनस्थ कार्याधिकारियों के स्वार्थों में बिग्न डालकर अपने विरुद्ध एक कटु वातावरण बना लेते और थोड़े दिनों बाद फिर किसी दूसरे स्थान को प्रस्थान कर देते। फिर वहाँ पहुँचने पर भी अपनी नीति से चलते और उसके बाद भी यदि यही नौबत आती, तो भी सचाई के ब्रत से टस-से-मस न होते, चाहे उसका परिणाम आपकी मर्यादा के विरुद्ध ही होता! अथवा ‘जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै’ की नीति के अनुसार पुरानी मैशीनरी के एक योग्य पदाधिकारी की भाँति, छिपे रूप में बगुला-भगत बने रहकर, समय आने पर इस नश्वर जगत् की थोथी आदर्शवादिता पर मन-ही-मन हँस दिया करते!”

रामलाल से मैं ऐसे उत्तर की आशा नहीं करता था। मैं कुछ ऐसे व्यक्तियों से परिचित हूँ, जो विचारक तो बड़े उच्चकोटि के हैं; लेकिन लौकिक दृष्टि से व्यावहारिक बिल्कुल नहीं हैं। वे उस ड्राइवर की भाँति हैं, जो सीधे मार्ग पर कार चलाने में तो बड़ा पटु होता है, लेकिन रास्ते के मोड़ पर अधिक सम्भ्रम यही है कि उससे गलती हो जाय। इसलिए मुझे कहना पड़ा—“मैं यह तो नहीं मानता कि मनुष्य गलतियों से परे हो सकता है।

लेकिन मैं इतना ज़रूर मानता हूँ कि शासन के मामले में ज़्यादा गलतियों करनेवाली पद्धति को जो कोई भी सिर्फ यह कहकर टाल देना चाहता है कि ऐसी परिस्थितियों में जनाब आप भी यही करने, वह उस जाति का गुलाम शासक है, जिसने परिस्थितियों के आगे केवल झुकना सीखा है, उनसे ऊपर उठना और साहस के साथ उनका सामना करना कदापि नहीं सीखा; समझा तक नहीं है—सोचना तो दूर की बात है !”

इतने में दरवाज़े पर पड़ी चिक हिलने लगी। और रामलाल बोला—  
“देखिए, कोई आपको.....!”

और मैं जो उधर गया, तो भाभी ने मुसकराते हुए पूछा—“आप लोगों की बहस में अगर ....।”

वाक्य पूरा करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। मैंने कह दिया—“हाँ...हाँ, बड़ी खुशी की बात है। आओ, आओ।”

और तब साड़ी के दायें अंचल को दो अँगुलियों से आगे खींचती हुई भाभी ने आकर रामलाल को नमस्कार किया। रामलाल पहले तो सिट-पिटा-सा गया। उठकर प्रति-नमस्कार ऐसे विनम्र भाव से, बल्कि थोड़ी बनावट के साथ, करने लगा, जैसे दो पुरुषों के बीच किसी नारी का आगमन कोई घटना हो। परन्तु फिर मुझे लक्ष्मण उसने कह दिया—“अगर ग़लती नहीं करता, तो कल जिन्होंने उतनी रात में हमें अतिशय स्वादिष्ट भोजन कराने का कष्ट स्वीकार किया था, वे... ..।”

इतना कहकर रामलाल रुका ही था कि मैंने कह दिया—“हाँ, वही मेरी भाभी आप ही है !”

तब रामलाल दृष्टि नीची रखकर पेन से खेलता हुआ बोल उठा—  
“आप साक्षात् अनपूरणा है। आपका दर्शन करके मैं तो जैसे कृतार्थ हो गया !”

“चलो, अब पितृपत्न में तुमको गया नहीं जाना पड़ेगा।” अनायास मेरे मुँह से निकल गया—“क्योंकि उसका पुण्य तुमको यही मिल गया। लेकिन इस तीर्थ का पंडा मैं हूँ। स्थायी आमदनी का कोई ज़रिया

पाये बिना मैं पीठ कदापि न ठोक्का बचूँ, यह मैं पहले से कहे देता हूँ । इसमें दोस्ती का मुलाहिजा न चलेगा । ”

भाभी हँसते-हँसते जब क्राबू से बाहर हो गयी, तो उठकर अन्दर चिक की ओट में जा पहुँची और रामलाल हतप्रभ-सा होकर फिर कुरसी से उठ खड़ा हुआ । बोला—“बस इसीलिए मैं आपके यहाँ आता नहीं हूँ । मैं पूछता हूँ—वह भी कोई विनोद है, जिसमें हँसनेवाले सिर्फ दो आदमी हों, और जिसपर हँसा जाय, वह रो पड़े ! विनोद तो मैं उसको मानता हूँ, जिस पर सबको हँसी आये । इसका मतलब तो यह हुआ कि आप हँसने के बजाय रुलाना चाहते हैं और इस तरह विनोद के बहाने कलेजा नोचते हैं ! ”

मैंने कहा—“भई पुण्य-लाभ के लक्ष्य रो देने की तो कोई बात होती नहीं । फिर भी...अच्छा जाओ, माफ़ किया । मैं तुमसे कुछ न लूँगा । यों ही सुफल बोल दूँगा । बस, अब तो खुश हो ? ”

अनायास जो हँसी का कौबारा मन में फूट पड़ा था, वह पाइप बंद कर देने के बाद भी जैसे कुछ बूँदें अब तक टपकाये ही जा रहा था ।

इस पर “अच्छी बात है । नमस्कार । ” कहकर रामलाल पिस्तौल उठाने का उपक्रम करने लगा । तभी आगे-आगे चँदिया चाय का प्याला लिये आ पहुँची और उसके बाद भाभी । चँदिया ने चाय के थाल को टेबल पर रख दिया और भाभी रामलाल को लक्ष्मण कहने लगी—“घर में आये हुए अतिथि को मैं चाय के वक्त कभी विदा नहीं होने देती । यह बात अगर आपको न मालूम हो, तो अब मालूम कर लीजिये और कृपा करके उसी स्थान पर आ जाइए, जहाँ मेरे आने से पहले विराजमान थे । ”

रामलाल भाभी की इस मधुर भाषा को सुनकर स्तब्ध हो उठा । बोला—“इनके रोकने से तो कदापि न रुकत, लेकिन आप ? —आप की बात और है । ”

मैंने वस्तुस्थिति देख स्पष्ट कह दिया—“अरे भई, कोई समझालो

पढ़कर मैं विचार में पड़ गया। पंक्तियाँ मेरे मतलब की हैं, सम्बन्ध उनका मुझसे है और वे उद्धृत होती हैं किसी अन्य उपन्यास से। इसका मतलब ? जब मैंने इस उपन्यास का नाम भी अब तक नहीं सुना। किस का लिखा हुआ है, कब की रचना है और किस प्रकाशक ने इसे प्रकाशित किया है, कुछ भी नहीं मालूम ! और मुझको जो नहीं मालूम, तो इसका अर्थ ? तब ध्यान आ गया, भोली-से-भोली लड़की भी उस समय झूठ बोलने, बात बनाने और भेद छिपाने में निपुण हो जाती है, जब प्रश्न का सम्बन्ध उसकी प्रेमलीला से होता है।

और तब भाभी की इस रचना पर सचमुच मैं चकित हो उठा कि यह कागज़ अगर पकड़ भी लिया जाय तो बेकार है। क्योंकि उस समय के लिए रत्ना का यह उपाय कितना बड़ा है कि “यह तो रही का टुकड़ा है। पता नहीं, कहाँ से आ गया !”

तब समझ में आया कि गीत सुनने की मेरी तन्मयता में ही चँदिया पान की तश्तरी के साथ यह पत्र भी रख गयी होगी।

“लेकिन अब इसका उत्तर कैसे दिया जाय ? अब तक वह सोयी तो भला क्या होगी !”

इसी उधेड़बुन में था कि नीचे से किसी ने पुकारा—“पाण्डेयजी !” स्वर परिचित था। पुकार गौरीशङ्कर की थी।

नीचे जाकर मैंने कमरा खोल दिया। गौरीशङ्कर ने भीतर प्रवेश करते ही कहा—“लेकिन यहाँ तो...” पर तब तक मैंने पंखा भी खोल दिया। गौरी चुप रह गया। मैं पूछने ही वाला था कि ऐसे बेवक्त कैसे आना हुआ कि गौरी स्वयं बोला—“रामलाल से सब हाल मिल गया होगा; यद्यपि असली हाल वह भला क्यों बताने लगा।”

मैंने कह दिया—“लेकिन असली हाल को नकली बयान छिपा भी तो नहीं सकता। इस विषय पर कल काफ़ी ज़ोरदार बहस हो गयी थी। यद्यपि उस बहस का अन्त अच्छा नहीं हुआ।”

“क्यों, क्या हुआ ?” गौरी ने पूछा ।

“हुआ यह कि आज वह आया नहीं । शायद बुरा मान गया ।”  
मैंने सहजभाव से बतला दिया ।

तब गौरी ने आप-ही-आप सब उगल दिया—“ऐसे आदमी से शत्रुता रखना उतना बुरा नहीं, जिनना मित्रता रखना । यह फौजदारी इन्ही हज़रत की साज़िश से हुई है और तारीफ़ की बात इसमें यह है कि कहने को आप खुद उसमें कोसों दूर बने रहे । गाँव भर में ऐसा आतंक फैला है कि स्त्रियों का घर से निकलना तक भयावह हो उठा है । जो लोग भाग गये हैं, उनके घर का सामान पुलिस ने जिस व्यक्ति को रक्षा के लिए सौंपा है, वह स्वयं पुलिस का दलाल है और माल उड़ाने में एक नम्बर का बेईमान । उसके साथ इन महाशय की भी साभेदारी है ।”

सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । मैंने कहा—“आप की और बातें भले ही सही हों; पर मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता ।”

“क्योंकि आप उसके मित्र हैं ।” गौरीशंकर बोला—“लेकिन इससे क्या ! सत्य को मैं दुनियाँ में सबसे बड़ी चीज़ मानता हूँ । आप तो जानते हैं, कब से मैं देश का काम कर रहा हूँ । लेकिन कभी मैंने किसी से यह नहीं प्रकट किया कि मुझे सहायतार्थ पैसा चाहिए । इन महाशय के पास था ही क्या, जिसकी सन् १४२ के आन्दोलन में हानि होती । लेकिन दो एक जाली शहादतें दिलवाकर आने-सरकार से ढाई हज़ार रुपये हरजाने के वसूल किये । अब पिस्तौल लिये घूमते हैं । मेरी समझ में नहीं आता कि निरन्तर किसानों के बीच काम करनेवाले ग्राम्य नेता को पिस्तौल बाँधने की ज़रूरत कैसे हो सकती है ! और तब, जब वे अहिंसा पथ वे अनुयायी हैं ।”

कमरे का एक दरवाज़ा खुला हुआ था । उसपर चिक पड़ी हुई थी । इस समय वह चिक मुझे कुछ हिलती-सी जान पड़ी ।

गौरीशंकर आगे भी कहता जा रहा था—“पोशाक देखकर मला कोई यह कह सकता है कि इस शख्स की आमदनी चार-छह हज़ार रुपये



सालाना से कम है ? रेल में दूसरे दर्जे में आप यात्रा करते हैं, शहर में तौंगे से नीचे बात नहीं करते। कभी आपने उनसे यह सवाल किया कि इतना रुपया उन्हें मिलता कहीं से है ?”

तत्काल चिक की ओट से, एक कड़कीली आवाज़ के साथ, उत्तर मिला—“तुम्हारे बाप के घर से !” और रामलाल चिक उठाकर उपस्थित हो गया।”

रामलाल के इस उत्तर और उसकी तीव्रता ने मेरे मन पर इतना बुरा प्रभाव डाला कि मैं उसे ज़मान कर सका। इसलिए मेरे मुँह से निकल गया—“आइये रामलाल जी, बैठिये। कहिये मैं आपकी किस तरह सेवा करूँ ?” और उसके साथ ही गौरीशंकर ने कह दिया—“देखा आपने ? सभ्यता और शिष्टाचार का ऐसा उत्तम संयोग आपने किसी देशसेवक में न पाया होगा।”

बात बढ सकती थी। इसीलिए मैंने गौरीशंकर से कह दिया—“अच्छा हो, इस समय आप चुपही रहे गौरीशंकरजी।” और फिर तुरन्त रामलाल की ओर देखकर कहा—“हाँ, मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस समय आप का आना कैसे हुआ ?”

रामलाल मेरा भाव समझ गया था। इसलिए बोला—“अगर मैं यह जानता कि मेरा आपका सम्बन्ध उस कोटि का नहीं है कि मैं असमय भी आप को कष्ट दे सकूँ, तो मैं इस समय न आता।”

“लेकिन जिस स्वर और भाषा में आपने इस कमरे के अन्दर प्रवेश किया है, आपको शायद यह नहीं मालूम कि उसका स्वागत मैं नहीं, मेरे नौकर करते हैं।” उत्तेजना में आकर मैंने कह दिया।

रामलाल उठकर खड़ा हो गया और उत्तेजित स्वर में बोला—“आप मेरा अपमान कर रहे हैं !” उसका हाथ पिस्तौल पर जाने ही वाला था कि गौरीशङ्कर ने तुरन्त उसके उस हाथ को ही जकड़ लिया।

तब रामलाल गौरीशङ्कर को झिड़कते हुए बोला—“अलग हट जा— देश-द्रोही, पातर, नीच ! नहीं तो मैं इसी वक्त तुम्हें...” वाक्य के आगे

चढ़ने को नौबत नहीं आयी ! मेरे मुँह से निकल गया—“छोड़ दीजिए गौरीशङ्करजी ।” और मुझे गौरीशङ्कर को अलग कर देना पड़ा । फिर मैंने रामलाल से कह दिया—“मुझे आपका पूरा परिचय मिल गया । अब आप जा सकते हैं ।”

‘चला तो मैं जा रहा हूँ’ बाहर जाता हुआ हतप्रभ रामलाल बोला—“लेकिन यह मेरा अधूरा परिचय है ।” और ज्यों ही रामलाल दरवाज़े से बाहर हुआ, गौरीशङ्कर ने दरवाज़ा बन्द कर लिया ।

मैंने सोचा था, गौरीशङ्कर को नीचे से ही विदा कर दूँगा; पर अब मुझे स्वयं उससे यहीं रह जाने का अनुरोध करना पड़ा ।

...

...

...

दूसरे दिन प्रातः काल चाय पर बैठी भाभी के नयनों की भाषा—भाषा के मूक भावों की गहराई—गहराई का अतल-स्पर्शी आलोड़न मैं क्षण भर को अनुभव कर ही रहा था कि वे पूछ बैठी—“कल नीद तो खूब गहरी आयी होगी ?”

प्रतीत हुआ, प्रश्न के धरातल में कहीं-न-कहीं अधीर उत्सुकता है । मैं इस समय उनसे ऐसे प्रश्न की आशा नहीं करता था । मैं तो यही सोच रहा था कि वे अपनी ओर से उस चिट में लिखी बात के सम्बन्ध में कुछ पूछती भी हैं या नहीं ।

इसीलिए मैंने कह दिया—“नीद तो गहरी ज़रूर आती, पर इस सोच-विचार में जल्दी नहीं आयी कि किस तरह की बात करने में किसी को अधिक अच्छा लगता है । यद्यपि अच्छा या बुरा लगना बहुत कुछ सम्बन्धित व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर रहता है । इसके सिवा संस्कार और प्रवृत्तियों से भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । एक ही बात का प्रभाव दो व्यक्तियों पर दो प्रकार से भी पड़ सकता है । किसी को कोई एक बात अगर पसन्द आती है, तो दूसरे को भी वह पसन्द आयेगी ही, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता । इसीलिए तो प्रायः हम दूसरों को समझने

मे भूल कर बैठते हैं। कुछ भूलें ऐसी होती हैं, जो कर्म का रूप धारण कर वास्तविक जगत् में अपना स्पष्ट अस्तित्व छोड़ जाती है। ऐसी भूले व्यक्ति से कम, समाज से अधिक सम्बन्ध रखती है। किन्तु कुछ भूलों का सम्बन्ध केवल सम्बन्धित व्यक्ति के मनोविकारों और उसके प्रतिक्रिया-जन्य प्रमादों से होता है। कर्म का रूप धारण न करने पर भी ऐसी भूले सम्बन्धित व्यक्ति के मन को प्रायः पंकिल बना देती हैं।”

बात जहाँ से प्रारम्भ की थी, समाप्त करते-करते वहाँ से विचलित हो गया था। एक तटस्थ गम्भीरता की अपेक्षा मनोविनोद का ही भाव मानस पर अधिक मुखर हो उठा था।

भामी चुप थी; लेकिन ऐसा जान पड़ा कि चुप रहकर भी वे कुछ कह रही है। उनके अधर हिल रहे हैं, दाढ़िम दशन झलक रहे हैं, नयनों के पलक खुले हैं, भृकुटियों कुछ इंगित कर रही हैं और केशों की लट भाल पर आकर झूल रही है।

तब मैंने बिना कुछ विचार किये इतना और कह दिया—“फिर अगर मुझे पहले से यह मालूम होता कि किसी को मुझसे बात करने में अच्छा लगता है, तो मैं नित्य उससे काम की दो बातें करने से भला चूक सकता था !”

तब मेरे प्रकृत मर्म को बिल्कुल मूल भाव में ग्रहणकर वे बोली—“बड़े बातूनी हो गये हो। तुमसे तो बात करना आफ़त है।” और वैसे इतना कहकर वे एक झटके के साथ उठकर चल दी।

मैंने लक्ष किया, चलते क्षण उनकी गति में कहीं अवरोध नहीं है। मानो उनका इस तरह एकदम से चल देना क्षणिक भावुकता का कोई अनिश्चित आवेश नहीं, वरन् मेरी बातों का मर्म हृदयंगम करती-करती वे स्वभावेन इसी परिणाम पर आ पहुँची हैं।

मैंने सोचा, चलूँ माँ के पास। देखूँ, बेक्या कर रही हैं। पर बल्दी से सीढ़ी की ओर ज्यों ही बढ़ा, त्यों ही ब्या देखता हूँ, भामी दीवाल से लगी खड़ी हुई हैं। तब अकस्मात् एक आशंका और संदेह से ओत-प्रोत हो मेरे

मुँह से निकल गया—“अरे ! तुम यहाँ खड़ी हो । आओ, बेटो न वहीं चलके ।” कहकर मैंने भाभी का हाथ पकड़कर उन्हें आगे ठेल दिया । फिर इस क्रीड़ा-कौतुक में लिपटे नवल कुतूहल के मिस मैंने कुछ भी छिपाये बिना, रामलाल के आगमन और गौरीशङ्कर से उसके संघर्ष के साथ-साथ अपना हस्तक्षेप भी विस्तारपूर्वक बतला दिया । भाभी सब धैर्यपूर्वक चुपचाप सुनती रही । फिर मुसकराती हुई अन्त में बोली—“मुझे सब कुछ मालूम है । तुम से अपमानित होकर वह फिर मेरे पास आया था । बल्कि कहना यह चाहिए कि बीच की दीवाल के अन्तर से मेरे पासवाले कमरे में सोया भी था ।”

सुनकर मेरे हाथ का चाय का प्याला जैसे कोंप उठा । लेकिन न तो मैंने उसे गिर जाने दिया, न चुपचाप सावधानी से ज्यों-का-त्यों रख दिया ; बल्कि जान-बूझकर हॉट से लगाया और एक घूँट पीकर, थोड़ा रुककर, वही रख दिया । कुछ अप्रतिम-सी होकर भाभी मुझे ताकती रही । मैं उठकर खड़ा हो गया, तो वह कहने लगी—“जीजी की बुआ का लड़का और इस नाते मेरा भाई है वह ।”

यहाँ यह बतला देना ज़रूरी है कि भाभी अपनी जेठी सौत को जीजी कहती हैं ।

उत्तर में मैं कुछ कहना तो नहीं चाहता था । लेकिन मेरे मुँह से निकल गया—“वह कोई भी हो । देशभक्ति की पावन भावना का मैं उपासक अवश्य हूँ । लेकिन देशभक्ति की साम्प्रदायिकता के विष को मैं अमृत नहीं मान सकता । मंदिर में रखी हुई शिव की मूर्ति के लिए मेरे मन में अपार श्रद्धा है ; पर पार्वत्य पथ में पड़े हुए उसी आकार-प्रकार के किसी चिकने रोड़े के लिए मेरा सिर कभी नहीं झुक सकता । दूध पिलाती गैया जब अपने बछड़े का बदन चाटती है, तभी मैं उसे गैया-माता कह सकता हूँ । लेकिन रास्ता चलते हुए यदि कोई बेतहाशा दौड़ती हुई गाय मेरे पेट को अपने सींगों का शिकार बनाने को तत्पर हो, तो मैं उसे पशु

ही समझूँगा—और उसके साथ उसी तरह पेश भी आऊँगा। समझी ?”  
और इतना कहकर एक आवेश के साथ चल दिया।

आज का दिन यों ही बीत गया। कई बार मन में आया, रामलाल की बात उठाकर ही क्यों न भाभी से खुलकर निपट लिया जाय। फिर आप-ही-आप ध्यान में आया, जितनी बड़ी बात उनसे कही जा सकती थी, उसकी सीमा यों ही लॉघ चुका हूँ। अब और आगे बढ़ना उन्हें सहन न होगा।

सहन न हो बला से—क्रमे के बीच टहलता और उत्तेजना में भीतर ही-भीतर किटकिटाता हुआ मैं अपने आप से ही जैसे लड़ने लगा—“मैं कोई काम इसलिए नहीं करता हूँ कि उसे सब लोग स्वीकार ही करलें। मैं उन व्यक्तियों को प्रसन्न करने के लिए नहीं उत्पन्न हुआ हूँ, जो मानवी दुर्बलताओं से मुक्त होना तो दूर, उनको पोषण और प्रोत्साहन देकर नैतिक मान्यताओं की हत्या करते हैं! चाहे वे हमारे जीवन के विधाता ही क्यों न हो।”

सबरे माँ ने कह रक्खा था—“वह सोनेलाल आया था हिसाब लेने के लिए। सो आज उसके यहाँ जाकर हिसाब ज़रूर कर आना। और दुलहिन के हार की टूटी लर अगर जोड़ दी हो, तो उसे भी लेते आना।”

इस समय चँदिया उसी सम्बन्ध में कह रही थी—“माँ जी पूछ रही है, सोनेलाल के यहाँ फिर कब जायेंगे?—शाम तो होने आयी !” मैंने फट कह दिया—“जाता हूँ अभी।”

चँदिया चली गयी। मैं वही जा रहा हूँ। यद्यपि मैं उन लोगों का कोई भी काम, किसी भी सम्बन्ध का, करना नहीं चाहता—कर ही नहीं सकता, जो समाज की नैतिक मर्यादा की उपेक्षा करनेवाले वर्ग के हैं।

इसी समय डाक आ गयी। एक दैनिकपत्र में काशी का समाचार छपा था—एक व्यक्ति जो मरघट पर सो रहा था, उसे उसके शत्रुओं ने उसी खाट से बाँध दिया, जिस पर वह सोया हुआ था। फिर उस पर मिट्टी

का तेल डालकर आग लगा दी। जब वह व्यक्ति जलता हुआ रक्षा के लिए चिक्काया, तब उसकी सहायता के लिए लोग दौड़ पड़े। उन्होंने उसे खोलकर किसी प्रकार खाट से हटाया और उसे अस्पताल भिजवा दिया। पर वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी।

इस समाचार ने मन में एक ऐसी कटुता भर दी कि मैं भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठा। ऐसा भास होने लगा, जैसे मुझे किसी ने ज़बरदस्ती तेज़ाब पिला दिया हो।

मानवी सभ्यता ने आज इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि मनुष्य मनुष्य न रहकर खूँखार जानवर हो गया है। पहले भी ऐसी पैशाचिक घटनाएँ हमारे देश में होती रही हैं। किन्तु उस समय हम सर्वथा परवश थे। विमल, पक्षपात-हीन, अर्थ-महिमा से सर्वथा मुक्त न्याय की आशा हम नहीं कर सकते थे। समाज का निखिल शक्तिशाली वर्ग राजसत्ता का मित्र था। इस कारण न्याय के स्थान पर व्यक्तिगत और वर्गागत प्रभाव काम कर जाते थे। किन्तु आज की स्थिति उससे भिन्न है। आज देश की शान्ति-व्यवस्था उन लोगों के हाथों में है, जिन्हें हम अपना कहते और मानते आये हैं। निरन्तर यशोगान किया है हमने उनका। तब ऐसा क्यों होता है? क्या शासनाधिकार प्राप्त कर वे अपना कर्त्तव्य भूल गये हैं या निरन्तर आततायियों से लड़ते-लड़ते उनकी धमनियों में इतनी शक्ति नहीं रह गयी कि कर्त्तव्य का यथावत् निर्वाह कर सकें। या व्यवस्था के सूत्र इतने ढीले और शिथिल कर दिये गये हैं कि उत्तरदायित्व का प्रश्न ही आज नहीं रह गया?

फिर याद आ गयी अभी कल की बात। गौरीशंकर कार्य-वश कवि सुधाकर के पास गया हुआ था। सत्य-कथन के लिए वे आने नगर में ही नहीं; प्रान्त भर के शासन-सूत्रधारों में प्रसिद्ध है। उन्होंने श्री... ..महोदय से अपनी एक मेंट की बात बतलाते हुए कहा था—जब मैंने कहा—“यह आप लोगों के ही शासन की विशेषता है कि छोटे-से-छोटा व्यापारी यदि कंट्रोल की चीज़ बजाय एक रुपये के सवा रुपये में बेच लेता है, तो वह या

तो जेल की हवा खाता है, या दण्ड-स्वरूप इतनी भारी रकम देने पर मजबूर होता है कि व्यापारी की पद-मर्यादा से उतरकर बेचारा पल्लेदार मात्र रह जाता है। लेकिन बड़े-बड़े व्यापारी ब्लैक-मार्केटिंग में लाखों की रकमे चीर देते हैं और आप लोगों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।”

वे बोले—“हो सकता है कि आप ठीक कह रहे हों। पर मुझे इन बातों का बिल्कुल ज्ञान नहीं है।”

तब मुझे मजबूर होकर कहना पड़ा—“दामा कीजियेगा, या तो आप जान-बूझकर अज्ञान बन रहे है और मेरी आखों में धूल भोंकना चाहते हैं। या फिर आप इतने सीधे, भोले-भाले और बुद्धू है कि आप को यह पद मिलना ही न चाहिए। यद्यपि मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि आप तब तक इस पद से बराबर चिपके रहेंगे, जब तक वैधानिक रूप से निकल जाने के लिए बाध्य न हो जायेंगे।”

इस पर उन्होंने कहा था—“अगर आप इन्हीं बातों के लिए पधारे हों, तो दामा कीजिए। मुझे इस समय एक बहुत ज़रूरी काम से बाहर जाना है।”

अब कमरे में बैठना मेरे लिए कठिन हो गया। बाहर चलने को तैयार हुआ ही था कि इसी समय चँदिया ने आकर फालसे का शरबत भरा गिलास मेरे सामने कर दिया।

धूप तो उतर गयी थी, लेकिन हवा अब भी गरम थी। इसलिए गिलास उसके हाथ से लेकर दो घूँट कण्टगत कर लेने के अनन्तर रुककर पूछा—“लखनऊवाली क्या कर रही हैं?” कहना नहीं होगा कि इधर घर में कुछ दिनों से मांभी लखनऊवाली के नाम से प्रसिद्ध हो गयी हैं।

चँदिया ने संकोच त्यागकर उत्तर दिया—सरे से ही तबियत सुस्त है। बहुत कहने-सुनने पर अभी तो उठी हैं। भोजन भी नहीं किया है।”

मैं चुप रहा। चँदिया फिर बोल उठी—“लेकिन सच्ची बतलाऊँ बाबूजी? स्वभाव की बड़ी सीधी हैं। घमण्ड तो जैसे रस्ती भर भी नहीं है।

शरबत आने पर कोई भी काम हो, हमेशा आगे हो जाती है। यह शरबत खुद उन्हींने तैयार किया है।”

चँदिया सम्भव है और भी बकती रहती, लेकिन मैंने उसे प्रोत्साहन नहीं दिया। बल्कि यह कहकर थोड़ा डाँट दिया कि—“अच्छा-अच्छा, बहुत हो गया। एक बात के जवाब में चार बातें सुना देना तुम्हें बहुत आता है।”

कहने को कह तो गया, पर फिर उसके बाद मैं स्वयं सकोच में पड़ गया। क्योंकि गिलास लेते क्षण चँदिया की मुद्रा कुछ उस ढङ्ग की हो गई, जैसे खुशी के मौक़ों पर नेत्र के लिये झगड़ते क्षण, किसी मुँहलगी नाइन की हो जाती है।

शिक्षायात्र ने भी मिठास-ही-मिठास देहभर में सन्निविष्ट करदी है। कहता जाता हूँ कि इतना बहुत काफ़ी है, लेकिन तबियत भर नहीं रही है। यह और भी अधिक झगड़े, तो बुरा लगाने के बदले जैसे और भी मीठा प्रतीत होता रहेगा।

घर से निकलकर बाहर आ गया। फिर सड़क सर, फिर सवारी की टोह में चौराहे पर। लेकिन लगातार सोचता यही गया कि रामलाल वाली बात की प्रतिक्रिया, जान पड़ता है, बहुत भयानक हो उठी है। तब मन को कुछ सन्तोष हुआ। लेकिन साथ ही एक बार यह भी सोचने लगा कि फ़ालसे का शरबत भी यदि मैंने न पिया होता तो और भी उत्तम होता। भले ही यह बात मों के कानों तक चली जाती—भले ही उन्होंने मुझे दो चार जली-कटी बातें भी सुना दी होती।

सोनेलाल का मकान आते देर न लगी। घर के अन्दर गया, तो देखा, वह पीतल की एक छोटी पतली फूकनी मुँह से लगाये सोना फूकने में जुटा है। मामी के हार की टूटी लर जोड़ी जा रही है।

तब मन में आया, यह लर तो अब जुड़ ही जायगी। लेकिन मेरे जीवन पर दीप्तमान उसके मृदुल सम्बन्धों की जो एक लर जुड़ रही थी, उसका क्या होगा? क्या वह बीच में ही टूट जायगी? क्या उसके कुन्दे बिखरे ही पड़े रहेंगे?



सोनेलाल मुझे अचानक आया जान एकदम से हक्का-बक्का-सा रह गया। बोला—“अरे ! आप है। धन्यभाग्य मेरे, जो ...। अरे लाली ! ओ लाली !”

उत्तर में भीतर से एक कोमल स्वर फूट पड़ा—आयी ददा ।”

जान पड़ा, यह स्वर किसी वयस्क नारी का है। तभी आग में लकड़ी की खपच्ची रखता हुआ सोनेलाल बोला—“अरी राजेन् बाबू आये है। बैठने के लिए जल्दी से एक दरी तो दे जा ।”

तब मैंने कह दिया—“बैठने नहीं आया मैं। मैं तो भाभी का हार लेने आया हूँ। पर तुम तो अभी बना ही रहे हो। जान पड़ता है, तैयार होने में देर लगेगी ।”

सोनेलाल नाक पर से चश्मा उतारकर बोला—“देर तो ऐसी कोई ख़ास नहीं लगेगी। फिर आप मेरी इस भोपड़ी में आते ही कहाँ है। कितनी बड़ी कृपा हुई, जो आपके इन चरणों की पवित्र धूल से मेरा आँगन, धरती यहाँ तक कि घर का कोना-कोना तक जगमगा उठा ! ऐसे प्रतापी पुरुषों के दर्शन तीर्थों में भी मुश्किल से होते हैं। कितने बड़े भाग हैं मेरे, जो आपने स्वयं पधारने की कृपा की ।”

सोनेलाल की बातों से मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से सिहर उठा। तब मैंने हँसते-हँसते कह दिया —“अच्छा-अच्छा, बहुत हो गया। इतनी अधिक-प्रशंसा का अधिकारी न मैं अपने को समझता हूँ—न इतना बढ़ाकर कहने का कोई लाभ ही मैं तुम्हें पहुँचा सकता हूँ ।”

“ऐसा न कहिए सरकार ।” सोनेलाल जैसे अत्यन्त हीन भाव अनुभव करता हुआ बोला—“मुँह देखकर प्रशंसा करने की कमाई का भरोसा मैंने कभी नहीं किया। फिर आप जैसे दया और ममता के अवतार के लिए भी अगर मैं चार शब्द जोड़-जाड़कर न कहूँ, तो मेरा मन मुझे कैसे क्षमा करेगा !”

मस्तक पर लाल रोरी लगी है। कान की घुण्डी में चन्दन चर्चित

है। बदन पर जो मैली बनियाइन पड़ी है, पसीने की खुशबू से बिल्कुल तर हो रही है। हाथ में एक पुरानी घड़ी बाँध रखी है, जिसकी पालिश उड़ गयी है। चश्मे का फ्रेम गहरे कथई रंग का है, जिसकी एक कमानी बदली हुई है।

लाली एक दरी ले आयी थी। उस पर बैठते देर नहीं हुई थी कि सोनेलाल की माँ आ गयी। बोली—“अरे ! आज तो राजेन आ गया मेरे घर !”

मैने कहा—“प्रणाम करता हूँ चाची ।”

और चाची पास आकर मेरे कन्वे पर हाथ फेरती हुई कहने लगी—“खुश रहो बेटा। हज़ार बरस की उमर हो। बहुत दिनों से तुम्हें देखा न था। आज तुम आ गये, तो मेरी लालसा पूरी हो गयी। ऐसे भी दिन थे जब तुम मेरे घर खेला करते थे। कभी देर हो जाती, तो जीजी तुम्हें खोजती हुई मेरे घर आ जाया करती। यहाँ तक कि कभी-कभी तो खेलते-खेलते तुम मेरे यहाँ सो भी जाया करते थे।”

सोने हथोड़िया लिये कुट्-कुट् कर रहा था। पर इस बात पर उसकी भी दृष्टि माँ की ओर आकृष्ट हो गयी।

मुझे चाची की इन बातों को सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। विशेषरूप से उनकी इस बात पर कि यदि उनका कथन यथार्थ है, तो माँ मुझे खोजती हुई इस घर में—इतनी दूर—आती कैसे होंगी और फिर मैं ही अपने घर से यहाँ कैसे आ पाता हूँगा। और बचपन तो मेरा देहात में बीता है। फिर इस नगर में... ? नहीं, हो भी सकता है। हम फूफाजी के यहाँ आया-जाया करते थे। एक बार माँ के साथ रहे भी थे।

लेकिन चाची ने मुझे अधिक देर तक आश्चर्य में नहीं रहने दिया। बोली—“उन दिनों मैं तुम्हारे घर के पास वह जो मेहरा साहब का मकान है, जिसमें आजकल नीचे डॉक्टर चोपरा बैठते हैं, उसी में रहती थी। अपना यह सोने तब एक साल का था।” कहते-कहते चाची बोली—“अरे कहाँ गयी री ? भैया को जल-यान के लिए कुछ नहीं लायी।”

सुनकर मैं संकुचित हो उठा। तत्काल मेरे मुँह से निकल गया—  
“नहीं-नहीं, बलपान की बिल्कुल ज़रूरत नहीं। मैं मिठाई से नफ़रत करता हूँ। मुझे ये बाज़ार की मिठाइयों...। आप मुझे क्षमा करें, मैं मिठाई बिल्कुल न खा सकूँगा।”

चाची बोल उठी—“लेकिन बिना कुछ खिलाये मैं तुम्हें यों ही चला जाने दूँ, तो मेरी आत्मा मुझे जीवन भर कोसती रहेगी। चाहे आँखों से भर-भर आँसू न गिरे, चाहे परसी थाली देखकर मैं खाने बैठ ही जाऊँ, लेकिन अन्तर्यामी ही जानते हैं कि मेरे मन में जो उधेड़-बुन चलती रहेगी, रात को वह मुझे पलक भी न मारने देगी। मेरे लिए जैसा सोने है—नहीं नहीं, जैसे तुम हो, न वैसा सोने है न यह लाली, जिन्हे मैंने अपनी कोख से पैदा किया है—देह से जन्मा है।”

कहते-कहते चाची रो पड़ी।

जब कोई स्त्री बिना किसी विशेष कारण आँसू गिराने लगती है, तब मैं प्रायः यह सोचता रह जाता हूँ कि इस रुदन का मूल आधार क्या है? यह कहाँ से उत्पन्न हुआ है? साधारण बातों पर रो देना मैं एक मानसिक व्याधि मानता हूँ। लेकिन मैं चाची के इस रुदन को अकारण कैसे कहूँ—रोग भी मैं उसे कैसे मानूँ! कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है!

और भी एक कारण है। इस विश्व में मनुष्य का एक पलक-परिचालन तक अकारण नहीं है। तिनके, जो हवा में उड़ते हैं; चींटी, जो ज़मीन पर रेंगती है; बकरी का बच्चा, जो उछलता-कूदता है; पक्षों से गिरी हुई ओस की बूँदें; हरी-हरी घास पर छाये हुए मोती; सुदूर भू-भाग तक छाया हुआ कुहरा और सैकड़ों मील तक हाहाकार मचा देनेवाली नदियों की बाढ़, छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा इस जगत का खेल हो कि उत्पात, सदा और सर्वत्र मुझे अपना एक-न-एक अर्थ और हेतु ही बतलाता रहता है।

लेकिन यह एक सर्वथा विजातीय नारी, जो अवस्था में मेरी माँ से

कुछ ही कम है, मेरे लिए यदि सब प्रकार से माता का ही हृदय रखती है तो... फिर देह के नाते, मन और आत्मा के नाते—और विदेह के, दूरातिदूर के, केवल भावनात्मक नाते—दोनों-के-दोनों क्या इतने सगे हैं कि बिल्कुल एक हैं, कोई अन्तर नहीं है उनमें ? क्या रक्त-मांस के सम्बन्धों से भी अधिक तेजोमय, ज्वलन्त और जाग्रत सम्बन्ध केवल भावना का होता है—केवल कल्पना का ?

तब यही सब प्रश्न मेरे विचार-पथ के समस्त धूर्णन करने लगे । लाली तश्तरी में जलपान की सामग्री लिये मेरे समक्ष आ पहुँची ।

सत्रह-अठारह वर्ष की लाली । गाय के ताज़े मक्खन-सा वर्ण है, वैसी ही देह-यष्टि की चिकनाहट । लावण्य परिपक्व है । मृग-नयनों की नौकदार कोरों की पतली कुशाग्र धार और गदराये यौवन की मत्त चंचल मनुहार, ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे जीवन अगाध के उस पार तक साथ ले जाने को तैयार है ! ठिठकने में विस्मय का नवल उत्क्षेप जो एक रहस्य छोड़ गया है और पग-संचालन में ठसक की जो एक विजयिनी मर्यादा स्थापित हो रही है, क्या यह सब मेरे लिए एक निमंत्रण नहीं है ?

तत्काल किसी ने आत्मा पर एक ऐसा ज़ोर का धक्का दे दिया कि मैं कल्पना-जगत् से गिरकर पुनः धरती पर आ गया । मेरी कुत्सा स्वयं मुझी को जलाने लगी । विश्व का सारा रूप, यौवन की सारी गरिमा, सदा जो तुझी को निमंत्रण दिया करती है, यह तेरी यौन-अतृप्ति का संतुलन-हीन प्रमाद है । और इस प्रकार का प्रमाद जिस व्यक्ति के साथ संयुक्त है, वह मनुष्य नहीं, कपोत है—पुरुष नहीं, जन्तु है ।

जलपान की तश्तरी सामने रखी थी । चाची बोलीं—“खाओ-खाओ । थोड़ा-सा तो है ही ।”

“लेकिन सच कहता हूँ चाची, मिटाई खाने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है । बल्कि अधिक अच्छा होता, मुझे एक गिलास ठंढा पानी ही पिला देतीं ।”

सोनेलाल बोला—“मैंने मिठाई खाने से कभी इनकार नहीं किया।”

“अच्छा-अच्छा। अरी लाली ! बेटा तश्तरी उठाले जा और मैया को ठंढा पानी ले आ। बरफ़ ज़रूर डालना, अच्छा।”

चाची के इतना कहते ही लाली तत्काल आकर मेरे आगे से तश्तरी उठा ले गयी। कुछ सोचता-सा उस समय सोनेलाल आप ही बोल उठा—  
“नहीं-नहीं, अब मुझे भी नहीं चाहिये।”

चाची बोली—“देखा राजेन्, यह सोने तुम्हारा कैसा बना हुआ है !  
...दे दे लाली ! सोने को भी एक टुकड़ा।”

“टुकड़ों पर सन्तोष करनेवाला प्राणी मैं अभी तक बन नहीं सका।”  
सोनेलाल बोल उठा। फिर भी लाली उसे मिठाई देने लगी तो सोने  
“नहीं नहीं, मुझे नहीं चाहिये। मैं तो यों ही कह रहा था।” कहता हुआ मुसकराने लगा।

लाली चली गयी, पर फिर ज्ञात हो गया कि वह घर के अन्दर न जाकर द्वार पर ही खड़ी है।

लेकिन क्यों ? क्या उसके लिए अन्दर कोई काम नहीं है ? अथवा उस काम की अपेक्षा इस कमरेमें उठती और ध्वनित होती बातों का महत्त्व उसके लिए अधिक है ?

लेकिन इस बार जब लाली मेरे आगे से तश्तरी उठा रही थी, मेरी दृष्टि उसकी देह-लता के सम्यक गतिशील अवयवों की छवि-सृष्टि पर ही जमी थी। बार-बार एक दुर्निवार भ्रंशावात-सा मन के अन्दर निर्घोष कर उठता था। क्यों न देखूँ जीवन और जगत् के उभरते नवनीत सौन्दर्य को ? क्यों न अनुभव करूँ यौवन के परम उद्दीप्त नवल जागरण को ?

अधिक सोचने का अवसर नहीं था। चाची पूछ रही थीं—“जिजी की तबियत तो ठीक है ? कई बरसों से मिलना नहीं हुआ। क्या करूँ, काम के मारे इतनी भी फुरसत नहीं मिलती कि कही घड़ी-दो-घड़ी को भी आ-जा सकूँ।”

“पहले गङ्गा-स्नान को जाने का थोड़ा-बहुत समय मिल भी जाता था; पर अब तो राम-नाम का जाप भी जो करने बैठती हूँ, तो नाती घुटनों के बल फिसलते-फिसलते सहसा गोद में आकर एकदम से नाक ही थाम लेता है। तब यही सोचकर उसे खिलाने लग जाती हूँ कि यह माया भी उसी प्रभुकी देन है। यह खिलौना भी उसी कारीगर ने बनाकर भेजा है। अपना कुछ नहीं है, मैं भी अपनी नहीं हूँ। फिर जैसी उसकी मरज़ी। मैं उससे अलग रह ही कैसे सकती हूँ !”

आज की विचार-धाराएँ विश्व में जो परिवर्तन करा रही हैं, जानता हूँ— ईश्वरबोध के इस रूप को वह अङ्गीकार नहीं करेगा। हमारा अखिल बुद्धि-जीवी समाज मनुष्य की सारी कर्मलीला को केवल एक प्रभु की माया मान लेने को तयार न होगा। लेकिन चाची के भीगे पलकों की भाषा ने उनके इस कथन और उसमें सन्निहित भगवान् के प्रति अटूट विश्वास पर जो मुहर लगा दी, उसे मैं किसी प्रकार अस्वीकार न कर सका।

तब मेरे मुँह से निकल गया—“सो तो है ही चाची। भगवाम् कब, किस क्षण, क्या करेंगे, किससे मिला देगे, किस की केवल झलक दिखाकर दूर हट जायेंगे, कौन जानता है ? आज ही देखो न, तुम्हारी ये बातें सुनकर मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जैसे मेरे लिए एक देवकी ही माँ नहीं हैं— यशोदा भी माँ हैं और आज से पहले भी वह माँ ही थी। पर मथुरा से गोकुल न पहुँचने तक भगवान् ही जब अपनी यह लीला छिपाये रहे, तब अगर उनकी यह माया भी अपने अन्दर बहुत सी बातें सदा छिपाये ही रहे, तो हम साधारण जन उसके भेद को पा ही कैसे सकते हैं !”

चिमटी उठाकर सोने, सोने का टुकड़ा जोड़ रहा था। इतने में— “देखा सोने, राजेन क्या कह रहा है ? कितने ज्ञान की बात कह दी उसने ! एक तू है, जो कथा-पुराण के नाम से दूर भागता है।” चाची बोल उठीं।

• तब सोनेलाल सिर उठाकर मुसकराता हुआ बोला—“भागना ही पड़ता है। कथा हो कि पुराण, पढ़ने और समझने के लिए वक्त भी तो चाहिये।” फिर पीतल के चिमटे से हार की लर का कुन्दा निकालता-निकालता कहने

लगा—“अगर सबेरे सात बजे से रात के बारह बजे तक इस धन्धे में सर न खपाऊँ” कहकर थोड़ा फिर रुका और उस कुन्दे को पानी भरे कूँड़े में डालते-डालते उसे छन्न से लेकर सीSS तक की आवाज़ के साथ बुझाते-बुझाते बोला—“तो कथा-पुराण के भरोसे इतने प्राणियों के पेट की आग कैसे बुझाऊँ ? भूखे रहकर तो भगवान का भजन हो नहीं सकता । और सौ बात की एक बात यह है कि सारा खेल उमर के तकाजे का है बाबू । जब मैं भी एकदम बूढ़ा हो जाऊँगा, कर्म की सारी इन्द्रियों शिथिल पड़ जायँगी—तभी तो वे सब मिलकर ज्ञान के किवाड़ों पर आकर धक्का लगाएँगी । क्यों न सरकार, है न यही बात ? भूठ कहता होऊँ तो आप मुझे कान पकड़कर दस नहीं पचास मरतबे उठाइए—बैठाइए “—अरे कहाँ गयी, ज़रा बीड़ी देना ।”

लेकिन इतने में लाली शरबत का गिलास लिये हुए मेरे सामने खड़ी हो गयी । शरबत देखकर चाची प्रसन्नता और विस्मय से फूल उठीं । बोली “अरे, तू तो शरबत बना लायी ! लेकिन चीनी.. ...? अच्छा, समझ गयी । तू ने जो अपने हिस्से की ( आध सेर प्रति मास मिलनेवाली ) रख छोड़ी है, उसी से .... !”

कुतूहलवश मैंने प्रछ दिया—“कितनी इकट्ठा कर रखी है ?”

चाची मुसकराती हुई बोली—“यही पोंच-छै सेर होगी । क्यों ?”

लाली संकोच से कुछ दब-सी गयी । बोल तक न सकी ।

तब चाची ने कह दिया—“कृष्ण-जन्म के उत्सव के लिए यह चीनी इकट्ठा कर रही है ।”

“इसका मतलब तो यह हुआ कि इन्होंने चीनी का व्यवहार ही त्याग रक्खा है ।” मैंने कहा ।

“त्रिलकुल” चाची बोली—“मेरा तो खयाल है, इसने इस साल सिर्फ एक-आध बार ही दही के साथ चीनी ली होगी ।”

तब लाली बोल उठी—“नहीं ली । सिर्फ कृष्ण-जन्म के दिन ली थी । करीब दस महीने हो गये ।”

सुनकर रोझों-रोझों जैसे बल उठा। जनता से कितने त्याग और धैर्य की आशा हमारे राजनीतिक प्रभु करते हैं ! साथ ही लाली के इस अप्रत्याशित आतिथ्य की पीड़ाओं की कल्पना करते-करते मैं जैसे स्वप्न देखने लगा।

जैसे कॉच के सफेद गिलास में शरबत का असली रंग साफ भलक उठता है, वैसे ही नारी के नयनों की भाषा अपने अन्तर्गत का मर्म भलका ही देती है। बस केवल वे आँखें चाहिये, जो उस भलक को देख पाये।

लाली के हाथ से शरबत का गिलास लेते क्षण मेरी दृष्टि जो उसके कमलनयन पर जा पड़ी, तो मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि अगर अति सावधानी से मेरा हाथ गिलास पर न जा पड़ता, बल्कि एक-आध अँगुली भी उसकी मृणालिनी-सी अँगुलियों से छू न जाती, तो सम्भव था कि गिलास उसके हाथ से ही छूट जाता। फिर अँगुलियों का वह स्पर्श भी बेकार हो जाता, यदि चलते क्षण एकबार उसके अधर का एक कोना डोल न उठता, बोल न उठता।

गिलास लेकर उसे एक साथ ही पी गया। फिर सोनेलाल को लक्ष्य करके मैंने कह दिया—“लेकिन सोने भाई, ज्ञान का सम्बन्ध उमर के साथ उतना नहीं जितना अध्ययन और अनुभव के साथ है। इसलिए ज्ञान-प्राप्ति के लिए यह वृद्धता आवश्यक नहीं है। और कर्मेन्द्रियों शिथिल होने के बाद ही ज्ञान के द्वार खुलते हों, यह भी जरूरी नहीं है। लेकिन जीवन के लोभ मोह और नाना स्वार्थों से मन को अलग रखकर भगवत्-आराधना में लीन रहने की बात हो, तो मैं मानता हूँ कि वृद्धता उसमें निकटता अवश्य पाती है।”

“बस-बस यही मेरे कहने का मतलब था, जिसे आपने क्रायदे से बतला दिया। मूर्ख और विद्वान में बस यही तो फरक होता है।” सोनेलाल बोला और फिर अग्नि को और भी तीव्र करने के लिए फुँकनी होठों से लगाकर मुँह फुलाने और पिचकाने लगा।



मुझे गिलास में शरबत देकर लाली सोनेलाल को भी गिलास भर शरबत दे गयी थी। फिर मैं जब उसकी बात का उत्तर देने लगा, तो वह दोनों खाली गिलास लिये हुए मेरे बाये ओर थोड़ा पीछे हट कर खड़ी रह गयी। चाची ने उसकी ओर संकेत करते हुए कहा—“एक यही दुख मेरी ज़िन्दगी में सबसे बड़ा है राजेन कि तुम्हारी यह लाली आज विधवा है। भगवान के चरणों में कितनी बार रो-रोकर बिज्जती की कि जितना मैं सह सकूँ उतनी ही पीर, उतनी ही यातना दो प्रभू ! कहीं ऐसा न हो कि मेरी जैसी दुखिया अबलाएँ एक साथ मिलकर तुम्हें दीनानाथ कहना ही छोड़ दें। आज तक मानती आयी हूँ कि जान-बूझ कर प्राण खो देना पाप है। लेकिन दुख का पहाड़ ही जब अपनी छाती पर फट पड़े और फिर भी प्राण न निकलें, चलने-फिरने से मुहताज होकर आदमी लाज रख सकने लायक होश-हवास से कोसों दूर जा पड़ा हो, तब भी वह अपने प्राण बचाये ही रखे—किस मोह से ? किस लालच से ?”

चाची का कथन सुनकर मैं स्तब्ध रह गया ! अब तक मैंने लाली की यौवनश्री को छोड़कर उसकी वेश-भूषा की ओर इतने ध्यान से देखा तक नहीं था। मुझे तब तक पता ही नहीं था कि वह विधवा है।

तब यकायक कोई मेरे कानों में आकर कहने लगा—कसर सिर्फ इतनी रह गयी कि जो कालिख तेरी सभ्यता के मुख पर खूब गहरी पुत गयी है, वह केवल भावात्मक है—केवल कल्पना में ही उसका अस्तित्व है। यद्यपि संसार की देख में अब भी तू बहुत सभ्य, सुजन और सत्पुरुष ही बना है।

किन्तु इतना सोच लेना ही यथेष्ट नहीं था। चाची ने जो मन्तव्य प्रकट किया था, वह अपनी जगह पर ज्यों-का-त्यों स्थिर था। अतः मुझे कहना ही पड़ा—“चाची, जहाँ तक भगवान की कृपा और अकृपा का सम्बन्ध है, मैं इतना ही कहूँगा कि वह बहुत कुछ अपने-अपने दृष्टिकोण पर आधारित है। सभी माता-पिता संतान का ब्याह उसके जीवन-निर्माण के लिए करते हैं। लेकिन ब्याह हो जाने पर भी, जिन सन्तानों का जीवन-

निर्माण रुक जाता है, उनकी जिम्मेदारी अन्ततोगत्वा आती किस पर है ? फिर विधवा हो जाने के बाद जिन लड़कियों का ब्याह कर दिया जाता है, क्या वे समाज की धृणा, उपेक्षा और अवहेलना ही पाती है ? उनकी निजी विद्या-बुद्धि, शालीनता, सेवा और सच्चरित्रता का मूल्यांकन क्या समाज को विवश होकर करना नहीं पड़ता ?”

चाची को मेरी घात कुछ नयी-सी मालूम पड़ी। जान पड़ा, विधवा हो जाने के बाद उसके विवाह की बात सोचना उन्हे पसन्द नहीं आया। वे बोली—“यह तो तुम ठीक कहते हो कि एक स्त्री क्या, हर एक आदमी अपने उजले कामों से ही समाज में इज्जत पाता है। भले ही उसकी किसी एक बात से कम लोगों का मत मिलता हो। लेकिन फिर बार-बार मैं यही सोचती रह जाती हूँ कि अगर भगवान ने लाली के नसीब में सुख ही लिखा होता, तो उसके माथे का सिन्दूर हो क्यों मिट जाता ! अगर उसका कर्म फूटने को न होता, तो उसकी कोंच की चूड़ियाँ ही क्यों फटती। इसके सिवा ऐसा वक्त आने पर भटपट अपनी बहु-बेटी का ब्याह कर देना उतना आसान भी नहीं, जितना उस पर बहस करना।”

कुछ ऐसा जान पड़ा जैसे चाची से इस प्रकार के उत्तर की आशा मैं करता नहीं था। इसलिए तत्काल कुछ कह सकना मेरे लिए कठिन हो गया। लेकिन क्षण भर में ही—“यह तुम ठीक कहती हो चाची।” मुझे कहना पड़ा—“लेकिन साथ-ही-साथ तुम यह क्यों नहीं सोचती कि आज जो लोग अपने इष्ट-मित्रों और आत्मीय स्वजनों के विरोध की कल्पनामात्र से आगे नहीं बढ़ना चाहते, वे कायर कितने हैं ! और जो लोग केवल संस्कारवश विरोध करते हैं और डींग हॉकते हैं, कोरे आदर्शवाद—ब्रह्म-चर्य, इन्द्रिय-निग्रह और कठोर साधना—की, वे समाज और देश को गुम-राह करनेवाले, प्रतिक्रियावादी और धूर्त कितने हैं ! लेकिन इतना मैं साफ-साफ देख रहा हूँ कि अब देश का भविष्य जिस वर्ग के हाथ में आने वाला है, वह ऐसे समाज की मान्यताओं को कदापि महत्व न देगा। वह तो उसी समाज को प्रोत्साहन देगा, जो जनता की सारी समस्याओं का हल

मनुष्य को नवजीवन और नवजागरण का मार्ग प्रदर्शित करनेवाली बौद्धिक चेतना के आधार पर करना स्वीकार करेगा।—और तब आत्मघात की बात सोचना भी बुद्धिमानी नहीं, बुद्धिदिली समझी जायगी। अगर ध्यान से देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि ऐसा समाज आज भी हमारे बीच में है। अब हमारा काम इतना ही शेष है कि हम उस समाज को संगठित कर लें।

“तुम कहते तो ठीक हो।” चाची कुछ आश्वस्त-सी होकर बोलीं—“लेकिन तुम्हारी बात की सचाई, तुम्हारे कहने और करने का भेद, जब तक ज़ाहिर न हो, तब तक कैसे कहूँ कि तुम्हारा यह नया समाज कहीं है भी। कोरी बातों से तो काम चलता नहीं राजेन ! जिस दिन मेरी लाली का संसार बन जायगा, जिस दिन मैं उसे सुखी-सन्तुष्ट देखूँगी, उसी दिन समझूँगी कि मेरा राजेन सच्चा है—मेरा राजेन वीर है। वह जो राय देता है, उस पर खुद भी अमल करना जानता है।”

देर काफ़ी हो गयी थी। इसलिए उठते हुए मैंने कहा—“अच्छी बात है। मैं सोचकर देखूँगा कि इस विषय में क्या कर सकता हूँ।” फिर जेब में हाथ डालकर सोनेलाल के हिसाब का पुरज़ा निकालते हुए मैंने कहा—“इस पुरज़े को फिर ज़रा एक बार अच्छी तरह देख लो।”

सुनकर, थोड़ा ठहरकर सोने बोला—“ज़रा बीड़ी देना लाली !” और मेरी ओर ध्यानपूर्वक इकटक देखता हुआ कहने लगा—“ज़रा ठहरिए ! आपसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।” फिर माँ की ओर देखकर बोला—“अब तुम अन्दर जाओ अम्मा।”

...

...

...

घर पहुँचते ही मालूम हो गया, रामलाल देर से बैठा है। सुनकर मेरे अहंकार को एक तृप्ति-सी प्रतीत हुई। स्पष्ट जान पड़ने लगा, उसने अपनी ग़लती स्वीकार करली है। पर तुरन्त गौरीशंकर की याद आ गयी। कितना अच्छा होता, अगर वह भी आ जाता।

कमरे में पहुँचकर कपड़े उतार ही रहा था कि माँ आकर कहने

खर्गी—“रामलाल अपने घर का ही लड़का है। उससे तुमको कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, जो उसे बुरी लगे। मैंने सुना कि उस दिन तुमने उसे बैठक से चले जाने के लिए कह दिया ! घर के लड़कों से कोई भला ऐसा कहता है !”

माँ से बहस मैं कभी करता नहीं। इसलिए इतना ही कह दिया—  
 “तुम तो जानती हो माँ, बिना किसी खास वजह के मैं किसी का कभी अपमान नहीं करता। और अगर करता भी हूँ, तो उसी व्यक्ति का, जिसका मैंने सदा मान किया है। रामलाल की बातचीत में जो अहंकार, दम्भ और पशुबल भरा रहता है, उसकी दवा वही है, जो मैंने उस दिन की थी। पहली खुराक ज़रा ज़्यादा कड़वी लगती है। आशा है, अब आगे सारी खुराकें वह बिना शिकायत के पी जायगा। तुम चिन्ता न करो। मैं उसे समझा लूँगा।”

तब चलती हुई माँ ने पुनः कह दिया—“बस, यही कहने के लिए मैं आयी थी। और हाँ, दुल्हिन का हार बन गया ?”

मैंने हार माँ के हाथ में दे दिया। क्षण भर वे उसे देखती रही। फिर बोली—“ठीक तो है। सोने का काम मुझे हमेशा अच्छा लगता है।... और कुछ कहता तो नहीं था ? उसकी माँ मिली थी ? कुछ कहती तो नहीं थीं ? बिचारी लाली की ज़िन्दगी न जाने कैसे कटेगी !”

मेरे मन में नाना प्रकार के विचार यों ही सदा बादलों की तरह घुम-झूटते रहते हैं। मैं अभी रामलाल के सम्बन्ध में सोच रहा था। अब पुनः लाली की माँ की बात सोचने लगा—“क्यों उन्होंने मुझे इतना प्यार किया ? क्यों उन्होंने मुझे सोने से अधिक मानने की बात कही ?”

पर उस समय यह सब सोचने का अधिक अवसर नहीं था। कह दिया—“चाची ने सचमुच मेरी बड़ी खातिर की। बचपन की याद करके बहुत सी ऐसी बातें बतलायी, जिनको सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। और हाँ, सोनेलाल कह रहा था—“अम्मा से कहना, अगर मकान लेना हो,

तो लाला सॉवरे से मिलकर बातचीत करलें। उन्हें रुपये की ज़्यादा ज़रूरत है। कही ऐसा न हो कि मौके का मकान हाथ से निकल जाय।”

“सच?” कहती हुई मॉ चेक-सी पड़ी। फिर और निकट आकर स्वर को धीमा करके बोली—“तब आज ही लाला सॉवरे से मिल लो।” फिर कुछ रुकी और सोचती हुई कहने लगी—“आज कौन दिन है? शुक्रवार? ख़ैर, मैं फिर तैसा बतलाऊँगी।” और फिर हार देखती-देखती चली गयी।

दूसरे दिन प्रातः नींद उचटी ही थी कि रामलाल कमरे के द्वार पर आकर ठहर गया और बोला—“दस-पाँच मिनट के लिए आ जाऊँ, तो आशा है, आपको --।”

चाहता तो नहीं था, लेकिन मुसकराहट आ ही गयी। वाक्य का शेष अंश भी अपने आप मुँह से निकल ही गया—“कोई आपत्ति न होगी। क्यों? आओ-आओ...। कल तक तुम मेरे मित्र थे। इसलिए तुम्हारा स्वागत-सत्कार शिष्टाचार की सीमा तक ही चलता था। आज की बात दूसरी है। अब तो मैं तुम्हारे कान पकड़कर दस-बीस बार तुम्हें उठा-बैठा भी सकता हूँ।”

इसी समय चँदिया आकर चाय रख गयी।

रामलाल कुरसी पर बैठ गया था। सहज स्वभाव से बोला—“कान पकड़ने की ही नहीं, कटवाने की भी नौबत आयेगी, तो मैं चूँ न करूँगा। लेकिन चाय जब सामने हो, तब बहस न करनी चाहिये। इस ख़याल से इन्हें समय इस विषय को स्थगित कर देना ही मैं अधिक उत्तम समझता हूँ। आप की क्या राय है?” और चाय की केतली उठाकर एक कप में चाय ढालने लगा।

तब स्पष्ट जान पड़ने लगा कि रामलाल उस दिन वाले विग्रह के सम्बन्ध में बात करने से भिन्न रहा है और यही उसकी दुर्बलता है। किन्तु उसी व्यक्ति से उसके पुनः मिलने का अर्थ क्या होता है, जिससे वह

एकबार बुरी तरह अपमानित हो चुका है ? इस नीति के अन्दर क्या निरी सम्बन्ध की भावना है, अथवा इसमें कोई माया है ?

मन मे यह प्रश्न उठा ही था कि रामलाल मेरे उत्तर की और अधिक प्रतीक्षा किये बिना ही चाय में चीनी मिलाता-मिलाता बोल उठा—“राय चाहे जो हो, मैं यह मानने के लिए कृतार्थ तैयार नहीं हूँ कि विचारों से सम्बन्ध रखनेवाले भेद-प्रभेद हमारे व्यक्तित्व के बीच में आकर हमें उठा या गिरा सकते हैं। जीवन का मार्ग, मैं नहीं मानता, कोई ऐसी सीधी सड़क है, जिसमें न तो उतार-चढ़ाव हैं, न धरातल के साफ और चिकने-पन में कोई समान अन्तर। उसमें गड्ढे भी मिलते हैं, कंक्रीट के स्थान पर कही-न-कही कच्ची बालूभरी सड़क भी। और यह भी तो हो सकता है कि पगडंडी मिल जाय, जहाँ कही तो काँटे भी बिछे हों और कही दलदल हो गया हो।”

तो यह रामलाल का शांत, स्वस्थ और विचारशील रूप है। यकायक मेरे मन मे यह विचार आया ही था कि चाय का वह प्याला मेरे सामने आ गया। साथ ही मैं सोचने लगा—“हूँ, तो रामलाल वास्तव में एक व्यावहारिक व्यक्ति है।” और मेरे मुँह से निकल गया—“तो तुमको एक-दम सनकी समझ लेना तुम्हारे प्रति अन्याय करना है। क्यों ? कहते जाओ हों। और उस दिन अगर इतनी ही शान्ति के साथ, तुमने अपने ऊपर आये हुये आरोप का उत्तर दे दिया होता, तो तुम्हारी जाति नष्ट हो जाती या तुम्हारा व्यक्तित्व ही मर जाता ! क्यों ? क्योंकि वाणी पर संयम रखना शायद उन लोगो का धर्म है, जो नपुंसक, कायर और भीरु होते हैं ! क्यों ? क्योंकि युक्ति-संगत, सार-गर्भित और प्रामाणिक उत्तर देना कदाचित् उन लोगो का कर्त्तव्य होता है, जो अपराधी होते हुए भी अपने आप को निराश्रय सिद्ध करना चाहते हैं ! क्यों ? क्योंकि गाली के रूप में उत्तर देने से बढ़कर बुद्धि और तर्क के बल का कोई भी उपयोग कभी उत्तम हो नहीं सकता ! क्यों ?”—मैं कहता ही चला गया।

सम्भव था कि मैं और भी आगे बढ़ जाता, लेकिन इतने में रामलाल

अपने लिए चाय बनाता हुआ बोल उठा—“मैंने पहले ही निवेदन किया था, पहले हम चाय के घूँट गले के नीचे उतार लें—एक मिठास के साथ—और उसके पश्चात् मेरा अभिप्राय था, अगर आवश्यक हो, तो विवाद के कड़वे घूँट भी थोड़े-बहुत घुटक लिये जायें ! पर आप तो चाय . . . .।”

यह भी उत्तर देने की तैयारी कर लेने का ही एक ढङ्ग जान पड़ा। लेकिन मैंने आपत्ति नहीं की। कह दिया—“चाय ही नहीं, कहो तो पूरे भोजन का प्रबन्ध कर दिया जाय। क्योंकि उत्तर देने में जो परिश्रम पड़ेगा, उसको बहन कर लेने की शक्ति तो इस विवशता के ब्याज में मिलनी ही चाहिये ! क्यों ?”

उत्तर में रामलाल चाय का प्याला मुँह से लगाते-लगाते नीचे गिराते और रखते हुए बोल उठा—“पूछकर भोजन का प्रबन्ध करने में आतिथ्य का गौरव बढ़ता ही है सदा, घटता ज़रा भी नहीं है; मैंने कभी सोचा नहीं था। और जवाब देना जिनके लिये कभी मजबूरी नहीं हुई, हो भी नहीं सकती, वे यदि कभी जवाब देने में ही गौरव का अनुभव न करना चाहें, तो उनकी छाती पर सवार होकर भी, जवाब ले ही लेना आज के प्रजातंत्रवाद का एक लक्षण आप भले ही कहलें, पर कम-से-कम मैं उसे बहुत सम्य और शिष्ट शैली मानने को तैयार नहीं हूँ। सभी काल में, सभी पुरुष, सभी प्रश्नों का उत्तर, चाहे देते भी आये हों, लेकिन उत्तर देने की अपेक्षा जिन मातेश्वरी सीता ने पृथ्वी में समा जाना ही अधिक पसन्द किया, मैं नहीं मानता कि उनके पास उत्तर देने को कुछ था नहीं। भरी सभा में जब द्रौपदी को निरावरण कर डालने की आज्ञा देते हुए दुर्योधन का शिष्टाचार स्थिर बना रहा, उसका सांस्कृतिक स्तर उस-से-मस न हुआ, तब यह तो केवल सुनी-सुनायी बातों की प्रतिक्रिया मात्र है। जो लोग मानते हैं कि अपने को सच्चा और निमल सिद्ध करने के लिए, सफाई देना ही सबसे बड़ा तर्क और बल है, वे बुद्धिमान हो सकते हैं; लेकिन वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण केवल एक इसी-

ढंग और प्रकार से हो सकता है, मैं इसे कदापि मानने के लिए तैयार नहीं हूँ ।”

मुसकराहट अब गम्भीरता में परिणत हो गयी थी और चाय ठढ़ी पड़ने लगी थी । स्वर की सहज साधारण गति कुछ गहन हो गयी थी और मस्तक पर बननेवाली रेखाएँ स्पष्ट झलकने लगी थी । होंठों के कोण फड़क-फड़क उठते थे ।

उसकी इन आवेशमयी मुद्राओं की परिवर्तनशील गतिविधि को लक्ष्य कर मैंने कह दिया—“अच्छा चाय पी लो, नहीं तो कहोगे कि गरम रहते हुए—इतनी बार कहने पर भी—पीने का अवसर नहीं दिया ।”

फिर यह भी सोचने लगा कि इसके कथन में कहीं-न-कहीं सत्य अवश्य है । जान पड़ता है, इसके हृदय में भी उस घटना को लेकर कहीं कोई भाव अवश्य है ।

गमलाल ने फिर भी प्याला नहीं उठाया ।

तब मुझे कहना पड़ा—“पी लो, पी लो रामलाल । ये बातें कभी चन्द नहीं होंगी । संसार के सारे कार्य और व्यवहार भी सदा एकसे चलते रहेंगे । युग-पर-युग बीतते जायेंगे । पर मनुष्य का प्रत्येक पदक्षेप तब तक आलोचना का विषय बना रहेगा, जब तक उसकी सत्ता जीवन अथवा उसके प्रभावों और कार्यों के रूप में इस संसार के समस्त दृष्टव्य बनी रहेगी । इसलिए आलोचना या मतभेद से मर्माहत होकर जीवन के साधारण व्यापारों में अन्तर डालना उचित नहीं है ।”

मेरे इतना कहने पर रामलाल ने प्याला होंठों से लगा लिया ।

उस दिन जब इसी रामलाल को मैंने इस कमरे से बाहर निकाल दिया था, तब गौरीशंकर को गाली देते समय इसने कहा था—‘देश-द्रोही, ब्राम्हण, नीच ।’ क्यों कहा था इसने ऐसा, यह मैंने कभी सोचा न था । लेकिन हृदय के किसी कोने में ये शब्द पड़े अवश्य रह गये थे ।

आज रामलाल का मन शान्त था । मैंने भी उसे एक तरह से क्षमा कर दिया था । अतएव मैंने पूछ दिया—“अच्छा उसदिन तुमने गौरी



शंकर को जो देशद्रोही कहकर गाली दी थी, उसका आधार क्या था ? सच-ही-सच बताना । क्योंकि और चाहे जो दण्ड तुम्हें मिले, लेकिन न तो तुम कभी मारे जाओगे — न कभी अपमानित ही होने पाओगे । मेरी धारणा है, इतना आश्वासन तुम्हारे लिए यथेष्ट होगा ।”

“मुझे इस प्रकार के आश्वासन की ज़रूरत नहीं है ।” रामलाल गरजता हुआ बोल उठा—“क्योंकि इसका आधार न्याय नहीं, कृपा है । और किसी की भी कृपा से जीवन का एक क्षण भी बिताना मैं अपने लिए अपमानजनक समझता हूँ । रही बात गौरीशंकर की; सो अच्छा हो, आप मेरे सामने उसकी चर्चा न करें ।”

“यही तुम्हारे मन में चोर है ।” मुझे कहना पड़ा—“यथार्थ स्थिति को छिपाकर जो केवल काल्पनिक आधारों पर आशका एवं संदेह से ग्रस्त होकर रोष और उपेक्षा का अवलम्ब ग्रहण करता है, वह स्वतः अपने साथ प्रवंचना करता है । हमारी समझ में नहीं आता कि अगर आप अपनी आर्थिक स्थिति को प्रकट नहीं कर सकते, तो इस रिवाज की आवश्यकता आपको क्यों है ? हम यह भी नहीं समझ सकते कि ऐसे प्रश्न करने पर जो उत्तेजना आप प्रदर्शित करते हैं, वह आपकी स्थिति को सुरक्षित रख सकती है ?”

“न रहे सुरक्षित ! मुझे इसकी परवा नहीं है ।” रामलाल ने उपेक्षा भाव से कहा ही था कि “लेकिन मुझे परवा करनी पड़ती है ।” यकायक किवाड़ खोलकर गौरीशंकर बोल उठा । पता नह, वह कब दरवाज़े पर आ गया था । “देश की लाज का जिन्हे कभी खयाल नहीं रहा, तूफ़ान के समय जो सह रास्ते पर भी उसी तरह आँख मूँदकर आ पड़े, जिस तरह वे निरन्तर ग़लत रास्तों पर चलते रहे हैं, आज उन्हें यह जान लेना पड़ेगा कि वे कहाँ खड़े हैं और खड़े रहने की यह अवधि भी उनके लिए कितनी सीमित है ।” कहते-कहते गौरीशंकर कुर्सी पर बैठ गया ।

इतने में रामलाल उठकर खड़ा हो गया और बोला—“बेकार की बातें सुनने के लिए, आशा है आप मुझे मजबूर न करेंगे ।”

तब मुझे कहना पड़ा—“लेकिन तुम दोनों के आपसी झगड़ों के आधारभूत मर्म को समझ लेना मेरे लिए इस समय बड़ा आवश्यक हो गया है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि उठकर चल देने के बजाय तुम शान्तचित्त होकर बैठो और हो सके तो उठनेवाले प्रश्नों का यथाविधि उत्तर भी दो।”

“उत्तर इनके पास है क्या, जो ये देगे।” गौरीशंकर बीच में बोल उठा—“उत्तर तो वे लोग देते हैं, जो जीवन में सच्चे, साधना-मार्ग में दृढ़ और सार्वजनिक क्षेत्र में निःस्वार्थ सेवक होते हैं। पर संयोग को बहती गंगा मानकर, आचमन करने के बजाय, जो दोनों हाथों और दोनों पैरों को एक साथ धोना प्रारम्भ कर देते हैं, वे वास्तव में उत्तर देने की स्थिति में नहीं रहते; इसीलिए दे भी नहीं सकते। वे अपनी योग्यता पर विश्वास नहीं रखते, भविष्य-निर्माण तो दूर की बात है; वे अपने कार्यक्रम की सफलता पर भी विश्वास नहीं रखते, इसीलिए जो सुलभ और प्रत्यक्ष है, उसका मोह भी नहीं त्याग सकते।”

“क्योंकि वे जानते हैं कि मोह-त्याग के उपदेश का यह स्वर भी उसी स्वीभ और क्षोभ से उत्पन्न हुआ है।” रामलाल को अन्त में विवश होकर बोलना ही पड़ा—“जो असामयिक असहयोग और अतिवांछित महत्वाकांक्षा की असफलता का वास्तविक परिणाम है।”

“दोनों ही आरोप निराधार हैं,” गौरीशंकर अत्यन्त शान्त भाव से कहने लगा—“असहयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि पदों, अधिकारों और मर्यादा-सुलभ सुविधाओं के वितरण के क्षण हमारे असंतोष और उपालम्भ का न कोई स्वर था—न अवसर। यह अवसर तो सच पूछिये, सत्ताधारियों के स्वेच्छाचार-भरे कार्य-कलाप से अपने आप उत्पन्न हो गया है। रही हमारे लिए अतिवांछित महत्वाकांक्षा की बात, सो यह उस शासन का ही कथन हो सकता है, जिसे हमारे ही सामूहिक मत ने इतना समर्थ बनाया है, इतना अधिकार दिया है। लेकिन प्रश्न यहाँ यह उठता है कि यह टहरेगा और कितने दिन तक?” कहता हुआ उठकर

गौरीशकर चलने लगा। बोला—“मैं अब चलूँगा राजेन भाई। एक ज़रूरी काम से निकला था। आग लोगों की बहस सुनकर बीच में नाहक आ खड़ा हुआ।”

मैने कहा—“बैटो-बैटो। मैं भी चलता हूँ।”

गौरीशकर बोला—“नहीं, अब मुझे जाने दीजिए।”

रामलाल एक शब्द नहीं बोला और गौरीशकर चला गया।

मुझे खयाल आ गया, अभी आज ही तो भाभी के हाथ की चाय पीते-पीते मैं स्वयं सबेरे यहाँ से चला गया था। उस समय स्वयं मैने इस बात का ध्यान नहीं रक्खा था, जिसे अभी-अभी मैं इस रामलाल को समझा रहा था। फिर उठकर शरीर पर पुनः कुरता धारणकर मैं चलने लगा। रामलाल से मैने कह दिया—“इस समय एक आवश्यक काम से मुझे फिर बाहर जाना पड़ रहा है रामलाल। रात को हो सके तो मिल लेना।”

## पाँच

सड़क पर आते-आते बराबर यही सोचता जा रहा था—क्या मनुष्य-मात्र की यही गति है; या मैं ही एक अपवाद हूँ ?

जिस बात का उपदेश मैं दूसरों को देता हूँ, उसका पालन मैं स्वयं क्यों नहीं करता ! जिस आदमी को मैं अभी अपने कमरे में छोड़कर चला आया हूँ, उसकी जगह जो कोई भी दूसरा आदमी होता, क्या उसके साथ भी मैं ऐसा व्यवहार करता ?

तो जिसके साथ हमारे सम्बन्ध जिस परिमाण में निकटतम होते हैं, उसी सीमा तक क्या हम उसकी उपेक्षा और अवज्ञा भी कर सकते हैं ?  
क्या हमारे सम्बन्धों की निकटता ही वह वस्तु है, जो हमें उसके प्रति  
 अवांछित व्यवहार करने तक की स्वतंत्रता दे देती है !

फिर सामने पड़ गया एक कुत्ता, और चारों ओर से सुनायी पड़ी कुछ आवाज़ें—“बचना भाई साहब, यह कुत्ता पागल हो गया है !”

दूसरा कह रहा था—“इसका काटा बच नहीं सकता !”

तीसरा बोला—“कल ही तीन आदमियों को इसने कसौली भिजवाया है ।”

अब खयाल आया साफ़-साफ़ कि मैं कहाँ जा रहा हूँ—लाला सोंवरे के पास, मकान के सम्बन्ध में बात करने । मों ने हालाँकि मनाकर दिया था कि आज नहीं, जब मैं कहूँ, तब जाना । लेकिन मैं आजके काम को कल पर कैसे टाल सकता हूँ ! लाला सोंवरे अपना मकान बेचने पर तुले है । वे इस काम में किसी का इन्तज़ार क्यों करने लगे ? और शुभ काम के लिए क्या शुक्रवार, क्या शनिवार ! किराये के मकान में रहते-रहते कितनी तकलीफें उठायी हैं और कितना अपमान सहा है ! नहीं-नहीं, जिसमें उन्नति करने का थोड़ा भी अवसर मिले, ऐसा काम मुझे तुरन्त कर डालना चाहिये ।

लेकिन यह पागल कुत्ता, जिसने अभी कल तीन आदमियों को कसौली भिजवाया है ! —यह ... ?

छाता मेरे हाथ में था, झट मैंने उसे तोड़कर, समेटकर रक्षा के लिए छड़ी का काम देने लायक बना लिया । पर तब तक कुत्ता आगे बढ़ गया ।

फिर लाली के नयन-कटोरे कल्पना के घाट पर उतर आये । बेचारी विधवा है । जीवन का अगाध रत्नाकर पार करने को सामने पड़ा हुआ है ! तिसर अभी उसे यौवन की आँधियों का भी ज्ञान नहीं है ! अगर कहीं इधर-उधर पैर पड़ ही गया, तो एक दिन रूप के बाज़ार में पहुँचते देर कितनी लगती है ! जैसे ये कुत्ते जब किसी को काट खाते हैं, तब उसे कसौली जाते देर नहीं लगती ।

तो वह समाज, जो इन विधवाओं के साथ विश्वासघात करता है, क्या है ? यह विश्वासघात, ये ज़हर के दाँत, ये कुत्ते ! मनमें एक दुर्निवार

कड़वाहट-सी घुलकर फैलने लगी है। विधवाओं का यह समाज क्या सदा ऐसा ही असहाय और निकम्मा बना रहेगा ? ये विधवाएँ क्या सदा अनधिकारी पुरुषों के जाल में पड़कर समय-कुसमय अपना गला कटवाती ही रहेगी ?

रिक्षे पर बैठा हुआ सर्र मारे चला जा रहा था कि यकायक लाला सॉवरे का मकान सामने आ गया। उतर ही रहा था कि रिक्शेवाले ने जो मस्तक का पसीना पोंछकर टपकाया, तो एक धार-सी बँध गयी !

फिर ध्यान आ गया, उस दिन कोई कह रहा था—ये रिक्शेवाले जिस दिन से रिक्शा हाँकते हैं, उसके बाद दस-पॉच वर्ष के अन्दर अपनी इह लीला समाप्तकर चल देते हैं !

तो ये पैसे, जो मैं इसकी मॉग के अनुसार इसको दे रहा हूँ, ये क्या हैं ? क्या इनमे विष नहीं है ? कसौली मे इलाज करवाकर लोग प्रायः बच जाते हैं; पर इन पैसों के दौतों का विष तो तभी उतरता है, जब इसकी भार्या इसे अपने घर से, जीवन और प्राणों से, यौवन और उसकी बलखाती उमंगों के आँसू भरे चीत्कार से, सदा के लिए विदा करती है। लेकिन सवाल है कि आदमी फिर करे क्या ? घर मे चार खानेवाले हों, और उसका भार एक आदमी पर हो; उस आदमी को सरकार और समाज ने इसी योग्य बना रक्खा हो कि वह कहीं कोई इज्जत की नौकरी न पा सके और व्यवसाय के लिए उसके पास पूँजी न हो, तो फिर वह जाय कहाँ ? रिक्शा चलाने मे पॉच मिनट का दाम चार आने होता है। और किसी काम में इतनी सीमाओं से घिरा आदमी इतने पैसे पायेगा कहाँ ?

तो आज की इस सभ्यता ने मनुष्य को कुत्ता बना डाला है ! पैसे की मॉग, पैसे की पुकार और पैसे की भूख ! पैसा ! हाय पैसा !! यह कैसी चिल्लाहट है !... ..उफ़ .। बिल्कुल वैसी ही आवाज़ें हैं, जैसी भौंकने पर होती हैं !

यकायक हृदय पर एक आघात का अनुभव कर रहा हूँ क्योंकि लाला सॉवरे का मकान बिकने जा रहा है और अवसर की ताक मे मैं उते

खरीदने को आतुर हूँ। कहने के लिए बहुत-सी बातें हैं। बचत के लिए हम कह सकते हैं कि कोई तो उसे खरीदता ही। और जब तक कोई विवशता लाला सॉवरे के समक्ष नहीं होगी, तब तक वे उस मकान को बेचेंगे ही क्यों? फिर जल्दी बिक जाने पर उनको जो संतोष और शान्ति मिलेगी, उसका अधिकारी खरीदनेवाले के सिवा और कौन होगा! और बिकने में देर लग जाने से लाला सॉवरे को लाभ ही क्या हो सकता है?

लेकिन मकान मुझे ही मिले और मिले कम-से-कम दामों में, यह क्या चीज़ है? और वह उपाय, प्रयत्न और साधन, जिसके द्वारा वे तुरन्त कम-से-कम दामों में उस मकान को बेचने के लिए मजबूर हो जायें, यह क्या चीज़ है? क्या यह पूँजीवाद का विधेला दोत नहीं है? फिर धीरे-धीरे मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा, जैसे सब तरह से मैं स्वयं..! और आगे मैं सोचना नहीं चाहता।

लाला सॉवरे के मकान की सीढ़ियों पर चढ़ता जाता हूँ और यही सब सोचता जाता हूँ।

सामने एक नौकर दिखाई दे रहा है। यह आया। पूछा उसने—  
“लाला जी से मिलना चाहते हैं?”

“जी।”

“तो इधर आइये।”

मैं उसके साथ चल दिया। एक सजा हुआ कमरा दिखाई दिया। कुरसियों दो पड़ी हैं एक पलंग के पास। नीचे उगालदान रखता है। फर्श पर पुरानी दरी बिछी है। कलेंडर में तारीख तीन दिन पहले की पड़ी है। एक आदमी पैर दबा रहा है। लाला जी लेटे-लेटे अपनी जन्मपत्री देख रहे हैं। कमरा बड़ा है। बीच में एक पर्दा पड़ा है, जो कहता है कि मुझे अब धोबी के यहाँ जाना है।

ये हैं लाला जी। रंग पक्का, शरीर दुर्बल, मुँह गोल। पुराने सुनहले फ्रेम के चश्मे के भीतर से आँखों में सुरमे की बारीक धार साफ़ झलकती है। मूँछें नाक के नीचे कुछ अधिक घने रूप में हैं। और नयनों

की चौड़ान सवा इंच से कम होती-होती रह गयी है। पान से रात-दिन मुँह भरा रहने के कारण दाँत कुछ काला रुख पकड़ रहे हैं। मुँह की चीरन के पास तक घनी मूछों के कुछ बाल भी होंठों से लगकर पान का ज़ायका-सा लेते जान पड़ते हैं। सिर के बाल जो दोनों कानों से लगे हैं, कुछ बनावटी क्रिस्म के काले हैं। लेकिन सिर की मॉग इतनी सीधी और साफ़ है कि केशों के विभाजन में न्याय बोलता है।

मैंने पास जाकर कुर्सी के सिर पर हाथ रखकर अपना परिचय दिया, तो लाला जी प्रसन्न होकर बोले—“ओः ! तो तुम पाण्डेयजी के नाती हो ! बैठो-बैठो। तुम तो घर ही के लड़के हो। पाण्डेयजी आदमी नहीं रत्न थे, पुरुष नहीं पारस थे। और तुम्हारे पिताजी तो मुझको बहुत अच्छी तरह जानते थे। बड़े सीधे थे बच्चे—बिल्कुल देवता-स्वरूप। हमारे यहाँ आये हैं दो-चार बार। और हमारी तुच्छ भेंट भी कभी उन्होंने नामंजूर नहीं की।”

मैं कुर्सी पर बैठ तो गया; पर पड़ गया बड़े सोच-विचार में। जिस घर, वंश और व्यक्ति के दया-दानिय, उदारता और कृपा के पात्र मेरे दो-दो पुश्त के पूर्वज रह चुके हैं, उसके साथ मेरा उस विषय में बात करना—। नहीं-नहीं, ऐसी धृष्टता मुझसे न होगी !

पैर दाबनेवाला नौकर उठकर चला गया था। लालाजी बोले—“बचपन में तुमको देखा था। उसके बाद तो तुम जो पढ़ने के लिए बाहर चले गये, तो फिर देख ही न पड़े। और कहो, बी० ए० तो तुमने कर ही लिया होगा। और ब्याह भी तुम्हारा..... ?”

केवल सकेत से कह दिया—“नहीं।”

“नहीं हुआ ! खैर, तो अब हो जायगा। एक-से-एक बढ़कर पढ़ी-लिखी रंगीन लड़कियों अपनी कमर पर तुम्हारे हाथ का सहारा पाकर अपना भाग्य सराहेगी।” फिर दूसरी ओर देखते हुए बोले—“अरे ज़जागर, कहाँ गया रे ?” फिर धीमे स्वर में, “ये नामाकूल नौकर वक्त पर काम करना कभी सीख ही नहीं सकते ! मुझे तो अब ऐसा मालूम होता है कि इस ज़माने में नौकर कोई नहीं रह जायगा। आपका क्या खयाल है ?”

“आया सरकार ।” इतने में नौकर बोल उठा ।

“सरकार के बच्चे, देखता नहीं, कौन आया है । कितनी ढेर हो गयी, पान तक नहीं दे गया !”

इतने में उजागर पान की तश्तरी सामने लाकर हाज़िर हो गया । तश्तरी की तरफ दृष्टि डालते हुए लालाजी ज़ोर से बोले—“सिगरेट नहीं लाया, उल्लू का पट्टा ।” फिर धीमे स्वर में कहने लगे—“गँवार नौकर, मैं कहता हूँ, चाहे जहाँ रहे, रहते हमेशा गँवार ही हैं । पूछिए, मैं अगर हुका पीता हूँ, तो क्या यह ज़रूरी है कि जो मेरे यहाँ मुझसे मिलने आयेगा, वह भी इसी में मुँह लगा देगा ! अरे सिगरेट-विगरेट कुछ...?”

“लेकिन मैं सिगरेट नहीं पीता लालाजी ।”

“अह छोड़िए भी । आप यूनिवर्सिटी के काग़ज़ाने से ढलकर तश्तरीक़ लाये हैं । भला ऐसा मुमकिन हो सकता है कि दोस्तों में पड़कर कभी उनके चक्के में न आये हों ! और फिर यह तो बिल्कुल पलाहारी शौक़ है । आमलेट तो आप खाते ही होंगे ?”

“माफ़ कीजिये, मैं इन सब चीज़ों से दूर हूँ !”

“ये सब कहने की बातें हैं । मैं कहता हूँ, आज की दुनियाँ में आप हरगिज़-हरगिज़ कामयाब नहीं हो सकते अगर इतना परहेज़ पालकर चलते हैं ।

उजागर सामने सिगरेट-केस और दियासलाई रखकर दूर पैताने की तरफ खड़ा हो गया था । लालाजी बोले—“ज़रा देखना तो अन्दर जाकर । मछली का कबाब अगर तैयार हो रहा हो, तो दो प्लेट ..”

नौकर संकेत पाकर भट से चला गया । तब मैंने कहा—“मगर लालाजी, मैंने पहले ही आपसे अर्ज कर दिया कि मैं अब तक एकदम ब्राह्मण ही बना हूँ; सभ्यता के इन रोगों ने मेरे ऊपर बिल्कुल प्रभाव नहीं डाला है ।”

“बस-बस हो गया । इतना ही कहना काफ़ी है । मैं मानता हूँ, बहुत काफ़ी है । मैं यह भी माने लेता हूँ कि तुम एकदम शाकाहारी हो अब



भी । मगर यह रोहू मछली का कवाब है जनाब ! और मछली तो जलतुरई होती है । एक बार चखकर देखो तो सही । पसन्द आये तो और मँगाना करना इनकार कर देना । खातिरदारी में ज़बरदस्ती मैं कृतई नापसन्द करता हूँ । क्या खयाल है आपका ?”

“मैं यह सब कुछ नहीं लेता । मैं पहले ही आपसे निवेदन कर चुका हूँ ।”

“मगर मैं कहता हूँ, एकबार अगर ज़रा-सा चख ही लोंगे, तो खोर के पांड़े से घटकर पानी-पांड़े तो हो न जाओगे ! और अगर यह कहो कि तुम्हारे पिताजी इन चीज़ों से परहेज़ करते थे, तो मैं कहूँगा कि तुम बहुत ग़लती पर हो ! एक-दो बार नहीं, कई बार उन्होंने ज़मीकन्द समझकर यह चीज़ हमारे यहाँ माँग-माँगकर खायी है । बाद में जब उन्हें बतलाया गया, तो उन्होंने क्रसम खिलादी कि किसी से कहना नहीं । मगर खाना उन्होंने बन्द नहीं किया । अब तो वे हैं नहीं, इसीलिए हर्ज़ न समझकर मैंने बतला दिया, जिससे आपको एतराज़ होता भी हो, तो न हो !”

मैं उटकर खड़ा हो गया और मैंने कह दिया—“क्षमा कीजिये । मैं यह सब सुनने के लिए यहाँ नहीं आया । और आप जैसे इतने बुजुर्ग से मैं ऐसी आशा भी नहीं करता । मुझे ताज्जुब है कि इस तरह मेरे पीछे पड़ने की हिम्मत आपको कैसे पड़ी ! मैं सिर्फ पान खाये लेता हूँ । मुझे एक मामले में आपसे कुछ बहुत ज़रूरी बातें करनी थीं । मगर देखता हूँ, आप यह तक भूल रहे हैं कि आपको मेरे साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये । अवस्था में आप मेरे बाबा के समान हैं । फिर भी—”

बीच में बात काटकर लाला सॉवरे कहने लगे—“फिर भी तबियत मेरी आपसे कहीं ज़्यादा जवान है । और अगर आप मुझे माफ़ करें, तो मैं साफ़-ही-साफ़ यह कह देना चाहूँगा कि तबियत ही वह चीज़ है, जिससे आदमी आदमी है, इंसान इंसान है । मैंने आपसे जो कुछ भी कहा, सिर्फ़ इस खयाल से कि आप एक शरीफ़ घराने के लड़के हैं और शराफ़त का

ही यह तक्राजा है कि मैं आपकी कुछ खातिर करना चाहता हूँ।”

“बाज़ आया मैं ऐसी खातिरदारी से, जिसको स्वीकार करने में मेरे विचारों का खून होता हो। मुझे अगर पहले से यह मालूम हो जाता कि मैं जिस व्यक्ति से भेंट करने जा रहा हूँ, वह इतना सर्वभन्नी है, तो उसकी दिलचस्प ज़िन्दगी का ऐसा क़ीमती वक्त बरबाद करने की मैं कभी हिम्मत न करता ! अच्छा तो अब आशा चाहता हूँ।” “नमस्ते !”

हाथ जोड़कर नमस्ते करके ज्योंही मैं चलने लगा, त्योंही अकस्मात् परदे से निकलकर एक युवती ने तुरन्त अपना ‘नमस्ते’ पिस्तौल की गोली की तरह मेरे सीने पर दाग दिया।

यह युवती वही लाली थी। सिर से पैर तक उसे एकदम अभिन्न स्वच्छ वेशभूषा में पाकर चकित-विस्मित होकर मैं उसे देखता रह गया। यकायक मेरी समझ में न आया कि मैं उससे क्या कहूँ।

इतने में स्वयं लाली ने ही लाला सॉवरे की ओर देखकर कह दिया—  
“चाचाजी, भैया ने ही इनको उस काम से आपके पास भेजा था। लेकिन ये चल भी खड़े हुए और आपने यह तक न पूछा कि कहिये, किसलिए तकलीफ़ की।”

तब भृकुटियों में बल डालकर अत्यन्त आश्चर्य के साथ लालाजी बोले—“अच्छा तो कुँवर साहब ने मेरा मकान ख़रीदने के सिलसिले में यह तकलीफ़ की है। शुक्रिया ! बैठिए-बैठिए। तशरीफ़ रखिये !”

एकबार तो मन में आया कि अब भी मैं चला ही जाऊँ; परन्तु फिर लाली और इन लाला सॉवरे के सम्पर्क का भेद जानने की इच्छा कुछ ऐसी प्रबल हो उठी कि मुझे विवश होकर पुनः वहाँ बैठ ही जाना पड़ा।

मैं कह नहीं सकता, उस समय, वैसी परिस्थिति में, मेरा पुनः वहाँ बैठ जाना उचित था या नहीं। लेकिन मैं इतना स्वीकार करता हूँ कि जो बात कहकर लाली ने मुझे वहाँ बैठने को विवश कर दिया, वही बात लाली के स्थान पर यदि कोई अन्य व्यक्ति कहता, तो मैं वहाँ कदापि न बैठता।

इधर कई दिन से छोटी भाभी से भेंट हो नहीं रही है और बड़ी भाभी से जब कभी मिलना भी चाहता हूँ, तो पास-पड़ोस की किसी-न-किसी नारी के साथ ताश में लीन पाता हूँ। जब मैं खाने के वक़्त अन्दर रहता हूँ, तब वातावरण से ऐसा प्रतीत होता है कि छोटी भाभी अभी-अभी रसोई से गयी है और चुपचाप कहीं लेटी हुई थकान मिटा रही है। चाय वक़्त से हमेशा चँदिया ही दे जाती है। रात में सोने से थोड़ी देर पहले दूध देने के लिए अब चँदिया ही आने लगी है।

इस प्रकार जीवन में एक नवल रस-धारा की तरह जिस भाभी ने प्राण और स्फूर्ति डालने की चेष्टा बिना मेरे किसी आग्रह के, आरम्भ कर दी थी, आज ऐसा जान पड़ता है, मेरे लिए वह चिन्त्य बन-गयी है। रात के नौ बजे से बारह-एक बजे तक निरन्तर शयनागार की दीवाल, छत की कड़ियों और खिड़की के सीखचे देखता रहता हूँ; किन्तु कहीं किसी भी कोने से उनके आने का आभास नहीं मिलता। दीवारे मौन है, आकाश शून्य है, पवन के झकोरे तो भाभी के आभूषणों की मृदुल झकार तक पास नहीं फट्कने देते ! चुपचाप खाना खा आता हूँ। जानता हूँ कि यह खाना उन्हीं की कोमल-कोमल अगुलि-संचालन की देन है। किन्तु खाने में वह स्वाद ही अब नहीं है। वह मिटास, स्निग्धता और सलोनापन तिरोहित-सा हो गया है।

तब नाना प्रकार के विचार मस्तिष्क में आ-आकर गर्जन करने लगते हैं। कुछ सोचता हूँ, कुछ करता हूँ। प्यास लगने पर चाय और चाय की तलब पर पानी मोंग बैठता हूँ। रिक़्शे पर जा रहा था बाई के दास, लेकिन पहुँच गया बहादुरगंज !

तो इन वस्तुओं में रुचि के गुणों का अभाव हो गया है, या व्यक्ति के साथ, व्यक्तित्व की मिटास के साथ, ये पदार्थ भी मधुर और चेतन हो जाते हैं। और जहाँ व्यक्तित्व की झलक लुप्त हो जाती है, वहाँ इन पदार्थों के सारे गुण भी शुष्क, मूक, बधिर और जड़ हो जाते हैं : अजीब चक्र है।

इन्हीं दबावों का प्रभाव पड़ा है। नहीं तो जिस रामलाल को मैंने तिरस्कार के साथ कमरे से निकाला था, वही रामलाल मित्र-रूप में पुनः मेरे चाय-पान का साथी न बनता।

हूँ। तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि मैं स्वयं भी अपने जीवन, कुटुम्ब और समाज के अभावों से अपने आपको अलग रखकर चल नहीं सकता। तो इसका अर्थ यह हुआ कि यदि मेरा पुत्र मेरे देश की आत्मा—जनता—के साथ विश्वासघात करेगा, तो भी मैं पत्नी के दबाव में आकर उसके साथ पुत्र का सम्बन्ध बनाये रखूँगा। उसके कार्य-कलाप के समर्थन में, अपने विश्वास, अन्तःकरण और विचार के विरुद्ध असत्य भाषण करूँगा। फ़ोन-पर-फ़ोन खटकेंगे और सत्ताधारियों से मिल-मिलाकर मैं इसके समाचार तक को सदा के लिए समाप्त कर दूँगा। फिर भी मैं खादी पहनकर, पूर्व-वत् देशभक्त बना रहूँगा। अवसर आने पर मैं छाती ठोककर कहूँगा कि मैं भगवान की इस अनोखी सृष्टि पर पूरा विश्वास करता हूँ। मैं पक्का आस्तिक हूँ। मैं घोर सनातन धर्मावलम्बी हूँ। मैं महात्मा गांधी के चरण चिह्नों पर चलनेवाला सत्याग्रही हूँ। मैं जनता का सच्चा सेवक हूँ। इसलिए जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करने के लिए आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि आप मुझे संसद में अवश्य जाने का अवसर देंगे।

हा-हा-हा-हा !

मैं कितना सफल व्यक्ति हूँ ! अगर मेरा जीवन-चरित लोग नहीं लिखते तो हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का उद्धार हो चुका !

इन्ही विचारों में करवटें बदल रहा था। ज़ीने की जिस सीढ़ी से आग-न्तुक की प्रथम झलक दृष्टिगत होती है, वहाँ एक मानवी छाया-सी प्रतीत-हुई। टार्च सिरहाने रखा था। तुरन्त उठाकर जो स्विच ऑन किया, उठकर उधर थोड़ा आगे बढ़कर देखा, तो क्या देखता हूँ कि भाभी खड़ी हैं। सिर दीवार से लगा है। ओखें प्रशं की ओर झुकी हुई टप-टप आँसू गिरा रही है !

मन मे आया कि भाभी के चरणों पर गिरकर हाथ जोड़कर क्षमा माँग

लूँ। लेकिन ऐसा न करके मैंने भी उन्हीं आँसुओं में अपना आदर्श कण्ठ और अस्थिर स्वर मिलाकर कह दिया—“एक साधारण-सी बात पर इतना रोओ नहीं भाभी, अभी हमे अपने आप पर, अपने धृष्टि, स्वार्थी और नीच समाज की काली करतूतों के नाम पर बहुत रोना बाक़ी है! देश की पावन आशाओं को कुचल-कुचलकर स्वार्थ-साधन करनेवाले सफेदपोश धूर्तों के संगठित रावण-राज्य का बहुत कुछ प्रसाद अभी हमें चखना बाक़ी है।

भाभी तब आगे बढ़कर चुन्चार मेरे पलंग से लगी कुर्सी पर आकर बैठ गयी। लूण भर तक जब दोनों में से कोई नहीं बोला, तब मैंने कह दिया—“कई दिन से तुमसे भेंट नहीं हुई, इस कारण कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।”

उन्होंने कहा—“सब कहने की बातें हैं। कल मैं चली जाऊँगी, तब जैसा लगेगा, अगर वैसा ही चार दिन पहले से लगना शुरू हो गया, तो इसमें क्या अनुचित हुआ?”

“अनुचित-उचित का विचार तो बाद को होगा। पर क्या सचमुच कल जा रही हो!” मैंने पूछा।

“हाँ, अब मेरा चला जाना ही ठीक है। जब जाना निश्चित है, तब उसमें देर-दार या टाल-मटोल करना उचित नहीं है,” वे बोली।

मुझे कहना पड़ा—“जाना निश्चित है या नहीं, यह तै करने की क्षमता मुझे तो भगवान ने दी नहीं। दी होती, तो कुछ कहने का प्रयत्न भी करता।”

“भगवान ने जो दिया है, उसको सीमा जिसने निर्धारित की है, वह भी क्या हृदय पर हाथ रखकर यह कह सकता है कि यही भगवान की देन का अन्त हो गया है? व्यक्ति को समाज से एकबार जो कुछ मिलता है, क्या फिर उसके आगे उसे कुछ भी मिलना शेष नहीं रह जाता? इसके सिवा यहाँ यह प्रश्न भी तो उठ सकता है कि कहने के सम्भावित प्रयत्न की ध्वनिमात्र प्रकट करके छुट्टी पा लेने में भगवान की देन का

अधिक हाथ है या व्यक्ति की क्षमता का ?”

कथन के प्रारम्भ में जो गम्भीरता थी, अन्त में कुछ शिथिल-सी होकर व्यङ्ग बनकर जब कुछ परमात्मीय हो पड़ी, तो मैंने कह दिया—“क्षमता मेरी कुछ भी नहीं है। फिर भी अगर तुम कल चली जाओगी, तो मुझे दुःख होगा।”

कई दिन से पनडब्बा मेरे पल्लव के नीचे पड़ा था। चँदिया नित्य पानों को अपने बीच रखनेवाले कपड़े—पनबसने—को गीला करके पान बनाकर दे देती थी। चूना-कत्था भी सूखने न पाये, इसलिए उसमें दो-चार बूँद गुलाबजल के छोड़ जाती थी। दृष्टि पड़ते ही उसे उठाकर फिर चाय वाली टेबिल पर खोलखालकर पान बनाती हुई वे बोली—“एक तो अब मेरे लिए यह मानना ज़रा कठिन है कि तुम्हारा यह दुःख यथार्थ है। क्योंकि इधर कई दिन हो गये, तुमने तो कभी मुझसे मिलने की कोशिश की नहीं। आज मैं ही स्वयं बेशरमी लादकर चली आयी हूँ। और मान भी लूँ कि दुःख होगा तो इस दुःख से निवृत्ति पाने का उपाय ही क्या है ? इसके अतिरिक्त जब कभी भी मैं जाऊँगी, तब कौन कह सकता है कि उसका दुःख इससे कम ही होगा। यह भी तो हो सकता है कि अधिक हो।” और साथ ही पान उन्होंने मुझे दे दिये। फिर उत्तर का अवसर न देकर चल खड़ी हुई।

पान लेकर मैं कुछ विचार में पड़ गया। इन कई दिनों के अन्दर जो मनोमंथन मेरे हृदय में चलता रहा है, आज भी उसके प्रभाव से निर्लिप्त हो नहीं पाया था। जीने की उस सीढ़ी पर, जहाँ आगन्तुक की मुद्रा पहले पहल झलकती है, कल भी इसी तरह की एक छाया मेरी दृष्टि में आकर यकायक ओझल हो गयी थी। अतः भाभी के निकट जाने लायक मेरे मन की स्थिति ही नहीं थी, जाता कैसे उनके पास ? आवेश में आकर एकबार जो कुछ कह डाला था, सत्य और सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण, उसके परे कुछ सोच नहीं सकता था। फिर स्वयं मुझे भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि मेरे कथन की बात उनके लिए इतनी कटु और कठोर

बन जायगी कि वे किसी प्रकार स्वयं मेरे निकट आना भी स्वीकार नहीं करेगी। नहीं तो उसी बात को ऐसे ढङ्ग से कहता कि उन्हें ज़रा भी बुरा न लगता !

एक पद-ध्वनि-सी हो रही है। जान पड़ा, कोई इधर ही आ रहा है। माँ नहीं हो सकती, क्योंकि वे सीढ़ी चढ़ने में प्रायः थक जाती हैं।... बड़ी भाभी इधर आना जैसे जानती ही नहीं।... छोटी भाभी भी नहीं हो सकती। अरे, यह तो चँदिया है ! तब मैने पूछ दिया—“क्यों री, रामलाल आज-कल में आया या नहीं ?”

चँदिया बोली—“नहीं आये। वैसे चाहे आते भी, पर रानीजी ने ऐसा डाँट दिया है कि अब शायद ही आयें।”

“किस बात पर डाँटा था उन्होंने ?” मैने पूछा।

वह बोली—“यह तो मैं नहीं जानती सरकार। काम करती हुई मेरे कानों में इतनी ही आवाज़ आई थी कि रानीजी कह रही है, “आप यह जो अकसर रान को बारह-एक बजे दरवाज़ा खटखटाया करते हैं, यह आप का दोष नहीं, इस पिस्तौल का दोष है, जिसे कमर पर लटकाये आप इधर-उधर घूमा करते हैं।”

कमरे के आगे खुली छत है। तब उसी पर आकर मैं चुपचाप इधर-से-उधर चक्कर लगाने लगा। किसके मन में चोर है, मेरे या उनके ? दोनों के मन में है, तो प्रबल कौन है ? आज फिर पहले इसी को तै कर लेना चाहता हूँ। विचार करके एकबार यह स्थिर कर लेना चाहता हूँ कि परिस्थिति की इस गोपन लीला का आधार क्या है ?

दूसरों के अपराधों पर विचार करना बड़ा सरल है; किन्तु जब कोई ऐसी घटना हो, जिसका सम्बन्ध अपने जीवन और उसकी कर्मधारा से हो, तब मनुष्य अपने को कैसे निस्तग रखे ! क्या मेरा अन्तःकरण इतना उजला है कि मैं मस्तक उन्नत करके चल सकूँ ? भाभी के मन को छलने, मोहने, अपनी ओर खींचने और अपने अस्तित्व के स्तर-स्तर से उसे सर्वथा विजड़ित, अनुप्राणित और संलग्न बनाने की क्या मैंने कोई

चेष्टा नहीं की ? उनके निश्छल प्रीति-सम्पादन को मुक्त, स्वच्छन्द लालसा समझने की भूल करते-करते अपना ही सम्मोहन क्या मैंने उन पर आरोपित नहीं किया ? क्या मैंने स्वप्न को यथार्थ समझने की भूल नहीं की ? और आज उस यथार्थ के अकल्पित अप्रत्याशित अव्यक्त रूप को भी अपने स्वप्न के साथ सम्बद्ध देखने की भूल क्या मैं नहीं कर रहा हूँ ?

मैं अपराधी की खोज में निकला था; सो मुझे और तो कोई अपराधी नहीं देख पड़ा, केवल अपने को ही मैं अपराधी पा रहा हूँ । इन्हीं विचारों के साथ मैंने नीचे मों के पास जाने का निश्चय कर लिया । और टॉर्च के प्रकाश में ज्योंही मैं ज़ीने से नीचे उतरने लगा, त्योंही यह देखकर अवाक् रह गया कि ताक़ मे एक दूध भरा गिलास कटोरी से ढका रक्खा है !

मैंने गिलास पर से कटोरी उठाई, तो भाप के रूप में ठहरे हुए पानी की बूँदें टपकने लगीं और दूध के ऊपर की सतह पर जमी हुई मलाई की मोटी बादामी पर्त मानो स्वतः बोल उठी । गिलास को गरमाहट कुछ कम हो चली थी और अब यह स्पष्ट हो गया था भाभी उस समय यही दूध लेकर आयी थी । कर्म मे प्रीति और मन में उपालम्भ-मिश्रित द्वन्द्व रखने के कारण वे मुझसे बोली नहीं थीं । पर अगर मैं शीघ्र आकर इधर न देखता तो ? लेकिन यह भी तो सम्भव हो सकता है कि दूध रखते क्षण यह कह गयी हों कि गिलास में दूध ढका रक्खा है और आत्मगत होने के कारण मैंने दूध रख जानेवाली यह बात ही न सुन पायी हो !

सोचता हूँ अन्तर्द्वन्द्व में जकड़ी हुई असीम ममतामयी नारी का वह कैसी दयनीय स्थिति है ।

अब मैंने गिलास उठा लिया । कुर्सी ग्रहण कर, धीरे-धीरे मानो एक-एक घूँट अलग-अलग पीकर मैं कुछ आत्मगत-सा हो उठा । आकाश स्वच्छ था । अगणित तारे टिमटिमा रहे थे । तब यकायक मेरे मन में आया, मेरे अन्दर जो दुनियाँ है, क्या उसका आकाश भी इसी प्रकार स्वच्छ है ? इसमें जो यह फुल्ल-ज्योत्स्ना-पुलकित यामिनी है, क्या मेरे मन की दुनियाँ में भी उसका कोई अस्तित्व है ?



तब आप-ही-आप मन के अन्दर ही मानो किसी ने कह दिया—सब कुछ होने पर भी यह गगन शून्य है। लेकिन मेरा मन तो शून्य नहीं है। ये चन्द्र और तारे सुन्दर चाहे जितने प्रतीत हों, पर अपने प्रकृत गुणों के अतिरिक्त वे हमारे लिए कुछ कर नहीं सकते। कवियों ने चन्द्र को खिलौना मानकर शिशु के समान पकड़ने की कल्पना की है। पर यदि वह वास्तव में हमारे लिए प्राप्य हो, तो क्या हम उसका लाभ उठा सकेंगे ? आज भी वे जिस सीमा तक हमारे लिए आकर्षण की वस्तु बने हुए हैं, केवल इसलिए कि सब तरह से हमसे दूर और दुर्लभ हैं। और सुलभ भी हों तो उनका उपयोग क्या ? प्रकाश, शीतलता और चमक—सब मिलाकर एक सुहावनापन और सौन्दर्य। सो भी तब, जब वे हमसे दूर हैं। निकट आने पर यह सौन्दर्य भी नष्ट हो जायगा। क्योंकि सौन्दर्य उस दृष्टिकोण, साधन और प्रकार से जन्म लेता है, जो उस वस्तु में नहीं, हममें होता है।

तो ये चन्द्र और तारे ! इनका सौन्दर्य भी कल्पित है, जो इतने प्रत्यक्ष हैं !  
हाय रे मनुष्य, तू कितने भ्रम में रहता है !

...

...

...

यकायक ध्यान आ गया, भाभी इस समय क्या कर रही होंगी ? मैं तो यहाँ पलंगपर करवटे बदल रहा हूँ और वे ? लेकिन यह प्रश्न मेरे मन में उठता ही क्यों है ?

क्योंकि वे मुझे प्रिय लगती हैं। उनकी एक-एक बात, उनकी एक-एक मुद्रा, मुसकराना, हँसना, चलना, दौड़ना, छल करके खिलाना और छल प्रकट हो जाने पर खिलखिलाकर हँस पड़ना—सब कुछ एकदम से अच्छा-ही-अच्छा, मधुर-ही-मधुर क्यों लगता है ?

क्योंकि वे हमसे दूर है—दुर्लभ हैं। और यदि वे सर्वथा सुलभ, अपनी—सदा के लिए अपनी, किसी और की रंच भर भी नहीं—रहे, तो ?

तो किसके आगे मैं मत्था ऊँचा करके चल पाऊँगा ? समाज की

आँखें मुझे खा न जायेंगी ! समाज को क्यों दोष दूँ ? मेरी आँखें स्वयं मुझे न खा जायेंगी ! मैं स्वयं अपने आदर्श से कितना गिर जाऊँगा ! आदर्श के साथ ही तो मैं मैं हूँ, आदर्श के बिना मैं—मेरा अस्तित्व—जड़ है, निर्जीव ।

तो जिन कारणों से मैं भाभी को प्राप्त नहीं कर सकता, जो भय मुझे उनके पास नहीं ले जाता, जो आदर्श मुझे उनसे दूर रखता है, वास्तव में अधिक प्यारी वस्तु मेरे लिए वही है, भाभी नहीं ।

तो मनुष्य को आत्मानन्द की अपेक्षा आत्म-सम्मान अधिक प्यारा है ।

इस तरह धूम-फिरकर चित्त कुछ स्थिर हो पाया था; लेकिन नींद अब भी नहीं आ रही थी । तब यकायक ध्यान आ गया, अभी चार दिन पूर्व माधवी के ब्याह के दिन इस छत पर कितना कोलाहल था और आज कितना सूना-सूना लग रहा है । लेकिन नहीं, मनुष्य के प्रयत्न ने वातावरण को मुट्ठी में कस लिया है । और मैं तरंग में आकर चुपचाप ग्रामोफोन बजाने लगा ।

फिर दो-चार रिकार्ड्स बजाने के बाद कोई मन में बोल उठा—यह अन्याय है । यह तो भाभी को जलाने की रीति है । अगर वे सो रही हों तो ! सो भला क्या रही होंगी ! सम्भव है, शीतल निःश्वास ले रही हों । या हो सकता है कि करवट बदल रही हों । लेकिन क्या वे यहाँ आ नहीं सकती ? नहीं नहीं, अब वे न आयेगी । आने की सारी सम्भावनाओं को मैंने जान-बूझकर नष्ट जो कर दिया है । मैंने उनके आत्मदान का मज़ाक उड़ाया है—उनका अपमान किया है । जैसे उनका प्रीति-समर्पण मेरे अहंकार के सामने अत्यन्त नगण्य है, जैसे उनकी मोह-माया से मैं सर्वथा ऊपर हूँ ।

तब ग्रामोफोन चुपचाप उठाकर रख दिया । क्षण भर में धूम-धाम कर यही बात फिर मेरे मन पर जमने लगी कि तेरा यह अहंकार मिथ्या है !

किन्तु फिर तुरन्त कोई मेरे कानों में कहने लगा—यह सब तेरी भावुकता है । रात के दो बजे हैं और तू अपने मानस से खेल रहा है ! सिर में मीठा-मीठा दर्द है । आकाश शून्य है, रजनी मूक है, राजपथ

‘शान्त है, कर्म का जीवन भी निद्रामग्न है।—केवल तेरा यह अशान्त, उद्भ्रान्त, पापी मन !

...

..

...

अब बड़ी भाभी को इतना अवसर मिल जाना है कि मेरे पास दो-चार मिनट ठहर जायें। प्रकट रूप में उनके व्यक्तित्व में ऐसी कोई विशेषता नहीं है, जो मुझे प्रभावित करे—अथवा मेरे लिए किसी प्रकार विचारणीय भी हो—केवल एक बात को छोड़कर। वह यह कि वे सदा प्रसन्न रहती हैं और बात करते क्षण तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो मन्द-मन्द मुसकरा रही हों।

आज जब मैं सायंकाल आठ बजे धूम-धामकर लौटा, तो घर में प्रवेश करते ही क्या देखता हूँ कि बड़ी भाभी साटन की किसी नाप पर कतरनी चला रही है। इतने में मैं जो सामने पड़ गया, तो हँसती-हँसती बोली—  
“धूम आये लाला ?”

मैंने कह दिया—‘हाँ भाभी।’

“अच्छा एक बात पूछूँ, अगर तुमको फुरसत हो।” वे कहने लगी।

सुनकर मैं एकदम से आश्चर्य में पड़ गया—क्या कभी मैंने इनसे कहा है कि मुझे फुरसत नहीं मिलती, तुमने बात करने की भी ?

“तुम्हारे काम के लिए तो सदा फुरसत-ही-फुरसत है भाभी।” सहज-भाव से मैंने उत्तर दे दिया।

वे बोलीं—“बैठो। कुछ बात तुमसे करना चाहती हूँ; क्योंकि सुनती हूँ, घर की चिन्ता तुमको उतनी नहीं रहती, जितनी बाहर की।”

मैं बड़े सोच-विचार में पड़ गया। एक बार तो यह भी मन में आया, कहीं इनको मुझ पर कोई संदेह तो नहीं हो गया। पर फिर झट ध्यान आ गया कि हो-न-हो कोई गूढ़ बात है। तब स्पष्ट रूप से कहना ही पड़ा—  
“आप बात ही कहे न। भूमिका की तो ऐसी कोई ज़रूरत है नहीं।”

इस पर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—“बैठो, फिर पूरी बात सुन लो।”

संकेत पलंग पर बैठ जाने का था। इसलिए मुझे बैठना पड़ा। तब उन्होंने माँ और छोटी भाभी को भी पास बुला लिया। माँ दालान के अन्दर बैठी हुई रामायण-पाठ कर रही थी। वही से बोलीं—“तुम कहो न बहू। यही से जवाब देती जाऊँगी, जब मेरा मन आप ही कुछ कहने को हुलसेगा।”

उधर छोटी भाभी ने भी पुस्तक पर से ध्यान हटा अन्यमनस्क-सा होकर कहा—“भगर जीजी, उसमें विवाद की तो ऐसी कोई बात है नहीं। यह तो अपनी-अपनी तबियत की बात है।”

नाप की कटिंग पूरी कर कपड़े के टुकड़ों को सिलाई की मैशीन पर रखती-रखती वे बोलीं—“विवाद की बात अगर न हो, तो क्या उसे बतलाया भी न जाय, उसकी बात ही न उटायी जाय? फिर विवाद न भी सही, पर विचार करने की बात तो वह है ही।”

तब छोटी भाभी विवश हो गयी। पुस्तक का पन्ना उलटती हुई बोली—“जैसी तुम्हारी इच्छा !”

मैंने समझा, कोई ऐसा प्रसंग होगा, जिसे छोटी भाभी मुझसे छिपाना चाहती होंगी। इसलिए मैंने कह दिया—“अगर कोई विवाद की बात न हो और साथ ही उसे गोपनीय रखना हो, तो भी आपको भाभी के साथ न्याय ही करना चाहिए। तात्पर्य यह कि.....!”

तब ब्लाउज के ऊपर का बटन लगातीं और बात काटती हुई बड़ी भाभी बोलीं—“अरे कोई वैसी बात भी हो लाला ! पर इन रानीजू के स्वभाव को कोई क्या करे ! अपने गुण, प्रशंसा और बढ़पन की चर्चा सुनने तक से दूर भागती हैं। कहती हैं—“और बात करो जीजी !”

अब जाकर कही स्पष्ट हुआ कि बात का विषय कितना मेरे मन का है। परिणाम यह हुआ कि मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गयी। तब मैंने कह दिया—“तब तो मैं ज़रूर सुनूँगा। बल्कि पूर्ण विवरण के साथ सुनूँगा।”

बड़ी भाभी बोली—“ज़रा पान तो देना रानी।...हॉ, आज हमलोग

संगम पर स्नान करने गयी थी। तुम्हे मालूम ही है, वहाँ कँगलों की कितनी बड़ी सेना मिला करती है ! हम एक-एक पैसा भी देना शुरू करें, तो कई रुपये साफ़ हो जायें !”

मुझे इस कथन में केवल एक शब्द पर आपत्ति थी। और वह शब्द था 'सेना'। फिर भी मैंने अपनी आपत्ति व्यक्त नहीं की और कह दिया—“हाँ, स्थिति तो यही है। लेकिन फिर हुआ क्या ?” छोटी भाभी ने उठकर मुझे और बड़ी भाभी को पान दे दिये। बड़ी भाभी अब कुरसी पर आगयी। फिर उन्होंने बतलाया—“पैसे अब चुक गये, तो हमने भी हाथ खींच लिया। पर रानी के जी को संतोष नहीं हुआ। बाँध पर एक मैला-कुचैला नंग-धड़ग लड़का खड़ा रो रहा था। रानी उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। उसे पुचकारा और पूछा—“क्यों रोते हो बेटा ?”

“मौसी साथ में थी। उन्हे भी दया आ गयी। बोली—भूखा होगा बेचारा। हमने भी उससे पूछा—बतला रे, क्यों रोता है ? क्या तेरी माँ तुझसे छूट गयी है ? या तुझे भूख लगी है ?”

“तब सिसकियों भरते-भरते उसने बतलाया—“ऊँ-ऊँ - साँफ़ हो गयी और पैसे - पैसे ( मुट्ठी खोलकर दिखाता हुआ ) ये तीन ही मिले हैं। बाप मारेगा !”

अब यह स्पष्ट हो गया कि इसका बाप, इसकी भीख माँगने की कमाई खाता है। मैंने पूछा—“तुम्हारा बाप क्या करता है ?”

उसने जवाब दिया—“कोढ़ी है।”

सुनकर मेरा हृदय काँप उठा ! संसार में इतना दुःख है और हम यह समझे बैठे हैं कि हमारी तो चैन से कट रही है !

तुरन्त बड़ी भाभी बोली—“पर हमलोग करते क्या ? फुटकर पैसे तो ये नहीं। लाचार होकर उसकी बात को अनसुनीकर तंगि पर आ गये। बल्कि उस पर चढ़ती-चढ़ती हुई भी रानी कहने लगी—“अकारण बेचारे पर मार पड़ेगी।”

चाँगा अभी दस कदम भी न चल पाया था कि रानी बोली—“खड़ा

कर दो। नोट भुनाकर उस बच्चे को पैसे देने ही होंगे; नहीं तो मेरा यह सगम-स्नान मिथ्या हो जायगा ! मेरा यह दिन मिथ्या हो जायगा, मेरी रात, मेरी नीद, मेरी शान्ति, मेरा सर्वस्व मिथ्या हो जायगा ! जब उस बच्चे का बाप उसे मारेगा, तब । और इतना कहते-कहते रानी का कंठ भर आया । लाचार होकर ताँगा रोकना पड़ा और फिर बड़ी मुश्किल से जब नोट भुना, तब उसे आठ आने पैसे देने पर कही हमलोग चल पाये !... बस, बात कुल इतनी-सी है ।

सुनकर मैं स्तब्ध हो गया । मैंने भाभी की ओर देखा, तो क्या देखता हूँ, वे अब भी पुस्तक पर ध्यान लगाये हुए हैं । इतने में बड़ी भाभी बोली—“अब मेरा कहना सिर्फ यह है कि तुम्हारे इस आब मात्र के दान से क्या उस बच्चे पर पड़नेवाली मार बन्द हो जायगी ?”

प्रश्न मुझे बड़ा घिसा हुआ लगा । भाग्यवादियों का यह बड़ा पुराना नारा है कि हम कुछ नहीं करते । करनेवाला तो कोई और है ।

जो हो, बड़ी भाभी का इतना कहना था कि छोटी भाभी पुस्तक को एक ओर रखती हुई बोली—“अब तक तो मैं चुप थी जीजी, लेकिन अब मुझे कहना ही पड़ा कि हाँ बन्द हो जायगी । बिल्कुल उसी तरह, जैसे मेरी कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र तुम्हें माँ बना देगा । वह जब तुम्हें माँ कहकर पुकारेगा और रोयेगा, तब यह कहने को जैसे तुम्हारा मुँह बन्द हो जायगा कि इसने मेरे उदर में ऊधम नहीं मचाया, इसने मेरी गोद नहीं मरी, यह मेरे वक्ष का रस नहीं निकाल पाया—यह मेरा पुत्र कैसे हो सकता है ? और सुनोगी ? तो सुनो और बतलाओ कि यह कौन-सा तर्क है, जिनसे कभी हम जीवन भर का नाता नहीं निबाह सकते, अबसर आने पर उनसे घड़ी-दो-घड़ी या क्षण भर का नाता भी न निबाहें ! माना कि अपने इस क्षुद्र दान से मैं उस बच्चे पर पड़नेवाली मार—उसका रोना—सदा के लिए बन्द नहीं कर सकती; पर जिस क्षण मैंने उसे रोते पाया है, उतने क्षण की अपनी ममता का दान भी क्या मैं नहीं कर सकती ?

और हृदय-दान की क्रिया में आँसुओं के घट भर देना ही बहुत बड़ी मान-वता है—आँखों में छलछलाये दो आँसू कोई मूल्य नहीं रखते, मैं इसे मानने से कृतार्थ इनकार करती हूँ !”

इस पर बड़ी भाभी सन्न रह गयी। और माँ ने रामायण का बस्ता बन्द करते हुए उठकर तत्काल कह दिया—“बाह बहू ! क्या बात कह दी तुमने ! भगवान् करे युग-युग तक तुम्हारा सौभाग्य अचल-अटल बना रहे।”

सोचता हूँ, आज मेरे हृदय के बन्द कपाट खुले हैं। आज मैं समझ पाया हूँ कि भाभी क्या है ! आज मैंने यह अनुभव किया है कि उनके सम्बन्ध में मैंने जो-जो कल्पनाएँ की थीं, वे कितनी भ्रमात्मक और निर्मम थी ! अब उन्हें मेरे पास आने की ज़रूरत नहीं है। अब मैं स्वयं उनसे मिलने जाया करूँगा !

वातावरण बड़ा गम्भीर हो गया था। कोई किसी से कुछ कह ही नहीं रहा था। तब बड़ी भाभी बोली—“इस बात को इतनी दूर तक मैंने कभी सोचा न था। मैं तो अब तक यही समझती आयी हूँ कि सभी प्रकार का दुख-सुख केवल भाग्य से मिलता है। आदमी के करने से कुछ नहीं होता और आदमी किसी को कुछ दे भी नहीं सकता।”

“ऐसा समझने का तुम्हें पूरा अधिकार है जीजी,” कण्ठ-स्वर की तरल आर्द्रता के साथ छोटी भाभी कहने लगी—“पर मुझे भी यह समझने का उतना ही पूरा अधिकार है कि स्थायी सुख-सतोष की प्राप्ति का डंका पीट-पीट कर जो लोग प्रायः वर्तमान का पूरा उपयोग नहीं करते वरन् मिथ्या शंकाओं और सम्भावनाओं के जाल में पड़कर ग़लत क्रदम रख देने में ही बहुत बड़ी बुद्धिमानी समझ बैठते हैं, कौन कह सकता कि वे भविष्य में सदा कृतकार्य ही होते हैं ?”

“क्या मतलब ?” यकायक त्यौरियाँ बदलती हुई बड़ी भाभी बोली—“तुम कह क्या रही हो, यह मैं समझ नहीं पा रही हूँ।”

“मतलब ऐसा कोई गूढ़ तो है नहीं जीजी, जिसका भाष्य करने की ज़रूरत हो,” यकायक पुनः रुद्रगम्भीर होकर छोटी भाभी बोली—“कोई

का वह अनाथ असहाय बच्चा हमारे आज का—वर्तमान का—अवलम्बन पाये और भविष्य की इस आशा पर उसे रोता छोड़ दिया जाय कि जो सब को देता है, वही उसे भी देगा, मैं देनेवाला कौन हूँ ? तो मैं समझती हूँ कि संसार और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ लेने की इससे अधिक हीन और कायर भावना दूसरी हो नहीं सकती !

“रह गई बात यह कि आदमी क्या देगा किसी को, देनेवाला तो एक भगवान है। तब मैं कहूँगी भगवान भी जो कुछ देता है, उसका आधार होता आदमी ही है। भगवान की प्रेरणा जब आदमी के अन्तःकरण में ऊँचम मचाती है, तभी वह किसी को कुछ देने को तत्पर होता है। हमारे अन्दर धर्म की प्रेरणा में भगवान की ही ममता का स्वर तो होता है।”

हरी-हरी रेशम की लच्छी से खेलती हँसती-हँसती बड़ी भाभी बोलीं—

“और यह भी तो हो सकता है कि भगवान की ही प्रेरणा से आदमी भूखा रह जाता हो।”

“बुरा न मानियेगा जीजी, मेरे भगवान ऐसे पत्थर के नहीं बने, जो मनुष्य को पहले तो सहर्ष जन्म दें और फिर उसे दो टुकड़ा रोटी के लिए तरसा-तरसा कर मार डाले ! ऐसे भगवान की कल्पना आप ही कर सकती हैं।”

“चलो, इस बातचीत में और जो कुछ हुआ सो हुआ। यह बहुत अच्छा हुआ जो आज तुम्हारे मुख से मुझे अपने लिए हीन और कायर जैसे सुन्दर विशेषण तो सुनने को मिल गये !” और उपाय न देख बड़ी भाभी बोल उठीं। और मैं इस भय तथा आशका में पड़ गया कि ऐसे समय कहीं कोई विग्रह न उठ खड़ा हो। पर तब तक छोटी भाभी अत्यन्त मर्माहत वाणी में बोल उठी—“जीजी, मैंने तुम्हें अपशब्द नहीं कहे, मैंने व्यक्तिगत रूप से तुम्हारा अपमान नहीं किया। मैं क्षमा चाहती हूँ, मैं क्षमा...!”

और वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि छोटी भाभी कुर्सी पर ही पहले सिरहाने की ओर लुढ़की और फिर मूर्छित हो गयी !



प्रातःकाल जब जल्दी उठ न सका, तो मों ने ही यह कहते हुए बताया कि राजेन राजेन, उठ तो सही, तेरी भाभी आज जा रही हैं।

तब मैंने देखा एक नवीन सूर्योदय, धुली-धुलीसी स्वच्छ किरणें, शीतल पवन, शीतल भूमि, श्वेत प्रात और शुक्लवसना वीथिका। फिर कल्पना के पट पर आ पहुँचा, चारों ओर ललनाओं का प्रीति-मुखरित विदा-दान। फिर मैंने देखा उसमें हृदय का समस्त रस, सख्य भावों का निखिल आत्मसंवेदन, वर्तमान और भविष्य की सम्भावनाओं का लोल कल्पना-मंदिर। किन्तु फिर जो अपने आप को देखता हूँ, तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे हृदय बैठा जा रहा है !

अब रह-रहकर यही विचार मेरे मन में एक प्रश्न बनकर आ खड़ा होता था कि भाभी जब चली जायँगी तब ? तब दिन कैसे कटेंगे, यह घर मुझे कैसा प्रतीत होगा। माना कि इधर कई दिनों से मतभेद की एक लकीर ने हम दोनों को अलग-अलग कर दिया है। फिर भी मैं चाहूँ तो बात-की-बात में इस लकीर को साफ़ कर सकता हूँ।

पर यहाँ अपने अतीत का वह चित्र उतारने के लिए एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक हो गया है। आज की परिस्थिति भिन्न है। आज तो मैं प्रायः यही समझ लेता हूँ कि जो कुछ भी समझ है और हो रहा है, वही होनेवाला भी था। मैं इसको रोक नहीं सकता था—बदल नहीं सकता था। पर उस समय मेरे विचार भिन्न थे। उस समय जगत् की प्रत्येक स्थिति और घटना में मैं व्यक्ति किंवा व्यक्तित्व विशेष की रुचि, यत्न और पुरुषार्थ का एक निश्चित प्रयोग देखता था। कदाचित् इसलिए कि उस समय अवांछनीय और प्रतिकूल घटनाओं का सामना होते-होते उनसे लड़े बिना मुझे संतोष ही न होता था !

कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जितनी बड़ी अवांछनीय घटना

हुई है, उसकी प्रतिक्रिया में प्रतिशोध उसका उतना ही कठोर और भयानक हुआ है। हो सकता है कि मेरे लिए भगवान की यह एक विशेष देन रही हो कि अभिमानी का दम्भ चूर-चूर किये बिना मैं कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ ! माना कि भाभी का जाना निश्चित है; किन्तु जिस कार्यक्रम में मेरी स्वीकृति का भाग नहीं, मेरी रज़ामन्दी शामिल नहीं, उसके हृदय-बेधक आयोजन को मैं कैसे स्वीकार करता !

उस समय जब माँ ने सूचना दी कि तेरी भाभी आज जा रही हैं, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे कह रही हों—“अरे उठ तो राजेन ! देख, उधर आग लग गयी !”

माँ जब चली गयी, तो मैं छत की मुँडेर पर आकर खड़ा हो गया। क्या करूँ, क्या न करूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा था ! फिर अन्य-मनस्क-सा टहलता-टहलता एक ऐसी जगह जा पहुँचा, जहाँ एक चिड़िया अपनी बच्ची की चोंच में दाना डाल रही थी ! पर दाना डालने की क्रिया के क्षण मादा अपने शिशु को चोंच के द्वारा काफ़ी झकझोर देती थी। मन में आया कि यह भी तो हो सकता है कि शिशु ही माँ की चोंच से दाना निकालने में खीचातानी करता हो। तात्पर्य यह कि साधारण से भोग के लिए एक नादान शिशु को भी खींचातानी करनी पड़ती है। तब जिसका भोग प्रेम है, उसे क्या नहीं करना पड़ेगा ! वह प्रेम—जिसका कोई रूप नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं। जो केवल मनोभावों के आदान-प्रदान से जन्म लेता है। सो भी केवल इच्छाशक्ति के एकान्त नीड़ में। कोई उसे देख नहीं सकता। तब धीरे-धीरे चहलकदमी करता हुआ चुपचाप दीवाल की घड़ी को संशोधनात्मक दृष्टि से देखा और भाभी के पास जा पहुँचा। उस समय भाभी नहाकर आयी थी और नवीन वस्त्र धारणकर स्नानानगर से बाहर निकली ही थीं ! अतः ऐसे अवसर पर मुझे उपस्थित देख अकस्मात् मुसकरा उठी।

तब मेरे मन में आया—विच्छेद की उस क्रूर बेला के पूर्व मिलन का यह पावन संयोग मधुर होते हुए भी तीखा कितना है ! मेरी मनोदशा पर

क्या वह एक तीव्र व्यंग्य नहीं है ! सम्भव था कि भाभी कुछ कहती भी पर मैंने तत्काल पूछ दिया — “बहुत जल्दी है क्या ? गाड़ी तो आठ बजकर पचीस पर जानी है और अभी तो साढ़े सात ही बजा है ।”

वे बोली—“घड़ी देख-देखकर ट्रेन पकड़नेवालों की ही गाड़ियाँ अधिक छूटती है । मैं चाहती हूँ, इस बात के सच्चे सिद्ध होने का उदाहरण कम-से-कम मेरे सम्बन्ध से तो उपस्थित न हो !”

उत्तर की शैली से मैं इतना प्रभावित हो गया कि प्रत्युत्तर की शक्ति ही जैसे, मेरी वाणी पर आते-आते, क्षीण हो गयी । केवल इतना कहकर नित्यक्रिया में लग गया कि अच्छा मैं अभी तैयार होता हूँ ।

नल के नीचे बैठा नहाता हुआ सोचता रहा कि उस दिन भाभी को नाराज़ न कर दिया होता तो वे आज कदापि न जाती ! पर उनकी इस विदा का कारण क्या एकमात्र मैं हूँ ! इसका उत्तरदायित्व स्वयं उनपर भी तो कम नहीं है । फिर भी हृदय यही कहने लगता था कि तुमने भाभी को समझने की चेष्टा ही क्या की ? अभी कल की बातें सुनकर तुमने क्या यह तै नहीं किया था कि अब भाभी के पास मैं स्वयं जाया करूँगा । काश यही बात तुम पहले सोचते !

नौकरों से निरन्तर काम लेते-लेते मेरी आदत खराब हो चुकी थी । काम में ज़रा भी देर-दार हुई कि मत्था गरम हो उठता था । सुखराम को इसलिए भेजा था कि बढ़िया से दो ताँगे ले आये । पर वह कम्बख्त ताँगों के बजाय ले आया इक्के । और मेरे पास आकर बोला—“सरकार, ताँगे तो अड्डे पर मिले नहीं ।”

सुनते ही मेरे मुँह से निकल गया—“तो और आगे उस हिक्टोरेड के चौराहे पर मरने क्यों नहीं चला गया हरामखोर !”

गाली खाकर सुखराम लौट गया । तब इक्केवाला बोल उठा—  
“सरकार गुस्ताखी माफ़ हो तो कुछ अर्ज़ करूँ ।”

मैंने कहा—“मियाँ, अर्ज़ करने के लिए इस दुनियाँ से ऊपर,

महज एक अज्ञामियों का दरबार है। आदमी होकर किसी को दूसरे आदमी से अर्ज करना पड़े, यह उसकी आदमियत पर सबसे बड़ा धब्बा है। रह गयी मेरी बात, सो मेरा बस चले तो मैं तुम्हारा यह इक्का बिकवाये बिना पानी भी न पियूँ। चाहे मुझे अग्ने पास से रुपया निकालकर तुमको ताँगा ही क्यों न ख़रीद देना पड़े। समझ में आया कि नहीं ?”

पर मियाँ एक छुटे हुए निकले। इक्का बाहर ले जाने के लिये घोड़े की लगाम खींचकर उसे आगे बढ़ाते हुए बोले—“खुदा हुजूर को बरकत दे। मगर ये तो अपनी-अपनी पसन्द की बात है। वरना बहुतेरे रईसों को मैंने यह कहते हुए सुना है कि इक्का इक्का है—ताँगा भला उसको क्या पायेगा !”

सुखराम ताँगा लाने के लिए दुबारा जा ही चुका था। उसको खरी-खोटी सुनाने में जो मानसिक कष्ट मुझे हुआ, उसका प्रभाव अब तक मन से नहीं गया था कि इस इक्केवाले मियाँ ने अपनी कूटनीति भरी मीठी वाणी से उसे बात-की-बात में उड़ा दिया ! तबियत हरी हो गयी। मन में आया—चलो, आज का दिन ज़रा चुहल में तो कटेगा ! किसी गणितज्ञ से कहा जाय—महाशय, ‘सोलह दूनी आठ’ तो ज़रा सिद्ध कीजिए। तो वे मुँह ताकने लगेंगे। लेकिन इस दुनियाँ का व्यवहार-शास्त्र हमको नित्य यही सिखलाया करता है। दूर क्यों जाऊँ, उदाहरण सामने है।

सुखराम इस बार साइकिल पर गया था। दस ही मिनट में वह दो ताँगे ले आया। चँदिया और उसने मिलकर दोनों भाभियों का सामान लदवाया। माँ ने अवरुद्ध करण, भीगे पलकों तथा नानाप्रकार की समतामयी मांगलिक कामनाओं के साथ दोनों भाभियों को विदा किया। एक ताँगे पर बड़ी भाभी और उनका वृद्ध नौकर हरियो बैठा, दूसरे पर छोटी भाभी और मैं। बड़े उत्साह के साथ हमारे ताँगे का घोड़ा अभी बड़ा ही था कि सड़क पर पड़े हुए कुत्ते ने कान फटफटाना शुरू कर दिया। लेकिन मैंने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

उस समय मेरा हृदय धड़क रहा था। यद्यपि जान-बूझकर मुसकराता हुआ मैं सोच रहा था—ऐसे समय लोग प्रायः इतने उदास हो जाते हैं कि मुखाकृतियों से जान पड़ता है, मानो किसी की अन्त्येष्टि क्रिया करके लौट रहे हों।

फिर सोचा, ठीक तो है। विदा एक प्रकार से मिलन-संयोग की अन्त्येष्टि क्रिया ही तो हुआ करती है! अस्तु, मनोभावों से मैंने किसी प्रकार यह व्यक्त होने नहीं दिया कि भाभी का गमन मुझे किसी प्रकार खल भी रहा है।

हम अभी हिवेटरोड पार भी न कर पाये थे कि भाभी ने दो बीड़े पान देते-देते मुसकराते हुए पूछा—“गाड़ी मिल जायगी न?”

प्रश्न सुनकर मैं विचार में पड़ गया। मुझमें जो प्रसन्नता का भाव था, वह तो जान-बूझकर आमंत्रित किया हुआ था। किन्तु ये भाभी विच्छेद के क्षण जो परम आह्लाद व्यक्त कर रही हैं क्या वह भी एक आडम्बर है? क्या उनका यह अभिनव-रूप भी आमंत्रित है? क्या वे भी सोच बैठी है कि ऐसे क्षण किसी का भी उदास होना दूसरों के लिए दुःखद होता है? तो क्या मुझे प्रसन्न रखने के लिए ही वे रत्नाकर की-सी हिलोर-पर हिलोर ले रही हैं?

तब मैं सोचने लगा, कह दूँ—“जहाँ तुम, वहाँ मैं। अपनी ओर से तो जल्दी पहुँचाने में कोई कोर-कसर मैंने की नहीं। फिर भी अगर गाड़ी न मिले, तो मैं क्या करूँ! मेरा उसमें दोष ही क्या?”

किन्तु हो सकता था कि इस उत्तर से वे कुछ-का-कुछ समझ लेतीं। इसलिए मैंने घड़ी दिखलाते हुए कह दिया—“टाइम के हिसाब से तो हमलोगों के स्टेशन पहुँच जाने के बाद कही गाड़ी आयेगी।”

तब वे चुप रह गयीं। थोड़ी ही देर में ये चली जायँगी—मेरी आँखों से दूर, मेरी सम्भावनाओं से परे। इसलिये उन घड़ियों का मौन मुझे असह्य हो रहा था

तब मैंने पूछा—“रामलाल इधर फिर नहीं देख पड़ा। पता नहीं आजकल यहाँ है भी या नहीं।”

भाभी बोली—“परसों-नरसों तो आया था। तुमसे भी मिलने-गया था।”

“तो शायद तुमसे नहीं मिला।”

“मिला तो था, लेकिन मुझसे बोलने का साहस उसे नहीं हुआ।”

“क्यों ?”

“क्योंकि एक दिन वह मुझे कुछ रुपये—शायद दो हजार थे—रखने के लिये दे रहा था। मैंने कह दिया—जब आप पैदा करते हैं तो सीधे बैंक में ही क्यों नहीं जमा करते ! जब वह इस बात का कोई उत्तर न दे सका तो मुझे कहना पड़ा—मेरा क्या, मैं तो दो-एक दिन में चली जाऊँगी। जमा ही करना है, तो मौसी के पास जमा कर दीजिये।”

अब मुझे खयाल आया, उस दिन गौरीशंकर ने उसका जो परिचय दिया था वह बिल्कुल सच था। रास्ते में स्टेशन आती हुई एक खुली कार मिली, जिसमें चार आदमी बन्दूक खड़ी किये हुए बैठे थे। उनके बीच में एक ऐसी नारी बैठी थी, जिसे मैंने स्क्रीन पर किसी चित्र में देखा था। यद्यपि नाम उसका मुझे याद नहीं आ रहा था।

परन्तु उसे इस दशा में देखकर मुझे एक शंका—सी हो उठी। क्यों, आखिर क्यों उसको इतनी रक्षा की आवश्यकता पड़ गयी !—क्या वह किसी विशेष व्यक्ति के यहाँ ले जायी जा रही है ? या उनका मूल्यांकन करने के लिए न्यायालय को समय देना पड़ा है ! जैसे क्षण-भर में मैं सारी बातें सोच गया।

फिर तुरन्त मैंने इस विदा के प्रसंग को लेकर कहा—“अब तो तुम जा ही रही हो ! एक गाड़ी छूट भी जाय, तो दूसरी मिलेगी। गाड़ियाँ ठहरी, आती-जाती बनी ही रहती है। लेकिन पता नहीं अब कब मिलना हो !”

भाभी इस पर कुछ नहीं बोली। किन्तु मैंने देखा, उन पर मेरे इशारे

कथन का प्रभाव उचित ही पड़ा है। फिर तो हृदय की अनन्तधाराओं से जो उगलम्भ, व्यंग्य, कटुक्ति और विनोद प्रस्फुटित होता है, उसके द्वार ही मानो खुल गये। मेरा नहीं, जैसे अम्ना समाधान करती वे बोली—“अब मेरा जाना ही उचित था।”

मैंने पूछ दिया—“क्यों ?”

तो मुसकराती हुई वे कहने लगी—“मैं तुमको तंग बहुत करती थी।”

भाभी कहने को तो कह गयीं यह बात; किन्तु मुझे ऐसा लगा जैसे उनके नयनों का कण्ठ भर आया है ! प्राणों में कम्पन है, वाणी में दोलन, हृदय में व्यथा है, शब्दों में उगलम्भ और वह व्यंग्य, जिसकी पृष्ठ भूमि द्वेष का दाह नहीं, प्यार की आह होती है।

एकबार सोचा, हार स्वीकार कर लूँ। क्योंकि सदा ही प्रेम की हार को मैं जीत मानता आया हूँ। किन्तु फिर जैसे किसी ने मेरे कान ऐंठ दिये। कहा—प्रेम की जीत ही वास्तविक जीत है। एक तो हार, सो भी प्रेम की ! छिः !!

लेकिन लाख बार कोई मेरे कान ऐंठ ले, असत्य के आगे मैं कैसे सिर झुका सकता हूँ ! अतएव आप-ही आप मेरे मुँह से निकल गया—“मैं इधर बातूनी भी तो बहुत हो गया था ! मुझसे बात करने की वह तवियत ही अब तुम्हारी कहाँ रह गयी थी !”

इस पर वे बोली —“जाने दो इन बातों को। सब भूल जाओ। मैं भी भूल जाऊँगी। समाज, सम्यता और पति किसी के भी आगे... ! नहीं-नहीं, मैं कुछ नहीं हूँ ! तुम भी कुछ नहीं हो ! व्यक्ति अकेला कुछ नहीं है। यह सारी ज़िन्दगी एक मज़ाक है। समझ लेना, हमलोग मिले ही नहीं—हमारा एक-दूसरे से परिचय ही नहीं हुआ। हमलोग उस कागज़ के पन्ने हैं जिन पर कभी कुछ लिखा ही नहीं गया !” और इस कथन के साथ ही वे दूसरी ओर देखने लगीं।

इतने में स्टेशन आ गया। कई कुली एक साथ दौड़ पड़े। एक से मैने पूछा—“कानपुर जानेवाली गाड़ी आने की खबर हो गयी?”

अपने एक साथी की ओर मुँह करके कुली ने ज़रा टिलाई से उत्तर दिया—“लो, और सुनो। घड़ी रखते हुए बाबू साहब की गाड़ी चूक गयी!” फिर थोड़ा मेरी ओर देखता हुआ बोला—“अब तक तो वह बमरौली पहुँची होगी।”

तब अत्यन्त आश्चर्य का भाव प्रदर्शित करते हुए मैंने प्रश्न किया—“लेकिन अभी तो आठ ही बजा है और गाड़ी छूटती है आठ—बीस पर।

“आठ नहीं, साढ़े आठ बज गये बाबू साहब। देखिए, कहीं आपकी घड़ी बन्द तो नहीं हो गयी।”

और सचमुच मैंने जो घड़ी की ओर ध्यान से देखा, तो शर्म के मारे नज़र न उठा सका। विवश होकर मुझे कहना ही पड़ा—“सचमुच बड़ा धोखा हो गया! चामी भरना मैं बिल्कुल भूल गया!”

मैं डर रहा था कि कहीं भाभी कोई जली-कटी न सुना दें। पर वे मुसकराती हुई बोलीं—“तुम्हारी भली चलाई। ब्याह के अवसर पर कहीं कलेवा करना न भूल जाना!”

इतने में बड़ी भाभी दूसरे तोंगे पर से उतरकर मेरे पास आ गयीं। तब मैं भी झट से उतरकर उन्हीं के पास जा खड़ा हुआ। अपनी उन महा महिमामयी छोटी भाभी के पास खड़ा होने का साहस ही अब मुझ में नहीं रह गया था।

इसी क्षण बड़ी भाभी बोल उठीं—अब सोचते क्या हो, लौट चलो घर। यों भी आज मौसी हमलोगों को विदा नहीं करना चाहती थीं। लेकिन इनकी ज़िद के आगे मैं क्या कहती! तब विवश होकर हमलोग पुनः उन्ही तोंगों पर लौट आये।

लेकिन इस बार छोटी भाभी के साथ न बैठकर मुझे बैना पड़ा इन्हीं बड़ी भाभी के साथ!



रास्ते भर बड़ी भाभी सामाजिक और कौटुम्बिक बातें करती रहीं। चौदी की डब्बी से सुरती के दो दाने मुँह में डालती हुई वे बोली—  
“उस नीलम-परी को तो तुम जानते होगे ? अरे वही मिश्राजी की दूसरी लड़की, जो हमेशा नीली साड़ी में रहा करती है।”

“देखा तो है, पर बातें नहीं हुई।”

“तो तुम भी लड़की हुए होते, तो ज़्यादा अच्छा होता ! जो लड़के रूप का अभिमान रखनेवाली लड़कियों से झंपते या विरक्ति रखते हैं, वे हम नारियों की भाँति ही बुढ़े जल्दी होते हैं ! अच्छा, उस मोरपंखी का विवाह हुआ या नहीं ?”

“मोरपंखी ! मोरपंखी कौन ?”

“भई बाह ? तुम उस मनोरमा को भी नहीं जानते, जो नाचने-गाने के लिए बुरी तरह मशहूर है ?”

“जानता तो हूँ। पर आजकल वह मुझसे कुछ नाराज़ रहा करती है।”

“क्यों ? मौके-बे-मौके छेड़छाड़ तो तुम कर नहीं सकते। फिर ऐसी कौन-सी बात हुई जो - !”

“एकबार मुझसे एक ऐसे सवाल का जवाब पूछने आयी थी जिसे प्रोफेसर गुप्ता भी टाल गये थे। पर मुझे इस विषय में उस समय कुछ मालूम था नहीं। संयोग की बात कि मेरे मुँह से निकल गया—“बेहतर होगा कि आप प्रोफेसर गुप्ता से ही पूछ ले ! वस उसी दिन से आप मुझ पर दुनली बन्दूक की तरह मेहरबानी रखने लगी।”

“तुमसे जवाब नहीं देते बना। यह क्यों नहीं कह दिया कि इस विषय में प्रोफेसर गुप्ता की डायरी का पेज ६६ देखना काफी होगा !”

मुझे कहना पड़ा—“बुरा न मानना भाभी, मुझे तुम्हारा यह उत्तर पसन्द नहीं आया।”

ग्रीवा पर झलकते श्रम किंदुओं को रूमाल से पोंछती हुई वे बोली—  
“क्यों ?”

“क्योंकि तुमने एक अत्यन्त कोमल और गोपनीय वस्तु का आवरण चीर डालने की राय दे डाली ! संघर्ष से डरना हमें पसन्द नहीं, यह ठीक है; पर संघर्षमूलक बर्बरता तो हम कभी स्वीकार न करेंगे ! डायरी हमारे हृदय का प्रतिबिम्ब होती है । जीवन के गुप्त-से-गुप्त भेद हम उसीसे कहते सुनते हैं । हम उसका एक-एक शब्द इस मक्कार दुनियाँ से छिपाकर रखते हैं । उसीके किसी एक पृष्ठ की बात बता देना, ज़रा सोचो भाभी, कितना बड़ा अपराध है ! मैं इसे कभी क्षमा नहीं कर सकता ।”

सुनकर वे आश्चर्यचकित हो उठी । मुख को एक झटके से नीचे उतारकर, भौंहे तरेरती और मुझे कुछ बनाती हुई-सी बोली—“ओप्पो ! बड़े ऊँचे से बोलते हो । सुनकर मुझे तो तुमसे भय लगने लगा ।”

अब अनायास मेरे मुँह से निकल गया—“बिन भय होय न प्रीति ।”

तब वे यकायक हँस पड़ी । फिर कुछ स्थिर होकर बोली—“तुम बड़े शैतान हो ।” फिर जैसे किसी टूटे हुए स्वप्न की-सी याद करती हुई कहने लगी—“अच्छा हाँ, उस लड़की का क्या हुआ, जिसने तुम्हारा लिखा कोई गीत गाकर म्यूज़िक-कान्फ़ेंस में स्वर्ण-पदक फटकार दिया था !”

“उसने एक एम्० एल० ए० से ब्याह कर लिया !”

“अच्छा यह बताओ, बागेश्वरी के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?”

“आने मुझे ऐसा मौक़ा ही नहीं दिया कि मैं उससे मिल पाता !”

मेरा इतना कहना था कि वे बोल उठी—“क्या कहा ?” और आश्चर्य से मेरी ओर ताककर रह गयी । फिर कुछ विचार-सा करती-करती बोली—“ऐसी बात है, तो अब तुमको इसकी बिल्कुल शिकायत न होगी । बल्कि मैं मौसी को भी लिख दूँगी ।”

पता नहीं क्यों, तब मेरे मुँह से निकल गया—“लिखने की अपेक्षा कह देना अधिक उत्तम होगा ।”

बिना सोचे उन्होंने कह दिया—“हाँ, यह भी ठीक है ।”

लेकिन जब मैंने कहा—“पर ज्योतिषी से पहले यही पूछ लिया जाय उनसे अभी कहना ठीक होगा, या फिर कभी, तो कैसा हो ! बात यह है कि ऐसे शुभ काम में सोच-समझकर कदम रखना ज़रा ज़्यादा अच्छा रहता है !” तब वे ठट्ठा मारकर हँस पड़ी । बोली—“समझी, तुम मुझे बना रहे हो !”

अब मकान पास आ गया था । तंगि से उतरती-उतरती भाभी बोल उठी—“न हो ज्योतिषी को अभी बुला लिया जाय । क्यों ?” फिर हँस पड़ी । तब मैंने भी कह दिया—“बल्कि इसी तंगि पर सीधे उनके घर ही चले चलना और उत्तम होगा !”

अब वे घर के अन्दर प्रवेश कर रही थी और मैं बाहर से छोटी भाभी के ये शब्द सुन रहा था—“मौसी, ओ मौसी ! गाड़ी मिल गयी और मैं कानपुर से बोल रही हूँ कि बाबू साहब ने आजकल ऐसी घड़ी ले रखी है, जिसे चाभी देने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती !”

फिर बड़ी भाभी भी माँ को तंगि पर हुई बातचीत की चाशनी चखाने लगी । मैं सीधा अपने कक्ष में चला आया । दस मिनट भी न बीते होंगे कि छोटी भाभी स्वयं मेरे पास आकर कहने लगी—“पूरे कपटी मुनि हो ! पहले ही यह क्यों न कह दिया कि आज तुम किसी तरह जाने न पाओगी ? निर्मोही कही के ! अरे एकबार तो मन की बात मुँह खोलकर कह डाली होती !”

बहुत दिनों बाद आज जैसे अपने आप मुँह खुलता जा रहा था । इसलिए मैंने बिना सोचे-समझे कह दिया—“यों चाहे कह भी डालता, पर जब से ऐसी घड़ी मिल गयी है, जिसे कुकने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती, तब से कुछ ऐसा विश्वास हो चला है कि मन की बात खोलकर कहे बिना भी किसी तरह यह ज़िन्दगी कट ही जायगी ।”

उत्तर सुनकर छोटी भाभी स्तब्ध हो उठी । पहले तो आँखों में आँखें डालकर इकट्ठ मेरी ओर देखती रह गयी; फिर छत पर उस ओर बढ़

गयी जहाँ घनी छाया थी। फिर कुछ सोचती-सोचती बिना कुछ कहे नीचे चल दी; फिर आप-ही-आप रुकी और लौट पड़ी। फिर ठिठुकी और आगे बढ़कर बिल्कुल मेरे पास आकर कहने लगी—“मैंने पूछा था, लाला को एक-आध दिन के लिए मेरे यहाँ नहीं भेज दोगी मौसी ? उन्होंने इजाज़त दे दी। अब चलोगे न मेरे यहाँ ?”

आश्चर्य और हर्ष से मैं जैसे पागल हो उठा। तत्काल मेरे मुँह से निकल गया—“जैसा कहो।” इसके आगे मैं कुछ कह न सका।

तब वे आपही पलंग पर बैठ गयी। उस समय मैं बारम्बार यही अनुभव करने लगा कि मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है, जो भाभी के इस आत्मदान के समक्ष क्षणभर भी टहर सके। मुझमें वह साहस कहाँ है कि मैं मन की हिलोर को वाणी पर ज्यों-का-त्यों उतार सकूँ ! मैं तो क्षण-क्षण पर मानवात्मा की नाना गतिविधियों, त्रुटियों, दुर्बलताओं, विकारों और प्रकृत-अप्रकृत रूपों के ऊहापोह और विवेचन में ही खोया-खोया रहता हूँ। मैं यथार्थ को तत्काल प्रकाश में ला ही कैसे सकता हूँ ! मैं तो यथार्थ को अस्वीकार तक कर दिया करता हूँ, प्रतिक्रिया-परीक्षण के नाम पर। किन्तु यह मन्दाकिनी मन की गति का कोई भी स्वर मूक नहीं रहने देती, उसे तत्काल वाणी का रूप देकर अपने हृदय की निर्मलधारा का रुका हुआ बाँध तक कैसी सफ़ाई के साथ खोल देती है !

मैं तो इसे अपना अहंकार ही कहूँगा कि इतने पर भी मैंने भाभी से यह प्रकट नहीं किया कि तुम्हारी यह बात मेरे लिये किस सीमा तक अतीव सुखकर तथा अन्यतम प्राणमयी सिद्ध हुई है। तब वे आपही बोल उठी—“जीजी से क्या-क्या बातें हुई ? बहुत हँस रहीं थी। मुझको भी किसी दिन इतना हँसाया होता ! क्या मैं तुम्हारा कुछ छीन लेती ? क्या मैं सिर्फ़ रोने के लिए हूँ ?”

कानों से जान पड़ा, कण्ठ में आर्द्रता आ गई है; और आँखों ने अनुभव किया, मोती उत्पन्न हो रहा है !

अब मुझे खयाल आ गया—कल ये मुझे जब गिलास में दूध रख गई थीं, तब भूख न लगने के कारण मैंने खाना नहीं खाया था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि इन्होंने मेरा अनुकरण किया हो और ये अब तक भूखी ही बनी हों। इतने दिनों में मैंने यह स्पष्ट देख लिया था कि काम में पड़कर ये अपनी भूख-प्यास भूल जाती है। देख लिया था कि सब लोगों को खिला-पिलाकर, उनके विश्राम का पूरा प्रयत्न करके सब के अन्त में ही भोजन और विश्राम करना इनका स्वभाव बन गया है। अतएव एक प्रकार से त्याग, सेवा और अनुराग की मूर्तिमान गुणत्रयी के इस अकल्पित अनादृत समर्पण से मर्माहत-सा होकर मैंने कह दिया—“तुम कैसी बातें कर रही हो भाभी !”

वे मेरे पास तो थी ही, कथन के साथ-साथ कुछ मैं भी जो उनके निकट जा पहुँचा, तो मेरी छाती पर उन्होंने अपना सिर रख लिया।

मेरे बदन पर उस समय एक हलकी बनियाइन थी। भाभी के गरम-गरम आँसू मेरे अधीर, अशान्त, अतृप्त वक्ष को भिगोने लगे ! मैं स्पष्ट रूप से यह अनुभव करने लगा कि विदा के क्षण जो शेष रह गया था, वह यही प्रतिदान है।

अब मुझे स्मरण हो आया कि अभी-अभी इन्होंने मुझसे पूछा था—“मौसी से मैंने इजाजत ले ली है—चलोगे न मेरे साथ ?” उत्तर के लिए यह प्रश्न अब भी ज्यों-का-त्यों स्थिर है।

तब मैंने कह दिया—“मैं सदा के लिए तुम्हारे चरणों के निकट रहने को तैयार हूँ भाभी। एक-दो दिन की क्या बात है ?”

सवन का गीत, नयनों की भाषा में, अब भी मेरे प्राणों के ऊपर ध्वनित हो रहा था—टप-टप—टप-टप !

मस्तिष्क की नसों में तनाव-सा पैदा हो गया था। ऐसा कुछ जान पड़ा, सिर में दर्द हो रहा है। तब भटपट उनसे छुटकारा ले कई तकियों के सहारे पलंग पर लुढ़क रहा।

इतने में भाभी पुनः निकट आकर कहने लगी—“तुमने रात दूध पिया

ही होगा लेकिन मैं तो कोरी ही सो गयी थी। इस समय भूख बहुत लगी है। चलो, आज तुम्हारे साथ ही बैठकर खाऊँगी। खाना आज बीजी बना रही है।”

फिर जब नीचे जाने लगी, तो जाते-जाते यह भी कह गयी—  
“जल्दी आओ।”

खाना तो मैंने उनके साथ बैठकर खाया, लेकिन उनसे विशेष बातें नहीं हुईं। अलवत्ता बड़ी भाभी कुछ न-कुछ छेड़ती रही। फुलकी घी से चुपड़ती हुई बोली—“यह बड़ा अच्छा हुआ भैया कि तुम मुझे भेजने के लिए कानपुर चल रहे हो।”

मुझे उनका यह “भैया” सम्बोधन ऐसा पसन्द आया कि पता नहीं कैसे मेरा विस्मय फूट पड़ा। यहाँ तक कि खुद मुझे अनुभव हो गया, मेरे नेत्र और होठ कुछ अधिक फैल गये हैं। और इसी क्षण कुछ ऐसा हुआ कि छोटी भाभी की आँखों से मेरी आँखें जा मिली। संकेत से मानो उन्होंने व्यक्त किया कि यहाँ सम्हलकर बात करनी है।

तब मैंने कह दिया—“जा ज़रूर रहा हूँ, लेकिन ठहर तो सकूँगा नहीं वहाँ।”

“क्यों, एक-आध दिन अगर बने ही रहोगे तो क्या होगा?”

“नहीं, अब आप लोगों के साथ और अधिक रहना ठीक नहीं है।”

बड़ी भाभी फुलकी को साफ करने के विचार से उलटी थाली पर पटकती हुई थोड़ा रुक गयीं और आश्चर्य से बोली—“कहते क्या हो तुम।”

“ठीक ही कह रहा हूँ। जिनके साथ सीमाओं का सम्बन्ध है, उनसे दूर रहने में ही कुशल है”—कहकर गितास से पानी का एक घूँट कण्ठगत करते हुए—“खाना कुछ ज़्यादा खा लिया।” कहकर उठ खड़ा हुआ। चौके से बाहर निकलते क्षण देखा, दोनों भाभियाँ केवल शब्दों से मौन है, आँखें उनकी मिलकर परस्पर कुछ कह-सुन रही हैं।

## सात

मुझे देखते ही गौरीशकर ने प्रथम मुझे नमस्कार किया, पुनः लाला साँवरे को । और लाला साँवरे तपाक से बोले—“आइया: यानी गौरी बाबू तुमको भी मिलने के लिए पुछवाने को जरूरत पड़ गयी ! ताज्जुब है । ..अरे कुरसियाँ ला रे भट से ।”

नौकर और कुरसियाँ लेने चला गया था । वे प्रौढ़ महाशय और गौरीशंकर तब तक लालाजी के पर्लेग पर ही बैठ गये । सिपाही अलबत्ता खड़े रहे । और वे सफेदपोश महाशय भी ।

दो कुरसियाँ आ गयी थी । लालाजी बोले—“मुनीमजी, आप भी अब इतमीनान से बैठ जाइये । और गौरी बाबू, सबसे पहले आप यह बतलाइये कि आपको बहुत जल्दी तो नहीं है । अ... मेरा मतलब यह है कि अच्छा होगा अगर पहले मैं इन्हीं लोगों को निपटा दूँ ।”

इसी समय नौकर ने पान-इलायची, तम्बाकू-सिगरेट-दियासलाई इन लोगों के आगे पेश करना शुरू कर दिया । गौरीशकर ने एक पान उठाया, तो लाला साँवरे बोल उठे—“यह इंसल्ट बेइज्जती है जनाब । यह कभी हो नहीं सकता कि आप यहाँ, मेरे पास बैठकर, सिर्फ एक पान खाये !”

तब गौरी बाबू ने दो पान लेने और थोड़ी मुसकराहट का चाशनी पेश करते हुए कहा—“मैं भी इसी सम्बन्ध में आया हूँ ।”

तब एक साथ नाक-भौं सिकोड़ते हुए लाला साँवरे बोल उठे—“यानी मुस्लीमनोहरजी की सिकारिश लेकर ।”

गौरीशकर बोले—“जी । मैं इन्हे बरसों से जानता हूँ । बेचारे सीधे-सादे आदमी हैं और दुर्भाग्य के फेर में पड़कर दुःख उठा रहे हैं । मैं चाहता हूँ कि इनके मामले में आप सख्ती का व्यवहार न करें ।”

इस पर लाला साँवरे ने कहा—“ये कैसे आदमी हैं, यह आप नहीं जानते गौरी बाबू, मैं जानता हूँ । सीधे-सादे तो असल में आप हैं, ये नहीं ।

और मैंने इनके साथ बेजा व्यवहार किया है, ऐसी कोई बात भी नहीं है। मैंने तो महज़ क़ायदे की ही कार्रवाई की है। सो भी बहुत मजबूर होकर !”

“जिसको आप क़ायदे की कार्रवाई कहते हैं, मैं उसको अपने साथ एक जुल्म समझता हूँ।” मुरलीमनोहर साहब तपाक से बोल उठे—  
 “आप सौ रुपये क़र्ज़ देकर तीन साल के अन्दर सवा दो सौ रुपये बना लेते हैं, जबकि बैंक सिर्फ़ टाई रुपया सैकड़ों सालाना सूद देता है। यह जुल्म नहीं तो और क्या है ? आपके पास रुपया है और मुझे मालूम है कि ज़रूरत से ज़्यादा है। तो क्या यह रुपया आपके पास इसलिए है कि आप भले आदमियों को ज़लील करें ? साल भर से मेरी स्त्री बीमार है और यह बात आपको मालूम है; फिर भी मुझ पर डिगरी इजरा करके गिरफ्तारी का वारंट निकलवाते हुए आपको ज़रा भी हिचकिचाहट न हुई ! एक अपरिचित राह चलता आदमी दूसरे आदमी के साथ जितनी हमदर्दी दिखलाता है, आप में उतनी भी नहीं है ! जबकि आप एक सुसभ्य नागरिक और नगर के नेता माने जाते हैं।”

“मैं सभ्य नहीं, महा असभ्य हूँ। आदमी नहीं, पूरा राक्षस हूँ।” आवेश के साथ लाला सॉबरे बोले—“दया और ममता नाम की कोई भावुकता मुझे छू भी नहीं गयी; लेकिन सिर्फ़ उन लोगों के लिए, जो आपकी तरह भूटे, मक्कार और बुज़दिल हैं। आपकी नज़रों में आज मैं लुटेरा, राक्षस और खूँखार जानवर हो गया, जब मैंने आपको जेल की हवा खिलाने का निश्चय किया। लेकिन उस दिन मैं देवता था, जब आप रोते हुए मेरे पास रुपया उधार लेने आये थे ! मुझे आज भी आपके वे शब्द याद हैं। आपने ऐक्चुअल ऑफ़ टपकाते हुए फरमाया था—  
 ‘मेरी लाज बचाइये लालाजी। अगर इस वक़्त आपने मुझे सौ रुपये न दिये, तो कल मेरा सामान सड़क पर होगा और मैं रास्ते का एक भिखारी बन जाऊँगा !’” “आप फ़रमाते हैं कि सालभर से आपकी स्त्री बीमार है। मगर मुझे ताज़ुब है कि उस बीमारी की हालत में आपने उसका जो इलाज किया, उससे हेल्थ इम्प्रूव होने के बजाय बच्चा



कैसे टपक पड़ा ! - रुपया लेत वक़्त आपने वादा किया था कि मैं उसे तीन महीने के अन्दर अदा कर दूँगा। मगर तीन साल के अन्दर कभी आपको इतना भी सुमीता न हुआ कि आप मुझे पच्चीस रुपये भी दे जाते। आप यह क्यों नहीं सोचते कि अगर सभी आसामी मुझे आप ही की तरह मिल जायें, तो मेरी क्या कैफ़ियत हो ? और यह जो आप फ़रमा रहे हैं कि मेरे पास ज़रूरत से ज्यादा रुपया है, इसलिए आपको यह हक़ हासिल है कि आप मेरा रुपया मार लें; तो मैं कहूँगा कि आप उल्टू है। आपको इतनी भी तमीज़ नहीं है कि रूस भी आज तक उस साम्यवाद का स्वप्न नहीं देख पाया, जिसमें किसी व्यक्ति को यह सोचने का भी हक़ होता कि किसी शख्स के पास ज़रूरत से ज्यादा रुपया जान पड़ता है, इसलिए राह चलते हुए क्यों न चेस्टर उतरवाकर उसे सड़क पर गंगा छोड़ दिया जाय !

“बस-बस लालाजी। बहुत हो चुका !” गौरी बाबू बोले।

“बहुत कहों हो चुका अभी ?” लाला सोंवरे बिना रुके बोलते रहे—  
“अभी तो मैंने उस आग की महज़ एक चिनगारी ही पेश की है, जिससे आज हमारा सारा समाज सारा देश जल रहा है ! मेरी समझ में नहीं आता कि इन नौजवानों को सूझा क्या है। इनकी बात में सच्चाई नहीं, इनके कर्म में सच्चाई नहीं और माफ़ कीजियेगा, इनके धर्म में भी सच्चाई नहीं। आप इनको हिन्दू कहते हैं ! लानत है ऐसे हिन्दुत्व पर, जो मिथ्या को महत्व देता है ! आप खुद ही बतलाइये मुरलीमनोहर साहब, मैं झूठ कहता हूँ ? आपने जितने वादे किये, उनमें कितने सच्चे निकले ?”

मुरलीमनोहर साहब चुप !

तब गौरीबाबू बोल उठे—“माफ़ कीजिएगा लालाजी, यहीं मैं आपसे मतभेद रखता हूँ। कभी-कभी हम ऐसी परिस्थितियों में फँस जाया करते हैं, जब सब कुछ चेष्टा करने पर भी अपने वचन का निर्वाह नहीं कर पाते !”

“जिस तरह हमारे नेता ढोल पीट-पीटकर हमें सुनाते रहते हैं कि

अन्न-वस्त्र का अभाव दूर करने की कोशिश तो हम बहुत करते हैं, मगर कामयाबी हमें सिर्फ इसलिए नहीं मिलती कि जनता का पूरा सहयोग हमें नहीं मिलता ।

जिस तरह परीक्षा में फेल हो जानेवाला कोई नौजवान यह कहे कि जिस हिसाब से मैंने पढ़ने में मेहनत की, जब उस हिसाब से परीक्षक ने मेरी कार्पियों ही नहीं जॉची, तो मैं क्या करूँ ।

और जिस तरह सफलिस का कोई मरीज़ यह कहे कि ईश्वर की कसम खाकर कहता हूँ, मैंने कोई बुरा काम नहीं किया । लेकिन मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि पिताजी को कभी यह मर्ज़ हुआ ही नहीं ।

अब मुझे बोलना पड़ा । मैंने कहा—“गौरीबाबू ने परिस्थिति विशेष की बात कही थी । और दुर्भाग्य से, अपने अब तक के जीवन में मैंने भी यही अनुभव किया है कि हम बहुत चाहने पर भी कभी-कभी अपने वचन का पूरा निर्वाह नहीं कर पाते । और तभी मेरी अन्तरात्मा से बारम्बार यही स्वर फूट पड़ा है कि इस दोष के अन्दर व्यक्ति का हाथ उतना अधिक नहीं होता, जितना वस्तु-स्थिति का !”

“तो आप समझते हैं कि यही मानकर व्यक्ति की ज़िम्मेदारी समाप्त हो जाती है !” कहते-कहते लाला सॉवरे जैसे चीग्व उठे—“बहुत खूब ! अब इतना और बाक़ी रह गया है कि आप इसी मौक़े पर ‘महात्मा जी की जय’ का एक नारा भी लगादे ।

गौरीशंकरजी उठकर खड़े हो गये । बोले—“आपके मन में जो आये सो कीजिये ।” और चल खड़े हुए । जान पड़ा, गांधीवाद का ऐसा अपमान उनसे सहा नहीं गया ।

तब लाला सॉवरे चट से उठकर गौरीशंकरजी के पास कूदकर आ पहुँचे और उनका हाथ पकड़कर बोले—“इस तरह आप जाने न पायेंगे । आप जब इस मामले की सिकारिश लेकर आये हैं, तो इसका फैसला भी आपको ही करना होगा ।”

गौरीशंकरजी ने कहा—“जमा कीजिये, अब मैं इस विषय में कुछ

नहीं कह सकता, लालाजी !” और साथ-ही-साथ उनकी आँखों में आँसू छलछला आये।

तब लाला सॉवरे बोल उठे—“तो आप खुद बताइये मुर्ली-मनोहरजी। क्या चाहते हैं आप ?”

मुर्लीमनोहर बोले—“एक तो आप सूद कम कर दीजिये; दूसरे यह कि जो भी रकम हो, उसको दो-दो महीने की तीन किश्तों में अदा करने का मौका दीजिये।”

“मुझे मंज़ूर है।” लाला सॉवरे ने कहा—“बोलिये, सूद में आप कितनी कमी चाहते हैं ?”

“आप की असली रकम है सौ।”, मुर्लीमनोहर ने थहाते-थहाते कह दिया—“मैं चाहता हूँ, आप सूद के सिर्फ़ तीस रुपये और लगाले। चाक्री छोड़ दे।”

“इस वक्त आप क्या दे रहे हैं ?” लाला सॉवरे ने पूछा।

“सिर्फ़ तीस रुपये।” और जवाब के साथ उन्होंने निकालकर दे भी दिये।

तब लाला सॉवरे ने रुपये लेते हुए कह दिया—“जो आप कहते हैं, लिखकर दे दीजिये। मुझे सब मंज़ूर है। मुनीमजी लीजिये ये तीस रुपये। और इनसे इसी प्रकार की चिट्ठी लिखा लीजिये।” और मुर्लीमनोहरजी की ओर देखकर मुसकराते हुए कहने लगे—“बस, अब तो आप मुझे राक्षस नहीं बनायेंगे न ?”

तब विवश होकर गौरीशंकरजी को कहना पड़ा—“बस-बस और ज्यादा शर्मिन्दा न कीजिये लालाजी।”

मन-ही-मन मैं लाला सॉवरे के चरित्र की आलोचना करता रहा। यह व्यक्ति सूद पर रुपये देता है। रुपये वसूल करने में किसी तरह की रियायत नहीं करता। इस हिसाब से यह एक सूदखोर महाजन है — पूँजीवादी समाज का एक स्तम्भ। किन्तु फिर रुपये की इसको ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गयी कि एक मकान को ही बेचने के लिए इसे

विवश होना पड़ा, जबकि इसमें ऐसा कोई दुर्गुण भी नहीं है। हो-न-हो, अवश्य ही इसके जीवन में कोई रहस्य है।

...लेकिन किसी सूदखोर महाजन को इतना-इतना सूद छोड़ देते हुए मैंने कभी नहीं देखा ! पर अवसर आने पर ऐसा व्यक्ति दान-पुण्य भी करता है—केवल इसलिए कि लोग उसकी प्रशंसा के गीत गाये और पूँजीवाद की वे जड़े हिलने न पाये, जो समाज के आर्थिक जीवन को खोखला बना रही है।

...लेकिन लाला साँवरे के सम्बन्ध में इस निश्चय पर पहुँचना मुझे स्वीकार नहीं हुआ कि केवल अपने कीर्ति-गान के लिए उन्होंने मुरली बाबू के साथ इतनी रियायत की है।

जब सभी लोग एक-एक करके विदा हो गये, तो लाला साँवरे बोले—“मेरा खयाल है घर से स्नान करके तो आप आये ही होंगे।”

“जी नहीं।” मैंने कह दिया—“और इस विषय में आपको कुछ और सोचने की ज़रूरत भी नहीं है ; क्योंकि खाना मैं घर के सिवा और कहीं नहीं खाता।”

“मगर कम-से-कम खाने के वक़्त मैं किसी अतिथि को बिना भोजन कराये विदा नहीं करता।”

“लेकिन मैं वैसा अतिथि भी तो नहीं हूँ, जिसका यहाँ घर-बार न हो। पिताजी के हाथ का साया अलबत्ता नहीं है। लेकिन भगवान की कृपा से और किसी बात की कमी नहीं है।”

“यह सब मुझे मालूम है। बतलाने की ज़रूरत नहीं है आपको। फिर भी अगर बिना कुछ खाये इस समय आप यहाँ बैठे रहेंगे, तो मुझे बड़ा दुःख होगा।”

“दुःख की कोई बात नहीं है। मैं अब आज्ञा चाहता हूँ। यो भी आपका काफ़ी समय ले चुका।”

“यह आपकी ज़ादती है। समय तो दरअसल मैंने आपका नष्ट किया है। फिर जिस मतलब से आपने मुझे दर्शन देने की तत्कालीक़

गवारा की, उसके बारे में बात करने का मौक़ा भी नहीं मिल पाया।”

“अब इस समय तो आप क्षमा करें। मैं फिर हाज़िर हो जाऊँगा।”

“तो इसका मतलब यह हुआ कि आपको मकान की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि यह भी तो हो सकता है कि मुझे आज उस मकान को बेच ही डालना हो। यहाँ तक कि मैं इस मामले को कल पर भी न टालना चाहूँ।”

इतने में लाली ने तुरन्त आकर फलों और मिठाइयों की तीन-चार डिशें लाकर मेरे सामने रख दी। और मैं हक्का-बक्का उसे देखता रह गया। एकदम श्वेत मलमल की साड़ी उसकी सुगठित देह-यष्टि पर सुशोभित है। पैरों में सफेद चप्पल है। हाथों में सोने की नन्ही-नन्ही दो-दो चूड़ियाँ। कानों में हीरे के टाप्स, कण्ठ में बहुत बारीक सोने की उच्छृंखल लकीर, वक्ष-प्रान्त पर भीतर से कसी हुई पट्टी, ऊपर से सफेद सिल्क का महाराबदार दो पतों से बना हुआ एक नये ढग का ब्लाउज़। सिर के केश बहुत सम्हाल-सम्हालकर सँवारे हुए। अधर लिपस्टिक से अनुरंजित नहीं है; लेकिन प्रतीत यही होता है कि काया उसकी गुलाब की पंखड़ियों की ही बनी हुई है। नयनों की चीरन में मृगी का स्मरण आ ही जाता है। भ्रुकुटियों के रोये ज्यों-के-त्यों स्थिर है। दंत-पंक्ति दुग्ध-धवल है और चिबुक का तिल तो ऐसा लगता है, जैसे नवल गुलाब पर शिशु मधुप अभी-अभी आ बैठा हो।

लाला साँवरे के कथन का उत्तर मैं तुरन्त न दे सका। एक क्षण को इस लाली ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर ही लिया। मैं वह कहने जा ही रहा था कि यह सब व्यर्थ है, मैं कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा कि मेरा वह क्षण भर का मौन ही लाला साँवरे ने जैसे पकड़ लिया। बोले—“मैं अभी पाँच मिनट में आया जाता हूँ। लेकिन अगर दो-एक मिनट ज़्यादा भी लग जायें तो आपको...” फिर लाली की तरफ़ देखते हुए कहने लगे—“मैं जब तक न आ जाऊँ, तब तक तुम

भी यहीं रहना, अच्छा—जिससे इन पाण्डेयजी को अकेलेपन का भान न हो ।” और इस कथन के साथ वे वहाँ से चले भी गये ।

इतने में छत से लगी टॉड पर एक गौरैया आकर फुदकने लगी ।

तब लाली दरवाजे की ओर देखती-देखती बोल उठी—“आपने सोचा होगा, यहाँ भी आपकी ज़िद चल जायगी । लेकिन क्या आपने कभी यह भी सोचा कि बात-बात में दूसरों के अनुरोध और आग्रह को स्वीकार न करके आप जिस बचाव और बड़बपन का अनुभव करते हैं, वह दूसरों के सद्भावों को किस बेदरदी से मसल डालता है ।”

प्रतीत हुआ, भाभी अपना एक प्रतिनिधि .. । फिर सोचा—नहीं, यह अन्याय है । तब मैंने कह दिया—“लेकिन आपके फालसे का शरबत तो मैंने चुपचाप पी लिया था ।”

“हाँ, एहसान किया था मेरे साथ !” कहने के साथ लाली ने ऐसी मंगिमा व्यक्त कर दी कि मुझे लगा, जैसे सीढ़ी से मेरा पैर फिसल गया हो !

फलों की एक डिश पर मैं बराबर हाथ साफ कर रहा था । लेकिन मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था कि दूसरी भेंट में लाली का स्वर यकायक ऐसा तीव्र होकर हिलोर की भाँति छपाका मार बैठेगा । मन में आया, यह मेरा निरा भ्रम तो नहीं है कि सभी कोणों और दिशाओं से मेरी दृष्टि केवल मनोगत सौन्दर्य और अन्तर्गत प्रेम को ही देखती, खोजती और प्रायः अनायास प्राप्त भी करती रहती है !

मुझे मौन देखकर लाली ने पुनः प्रश्न कर दिया—“मुझसे बातचीत करने में शायद आपको सकोच होता है । है न ऐसी ही बात ? तो मैं यहाँ से चली जाती हूँ ।”

और वह सचमुच वहाँ से जाने भी लगी । तब मैंने कह दिया—  
“ठहरो लाली ।”

वह मेरे पास कुर्सी खिसकाकर बैठ गयी और फूटते हुए हास को अधरों से दबाती हुई-सी बोली—“कहिये ।”

अनायास मेरे मुँह से निकल गया—“मै तुमसे , मेरा मतलब है आपसे कुछ कह नहीं सकता लाली । लेकिन आप यह न समझे कि मेरे पास कहने के लिए कुछ है नहीं ।”

वह मालूम नहीं क्यों, फिर कुछ गम्भीर हो गयी और बोली—“पर यह मैं नहीं मानती कि ‘तुम’ कह जाने के बाद ‘आप’ कहने में आप कुछ कह नहीं जाते ।” लाली ने कुछ इस ढङ्ग से उत्तर दिया, जैसे कबूतर के रूप में उसने अपने इस मनोभाव को इसी क्षण के लिए पकड़ रक्खा हो और मेरे उपर्युक्त कथन पर बड़ी हौस के साथ मेहरबानियों की तरह हाथ ऊँचा करके उड़ा दिया हो । —“मै यह भी मानने को तैयार नहीं हूँ कि जिनके पास देने के लिए लाखों की सम्पत्ति होती है, वे अक्सर आने पर किसी को एक पाई न देने पर आजीवन सम्पत्तिशाली बने ही रहते हैं । जब आपके पास कहने के लिए कुछ है, तब भी आप अगर कुछ कहते नहीं, तो उस समय क्या कहेंगे, जब आपके पास कहने का कुछ रह ही न जायगा ! क्षमा कीजियेगा, सामर्थ्य के समय जो दाता दान नहीं कर सकता, भोख मॉगने का अक्सर आने पर उसे यह कहने का कोई हक्क नहीं है कि मै तीन दिन का भूखा हूँ । और यह मै नहीं मानती कि आदमी को आवश्यकता पड़ने पर किसी से कोई चीज़ मॉगने का संयोग ही नहीं आता !”

• बात सुनकर मै इकट्ठक लाली को ताकता रह गया । सोचा—इतनी कम अवस्था में यह सब इसे सिखलाया किसने ? तब धीरे-धीरे अतिशय मन्द स्वर में, जैसे अगम जलाशय के तल प्रदेश तक जा पहुँचने के भय से थहा-थहाकर पैर बढ़ाते हुए, मैने कह दिया—“यह तुम ठीक कहती हो लाली ।”

इतने में टॉड पर बैठी गौरैया फर् से उड़कर कमरे से बाहर हो गयी और उसी समय फलों की दूसरी डिश मेरे सामने देख पड़ी ।

जब सकान के नीचे एक भिन्न कह रहा था—रोटी का टुकड़ा न दे सको तो मौत ही दे दो !

लाला सोंवरे के आते ही सबसे पहले मैंने यही प्रश्न किया कि आप अपना मकान क्यों बेचना चाहते हैं ?

लालाजी ने तत्काल उत्तर दे दिया—“यह गोपनीय प्रसंग है। अच्छा होगा कि आप इसके अन्दर जाने की कोशिश न करें। मकान आपने देख ही लिया है। चौदह वर्षों से उसमें सोनेलाल सुनार रहता है। उसे बने। हुए तीस साल हो गये। ज़माने की गर्दिश वह काफ़ी भेल चुका है उसकी जायदाद पर कोई बार भी नहीं है। किराया चालीस रुपया आता है। सो भी इसलिए कि सोनेलाल न तो किराया बढ़ाने देता है, न मकान छोड़ता है।”

“तब तो अगर मैं स्वयं भी उसमें रहना चाहूँ, तो नहीं रह सकता !”

“क्रायटे से तो नहीं रह सकते। लेकिन अगर सोनेलाल राज़ी हो, तो सब कुछ हो सकता है।”

“ख़ैर, इसका फ़ैसला मैं स्वयं कर लूँगा। अब आप यह बतलाइये कि मकान दीजियेगा कितने में ?”

इसी समय लाली ने परदे से बाहर आकर कह दिया—“आपको अम्मा बुला रही हैं।”

लाली का इसी क्षण आ जाना और सो भी यह संदेश लेकर कि उसकी अम्मा बुला रही हैं, यद्यपि मेरे लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक था; फिर भी मुझे अन्दर जाना ही पड़ा।

मेरे नमस्कार के जवाब में चाची बोली—“जीते रहो।” और अत्यन्त पास आकर मेरे कान में कहने लगी—“बुढ़्ढा बड़ी मुश्किल से फँसा है। दस हज़ार से एक पाई ज्यादा न लगाना। समझे ! बल्कि आज इस बातचीत को टालने की कोशिश करना। कह देना—मैं दो-एक दिन में विचार कर लूँ। उसके बाद यह बतला सकूँगा कि इससे ज़्यादा दे सकूँगा या नहीं। फिर देखो क्या होता है !”



कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे लाली इन शब्दों के द्वारा मेरा दोष प्रकट करने की अपेक्षा गुण प्रकट कर रही है। जैसे उसे इस बात पर पक्का विश्वास है कि किसी भी अन्याय-वार्ता में हाथ डालना मेरे लिये कदापि सम्भव नहीं है। फिर यह भी मन में आया और गया कि यह मैं ही सोच लेता हूँ अपने आप, या इसमें कुछ तथ्य भी है। पर क्रदम-क्रदम पर हर एक बात में, यह संशय जो मैं उत्पन्न करने लगता हूँ, यह क्या है?... क्या सर्वांश में यह गलतियों से बचने का मार्ग है? फिर आत्म-विश्वास की लघुता और हीनता किसे कहते हैं?

लाला साँवरे ने मुझसे ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया, जिससे यह प्रतीत होता कि वे यह जानने के लिए ज़रा भी उत्सुक है कि लाली की माँ ने मुझे क्यों बुलाया था। बुलाने की ज़रूरत उन्हें क्यों पड़ी और पड़ ही गयी तो उन्होंने मुझसे कहा क्या?

मैंने तब वही प्रश्न कर दिया — “हाँ, बतलाइये। कितने में आप मुझे वह मकान दे रहे हैं?” और मैं सोचने लगा, यह शर्त्त अपने मनोभावों पर विजय पाना खूब जानता है।

“जो आप दे दें।” कहकर लाला साँवरे इस तरह मुसकरा उठे, जैसे वे मुझे खिलौना समझ रहे हों; सो भी जापानी! लेकिन मिटास तो इस कथन में थी ही। भीतर भले ही विनम्रता की कड़वाहट भरी हो।

पता नहीं क्यों, मुझे उनकी यह व्यावहारिकता कुछ ज़रूरत से ज़्यादा बनावटी जान पड़ी। इसलिए जान बूझकर मैंने उन्हें दाँव पर धर दिया। मैंने कह दिया — “देखिये, बात ऐसी कीजिये, जिस पर आप स्थिर रह सकें। कहीं ऐसा न हो कि दूसरे ही क्षण आप को कहना पड़े—मेरा यह मतलब नहीं था। क्योंकि सत्य मेरे जीवन की सबसे प्यारी वस्तु है। और जो व्यक्ति मेरे साथ सत्य का व्यवहार नहीं करता, वह मुझे खो देता है।”

कहते तो कह गया, अपना एक प्रमुख लक्षण; किन्तु दूसरे ही क्षण मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे इस कथन में मेरे भीतर का अहंकार बाहर भी झलक पड़ा हो। साथ ही मुझे उन सब घटनाओं की भी याद हो आयी,

जब सत्य के पक्ष से गिराने के लिए मुझे विवश कर दिया गया था — केवल इसलिए कि मेरा साहस शक्ति की सीमाओं के उल्लंघन का अभ्यास करने लगा था। क्योंकि समाज में ऐसे साथियों की कमी नहीं थी, जो पग-पग पर यह अनुभव करने लगे थे कि मैं अपनी सीमा में समाकर रह नहीं सकता। जो कुछ मैं आज के ज़ायदस वर्ष में करने योग्य बनूँगा, केवल साहस के बल पर उतना तो मैं आज भी कर सकता हूँ। — यदि प्रयत्न में साथ के ही लोगों की ओर से कहीं कोई बाधा न उपस्थित हो।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब-जब मैंने उत्साह की उत्तेजना में आकर अपना कोई दृढ़ संकल्प प्रकट कर दिया, तब-तब मेरे ही साथ के लोगों ने उन्हें पूरा नहीं होने दिया। मैं जानता हूँ कि ऐसे कटु अनुभवों की प्रतिक्रियाओं ने भी मुझे मार्ग दिया है। जब मनुष्य के हर प्रयत्न में बाधाएँ आती हैं, प्रकृति का यह एक सर्वव्यापक नियम है। तब मैं ही इन बाधाओं से कैसे बच सकता हूँ! कदाचित् इसीलिए मेरे जैसे व्यक्तियों के कथन, वचन, व्रत, संकल्प और आयोजन अधूरे रह जाते हैं। सम्बन्धित वर्ग जब उनका उपहास करने पर सन्नद्ध हो जाता है, तब रक्षा के लिए वे इधर-उधर भटकने लगते हैं। दुखी हो-होकर उन्हें यहाँ तक कह देना पड़ता है कि हाँ, मैंने जान-बूझकर आप लोगों को धोखा दिया है। मैं अपराधी हूँ। मेरा आप लोगों को कभी विश्वास न करना चाहिये! बस? किन्तु उनका दोष केवल इतना रहता है कि वे इस जगत् के असहाय वर्ग के लिए कुछ करना चाहते हैं। और जो करना चाहते हैं, समय आने से पहले उसे कह डालते हैं।

..... कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस असहाय वर्ग की कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ उनके समक्ष उपस्थित हो जाती हैं, जिनसे वे स्पष्ट रूप से ऐसा अनुभव करने का अवसर पा जाते हैं कि कुछ व्यक्ति वास्तव में असहाय नहीं होते; केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए जान-बूझकर अपने आपको असहाय बना लेते हैं। असहाय बनना उनके लिए केवल एक आडम्बर होता है — केवल एक अभिनय। और यह उनकी कितनी बड़ी धूर्तता होती



है कि वे सज्जनता और सहृदयता से अनुचित लाभ उठाने के लिए ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते रहते हैं !

...सदा इन घटनाओं का यही परिणाम हुआ है । सदा यही मैंने सोचा और स्थिर किया है कि किसी की सहायता कभी मत करो । और यदि करना ही चाहो, तो तत्काल कर दो; भविष्य में करने का वचन मत दो । यह केवल इसलिए कि हमारी आज की सामाजिक स्थिति कुछ इतनी गिर गयी है, कुछ ऐसी अनिश्चित और अस्थिर हो गयी है कि हमारे वचन का मूल्य प्रायः नष्ट हो गया है । ऐसा जान पड़ता है कि बाहर से जो आँखें देखने में बिल्कुल सही-सलामत जान पड़ती हैं, अन्दर से वे बिल्कुल समाप्त हो गयी हैं : अन्धी खोखली, जड़ ।

किन्तु अपनी इस स्थिति को सोचने में मुझे अधिक ढेर नहीं लगी । 'मैं इस विचार का हूँ', केवल इतनी-सी बात, मेरे अन्दर जुगनू की भाँति क्षण भर में चमक गयी ।

“तो आप समझते हैं कि सत्य को आपने पहचान लिया है !” लाला सॉवरे ने कुछ ऐसे ढँग से कह दिया, जैसे वे बहस करने के लिए मुझे ललकार रहे हो । और मेरी स्थिति कुछ ऐसी विचित्र हो उठी, जैसे मैं किसी अन्य लोक से इस मर्त्यलोक में अभी-अभी इसी क्षण उपस्थित हुआ हूँ ! फिर भी मैंने निस्संकोच कह डाला—“खयाल तो कुछ ऐसा ही है ।”

“यह आपका भ्रम है ।” लाला सॉवरे मुसकराते हुए बोले—“अभी आप इस विषय में बिल्कुल बच्चे हैं । कभी मेरा भी ऐसा ही खयाल था, जो आज आपका है । लेकिन अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि सत्य एक शब्द-मात्र है । जीवन में कहीं भी उसका स्थिर अस्तित्व नहीं है । आज की दुनियाँ में सत्य का अर्थ है प्रमाद, असफलता और मूर्खता । आज सत्य बोलनेवाला व्यक्ति समाज के लिए एक खतरा है, कुटुम्ब के लिए धृष्टि का पात्र है और देश की राजनीति के लिए विषधर । आज सत्य कला के लिए हिंसा है, कविता के लिए गणित है, व्यवसाय के लिए मृत्यु है और जीवन के लिए अभिशाप । आज हमारे देश में एक भी

ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो सत्य की रक्षा के नाम पर भोथरे चाकू से अपना गला कटाने के लिए तैयार हो !”

मुनकर मैं सब रह गया ! परन्तु मैंने अपना मनोभाव छिपाकर कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की । और लाला साँवरे ने पान की तश्तरी मेरे सामने कर दी ।

तब मैंने हाँ पूछ दिया—“क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों है ?”

“सोचा क्यों नहीं है ! सोचा न होता, तो मैं ऐसा कहता ही क्यों ?” लाला साँवरे कहने लगे—“जब दुनियाँ की कोई भी चीज़ अपनी क्रीमत पर क्रायम नहीं रहती, तो उसकी सत्ता, गुण, रूप और अवस्था पर हम क्या भरोसा कर सकते हैं ? जब आप कहते हैं कि यह चीज़ हमारी है, तब आप यही तो सोचते हैं कि इस पर मेरा पूरा अधिकार है । यह मेरी रहेगा । लेकिन अवसर आता है और आप उसे खो देते हैं । तब वही चीज़ दूसरे का हो जाती है । मैं पूछता हूँ, क्या इसका यह अर्थ नहीं होता कि कोई चीज़ दरअसल किसी की नहीं है ?”

“लेकिन उस समय तक तो वह हमारी रहती ही है ।”—मैंने कहा “जब तक हम उसे खो नहीं देते ।”

“अर्थात् वस्तुओं के साथ आपका कोई भी सम्बन्ध चिरस्थिर नहीं है ।”

“जी !” कहते तो कह गया; पर ऐसा लगा, जैसे यह स्वीकार मैं बहुत विवश होकर कर रहा हूँ !—क्योंकि तब तक लाला साँवरे बोल उठे—“अर्थात् आपके सारे सम्बन्ध अस्थिर हैं ।”

“हाँ, इस प्रकार तो उन्हें अस्थिर मानना ही पड़ेगा ।” कथन को इससे और शिथिल भाषा क्या दे सकता था !

“तो जो चीज़ें या जो सम्बन्ध स्थिर नहीं हैं, जो सहज ही बदले भी जा सकते हैं, वे सत्य भी नहीं हैं ।”

मैं विचार में पड़ गया कि लालाजी कहाँ ग़लती कर रहे हैं। लेकिन मैं सोचता ही रह गया।

तब लालाजी बोले—“आप लोग दिन-रात जिस सत्य का दिढोरा पीटा करते हैं, वह केवल गणित की वस्तु है; जिससे आप यह सिद्ध किया करते हैं कि तीन और दो मिलकर पाँच होते हैं। लेकिन जीवन में जिन दो चीज़ों को हम तीन और दो मान लिया करते हैं, वे दोनों ही जब वास्तव में न तो तीन का वज़न रखती है, न दो का; तब उनका जोड़ पाँच कैसे मुमकिन हो सकता है !” बात सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जो बात मैं निरन्तर अनुभव करता हूँ, लालाजी उसीको तो कह रहे हैं। भले ही सुनने में कुछ नया-नया-सा लग रहा हो।

क्षण भर चुप रहकर फिर लाला साँवरे कहने लगे—“और सत्य जिनके लिए अत्यन्त प्यारी वस्तु है, वे पागल कितने हैं, कभी आपने इस बात पर ग़ौर किया है ? जो व्यक्ति अपने आदर्श संस्कारों का गला कटाकर पहली बार वेश्यालय के ज़ीने से उतर रहा है, उसके दिल से पूछिये, वह अपनी प्रियतमा को किस नज़र से देखता है ! अगर उस नज़र, उस भावना का असली रूप वह अपनी पत्नी को बतला दे, तो कल उसकी ज़िन्दगी मौत का फ़साना बन जाय ! लेकिन आप कहेंगे यही कि काम-लिप्सा की शान्ति के लिए एक पत्नी ही सत्य है, उससे परे सभी असत्य। तब मैं आपसे पूछूँगा कि दुनियाँ में कौनसा ऐसा जादू है, जिससे आप असत्य की अपेक्षा सत्य को कहीं अधिक प्रिय और मधुर बना सकते हैं ? आपके पास एक ही घिसा-घिसाया जवाब है कि सत्य तो कटु और कठोर होता ही है !”

सोचता हूँ—चुपचाप सुनता ही क्यों न रहूँ। इस विषय में बोलने की मुझे ज़रूरत ही क्या है !

पर मेरे चुप रहने पर भी कुछ सोचकर लालासाँवरे उछल पड़े। बोले—“अच्छी बात है, तो अब इसका भी जवाब लीजिये। सभी जानते हैं कि सत्य एक सीधी बात हुआ करती है, जैसी-की-तैसी—ज्यों

की-न्हीं ! लेकिन क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि जीवन की दृष्टि में एक वेश्या अधिक सत्य है या वह भोली नारी, जो यह जानती ही नहीं कि सर्वस्व-समर्पण किस चिड़िया का नाम है ! पर काम-लिप्सा की उस भूख को कोसने के सिवा चारा क्या है, जो नारी के रग, रेशे, रोये—अंग-अंग की गठन—समय-समय पर उभरने, फैलने और सिकुड़नेवाले परिवर्तन—नाना प्रकार की भंगिमाएँ और मुद्राएँ, खुली आँखों से चढ़ती उतरती धूप में, बिल्कुल असली रूप और प्रकार में देखे और पाये बिना अतृप्त रहती आयी है ! अब आप बतलाइये एक तरुण व्यक्ति को क्या-क्या सत्य मानने को आपने विवश कर दिया है ! जीवन किसको सत्य मानता है ? उस भोली नारी को—या वेश्या को ?”

...फिर एक भोली नारी जब कभी किसी रसिया की बातों में आकर उसे मन-ही-मन अपना हृदय दे देती है, तब उसका वह सत्य उसके लिए मधुर होता है या कटु—सरल होता है या कठिन—प्रिय होता है या अप्रिय ? जाहिर है कि वह उसी के पीछे पागल हो जाती है । मैं पूछता हूँ, वह अपने भाई-बन्धुओं से असत्य बोलकर जिस वस्तु का प्रतिपादन करती है, वह क्या है ? और मैं आपसे फिर यह भी पूछता हूँ कि उसको अपनी भूख का सत्य अधिक प्रिय होता है या वह असत्य, जिसका निर्वाह करने में वह थर-थर काँपती है ! और जनाब, असत्य बोलने की शिक्षा उसे देता कौन है ? आप कहेंगे समाज, आप कहेंगे इंसानियत, आप कहेंगे नेचर । और तभी मैं वाअदब आपसे कह दूँगा—आदाबरज़ । क्योंकि आपके इस कथन का अर्थ यह हुआ कि स्वतः मानवता, स्वतः समाज और स्वतः यह प्रकृति भी असत्य है; क्योंकि वह हमें असत्य की शिक्षा देती है ।”

अब वे थोड़ी देर के लिए चुप रह गये । फिर हुक्का गुड़गुड़ाते, धुआँ उगलते और मुसकराते हुए बोले—“क्या खयाल है आपका ?”

अब मुझे बोलना पड़ा । मैंने कहा—“आपकी बातें मैंने ध्यान से सुनी । यह तो मैं नहीं कह सकता कि आप जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं,

वह सत्य है। लेकिन मैं आपके उस तर्क की प्रशंसा करता हूँ जो सोने को मिट्टी सिद्ध कर देता है; भले ही आप कहते रहे कि अन्त में जो सिद्ध होता है, वही यथार्थ है। क्योंकि मैं जानता हूँ जो यथार्थ है, उसको फिर सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। और जो सिद्ध नहीं हो पाता, हो सकता है कि वह भी वस्तुतः यथार्थ ही हो।”

“यहाँ भी आप ग़लती कर रहे हैं राजेन् बाबू।” लाला सोंवरे पन-डब्बा खोलकर कथई रंग के गीले कपड़े के भीतर से लगे-लगाये पान निकालते-निकालते कहने लगे— ‘मैं कहीं कह रहा हूँ कि कोई बात सत्य नहीं है? मैं तो केवल इतना कहता हूँ कि वस्तुओं के लक्षण और गुण, जब सबके लिए एक से सत्य नहीं है, तब उनके किसी एक गुण को आप सबके लिए यथार्थ कैसे मान सकते हैं?’

चुपचाप मैंने कह दिया—“क्षमा कांजियेगा, मेरा जन्म ऐसे परिवार में हुआ है, जिसने यह कभी सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया कि सूर्य माने जुगनू।”

“यही तो बड़ी विमृष्टि है बेटे राजेन्।” लाला सोंवरे कहने लगे— “अपनी जगह पर जुगनू सूर्य से कहीं अधिक सुन्दर है।” फिर एक डब्बी से क्रिमां निकालकर अंगुली पर चाटते हुए बोले—“अच्छा, अब इसी बात के लिए एक उदाहरण देता हूँ। सुनिये—

“दो बाल्टी अपने दायें-बायें रख लीजिये। एक में काफ़ी गरम पानी भर दीजिये, जितना गरम आप का हाथ सहन कर सके। दूसरे में बरफ़ डालकर उसमें पानी छोड़ दीजिये। अब अपने दोनों हाथों को दोनों बाल्टियों में डाल दीजिये और डाले रहिये दो-एक मिनट तक।

...अब एक बाल्टी पानी किसी कुँए का मँगवाईये। उस पानी में दोनों हाथ क्रम-क्रम से डालिये। परिणाम यह होगा कि एक हाथ के लिए उस बाल्टी का पानी गरम सिद्ध होगा, दूसरे के लिए ठण्डा।

...अब मैं आप से पूछता हूँ कि जो पानी कुँए से आया है, वह कैसा है?—गरम है या ठण्डा? हाथ आपके दोनों ही हैं; पर वह पानी एक

के लिए गरम है, दूसरे के लिए ठण्डा। इस प्रकार जब पदार्थ के गुणों में, हमारी स्थितियों, इतना अन्तर अनुभव करता है, तब उनकी किसी एक सत्ता अथवा प्रकृति को ही हम सत्य कैसे मान सकते हैं ?

...पर जानते हैं, यह सब स्वीकार करने के बाद, आप अप्रत्यक्ष रूप से, क्या कह रहे हैं ? आप कह रहे हैं कि संसार में सब अनिश्चित है—विश्वास, वचन, आश्वासन, संकल्प, धैर्य, शान्ति. । यदि निश्चित भी है कहीं कुछ, तो अनिश्चित काल के लिए। सब बदल रहा है ... घड़ी-घड़ी, पल-पल ... !”

इसी क्षण लाली आ गयी। मेवा की तश्तरी सामने रखती हुई लाला साँवरे से पूछने लगी—“अम्मा पूछ रही है कि अब मैं जाऊँ ?”

लाला साँवरे बोले—“हाँ, अब वह जा सकती है। शाम को अल-बत्ता ... अ .. बयनामे की लिखा-पढ़ी आर आज ही करने को तैयार हैं न ?”

“हाँ, आज भी कर सकता हूँ। दिक्कत सिर्फ इतनी है कि माँ से अभी तक मैं, इस विषय में, बात कर नहीं पाया हूँ।”

“देखिये, आखिर आपने पीछे कदम रख ही दिया ! खैर, कोई बात नहीं। ये बातें तो होती ही रहेगी। आप जितनी जल्दी हो सके, माँ से बात कर आइये।”

इसी क्षण उजागर आकर लालाजी से कहने लगा—“सरकार ज़रा अन्दर हो आयें !”

लालाजी उठकर अन्दर चले गये, कुछ बड़बड़ाते और मुँह बनाते हुए। तब लाली ने मेरे कान के पास मुँह ले जाकर कहना शुरू कर दिया—“अम्मा कह रही हैं कि अच्छा हो, लिखा-पढ़ी अभी हो जाय।”

मुझे इस बात में कुछ रहस्य-सा मालूम होने लगा। इसलिए बिना और कुछ सोचे मैंने कह दिया—“क्षमा कीजियेगा, इतनी जल्दी मैं कोई काम नहीं कर सकता।” और उत्तर सुनने तक को स्थिर न रहकर तुरन्त चल दिया। लाली यह कहती ही रह गयी—“सुनिये—सुनिये !”



## आठ

वर्षा का मध्यकाल चल रहा है। श्याम-घन-दर्शन तो होता जाता है; पर घनघोर वर्षण दुर्लभ हो गया है। साधारण वर्षा यदा-कदा हो जाती है; सो भी प्रायः ऐसे समय, जब हम पलंग पर आराम से लेटे हुए गंभीर निद्रा में विभोर रहते हैं। यहाँ तक कि हमें पता भी नहीं चल पाता कि सड़क पर बिना छाता या बरसाती के चलनेवालों की थोड़ी-बहुत खातिर भी हुई है या घड़ी-दो-घड़ी की छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही बुंदियों में ही रिम-रिम करके टाल दिया गया है। बल्कि घर के भीतर तो इन दो अवस्थाओं में से किसी एक का भी भान नहीं हो पाता। अलबत्ता जब हम दिवस की नयी छवि, उसकी नवीन छटा देखने को बाहर निकलते, बस तभी धुली-धुली साफ़ सड़क और उसकी भीगी चादर देखकर यह जान पाते हैं कि हाँ, रात को मिस्टर घनश्याम का दौरा हुआ है।

ऐसे ही एक दिन जब मैं मंडी में पहले-पहल आयी हरी-हरी मटर की छीमियों का मोल-भाव कर रहा था, तभी अचानक लहराते बालोंवाले, केवल छै इंच ऊँचे पपी को जंजीर से खींचते हुए एक ऐसे महानुभाव दिखलायी पड़ गये, जिनकी आँखों ने मेरी पूर्व पहचान को तुरन्त स्वीकार कर लिया। अब तो मेरे होंठ भी थोड़े-थोड़े हिले-डुले। पर इस तरह अकस्मात् मिल जानेवाले लोगों का नाम स्मरण न आने का मुझे पुराना रोग है। सो मेरे मुँह से निकल गया—“क्षमा कीजियेगा, थोड़ी-बहुत पहचान होने पर भी आपका नाम...?”

वाक्य अधूरा ही प्रकट हो पाया था कि उन्होंने मेरा धर्म-संकट दूर करते हुए कह दिया—“मैं मोदी फोटो-आर्टिस्ट हूँ, एक अदना-सा आदमी। सिविल-लाइंस पर मेरा स्टूडियो देखने आप शायद आये थे। कुछ बातें भी हुई थी। पर मेरा नाम याद रखना तो ऐसा कोई खास ज़रूरी भी नहीं।”

इतनी शालीनता से बातें करनेवाले लोगों से बात करने में मैं कुछ घबड़ाता-सा हूँ। इसलिए मैं कुछ संकोच में पड़ गया और मेरी समझ में न आया कि मैं इस पर क्या कहूँ।

तब मिस्टर मोदी ही बोले—“आपने जॉन रस्किन का एक कथन कोट किया था। लेकिन उस दिन के बाद तो फिर आप उस दूज के चाँद हो गये, जो ऊँदे-ऊँदे बादला में साफ-साफ दिखलाई तो नहीं पड़ता, पर कोई एक सफ़ेद और टेढ़ी लकीर की नोंक भर दिख जाने पर, जिसके लिए सोच लिया जाता है कि हो-न-हो है यही।”

अब मेरे मुँह से निकल गया—“हाँ, कुछ ऐसा ही कारण हो गया।”

इस पर मिस्टर मोदी पहले तो कुछ मुसकराये, फिर उन्होंने पपी को शोफर के हाथ में देते हुए कहा—“हो सकता है कि कारण भी कुछ हो, पर अगर उस दिन की बात को आपने कारण मान लिया हो, तो मुझे कहना पड़ेगा कि आप बड़े ही सेसिटिव हैं। और माफ़ कीजियेगा, ऐसे लोग इस मक्कार दुनियाँ के क्राबिल नहीं होते।”

भय-कम्पन सा अनुभव करता हुआ मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं सचमुच ऐसा ही आदमी हूँ। इसका फल यह हुआ कि फिर मेरे मुँह पर ताला-सा लग गया। तब बेत की बुनी हुई डोलची को शोफर के हाथ से लेकर सब्ज़ी की उस दूकान पर रखते हुए मिस्टर मोदी बोले—“शक तो मुझे उसी वक़्त हो गया था कि आप अब शायद ही आवेंगे। बल्कि आपको याद होना चाहिये, मैंने कहा भी था कि आप ऐसी मामूली बात का कुछ खयाल न कीजियेगा। लेकिन आख़िरकार आप पर उसका रियक्शन हो ही गया !”

अब भी मैं कुछ कह न सका; क्योंकि बात कुछ सही क्रिस्म की जान पड़ी।

तब मिस्टर मोदी बोले—“लेकिन अब तो वह बात वही-की-वही ख़तम भी हो गयी। आइये न किसी दिन। आपके लिए मैंने कई ऐसे

फोटोग्राफ्स छौट रक्खे है, जिन्हे देखकर यक्रीनन आपकी तबियत हरी हो जायगी ।”

तब चुपचाप मैने एक अँगरेज़ी कविता का स्मरण करते हुए कह दिया — “यदि कही उन स्वप्नों पर बोली बोली जा रही हो, जिनमे हमारे जीवन के आनन्द और क्लेश बोल उठते हों—और इतने मे उद्घोषक घंटा बजा दे—तो आप क्या लेना पसन्द करेगे ?” ❀

मेरा इतना कहना मिस्टर मोदी के लिए बहुत हो गया । अत्यन्त विस्मय के साथ वे मेरी ओर इकटक देखते रह गये ।

पास ही परवल की ढेरी लगाये एक बुड्ढा गा-गाकर चिल्ला रहा था—  
“आठै आने सेर लगाये, परवल आठै आने ।”... फिर एक फालतू ग्राहक आ मरा । बोला — “पोंच रुपये का चेज तो देना कुन्दन ।”

पर कुन्दन उसकी तरफ न देखकर हम लोगों से कहने लगा—  
“हुजूर बेंच पर बैठ जायँ, खड़े-खड़े बातें करने में आपको तकलीफ़ होती होगी ।”

अब हम लोग बेंच पर बैठ गये । मिस्टर मोदी बोले—“अब मैं आपको नहीं छोड़ूँगा । आप जिस तरह मानेंगे, मैं उसी तरह आपको राज़ी करूँगा । मैं एक नहीं दस फोटोग्राफ़ लूँगा आपके ।”

तब स्वभावतः मेर मुँह से निकल गया—“लेकिन अब मैने फोटो खिचवाने का इरादा त्याग दिया है ।”

पपी की जंजीर शोफर के हाथ मे थी; लेकिन पपी मिस्टर मोदी की गोद में आकर उनका मुँह सूँघ रहा था । तब उसे अलग हटाते हुए मिस्टर मोदी बोले—“नही-नही, ये सब बेकार की बातें हैं ।” और जैसे फिर

❀ इफ़ देअर वर ड्रीम्स दु सेल्  
मेरी-ऐएड-सैड दु ट्यल्  
ऐएड द कायर रंग हिज्ज बेल्  
ह्वाट बुड यू बाइ ?

मुझे समझाने लगे—“मैं तो सोच ही नहीं सकता कि क्यों—आखिर क्यों, यकायक आप एक बात तै करके फिर उसे इतनी जल्दी बदल देते हैं !”

अब यद्यपि हम लोग अपनी-अपनी सब्जी खरीदने में लगे थे, पर मोदी साहब बराबर कुछ-न-कुछ कहते ही जा रहे थे।—“इतनी जल्दी अपने इरादों को बदल देना, मैं नहीं समझता कि कोई अच्छी बात है !...यह देखो सड़ा हुआ आलू है। निकालो इसको। बल्कि मैं तो यही समझता हूँ कि आदमी के हर इरादे की कीमत है। ये छिमी ही आधा सेर और देना। अरबी नहीं चाहिये।...अपनी जगह पर आदमी का हर एक इरादा एक सिगनीफिकेन्स रखता है। अटनी ठीक है। न चले तो लौटा देना।”

सब्जी खरीदकर हम लोग मंडी से बाहर सड़क पर आये। और मैं जो विदा लेने की इच्छा से मोदी साहब को नमस्कार करने के लिए तत्पर हुआ, तो उन्होंने अपनी गाड़ी की ओर बढ़ते हुए कहा—“अभी आपको मेरे साथ चलना है। वहाँ मैं आने आदमी से आपकी सब्जी आपके मकान पर पहुँचवा दूँगा। इस बीच आप मेरे यहाँ थोड़ी देर टहरेंगे। वहाँ हम लोग चाय पीते-पीते कुछ गप-शप करेंगे और फिर आपको आपके यहाँ पहुँचा देंगे। है न ठीक ? मैं चाहता हूँ, आप अब ना न करें।”

जहाँ चलने की बात उठ रही है, वहाँ मेरे लिए अद्भुत आकर्षण है। और कुछ ऐसी बात है कि मैं रूपा-सौन्दर्य को मदिरा से भी अधिक नशीली वस्तु मानता हूँ। साथ ही इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि यह बात मैं केवल उन पावन घड़ियों के आधार पर कह रहा हूँ, जो मैंने वर्षों शैया पर लेटे-लेटे, रात-रात भर तारे गिनते और करवटे बदलते हुए व्यतीत की हैं। और मैं बहुत विनयपूर्वक गृह भी स्वीकार करता हूँ कि सौन्दर्य मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता है।

इसके सिवा एक बात और है। वह यह कि जो लोग सरिता के तट पर खड़े-खड़े, लहरों, धाराओं और भँवरों में पड़े बिना, कल्लोलमयी अनु-

भूतियों और समय—असमय उपस्थित हो उटनेवाली संकटापन्न परिस्थितियों का मूल्यांकन केवल अनुमान से या पुस्तकें पढ़कर कर लिया करते हैं, मैं उस जाति का व्यक्ति बनना अपने लिये सर्वथा अपमानजनक समझता हूँ।

इसलिए विवश होकर मुझे मिस्टर मोदी का प्रस्ताव स्वीकार कर लेना पड़ा।

..

...

..

बंगला अभी नया बना है। सड़क पर चलते हुए दूर से स्पष्ट जान पड़ने लगता है कि इसका निवासी अवश्य ही एक सम्पन्न व्यक्ति होगा। फाटक के भीतर प्रवेश करते ही, दायी-बायी दोनों ओर फैलती—आँखों को प्यारी लगती—पुष्पों और पत्तियों के गमलों की पत्कियाँ मिलती है। इन पंक्तियों के बीच हरी, श्वेत और कुछ-कुछ पीत वर्ण की दूब से आच्छादित भूमि-खण्ड है और द्वार-मंडप की सीढ़ियों के दोनों ओर ताड़ के पौधों के बड़े-बड़े पत्ते लहरा रहे हैं। द्वार पर दोनों ओर मेहराब-दार परदा पड़ा हुआ है, जिसके बीच में गाँठ है और कोनों पर पतली-पतली लटों के फुँदने लटक रहे हैं। सामने एक बड़ा सोफासेट है, इधर-उधर कई गद्देदार कुर्सियाँ, जिनमें एक पर पिछले दो पैरों के बल बैठी हुई एक चुहिया अपने अगले दोनो पैरों से सम्हाले हुए बिस्कुट के एक टुकड़े को इतमीनान के कुतर रही है। फर्श पर नीली दरी बिछी है, जिसके बीच का भाग चारोंओर से हलका पड़ता और एक गोलाई बनाता हुआ श्वेत हो गया है। द्वार के ठीक सामनेवाली दीवाल पर कोई तीन फीट लम्बा और दो फीट चौड़ा दर्पण इस तरह लगाया गया है कि नवागन्तुक आते क्षण अपनी शारीरिक सम्पदा, वेशभूषा और मुखाकृति की भाव-भंगिमाओं का ज्ञान सहज ही प्राप्त कर सकता है।

इस कमरे में मुझे बिठाकर मिस्टर मोदी बायीं ओर पड़ी हुई चिक को उठाते हुए धीरे से बोले—“हीरा, इधर निकल आओ तो मैं तुमको

एक ऐसे स्कालर से मिलादूँ, जिनकी बातें और विचार सुनकर तुम खुशी से नाच उठोगी। और मिस्टर राजहंस, यही आप भी आ जायँ। मेरा खयाल है, इनसे मिलकर आपको भी कम खुशी न होगी।”

क्षण भर में मिस मोदी और एक अन्य विशाल मूर्ति उस कमरे में आ गयी। मिस्टर मोदी ने परिचय कराया—“यह मेरी सिस्टर हीरा मानिक है और आप हमारे एक नये और निराले, पहले कस्टमर और बाद में फ्रेंड मिस्टर।”

मैंने कह दिया—“राजेन्द्र।” और तत्काल मेरी दृष्टि मिस मोदी पर जा पड़ी।

जारजेट की श्वेत साड़ी है और चिकन का ब्लाउज़। काली जाली से बँधा हुआ केश-गुच्छ सिर पर सघन-घन-घटा की भाँति छाया है। एक-आध उच्छ्रंखल लट मस्तक पर कभी-कभी लहरा उठती है। फाउन्टेनपेन का क्लिप ग्रीवा के नीचे ब्लाउज़ में उस स्थल पर नत्थी किया हुआ है, जहाँ से यौवन को श्रॉत्रियों के आक्रमण होते हैं। पहलदार लैंसेज़ का रिंग लेस चश्मा नासिका को दबाता हुआ-सा फिट किया हुआ है। नेल पालिश से कनिष्ठिका का बड़ा हुआ नख गहरा लाल रँगा हुआ है।

मन्द-मन्द-हास बिखरती, हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई मिस मोदी बोली—“हमारे यहाँ पहले परिचय में कहा जाता है, आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। लेकिन मैं सोचती हूँ, एक दूसरे को अच्छी तरह समझे बिना ऐसा कैसे कहा जा सकता है! फिर भी ब्रदर ने आपका जैसा परिचय कराया, उससे अगर मैं प्रसन्न होने की बात न कहूँ तो मुझे खुद ही अच्छा न लगेगा!” और मिस्टर मोदी बोले—“और आप हीरा के नये मास्टर साहब मिस्टर राजहंस बी० ए०, पी० डिप०।

ये राजहंस महाशय खादी का एक साफ सूट धारण किये हुए हैं और जूते आधे सफ़ेद, आधे ब्राउन। मुँह में धीरे-धीरे सुलगता और धुवाँ उगलता हुआ एक पाइप लटक रहा है। वर्ण गोरा तो नहीं कदा जा सकता, लेकिन गेहुँआ भी अगर है, तो पंजाबी।

मुझे देखते-देखते पहले तो आप सहम गये। फिर जान पड़ता है, कुछ सोचकर बोले—“मैं आपको जानता हूँ; लेकिन आप मुझको जिस ढंग से जानते हैं, उसका मुझे अफ़सोस है। हालाँकि अफ़सोस करने की ऐसी कोई बात नहीं है।”

मिस मोदी को इस पर कुछ आश्चर्य हुआ। तब तक फिर मिस्टर राजहंस बोल उठे—“बहुतेरी बातें मेरी ज़िन्दगी में ऐसी थीं कभी, जिनकी याद मुझे एक अरसे तक नहीं भूली। लेकिन ब्लाटेड पास्ट पर रोना अब मैंने छोड़ दिया है।”

अब तक मैं यही सोच रहा था कि इन मास्टर साहब को कहीं-न-कहीं देखा है मैंने। लेकिन बारम्बार प्रयत्न करने पर भी स्मरण आ नहीं रहा था। पर मिस्टर राजहंस की इस बात से भूट मैं समझ गया कि अरे! ये तो मुरली बाबू है।

थोड़ी देर में चाय मेरे सामने आ गयी। हीरा एक चित्र बनाने में संलग्न है। स्पष्ट जान पड़ता है कि वह चित्र-कल्पना में डूबी हुई है। पंखे की हवा से उसकी साड़ी का पल्ला कुछ धृष्टता दिखला रहा है। ए-ए-ए ये गिरा। बौह की मांसलता, गौरवर्ण का सलोनापन, लोमहीन अनावृत स्कन्धमूल, श्वास-प्रश्वास के मद-मद आरोह-अवरोह का प्रभाव, यह ब्रह्मजम्बुजद्वय का दुर्दुर्लभ ज्वार। तूफ़ान और किसे कहते हैं?

“आपकी चाय ठंडी पड़ जायगी मिस हीरा!” मैंने कह दिया। और एक तरह से मेरा यह कथन हीरा के लिए प्रथम था।

हीरा ने तत्काल मेरी ओर देखा, फिर तूलिका का प्रयोग करते-करते एक होंट दबाया, तो एक दुःस्वप्नी भर मन्दहास झलक उठा। फिर उसने तूलिका रखदी और बोली—“मेरी चाय कभी ठंडी नहीं पड़ती।” और कप उठाकर सिप करने लगी। फिर चित्र की ओर देखा और बोली—“अभी तो सिर्फ़ छाया-ही-छाया जान पड़ती है।” फिर राजहंस की ओर देखने लगी।

तभी हाथ से पाइप पकड़कर राजहंस बोले—“इमैजरी भी हस्त

के अन्दाज़ की उस फैसी का ही नाम है, जो ज़ोनत की रंगीनियों से दिलके पदों पर अक्स हो जाया करती है।”

सोचता हूँ, इन राजहंस की बड़ी महिमा है। कब और किस तरह ये मुरलीबाबू से राजहंस बन गये, कैसे इन्होंने बी० ए० कर लिया और साथ ही पेंटिंग का डिप्लोमा भी प्राप्त कर लिया कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है। तब पर तब यह कि—ब्लाइड पास्ट पर रोना आपने छोड़ दिया है!

उस क्षण राजहंस पाइप से धुआँ उगल रहे थे और हीरा चाय पी रही थी।

तब जिसको एक शब्द में ‘सार-गर्भित’ कहते हैं, उसी भाषा में मैंने कह दिया —“और जो हुआ सो हुआ, पर उस दिन आपसे भेंट झूठ हुई!”

फैलाये हुए पैर को कुछ पीछे करके तत्काल जैसे अपने को सम्हालते हुए राजहंस साहब बोले—“यों चाहे न भी होती, पर नेचर हममें कोई सडें चेंज लानेवाली है। जान पड़ता है, इसीलिए बिल्कुल सही तौर पर आपसे भेंट होना लाज़िमी हो गया।”

वास्तव में ये राजहंस हैं बड़े जीवट के। दुनियाँ उन्हें कुछ समझे, कुछ कहे, पर वे हैं कि प्रयोग-पर-प्रयोग किये जा रहे हैं। और मेद खुल जाने का झरा भी भय नहीं है उन्हें। तब मैंने कह दिया—“मगर आपने मुझे कभी यह नहीं बतलाया कि आप पेंटिंग भी जानते हैं। जानते ही नहीं, उसमें डिप्लोमा भी प्राप्त कर चुके हैं।”

अभी इतना ही प्रकट करना मैंने आवश्यक समझा। क्योंकि कुछ ऐसी बात हुई कि मैं सोचने लगा—सब कुछ बनावट और कृत्रिम होने भी यदि मुरलीबाबू ‘राजहंस’ नाम के ट्यूटोर का अभिनय करने में सफल हो जायें, तो उनके हितों और स्वार्थों में विघ्न क्यों डाला जाय? इसके सिवा किसी भी प्रयोगशील व्यक्ति के मार्ग में रोड़ा अटकाना मेरे स्वभाव के बिरुद्ध है।



जान पड़ा, मेरी बात पर राजहंस कुछ अस्तव्यस्त हुए हैं। उत्तर की अपेक्षा पाइप की तम्बाकू सुलगा-सुलगाकर धुँआ निकालने की ओर उनकी प्रवृत्ति विशेष है। और इसी बहाने उत्तर क्या दें, यही सोच रहे हैं।

अब होरा चाय पीकर पुनः चित्र बनाने में लग गयी थी। इतने में मिस्टर मोदी एक एलबम ले आये और डस्टर से उसकी जिल्द झाड़ते हुए बोले—“बड़ी मुश्किल से मिला। बात यह है कि इधर वर्षों से यहाँ ऐसा कोई शख्स आया ही नहीं, जिसको दिखलाने के लिए इसको निकालने की तबियत होती।”

हीरा यद्यपि एक पत्नी की हरीतिमा में पीत वर्ण की नसें उभारने की चेष्टा में थी; फिर भी मिस्टर मोदी के इस कथन पर वह घुम पड़ी और बोली—“फ़ादर तो अक्सर कहा करते थे—जानवरों को मैं अपना प्यार दे सकता हूँ। लेकिन उस जानवर को नहीं, जो सूरत-शकल से आदमी कहलाता है।...हमारे यहाँ एक बार एक साहब किसी दूसरे काम से आये थे। शायद फरनीचर का बिल था कोई उनका। मैं तब भी एक लैडस्केप बना रही थी। क्षण भर देखते-देखते वे बोले—क्यों साहब, इसको बनाने में आपको कैसा लगता है? क्योंकि इसका पैसा तो कोई भला क्या देता होगा! फिर इतनी मेहनत बेकार ही न जाती होगी!”

मेरे मुँह से निकल गया—“ख़ूब!”

इस पर राजहंस साहब उठे और पैट की बेल्ट को कुछ ऊपर खिसकाते हुए बोले—“आदमी की शकल में जानवर होते हैं, मानता हूँ; मगर फिर आपको क्या कहियेगा, जो आदमी को जानवर समझने और बनाने की कमाई खाते हैं?” और इसके बाद वे पुनः अपनी कुरसी पर पूर्ववत् बैठ गये।

बात कुछ अप्रासंगिक-सी जान पड़ी। मिस्टर मोदी तो मेरी ओर संकेत करते हुए तुरन्त बोल उठे—“देखा आपने, मिस्टर राजहंस मौक़ा पाने पर कम्युनिज़्म का प्रचार करने में चूकते कभी नहीं।”

मैं सोचने लगा—जहाँ तक प्रचार का सम्बन्ध है, कोई आदमी उससे

परे नहीं है। यह बात दूसरी है कि कोई प्रचार खुला हुआ रहता है, कोई छिपा हुआ।

और राजहंस की ओर देखनी हुई हीरा बोली—“आपका मतलब शायद यह है कि हर एक पैसे वाला गरीब और मज़दूर आदमी को जानवर समझने और बनाने की कमाई खाता है।”

“इसमें भी कुछ शक है क्या ?” राजहंस के शब्द थे।

सुनते ही हीरा का मुख लाल हो गया, होंठ फड़कने लगे। सावधानी से तूलिका को एक ओर रखती-रखती वह तपक से बोली—“हरगिज़-हरगिज़ नहीं। व्यक्तिगत व्यवहार में बहुतेरे एरिस्टोक्रेट्स साधारण अपढ़-कुपड़, कुली, मज़दूर और नौकर के लिए बड़े ही क्र्यूड और श्र्यूड होते हैं, मानती हूँ। आत्मत, चालाक और चिड़चिड़े—यहाँ तक कि कभी-कभी तो समाज के लिए विचारणीय और चिन्त्य भी बन जाते हैं, यह भी मानती हूँ। किसी भी क्षण वे अपने आत्माय-से-आत्मीय व्यक्ति का अपमान कर बैठते और फिर होश आने पर पछुताते हैं, यह भी मानती हूँ। पर वे आदमी को जानवर न कर्मा समझते और न उसे समझने की चेष्टा ही करते हैं। स्वभाव से व्यक्तिवादी होने के कारण उनके व्यक्तियों में रूखापन या कठोरता पैदा हो जाती हो, यह बात दूसरी है।”

“इसमें बुरा मानने की बात नहीं है मिस हीरा।” राजहंस फिर उठकर पैट की बेल्ट को ऊपर की ओर खिसकाते हुए बोले—“सिर्फ सरमाया-दार ही नहीं, सियासी मामलों में हुक्मन के सारे कज़-पुरज़े तक रात-दिन यही किया करते हैं। एक इन्सटैंस आपके सामने रखता हूँ।...अभी-अभी कल की बात है, एक साहब सेक्रेडक्लास में सफर कर रहे थे। एक टी० टी० ई० ने टिकट देखकर कहा—यह कम्पार्टमेंट फ्रस्टक्लास का है—और आपका टिकट है सेक्रेडक्लास का। लिहाज़ा आपको ४५॥—) और देने होंगे। मुसाफ़िर ने हरचद कहा कि दूसरे दर्जे का ही यह डब्बा है; पर टी० टी० ई० ने बाहर आकर उसे चाक-स्टिक के हरेफों में फ्रस्टक्लास लिखा हुआ दिखा दिया।

मुसाफिर ने कहा—“आपके लिख देने से कुछ नहीं होता । ”

टी० टी० ई० ने जवाब दिया—“मेरे लिख देने से क्या होता है, यह आपको अभी थोड़ी देर में मालूम हो जायगा ।” और इतना कहकर उसने रेलवे-पुलिस के दो सिपाहियों को भट से बुला लिया और उसे डब्बे से उतारकर हिरासत में ले लेने का हुक्म दे दिया ।

...तब मुसाफिर को अन्य उपाय न देख, रसीद न लेकर मजबूरन तीस रुपये पर समझौता करना पड़ा; क्योंकि पूरा रुपया उसके पास था ही नहीं । बाद में जब गाड़ी चलने को हुई और मुसाफिर को याद आया कि यह समझौता तो यही तक लिये हुआ है । मुझे तो दिल्ली जाना है । ऐसी हालत में आगे का भी कुछ इन्तिज़ाम कर लेना चाहिये । अतः जब उसने यहाँ बात उस टी० टी० ई० से कही, तो उसने कह दिया—“तुम फ्रिकर मत करो, मैं अभी इसका भी इन्तिज़ाम किये देता हूँ ।” और इतना कहकर वहाँ से टहल गया । ...थोड़ी देर में जब गार्ड ने हरी भंडी दिखलायी और विसिल दी, तो वह मुसाफिर क्या देखता है कि पुलिस का जो सिपाही उसे पकड़ने आया था, वही खिड़की के पास खड़ा होकर चाक-स्टिक से लिखे अंगरेज़ी के फ़र्टक्लास शब्द को डस्टर से मिटा रहा है !”

इस पर मिस हीरा बोल उठी—“मुझे तो यह सारी घटना गढ़ी हुई मालूम होती है ।”

और मिस्टर मोदी ने कहा—“घटना चाहे सही भी हो, पर वह मुसाफिर था बिल्कुल बेवकूफ़ । उसे इस बात पर अड़ जाना चाहिये था कि कोई भी सेकेडक्लास का डब्बा महज़ चाक-स्टिक से लिख देने पर फ़र्टक्लास का नहीं हो सकता, चाहे उसके अक्षर किसी भी अधिकारी के लिखे हुए क्यों न हों ।”

राजहंस साहब मुसकराने लगे । बोले—“सवाल मुसाफिर के बेवकूफ़ या अक्लमन्द होने का नहीं है । सवाल तो सिर्फ़ यह है कि जो भी क्लास आदमी को बेवकूफ़ या जानवर बनाकर उससे रुपया टगता है, उसे

आप कहेंगे क्या ? ”

चाय की ट्रे नौकर उठा रहा था । मिस्टर मोदी अपना एलबम खोले बैठे थे । मिस हीरा मानिक जिस तूलिका से चित्र बना रही थी, वह उनकी ढीली अँगुलियों से गिर पड़ी थी । सभी एक-दूसरे की ओर देखते हुए बगलें झोंक रहे थे । कोई कुछ भी नहीं कह रहा था ।

इतने में राजहंस घड़ी देखते हुए उठ खड़े हुए । एक इतमीनान के साथ चलते क्षण जो उन्होंने हाथ बढ़ाया, तो मुझे भी अपना हाथ बढ़ा देना पड़ा ।

अभी हाथ-में-हाथ आया ही था कि राजहंस बोले—“एक अरसे के बाद आपसे मुलाक़ात हुई । मेरे लायक कोई ख़िदमत हो, तो उम्मीद है आप ज़रूर मुझे याद प्रमायेगे ।”

“ज़रूर-ज़रूर” मेरे मुँह से निकल गया । और तभी राजहंस चले गये ।

आधा मिनट यो ही बीत गया । एलबम के पन्ने उलटते-उलटते यकायक रुकते हुए मिस्टर मोदी बोले—“सच-सच बतलाइयेगा, आदमी कैसा लगा ? ”

मैंने कहा—“मैं तो अभी कुछ कह नहीं सकता; क्योंकि कोई भी आदमी जैसा शुरू-शुरू में मालूम होता है, वैसा हमेशा तो बना नहीं रह पाता । हाँ, एक बात मैं कह सकता हूँ । और वह यह कि जिस जाति का आदमी वह रेलवाला मुसाफ़िर था, यह उस जाति का नहीं है ।”

हीरा बोल उठी—“मैंने तो केवल चिढ़ाने के विचार से कहा था कि घटना गढ़ी हुई है । लेकिन कह जाने के बाद फिर मुझे अप्रसोस ही हुआ । मालूम नहीं क्यों और कैसे लोग झूठ बोलते हैं ! मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे मैंने कोई पाप किया हो !”

हीरा जिस क्षण यह बात कह रही थी, उसी समय एक आदमी अंदर आता-आता ठिठुक गया । मिस्टर मोदी बोले—“क्यों, किसको चाहते हो ?”

उसने जवाब दिया—“यहाँ अभी एक बाबू साहब आये थे । अच्छा

सा उनका नाम है। दुबले-पतले है ज़रा ।”

मैने पूछा—“सूट पहनते है ?”

वह बोला—“कभी-कभी ।”

मिस्टर मोदी पूछ बैठे—“राजहंस उनका नाम तो नहीं है ?”

उसने जवाब दिया—“नाम तो उनका मुस्लीमनोहर है साहब । बड़ी मुश्किल से तो याद आया मुझे । कई दिन से मैं उनको इस बंगले पर आता देखता हूँ ।”

हीरा बोली—“अभी-अभी चले गये है । अब कल फिर आयेंगे ।”

कानो में लुरकी देखकर मिस्टर मोदी ने पूछा—“कपड़े धोने का काम करते हो क्या ?”

तब उसने जवाब दिया—“हाँ, मैं कलकत्ता लाण्ड्री में धुले हुए कपड़ों पर स्त्री करता हूँ । ये साहब हमारे यहाँ से चार दिन के लिए एक सूट किराये पर ले आये थे ; मगर पन्द्रह दिन हो गये । मकान पर गया तो पता चला, अब दूसरी जगह रहते है । अजीब बात है । कुछ समझ में नहीं आता, किस आदमी का भरोसा किया जाय, किसका नहीं ।”

इतने में मिस्टर मोदी बोल उठे—“बस-बस आज इतना ही । बाक़ी कल—सबेरे आठ बजे । और कुछ कहना है तुमको ? ...तो जाओ । बस, हो गया ।”

उत्तर में “बहुत अच्छा” कहकर वह आदमी सिर नीचा कर चला गया ।

तब मिस्टर मोदी अपने एलब्रम का पहला चित्र दिखलाते और उसका परिचय देते हुए कहने लगे—“इन बतख़ों का स्नैप-शॉट मैंने नैनीताल में लिया था ।”

और इसी क्षण मेरी दृष्टि जो हीरा की ओर जा पड़ी, तो क्या देखता हूँ कि उसकी मुख-श्री म्लान पड़ गयी है और आयत नयनों की दोनों कोरे झलमलाते हुए उज्ज्वल आँसुओं के आगमन की सूचना देती हुई

उमड़ते हुए श्याम-घनों की मूक भूमिका बन गयी है !

लोग मुझसे कहते हैं—“आपको नींद नहीं आती बारह-एक-दो-दो बजे तक ।...लेकिन क्यों ? शायद आप चाय ज्यादा पीते हैं । फिर भी ऐसा होना तो न चाहिये ।”

सचमुच मेरी इस हालत पर उनको बड़ा आश्चर्य होता है । यह समझ ही नहीं सकते कि किसकी चिन्ता मेरी नींद हरण कर लेती है ! वे यह सोच ही नहीं सकते कि ऐसी भी एक जाति इस धरती पर रहती है जो अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए सोचा करती है !

मैं सोचता हूँ—राजहंस कुसूरवार क्यों है, तुच्छ क्यों है ? केवल इसीलिए न कि वह पैसेवालों का आश्रित है !

तो ये जो सड़कों पर पचासों आदमी नित्य जीविका-रोज़ी और पैसों के नाम पर चक्कर काटते रहते हैं—इधर-से-उधर, भूखे, हारे-थके, उदास उदास, रोनी-सी सूरत लिये, मैले-कुचैले, फटे कपड़ों में, चिथड़ों में, नंगे सिर, नंगे पैर, दाढ़ी बड़ी हुई, नखों में मैल भरा हुआ, बदन से बास आती है—न घर-द्वार, न माता-पिता, न कोई आश्रयदाता । भीख मांगते और सड़कों पर एक किनारे पड़े रहते हैं । गड्ढों में धसी आँख और हड्डियों के ढाँचे, सरिता की धारा पर बहते जा रहे मुर्दे की तरह ! क्या ये सभी तुच्छ हैं ? क्या इनकी ज़िन्दगी कोई अर्थ नहीं रखती ? इनको पैदा करने —जन्म देने—में उस जगन्नियन्ता ने भी कोई भूल या नादानी की है ? या ये हमारे ही संगठित पापों के फल हैं ? और जो आदमी समाज का एक अंग बनकर रहता है, सड़क से गुज़रता हुआ, मेले-ठेले या तीर्थों के स्टेशनों के बाहर इन दृश्यों को खुली आँखों से देखता है और कुछ करता नहीं, वह इस पाप-संगठन से कहाँ तक बरी रह सकता है !

राजहंस, हीरा मानिक का खूट्टर है । और आज उसके पास पहनने को कपड़े नहीं हैं ! एक धोत्री के यहाँ के कपड़े पहनकर वह अपना खूशन करने आया था !

हीरा ! राजहंस की इस दुर्दशा पर अगर तुम्हारी आँखों ने आँस

बहाये है, तो ... तुम मेरी जाति की हो ! तुम हीरा हो, मानिक हो और ... !

## नौ

दूसरा रिकार्ड लगाने ही जा रहा था कि जान पड़ा, कोई आ रहा है ।

आये ।

गीत के बोल थे—“क्यों तुमने याद दिलादी ?”

फिर सोचा—सब बेकार है । मैं किसी की याद क्यों बनूँ !

भाभी ज़रूर किसी चीज़ की खोज में ही इधर आयी होगी । परन्तु जब यह गीत समाप्त हो गया, तो यकायक एक खिलखिलाहट मेरे कर्ण-रंघ्रों पर ध्वनित होने लगी । पहले बड़ी भाभी आती हुई देख पड़ी, गम्भीरता और संयम का मूर्ति; फिर छोटी भाभी सामने आयी, हास-माधुरी का मानो विवश निरोध करती हुई । फिर निकट आकर खड़ी हो गयी और बड़ी भाभी के कान में फुसफुसाने लगी ।

तब यकायक मैं बोल उठा—“जो कुछ कहना हो साफ़-साफ़ कहो । कोई गीत अधिक पसन्द हो, तो कहो दुबारा लगादूँ । मुखड़ा खोलने में संकोच हो, तो सारे-के-सारे रिकार्ड्स सामने पेश करदूँ । तबियत की बात ठहरी । इसमें छिपाने और संकोच करने की ज़रूरत ही क्या है ?”

अपने आप पर आश्चर्य होने लगा कि यकायक यह इतना उत्साह मुझमें कहाँ से उमड़ पड़ा !

जान पड़ा, बात कुछ और है । दोनों मेरे पास बैठ गयी । बैठते ही बड़ी भाभी बोली—“क्या लाला, मौसी से बराबर सुनती आ रही हूँ कि स्त्रियों से मिलने-जुलने में तुमका आग्रह तब तक संकोच हो होता आया है । यहाँ तक कि पास बैठने और बात करते हुए भी लजाते हो ! फिर यह समझ नहीं पा रही हूँ कि अपनी पसंद का यह कैसा गीत अभी तुमने लगाया था । वह कौन सी याद है, किसकी याद है, जो मन को इस

बेदरदी से कचोटने लगती है ?”

कभी-कभी मैं सोच लिया करता हूँ कि कुछ छिपा रखने का काम मेरे बस का नहीं है। मनोभावों को दबाकर रखना मुझे कभी सहन नहीं हुआ। इसीलिए मैंने बिना विचारे कह दिया—“आज नहीं है, तो चार दिन बाद होगी। होना उसका निश्चित है। आप लोग जा रही हैं न ?”

सोचता हूँ—मैंने यह बात न कही होती, तो कितना अच्छा होता ! लेकिन तब बड़ी भाभी बोल उठी—“जी हाँ, इतना जानती हूँ कि बात बनाने में एक तुम अकेले नहीं, सारी पुरुष-जाति कितनी चतुर होती है।”

बड़ी भाभी के मन में जो कुछ था, उन्होंने सहज भाव से हँसकर प्रकट कर दिया; लेकिन छोटी भाभी की भंगिमा से यह प्रकट नहीं हुआ कि मैंने केवल उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा से ऐसा कहा है। क्योंकि अपनी जीजी के साथ घूमते और चलते क्षण एक बार उन्होंने मेरी ओर जिस दृष्टि से देखा, वह कुछ और ही बात कह रही थी।

तब इच्छा हुई कि उन्हें रोक लूँ और पूछूँ कि सच-सच बतलाओ भाभी, क्या तुम भी ऐसा ही समझती हो ? जिस पुरुष जाति के सम्बन्ध में बड़ी भाभी ने ऐसी बात कही क्या मैं भी उसी का एक प्रतिनिधि हूँ ? मैंने क्या सदा तुम्हारा स्तुति-गान ही किया है ?

लेकिन ऐसा अवसर नहीं आया। इसी क्षण बड़ी भाभी बोल उठी—“यहाँ एक ओवलटिन का डब्बा था। मैंने ही भेजा था उस दिन चँदिया के हाथ।” फिर इधर देखा, उधर देखा और एक अलमारी खोलकर बोली—“यह रहा !” फिर बिना और कोई बात छेड़े चल पड़ी।

जब आगे-आगे बड़ी भाभी नीचे उतरने लगी, तभी छोटी भाभी ज़रा ठहर गयी। उनकी यह आदत-सी पड़ गयी थी कि जब कभी वे अस्थिर होती, इसी प्रकार ठिठुककर किसी ओर देखती रह जाती। ऐसा प्रतीत होता, जैसे कुछ खोज रही हों। फिर मालूम नहीं क्या सोचकर बड़ी भाभी लौट पड़ी और पास आकर कहने लगी—“मेरी चले तो मैं तुम्हें कभी आँखों से ओट न होने दूँ।” और आँखों को रुमाल से पोंछने लगी।



“और मेरी चले, तो मैं सरकार को पलकों की ओट रखकर मानूँ ।” एक गहराई का पुट देकर स्वर-मे-स्वर मिला दिया छोटी भाभी ने !

“जाओ, तुम ठठेली करती हो ! हटो तो यहाँ से ।” धक्का-सा देकर बड़ी भाभी कहने लगी—“अच्छा, क्या हम सब लोग एक साथ नहीं रह सकते ?”

“एक साथ ! अरे, तुम क्या कहती हो जीजी !” छोटी भाभी बोल उठी—“अबमर आने पर हम लोग एक दरवाजे की कोठरी में भी रह सकते हैं ।” और पुनः हँसने लगी । पर इस बार बड़ी भाभी इस बात को सहन न कर सकी । कहने लगी—“बस-बस बहुत हो चुका । रोने के वक्त हँसना और हँसने के वक्त रोना पागलपन का लक्षण है ।”

सुनकर छोटी भाभी गम्भीर हो गयी । हँसते क्षण खड़ी थी, अब पलंग पर आकर बैठ गयी । फिर बैठते दर भी नहीं हुई थी कि लुढ़क पड़ी । पहले भान हुआ, कदाचित् आराम करना चाहती है, पर अब प्रतीत हुआ, जैसे आप ही-आप नग्न मुँद गये हैं ।

मैंने साधारण भाव से पुकारा — “भाभी ! ओ भाभी !!”

कोई उत्तर नहीं मिला ।

तब बड़ी भाभी धवरा उठी । बोली — हाय, यह हो क्या गया रानी को !

मैंने कह दिया — “आप धवरायें नहीं । अभी तबियत ठीक हुई जाती है ।” और मैं छोटी भाभी का कन्धा पकड़कर हिलाने-डुलाने लगा । फिर मैंने कहा—“क्या तुम मेरी बात सुन नहीं रही हो भाभी ! देखो, मैं तुम्हारा राजेन्द्र हूँ ।”

मैं कहने का तो ऐसा कह गया, लेकिन मेरा अन्तःकरण जैसे भीतर-ही-भीतर हिल उठा । मैं सोचने लगा — नियति की यह कितनी निर्मम लीला है कि मैं भाभी से बिल्कुल उलटी बात पूछ रहा हूँ । क्या उनकी यह मूर्छा मूक भाषा में स्पष्ट रूप से, यह नहीं कह रही है कि वे जो इस अखिल जगत के स्वामी हैं, उन्होंने न तो भाभी के तन की बात सुनी है — न मनकी । वे ही क्यों, स्वयं उनके स्वामी बननेवाले न भी

जान पड़ता है नहीं सुनी !

बड़ी भाभी रो पड़ी ।

मैने कह दिया — “रोने के बजाय यदि आप दौड़कर पानी ले आयें, तो ज्यादा अच्छा हो ।”

जब घबराहट में बड़ी भाभी दौड़ती, गिरती-पड़ती नीचे चली गयी, तब मुझे खयाल आया कि पानी तो मेरे पल्ले के पास होना चाहिये ।

उस समय सच पूछिये तो मेरा हृदय भी धक-धक कर रहा था । यद्यपि मुझे इस बात का पक्का विश्वास था कि अभी-अभी थोड़ी ही देर में भाभी को चेतना आ जायगी; लेकिन इस घटना से मेरा हृदय जैसे गलने लगा । पाप-पुण्य के भेदाभेद का भाव एक झटके के साथ लुप्त-सा हो गया और मैंने वे प्रयोग करने प्रारम्भ कर दिये, जो केवल शरीर के द्वारा मन के तारों में झटकार उत्पन्न करते हैं । मैं नहीं जानता, एक सखा के नाते मैं उनका अधिकारी था या नहीं । लेकिन वे जिनसे मेरे तन-मन का कोई भेद नहीं छिपा, विश्व के कण कण में जिनकी व्यापक सत्ता निरन्तर देखता हूँ, वे ही जानते हैं कि उन प्रयोगों में मैंने जिस बात का ध्यान रक्खा, वह केवल यह थी कि ऐसी स्थिति में भाभी के पतिदेव—स्वयं भाई साहब—को भी जिसमें कोई आपत्ति न होती, उससे रक्षा भर भी आगे बढ़ने का अधिकार मुझे नहीं है ।

मैंने उन्हें सीधा पल्ले पर लिटा दिया । फिर क्रम-क्रम से उनके दोनों पैरों को, जो पड़े पड़े हुए थे, घुटनों के द्वारा खड़ा कर-करके पुनः चित्त कर दिया । मैंने उनकी हथेलियों को दबाया और उनमें गुदगुदाया । कई बार उनकी अँगुलियों को समेट-समेटकर उन्हें मुट्ठी की तरह बनाया और फिर उन्हें खोल-खोल दिया । मैंने उनकी पलकों और भ्रुकुटियों को अत्यन्त कोमल, मन्द स्पर्श और घर्ष से छेड़ा और उन्हें जगाया । पानी के छींटे लगाये और पखा पूरे वेग पर कर दिया ।

पर इस अवसर पर बिना बोले मुझसे नहीं रहा गया । मुझे कहना ही पड़ा—“मैं तुम्हारी यह व्यथा देख नहीं सकता भाभी । आँखें खोलो ।

देखो, कौन तुम्हारी ओर ताक रहा है ? बड़ी भाभी ने तुम्हें हँसने से मना किया था; लेकिन मैं अपने जीवन की सारी साधना को तुम्हारे पवित्र चरणों पर समर्पित करता हुआ तुमसे सानुरोध निवेदन करता हूँ कि तुम जीवन की इस गतिविधि पर जी खोलकर हँसो।”

फिर मैंने मन-ही-मन यह भी कह डाला—हँसो कि तुम्हारे माता-पिता ने क्या सोचकर तुम्हें ऐसी परिस्थिति में डाल दिया ! हँसो कि समाज ने क्या समझकर ऐसा सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर लिया ! हँसो कि आज़ाद हिन्दुस्तान का विधान आज तुम्हारी ओर कैसा डुकुर-डुकुर ताक रहा है ! हँसो कि पति-परमेश्वर के पुरुषार्थ की यह कैसी पावन महिमा है !

यकायक सारा कमरा भर गया था। बड़ी भाभी, माँ, चँदिया, बड़ी भाभी का नौकर—हरिया—सब-के-सब वहाँ आ पहुँचे थे। माँ ने कहा था—गायत्री मंत्र पढ़कर ज़रा पानी के छींटे तो मार राजेन्—बड़ी भाभी अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगौ थी—एक-दो बार कानपुर में भी ये इसी तरह मूर्छित हो चुकी हैं और अभी उस दिन थी। लेकिन उस समय तो पाँच मिनट बाद ही होश में आ गयी थी। फिर आज यह देर क्यों हो रही है ?

लेकिन मैं अपने प्रयोगों में लीन था।

जी मे तो आया, कह दूँ—“तुम तो सब कुछ जानती हो देवी। तुम्हींने इनका जीवन भी नष्ट किया है।” लेकिन अवसर अनुकूल न देख मैं चुप रह गया।

हरिया बोल उठा—“हमारे खियाल से तो कौनो बरमराकस क फेर-फार आय मलकिन !” तो चँदिया ने उसे डपट दिया—“अरे चुप भी रहो, बुढ़ऊ !”

पर मैं किसे समझाऊँ कि हरिया का कथन प्रकारान्तर से कितना यथार्थ है !

इसी समय भाभी ने ओंखें खोल दी !

“मौसी से हम स्पष्ट रूप से यही क्यों न कह दें कि अब हमलोग दो-चार दिन बाद जायेंगे ?” छोटी भाभी बड़ी भाभी के इस प्रस्ताव से सहमत न हुई; वरन् विरोध में बोली—“ऐसा कैसे हो सकता है ? उनको कितनी तकलीफ होती होगी !”

हूँ । तो भाभी कर्त्तव्य के क्षेत्र में यथेष्ट दृढ़ है । या यों समझो कि रूढ़ि-पालन में वे परम्परा के साथ हैं ।

परम्परा क्या इतनी हेय वस्तु है ? उसने समाज का एक नक्शा बनाया है । उसने हमारी संस्कृति की एक रूपरेखा स्थिर की है । उसने व्यक्ति के जीवन को निश्चित और निश्चिन्त किया है । समाज की अन्तर्वाहिनीधाराओं में एक नाता उत्पन्न करके उसे सतत क्रियाशील बनाया है । .. और उसने मनुष्य को परावलम्बी, भीरु, असहाय, कायर, मूर्ख और गुलाम बनाकर गधों की तरह घास चरने और बोझा ढोने के लिए, दरवाजे पर ही पैर में रस्ती—और उस रस्ती को धरती के खूटे में—बाँधकर छोड़ दिया है !

यह सब इसलिए सोचा जा रहा है कि पराये पत्तल का भात खाने में मीठा ज़्यादा लगता है ! अन्यथा राजनीति की भाषा में जिसे विधान कहा जाता है, समाजनीति की भाषा में वही परम्परा है !

...लेकिन कोई भी क्रान्ति तब तक पूर्ण सफल नहीं होती, जब तक विधान के साथ-साथ उन परम्पराओं, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को भी समूल नष्ट नहीं किया जाता, जिन्होंने साधारण मानव की चेतना तक को कुण्ठित, मन्द और जड़ बना डाला है, जो जीवन के लिए अब मृत्यु की विभीषिका मात्र रह गयी है ।

भात यदि खाया ही नहीं गया अथवा एक दम से बासी नहीं हो गया, तो अपने पास आ जाने पर उसका पत्तल कभी पराया नहीं होता !

दोनों पक्ष की बातें मन में आप-ही-आप उत्पन्न हो उठी । तब उसी क्षण छोटी भाभी बोली—“अबकी बार अभी से तंगि बुलवाकर बराबर चाहे शाम तक लौटालते ही रहो, लेकिन मुझे आज भेजअवश्य दो समझे !” और

चल दी बड़ी भाभी के साथ । पर जान पड़ा, वे यह देखना चाहती हैं कि इस कथन की मेरे ऊपर क्या प्रतिक्रिया होती है । तभी चलती-चलती ज़रा टिटुकी और दृष्टि घुमाकर मेरी ओर देखती-देखती फिर आगे बढ़ गयी ।

कथन में इतनी मीठी चुटकी न थी, जिनकी उस तिरछी चितवन में । मन में आया कि कह दूँ—मेरी इच्छा के बिना तुम जा न सकोगी भाभी । किन्तु मुझे मेरा ही यह अकथित कथन कुछ हलका प्रतीत हुआ । अतएव मैं कुछ कहते-कहते रुक गया । तब तक दोनों भाभी चली गयी ।

थोड़ी देर में चँदिया आ खड़ी हुई । मैंने पूछा—“क्या है ?”

तो उसने जवाब दिया—“अम्मा कह रही है कि इस बार गाड़ी न छूटने पाये, इसलिये थोड़ी देर पहले ही स्टेशन चले जाना होगा ।”

इसी समय तारवाला देख पड़ा । पास आकर उसने एकटेलिग्राम मेरे आगे कर दिया; फिर हस्ताक्षर के लिए एक पेपर, जिस पर हस्ताक्षर कर देने के बाद मैंने तार पढ़ा ।

और चँदिया को देते हुए कह दिया—“भाभी से कहो, तैयार हों अभी । भाई साहब का तार है—उन्हें अभी जाना है !”

...

...

भाभी चली गयी है । मैं उन्हें भेजकर अभी-अभी लौटा हूँ । एक दिन उन्हें जाना ही था । मैं उन्हें और कितने दिन रोकता । फिर रुकने की सीमा होती है । और वह सीमा, पता नहीं क्यों, कैसे, इतनी जल्दी समाप्त हो गयी ? फिर सोचता हूँ, सीमाएँ तो समाप्त होने की वस्तु ही हैं !

सोचता हूँ, इतने दिन वे इस घर में रही । इतने रूप, ढङ्ग, प्रकार और शैलियों के साथ रही कि मेरे मन को, मन के तार-तार को मोह-मोहकर जैसे मेरे जीवन को व्यर्थ कर दिया उन्होंने । तो भी वे मुझे अपने साथ न ले जा सकी —न अपने साथ के लिये मैं ही उन्हें यहाँ रख पाया । वे मुझे यहाँ छोड़ गयी अकेला, असहाय, मूक, विवश, विपन्न । और जब वे जाने लगी, तो मैं उनका हाथ पकड़कर डब्बे से उतार न सका; यद्यपि आयी यह बात कई बार मेरे मन में ।

बाने तो और भी कई मन में आती रही है; लेकिन उनकी चर्चा नहीं करूँगा। समाज उन्हें सहन नहीं कर पायेगा। चर्चा करते-करते कहीं मैं स्वयं अपने आप को न सह पाया, तो अनर्थ हो जायगा। मैं भी तो समाज का ही एक अंग हूँ। मुझे भी समाज-नोषित मान अधिक प्यारा है।

लेकिन समाज के डर से जो व्यक्ति अपनी आन्तरिक इच्छा पूर्ण करने के लिए आगे नहीं बढ़ता, क्या वह अपनी ही मानसिक विकृति का कारण बनकर केवल अपने प्रति अन्याय करता है, समाज के विकास में एक अवरोध नहीं डालता, उसकी प्रगति में बाधा नहीं उपस्थित करता ? विवाहित नारी का अपने स्वतन्त्र विचारों को दबाकर नियंत्रणहीन और उपेक्षापूर्ण व्यवहारों को जीवन भर सहन करते रहने में ही समाज को विशेष लाभ पहुँचता है ? और यु-युग से भारत का जो नागि पति के प्राणान्तक अत्याचार केवल यह समझकर सहन करते चली आयी है कि मैं तो इन्हें सहन करने के लिए बनायी ही गयी हूँ, क्या उसका यह बलिदान सभ्यता की वृद्धि में सदा सहायक ही हुआ है ?

आज तक इस प्रश्न को इस तरह से मैंने कभी सोचा न था; लेकिन छोटी भाभी ने जाने क्या कर दिया है कि सोचता हूँ, मेरा जीवन स्वयं मेरे लिए एक समस्या बनता जा रहा है !

इस बार छोटी भाभी का ही शासन रहा, जब हम यहाँ से स्टेशन के लिए खाना हुए। तोंगे पर बैठने की बारी आयी, तो वे मन्द-मन्द सुसकराती कंगलों में अमृतकुण्ड बनाती हुई बड़ी भाभी के गले में गोफा डालकर कहने लगी—“डाक्टर साहब से मुझे दो-चार बातें करनी हैं, मरीज़ के बारे में। इसलिये ..”

बड़ी भाभी सुनकर चकित-विस्मित हो बोल उठी—“क्या ! कौन डाक्टर, कैसा डाक्टर ? किस मरीज़ के बारे में बातें करनी हैं तुमको इस समय ?”

तब गोफे की फाँस खोलती हुई छोटी भाभी अधोमुखी दृष्टि से जैसे अपने को छिपाती हुई बोली—“तुमको अब मैं कैसे समझाऊँ कि मेरी

तबियत कभी-कभी कितनी खराब हो जाती है। कल की बात भूल गयी ?”

“समझो-समझो, भूल नहीं गयी !” बड़ी भाभी बोल उठी—“पर वह डाक्टर कौन है, जिससे तुम्हें मिलना है ?”

“जिन्होंने मेरी मूर्छा भंग की थी, मौसी के कहने पर जिनका गायत्रीमंत्र !”

अब बड़ी भाभी का संयम भंग हो गया। कहने लगी—“ज़रूर-ज़रूर, ऐसे डाक्टर को हाथ दिखाये बिना रोग का मर्म कभी मिल ही नहीं सकता। लेकिन मुझसे पूछकर तुम अपना जी क्यों छोटा कर रही हो ! आइये डाक्टर साहब, आप ही को अब इनका इलाज करना पड़ेगा। बैठिये-बैठिये, शरमाइये नहीं !”

मै अवाक् हो उठा। मैंने कभी सोचा न था कि बड़ी भाभी इस कथन के मर्म को इस सीमा तक खोल देगी। और सो भी छोटी भाभी के मुँह पर और मेरे समक्ष ! मै यह भी न सोच सका कि छोटी भाभी ने ही उनसे यह बात इस दङ्ग से ब्यो की !

अब हम ताँगे पर एक साथ जा रहे थे। अभी घर से चले हुए दो मिनट भी नहीं हो पाये थे कि बड़ी भाभी का ताँगा आगे हो गया। तब मैंने ही मौन भंग करते हुए कहा—“मुझे नहीं मालूम था कि तुमको हिस्टीरिया भी सता लेता है।”

“मालूम ही होता तो क्या कर लेते ! और अब मालूम होने पर भी क्या कर लोगे, सो देखना है।”

“तुमने देखा नहीं, जो मैंने किया। कोई भी डाक्टर इससे जल्दी तुम्हें सचेत नहीं कर सकता था ! मै डाक्टर नहीं हूँ, लेकिन मन से सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी खेल हैं, मै उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ।”

“तब तो तुम मुझको भी जानते होगे ?”

प्रश्न की हार्दिकता ने मुझे इतना छू लिया कि मालूम पड़ा, जैसे दो लाख यूनिट की पेनसिलीन इन्जेक्ट कर दी गयी हो।

कहना तो नहीं चाहता था, पर जल्दी में मुँह से निकल ही गया—

“पहले दिन ही जान गया था।”

“क्या ?”

जब उसने ऐसा प्रश्न कर दिया, तो मैं सहम गया। मुझे विवश होकर कहना पड़ा—“यहाँ, इस अवस्था में, मैं ऐसी कोई बात न कहूँगा और वश रहते तुम्हें भी न कहने दूँगा, जो प्रकारान्तर से भी तुम्हारे मर्म-स्थल से जा टकराये। मैं इस बात की पूरी चेष्टा करूँगा कि तुम इस रोग से मुक्त हो जाओ, जल्दी-से-जल्दी।”

“तुम कुछ नहीं कर पाओगे, मैं जानती हूँ।”

“मैं इस समय तुम्हारे इस कथन का वह उत्तर भी न दूँगा, जो बहुत ही उपयुक्त होता ! और इस विषय में कोई बात भी न करूँगा।”

“अच्छा जाने दो। पर यह तो बताओ तुमने मुझे धोखा क्यों दिया पहले ही बतला देते कि मैं तुम्हें इस ट्रेन से न जाने दूँगा।”

“तुमने मुझसे पूछे बिना जाने की तैयारी जो कर दी थी।”

“अच्छा तुमसे पूछे बिना अगर मैं कोई काम कर ही डालूँ, तो क्या तुम मुझे क्षमा न करोगे ? मैं अन्य व्यक्ति की बात नहीं कहती। पर जो अपने हैं—सदा के लिए अपने हैं, उनसे भी हर बात क्या पूछकर ही जाना जाती है ? मैं पूछती हूँ, मुझसे पूछे बिना तुमने अगर कभी कुछ कर डाला हो, तो क्या मुझे तुमसे उसका बदला लेना चाहिये ?”

इस अवसर पर मैंने जानबूझकर भाभी से यह नहीं पूछा कि क्या वास्तव में कभी मैंने कोई ऐसा काम कर डाला है। क्योंकि अन्तर्मन की छानबीन में मेरी दुर्बलता स्पष्ट होते देर नहीं लगती। इतना सरल मैंने अपने-आपको बनाया है। अतएव उनके कथन पर नियंत्रण लगाने के लिये मुझे कहना पड़ा—“मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, तुम ज्यादा मत बोलो। वहाँ भी अगर तुम इसी तरह हर बात को छानबीन करने में लगी रहोगी, तो मर्मस्थल की उस उत्तेजना को कैसे सम्हाल सकोगी, जो वार्तालाप के असंगत में अप्रत्याशित रूप से प्रायः आ ही जाती है ?”

एक निःश्वास को दवाती हुई-सी भाभी बोली—“तुम मेरा दुख कहाँ तक देखोगे ! और मैं ही तुम्हें कहाँ तक बता सकूँगी !” ऐसा जान पड़ा।



मानो उनका हृदय सिसकियाँ भर रहा है। औसुआ की धार केवल इसलिए नहीं फूट रही है कि विदा के क्षण रोना मैं सहन नहीं कर पाता। भाभी मेरी यह दुर्बलता जानती है। एकवार मैंने स्वयं उन्हें बतलाया था कि इसीलिये ऐसे अवसरो पर प्रायः मैं मिला नहीं करता !

अम्मा ने मोतीचूर के लड्डू एक डलिया में रख दिये थे, यह मुझे मालूम था। सेक्रेटक्लास के उस डब्बे में, जहाँ दोनों भाभियों आराम से बैठी हुई थी, बड़ी भाभी के पास खड़ा हुआ मैं उसी डलिया को खोज रहा था। लेकिन सीटी हो गयी।

मैं उतरकर 'लेटफार्म' पर आ गया और हाथ जोड़कर नमस्कार करते-करते कहने लगा—“मुझसे कोई भूल हो गयी हो, तो उसे छिपाये नहीं भाभी। मुझे स्पष्ट लिख दे, जिससे मैं अपने आपको समझने का मौक़ा पाऊँ।”

गाड़ी ने गैंगना शुरू कर दिया। बड़ी भाभी बोली—“तुम भूल भी करोगे तो मेरे कल्याण के लिए !”

उसी क्षण क्या देखता हूँ कि वही डलिया हाथ में लटकाये दौड़ता-हॉफता हुआ रामलाल आकर उसी डब्बे के अन्दर घुस गया। गाड़ी तब तक और तेज़ हो गयी। ऐसे समय रामलाल ने इतना साहस दिखलाया, यह मेरे लिये जैसे आश्चर्य की बात हो गयी। फिर भी मैंने पूछा—“कहाँ रामलाल, क्या तुमको भी कानपुर जाना है ?”

हाथ की डलिया ऊपर की बर्थ पर रखता-रखता—“जी, मैं कानपुर नहीं, मैं लखनऊ।” हड़बड़ाहट में रामलाल इतना ही कह सका और ट्रेन और अधिक आगे बढ़ गयी।

तब धीरे-धीरे बाहर आकर तंगी की ओर बढ़ते हुए मैंने अनुभव किया, जैसे मेरे कान के पास मुँह ले बाकर नियति मुझसे कुछ कहना चाहती है, कुछ ऐसा, जिसे मैं सुनना नहीं चाहता।

## दस

घर पहुँचने पर एक साथ दो समाचार मिले। एक तो यह कि आज ही अपने—खास अपने—मकान में चले जाने का मुहूर्त बना है। दूसरे यह कि कोई साहब ढेर से मेरी प्रतीक्षा में बैठे हैं। तब जो ढेर में प्रतीक्षा में बैठा है, पहले उससे मिलना आवश्यक जान जो मैं बैठक में पहुँचा, तो क्या देखता हूँ, और कोई नहीं, मुरलीबाबू है और काले पैन्ट के ऊपर ग्लाकी बुशशर्ट धारण किये हुए है। और चमड़े का एक बैग भी साथ में है। मुझे देखते ही बोले—“आज मैं एक बहुत ज़रूरी काम से आया हूँ।”

मैंने पूछा—“कुशल तो है न?”

मुरली बाबू बोले—“कुशल ही तो नहीं है। इसीलिए आपको तकलीफ़ देने आना पड़ा।”

मैंने पूछा—“कहिये-कहिये, क्या बात है?”

उन्होंने इधर-उधर देखते और स्वर को धीमा करते हुए कहा—“मेरी पत्नी अर्चनादेवी को तो आप जानते ही होंगे।” सुनकर मेरा माथा टनका कि धरूर कोई-न-कोई काड़ हुआ है।

मैंने कहा—“क्षमा कीजिये, आज तक मैंने किसी की पत्नी को जानने का प्रयत्न नहीं किया।” यकायक कह तो गया, पर अपनी ही कही बात को सोचने लगा कि यह मैं कह क्या गया!

वे बोले—“तो आप देवता हैं। खैर, वह स्थानीय राष्ट्रीय कन्या-विद्यालय में अध्यापिका हैं। इधर कई दिनों से विद्यालय से छुट्टी पाने पर घर पर ज़रा ढेर से आ रही थीं। परसों इसी विषय को लेकर कुछ कहा-सुनी हो गयी और अब कल से उनका पता नहीं है।”

“मैं इस विषय में कुछ भिन्न विचारों का व्यक्ति हूँ।” मैंने कहना चाहा, पर कहा नहीं कि जिस व्यक्ति की विवाहिता नारी, उसे छोड़कर दूसरे व्यक्ति की जीवन-संगिनी बनना स्वीकार कर ले, उसे सबसे पहले

शीशे में अपना मुँह देख लेना चाहिये। यह भी मेरे ध्यान में आया कि जिन कारणों से कोई नारी अपने पति को त्याग देती है वे कारण समाज के साधारण धरातल से लेकर उसके अतल देश तक व्यापक रूप से फैले हुए हैं ! युग-पर-युग बीतते रहे और नारी ने आत्माहुति के अतिरिक्त जो कभी चूँ तक न को, उसका क्या परिणाम हुआ ? ये हिस्टीरिया, टी० बी० जैसे रोग, मानसिक विकृतियों से भरे वातावरण से उत्पन्न कायर, भीरु, कुरूप तथा अंग-भंग, सतति-वृद्धि—बड़े-बड़े नगरों के ये नारकीय वेश्यालय, उनमें कीड़ों जैसे कुलबुलाते हुए दुष्ट, दुरात्मा, विश्वास-घातक, देश-द्रोही, लुच्चे-लफंगे और ये सिकलिस, गनोरिया, नपुंसकता जैसे नाशकारी रोग !—ये सब इसी प्रकार के निर्लज्ज और बेहया नर पशुओं की ही देन तो है।

इतने में मरलीबाबू बोल उठे—“मैं इस विषय में आपकी सहायता चाहता हूँ।”

मैं सोच-विचार में पड़ गया। विशेष रूप से इसलिए कि ऐसे काम में मेरा जैसा व्यक्ति भला क्या सहायता कर सकता है ! तब और कोई मार्ग न देख मैंने पूछा—“विवाह के कितने दिनों बाद यह घटना हुई ?”

“तीन वर्ष बाद।”

“इन तीन वर्षों में भी आप अपनी पत्नी का हृदय नहीं जीत पाये ! आश्चर्य है !”

“मुझे कभी गुमान भी न था कि वह इस प्रकार धोखा देकर चली जायगी।”

“इस अरसे में उससे कोई सन्तान नहीं हुई ?”

“सन्तान तो हुई थी, पर वह पैदा होने से पहले ही मर गयी !”

“मरी हुई पैदा हुई थी ?”

“जी !”

“कभी आपने इस दुर्घटना के मूल कारणों पर विचार किया ? कभी आपने यह सोचने की तकलीफ़ गवारा की कि ऐसा क्यों हुआ ?”

“बब हमें पेट भर खाने को ही नहीं मिलता, जब पहनने के लिए हमें

इतने कगड़े भी नहीं मिलते कि हम साफ-सुथरे रह सके, जब हमारे घर सील और अंधेरे से घिरे, गंदी नाली की बदबू के चहबूँचे बने हुए हैं, तब यह कैसे मुमकिन है कि हम अपनी स्त्री को हर तरह से खुश, तन्दुरुस्त रख सकें। बड़ी मुश्किल से मैंने उसे इस क्राविल बनाया था कि वह कुछ पैदा करने लगी थी। साठ रुपये वह पाती थी, चालिस-पचास मैं ले आता था। हमारी गृहस्थी अब दरें पर आने लगी थी। कभी-कभी हम लोग सिनेमा भी देख आते थे। कल से वह नहीं है और मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरी ज़िन्दगी में कुछ नहीं है। बर्तन-भाँड़े, चारपायी, धोती-कपड़े, कुरसी, कलैंडर, पेन-पेंसिल, क्या-क्या गिनाऊँ, सभी पर उसकी छाप है। सदा हम लोग एक साथ रहे, हँसे-रोये, खेले-भगड़े और फिर एक हो जाते रहे हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ !”

कहना तो मुझे बहुत था इस विषय में; लेकिन उस सम्पूर्ण को केवल एक वाक्य में समाहित करते हुए मैंने उत्तर दिया—“कुछ-न-कुछ असंतोष तो उनको रहा ही होगा।”

“असन्तोष किसको नहीं रहता ? लेकिन फिर भी हम ज़िन्दगी के साथ समझौता करते ही हैं।”

“समझौते की भी एक सीमा होती है मुरली बाबू। मैं आपकी पत्नी की बात नहीं कहता; लेकिन साधारण रूप से कोई भी नारी तभी अपने पति का घर त्याग करती है, जब उसे पति के अर्न्तदेश का वह स्नेह भी नहीं मिलता, जो कम-से-कम अर्ध रात्रि तक दीपक जलते रहने के लिए यथेष्ट होता है ! रहन-सहन, खान-पान और वस्त्राभूषण-सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव या अनुभाव भी इस विषय में सहायक होता है, लेकिन बहुत कम।”

“ज़ैर, आप जानते हैं, इस वक़्त मैं बहस तो कर नहीं सकता। मेरा दिल जल रहा है। मुझे ऐसा मालूम पड़ रहा है, किसी की खूँखार निगाहें मेरा कलेजा नोच रही हैं। पता नहीं, वह इस वक़्त किस हालत में हो ! परसों जाने के पहले उसने खाना भी नहीं खाया था।” कहते-कहते मुरली बाबू ने कण्ठ से इतनी करुणा व्यक्त की कि मैं द्रवित हो उठा।

इसी समय चँदिया आ पहुँची । बोली—“माँ कह रही है, मैं रसोई में कब तक बैठी रहूँ ।”

मुझे कह देना पड़ा—“बहुत अच्छा, अभी नहाने जा रहा हूँ ।”

चँदिया जाने लगी, तो मैंने रोककर कह दिया—“और देख, एक थाली आपके लिए भी लगेगी ।”

आज शाम को जब मैं धूमने निकला, तो ज़ीरोरोड पर गाड़ी में आते हुए लाला सॉवरे मिल गये । रिक्शे के पास मुझे खड़ा देखते ही गाड़ी रुकवाते हुए बोले—“कहाँ जा रहे हैं फ़िलोसफ़र साहब ? “सम्बोधन कुछ अतिरंजित होते हुए भी मुझे प्रिय लगा । मैंने कहा—“धूमने के लिए निकलने में, आप जानते हैं मेरे सामने स्थान-विशेष का कोई स्पष्ट लक्ष्य बहुधा कम ही रहता है । फिर भी बतलाइये, आपके क्या इरादे हैं ?”

“इरादे तो कोई स्वास नहीं है । फिर भी आओ । रिक्शा छोड़ दो ।” और उन्होंने मुझे अपनी गाड़ी में बिठा लिया । मैं अभी बैठ ही पाया था कि वे बोले—“चलो, आज तुमको एक नाटक दिखलाये ।”

मैंने पूछा—“कैसा नाटक ?”

वे बोले—“एकांकी ।”

मैंने कहा—“भूमिका छोड़िये । साफ-साफ बतलाइये, क्या मामला है ?”

तब उन्होंने बतलाया—“उस दिन मुरलीमनोहर साहब का अभिनय तो आपने देखा ही था । आज उनकी बहिन का भी नक़्शा देख लीजिये ।”

मुझे कहना पड़ा—“यह आपको ज़्यादाती है । जो लोग सिर्फ़ ग़रीबी के कारण अपने हाथ पैर तक नहीं ढक पाते, उनकी मान-मर्यादा के साथ चुहलवाज़ी करना हमें शोभा नहीं देता । यह हमारी सम्यता का ही नहीं, मानवता का भी अपमान है । बजट के बाहर खर्च करने और इसीलिए हमेशा पैसे से तंग रहने के सिवा उनमें ऐसा कोई दोष नहीं, जो हम लोगों में न हो ।”

लाला सॉवरे हँसने लगे । बोले—“अभी आप दिल्कुल बच्चे हैं ।”

मैंने कह दिया—“बुजुर्गों के इस कथन का मैंने कभी बुरा नहीं माना

का प्रवन्ध कर दीजिये लालाजी । मैं आपका यह एहसान जिन्दगी भर न भूलूँगी ।”

लालाजी इसके उत्तर में कुछ कहे कि उसी क्षण अर्चना बोल उठी—  
“आपने उनको नाहक बचाया । अच्छा होता, कुछ दिन जेल की हवा भी खा आते ।”

मैं अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया कि यह कैसी नारी है, जो अपने स्वामी के लिए ऐसी बात कह रही है ! किन्तु वे स्वामी भी तो...

पर उसी क्षण लालाजी ने यह बात कह भी डाली । बोले—“कम-से कम आपको तो ऐसा न कहना चाहिये । क्योंकि आप जिनके लिए ऐसा कहे डाल रही हैं, वे आपके...”

वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया था कि उसे बीच ही में—“जी-यति कहलाते हैं ।” शब्दों के साथ अर्चना ने पूरा कर दिया । ज़रा भी संकोच उसे नहीं हुआ ।

उसके इस ‘कहलाते हैं’ शब्द पर मुझे बड़ा ही क्षोभ हुआ । पर उसने मुझे अधिक सोचने और विचार करने का अवसर नहीं दिया । क्योंकि तुरन्त ही सारी वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हुए कह दिया—“पर शायद आपको यह न मालूम होगा कि रिश्ते में मैं उनकी बहन होती हूँ । मेरी बुआ इनकी माँ की सगी भाभी है ।”

इसके पश्चात् उसने दूसरी नवयुवती की ओर कुछ ऐसा संकेत कर दिया कि वह अन्दर चली गयी ।

इसी क्षण लालाजी बोले—“तो क्या हुआ ? ब्याह होने के बाद तो सभी नाते आपसे आग दूट जाते हैं । केवल एक पति का नाता रह सकता है, जो सब से अलग, सबसे न्यारा और श्रेष्ठ होता है ।”

“लेकिन ब्याह भी तो उन्होंने नहीं किया ।” अर्चना बोली - “क्योंकि उनके खयाल में ब्याह एक बेड़ी है, जो इंसान को कैद में डाल देती है ।”

इस पर लालाजी बोले—“खयाल ऐसा कुछ खास बुरा भी नहीं है । क्योंकि हमारे इस महादेश में ऐसे खनामधन्य देशभक्तों, नेताओं और

राष्ट्र-कर्मियों की कमी नहीं है, पचास-पचपन वर्ष की आयु तक जिनका यही मत रहा है। बाद में परिस्थितियों ने उन्हें मजबूर कर दिया हो, यह बात दूसरी है। पर आपका मतलब शायद यह है कि दोनों तरफ़ के रिश्ते-दारों को इकट्ठा करके गाजे-बाजे और हवन-पूजन के साथ भोंवरे नहीं फेरी गयी!—दावतें नहीं उड़ायी गयी—रूपया, ज़ेवर, वर्तन-भाँड़े, कपड़े तथा लड्डू पक्वान्न आदि दहेज़ में नहीं लिया गया। यानी कसर सिर्फ़ इतनी रह गयी कि आपके पिता को सब तरह से हीन और नंगा करके द्वार-द्वार पर दाता-धर्मात्मा करने के लिए बीच सड़क पर नहीं छोड़ दिया गया!”

कोई अन्य स्त्री होती, तो इस प्रसंग पर अत्यधिक गम्भीर हो जाती और उसकी बाणी पर भी तीखापन आ ही जाता; पर अर्चना हँसती-हँसती बोली—“मतलब मेरा चाहे जो हो, पर आपको शायद यह न मालूम होगा कि अगर विधि-विधान से मेरा ब्याह होता, तो न तो उस दिन मेरे पिता को नंगा बनकर द्वार-द्वार दाता-धर्मात्मा करने की ज़रूरत पड़ती—न कल ही दो हज़ार की ज़मानत के लिए रात के बारह बजे आपको सोते से जगाना पड़ता। क्योंकि इनके पिता की सम्पत्ति का दशाश भी अगर इमे मिलता, तो भी ऐसी परिस्थिति किसी तरह न उत्पन्न होने पाती।”

अर्चना के इस उत्तर का मेरे ऊपर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि मेरे मन में आया कि अब मैं भी उससे कुछ प्रश्न करूँ, पर तब तक लालाजी बोल उठे—“तो यह कहिये कि प्रारम्भ में ही आपने सोच-समझकर इनको चुना था। बाद की परिस्थितियों ने गड़बड़ कर दिया। जान पड़ता है, आजकल कुछ खटपट हो गयी है, आपस में। आपत्ति न हो, तो सन्धि का मसविदा मैं तैयार कर दूँ।”

“पर अब उनको सन्धि की ऐसी आवश्यकता ही क्या है? चिकनी-चुपड़ी बातें बना। बनाकर फुसलाने और मौके पर दस-पाँच रुपये खर्च कर डालने मात्र से अगर दसवे-पन्द्रहवें दिन कोई-न-कोई मछली जाल में आ जाती हो, तो स्त्री के साथ समझौता करना मूर्खता ही न समझी जायगी!”

मेरे मन में आया कि इस अवसर पर मैं यह क्यों न पूछूँ कि मनुष्य होकर फिर आप लोग मछली बनती ही क्यों हैं ? परन्तु इसी क्षण नवयुवती चाय बना ले आयी और अर्चना आप ही कहने लगी—“कलिका से पूछिये, क्या कहकर इन्हे बनारस से ले आये थे ? जानबूझकर ट्रेन क्यों छोड़ी गयी ? और लारी से उतरकर घर होते हुए भी होटल में ठहरने की ज़रूरत इन्हे क्यों पड़ी ! और यह सब भी इन्होंने क्यों स्वीकार कर लिया ? क्यों इनके मन में किसी तरह का सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ ?”

तब कलिका की ओर लक्ष्यकर लालाजी ने कह दिया—“कहाँ आप यह न समझे कि इस तरह की बातें बार-बार उठाने में आप के सम्मानका ध्यान ही हम भूल जाते हैं । असल बात है वे आधार जिनके द्वारा ये छल-प्रपञ्च आज हमारी नैतिकता के नाश के कारण बन रहे हैं ।”

अर्चना चाय बनाने लगी थी और कलिका चुपचाप खड़ी थी । नयन उसके सामने किसी प्रकार होते न थे । तब मैंने कह दिया—“अगर हम दूसरों की बहू-बेटियों की नैतिकता का ध्यान न रखेंगे, तो एक दिन हम स्वयं अपने मुँह पर कालिख लगवा लेंगे । जो कुछ आपने समझा हो, अगर आप स्पष्ट बतला दें, तो हम समझेंगे, आप उस व्यक्ति को सुधारने में हमारी सहायता कर रही है, समाज की मान-मर्यादा को मिट्टी में मिलाना जिसका नित्य का काम है ।”

तब कलिका के आँखों में आँसू भर आये । अर्चना ने पास आकर उसके सिर को अपने वक्ष में छिपा लिया । कलिका सिसकियों भर-भरकर रो पड़ी । तब उसके आँसू पोछते-पोछते अर्चना ने कहा—“हम लोगों के लिए यह कोई नयी बात नहीं है बहिन । भगवान राम ने भी जगजननी सीता तक को अग्नि-परीक्षा के लिए विवश किया था !”

तब सकुचाते-सकुचाते कलिका बोली—“मैं इस वर्ष दसवें दर्जे में फेल हो गयी हूँ । परीक्षा-फल प्रकाशित होने पर लखनऊ में जब मेरी तबियत न लगी, तो मैं अपनी चचेरी बहिन प्रतिपदा के यहाँ चली गयी ।



उनके यहाँ इनसे भेंट हो गयी। और वही इनसे मालूम हुआ कि प्रतिपदा जीजी तो इन बहिनजी की सहेली है। यह बात जब प्रतिपदाजी ने भी स्वीकार कर ली, तब इनके साथ मुझे भेज देने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं हुई।”

तब लालाजी बोल उठे—“ठीक है। मैं यह मानता हूँ कि आपको जो प्रतिपदाजी ने मुरलीबाबू के साथ कर दिया, इसमें उनका कोई दोष था तो केवल इतना कि इतना जान लेना ही उनके लिए यथेष्ट हो गया ! पर स्वयं आपको इनके साथ आने में किसी प्रकार का सकोच क्यों नहीं हुआ ?”

तब तख्त के फर्श पर बिछी हुई दरी के एक उलभे हुए डोरे को कुरेदती हुई कलिका बोली—“मुरली बाबू ने कहा था—फेल हो जाने से क्या होता है ? ऐसे-ऐसे ज़रिये हैं मेरे कि किसी भी फेलशुदा छात्र को पास करवा देना मेरे बाये हाथ का खेल है।”

अब सारा रहस्य मेरे सामने स्पष्ट हो गया।

लालाजी बोले—“अच्छा, तो आपने सोचा होगा कि ऐसे व्यक्ति को सहज ही मित्र बनाकर उसके द्वारा क्यों न इतना लाभ उठा लिया जाय ! और बस यही आपसे ग़लती हो गयी। आपको कम-से-कम इतना तो जान ही लेना चाहिये कि जब कभी आप नैतिक स्तर में एक सीढ़ी उतरेंगी, तब उस पाय की रक्षा करने में आपको कम-से-कम दस बार झुकना पड़ेगा। क्योंकि किसी भी सीढ़ी में एक बार फ़िसल जाने पर एकदम नीचे पहुँचे बिना कभी किसी को त्राण नहीं मिलता।”

कलिका मुरझायी खड़ी थी। बोली—“मैं नहीं जानती थी कि दुनियाँ में ऐसे भी आदमी होते हैं, जो ब्रह्म कहकर भी.....!” और शेषांश इस वाक्य का उसके आसुआं ने पूरा कर दिया।

अन्त में लाला साँवरे ने कलिका से कह दिया कि अब जब तक इस केस का निपटारा नहीं हो जाता, तब तक तो आपको यहाँ रहना ही पड़ेगा। इस पर कलिका कुछ नहीं बोली। अर्चना ने कह दिया—“पर आप तो

जानते हैं, उनका कुछ ठीक नहीं है। सबरे के गये हुए हैं। शाम होने, आर्या और कुछ पता नहीं है कि कब आयेगे। खाना ढका रक्खा है।”

इस दृश्य के पश्चात् जब मैं लाला साँवरे के साथ उनकी गाड़ी पर लौटने लगा, तो अपनी ओर से मैंने कुछ नहीं कहा। मैं केवल यह देखना चाहता था कि लालाजी स्वयं क्या कहते हैं। पर हुआ यह कि देर तक वे भी कुछ नहीं बोले।

रास्ते में एक आदमी हाथ में एक दोना लिये जा रहा था। उस पर चील ने ऐसा भ्रष्टा मारा कि सारी पूड़ियाँ उसके हाथ से छूटकर ज़मीन पर जा गिरी। वही एक सौँड़ खड़ा था। तुरन्त बढ़कर उसने मुँह मार दिया और शेष भाग पर दो कुत्ते दूट पड़े। मैं सोचने लगा कि वार किया चील ने और माल पत्ते पड़ा सौँड़ और कुत्तों के। और आदमी बेचारा कुछ न कर सका।

मकान के समक्ष जब मैंने सड़क पर उतर जाने की इच्छा प्रकट की, तो मुझे पान देते-देते लालाजी ने कहा—“अभी इतनी जल्दी कहाँ जाओगे ? चलो, आज सिनेमा देखा जाय।”

लेकिन मेरा मन तो यह सोचने में लगा था कि इस आदमी के साथ चील की क्या दुश्मनी है ? केवल इतना कहा जा सकता है कि आदमी अगर सावधान नहीं है, तो प्रकृति उसे पछुताने को विवश किये बिना मान नहीं सकती। तभी मैंने कहा—“नहीं, मुझे आवश्यक काम है। इसलिए आप मुझे क्षमा करें।”

वे बोले—“काम तो हमेशा बने ही रहते हैं, कभी-कभी हमको निष्काम भी तो बनना चाहिये।”

“तो सिनेमा को आप निष्काम-कर्म की सीमा में देखते हैं। खूब है आप !”

तब उन्होंने मुसकराते हुए कह दिया—“हमारे पूर्वज अपने लिए कोई काम नहीं करते थे। यहाँ तक कि वे अपने शरीर का पोषण भी इसी उद्देश्य से करते थे कि हम ससार की सेवा करने योग्य बने रहे। इसलिये हमारा सिनेमा देखना भी अपने आनन्द के लिए नहीं, बहुजन-हिताय

समझना चाहिये ।”

अचानक मेरे मुँह से निकल गया —“जाने दीजिये । अब मुझे आप की कार्य-प्रणाली पर शंका होने लगी है ।”

वे बोले—“क्यों, ऐसा क्या कुसूर मैंने किया ?”

तब मुझे कहना पड़ा—“मेरी समझ में नहीं आता कि आपने ऐसे आदमी को ज़मानत क्यों की, जो अपराधी है, समाज को धोखा देना ही जिसका नित्य का काम है ।”

“आप नहीं जानते कि उसके साथ मैंने कोई भलाई नहीं की । अपने ऊपर एक जोखिम अलबत्ता ले लिया है । सो भी सिर्फ दो हजार रुपये का । पर मेरा विश्वास है, वह अब की बार मेरा विश्वास नहीं खोयेगा ।”

मैं यह उत्तर दे ही रहा था कि आत्म-प्रवञ्चक व्यक्ति तो अपने लिए भी विश्वसनीय नहीं होता, आप तो फिर भी दूर के व्यक्ति हैं । तभी वे बोले—“अच्छा हो, हम लोग फिर कहीं बैठकर ही विचार-विनिमय करें ।”

तब यह ठहरा कि क्यों न हम लोग थोड़ी देर स्टेशन पर मटसगर्ती करे । जनता-एक्सप्रेस के आने का समय भी है ।

गाड़ी बाहर खड़ी कर दी गयी और लालाजी के साथ हम 'लेटफार्म' नंबर एक पर टहलने लगे ।

अब तक वह दृश्य मन से उतरा नहीं था । अतः टहलते हुए मैंने कंहा—“जो आदमी किसी आत्मीय बन्धु के लिए बाज़ार से पूड़ी लिये जा रहा था, उसे क्या पता था कि चाल दूर से उड़ती हुई उसके हाथ के दोने पर झपट्टा मारनेवाली है । कलिका जब लखनऊ से बनारस चली थी तब उसे क्या पता था कि मुख्तियार नाम के कोई जीव वहाँ उसके लिये चील बन जायेंगे !”

लाला सौंघे मूँछों की पान से भांगी कोरों को रुमाल में पोंछते हुए बोले—“हाँ, कहो कहो, मैं सुनता हूँ ध्यान से ।”

मैंने कहा —“मुस्ला बानू ने कलिका का परिस्थिति से लाभ उठाया । उन्होंने देखा कि घड़ी-दो-घड़ी के लिये उसका उपयोग कर लेने में क्या

हर्ज है ? अतः उन्होंने चील का चोला बदलकर सॉड का रूप धारण कर लिया । लेकिन सॉड के सामने जो पूड़ी थी, वह थी जड़ । इसलिये दाँतों और जड़ों के नीचे पड़ जाने में सॉड को कोई विरोध नहीं मिला । पर यहाँ थी एक सजीव सप्राण नारा । जब उसने देखा, सॉड किसी तरह नहीं मान रहा है, तब वह चिल्ला उठी । फलतः तत्काल समाज ने उसकी रक्षा की । अब प्रश्न यह है कि जो व्यक्ति आदमी होकर सॉड बन गया है, आप उसका साहस बढ़ा रहे हैं या नहीं ? और प्रकारान्तर से आपका यह कार्य समाज के लिए भयावह है या नहीं ?”

इतने में गाड़ी आ गयी । उसके खड़ी होते-होते अभी उतरनेवाले उतर भी न पाये थे कि चढ़नेवाले चढ़ने लगे । जो मुसाफिर उतर आये थे, उनकी सूरत देख-देखकर होटल के कन्वेसर्स पूछने लगे—“होटल में टहरेगे ?” यहाँ तक कि एक साहब हमारे पास भी आ धमके । मैने लालाजी की ओर संकेत कर दिया । पर वह उनकी ओर देखकर कुछ संकुचित हो उठा और बोला—“नमस्ते सेठ साहब ।”

उन्होंने हाथ उठाकर नमस्कार करते-करते पूछा—“कहिये । कुछ पता चला, कौनसी तारीख पड़ी है ।”

प्रश्न सुनकर वह मुसकराने लगा । बोला—“तारीख ? हाँ, तारीख तो यही उन्नीस पड़ी है; पर इस केस में होना “जाना तो कुछ है नहीं ।”

बीड़ी उसके हाथ में थी । इसलिए वह उसी के चक्कर में बोला—“आपके पास माचिस...?”

लालाजी ने इकन्नी उसके हाथ पर रख दी । बोले—“खरीद लो न ?”

तब झट से वह एक पान-बीड़ीवाले से माचिस की डबिया ले आया और बीड़ी सुलगाते हुए बोला—“कुछ नहीं हो सकता बाबू साहब । आप इतमीनान रखिये ।”

मैने पूछा—“क्यों ?”

वह कहने लगा—“क्योंकि कुछ मामला तो पका ही नहीं । अन्दर से सिर्फ हाथापाई और बाहर से सुनाई पड़नेवाली थोड़ी बहुत चिल्ला-

हट होकर रह गयी। और इतना तो मामूली ताश के खेल में हो जाया करता है। लेकिन भाई साहब, वह आदमी कुछ वेवकूफ़ क्रिस्म का मालूम पड़ा। उससे इतना तो बना नहीं कि थोड़ी-थोड़ी करके एक बोटल तो उसके जिगर तक पैवस्त कर देना। फिर छूटकर कहाँ जा सकती थी !”

अब ग्लेटफार्म पर और अधिक टहरने की इच्छा समाप्त हो गयी थी। इसलिए मुझे कहना पड़ा—“अब चलिये लालाजी।”

होटलमैन से विदा ले लालाजी आगे बढ़ते हुए बोले—“जान पड़ता है, इस व्यक्ति की बातचीत तुमको अच्छी नहीं लगी।”

मैं तो भरा बैठा ही था। अतः मैंने कह दिया—“ऐसे आदमियों से इस तरह धुल-धुलकर बातचीत आम कैसे कर लेते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। क्या आपको ऐसा नहीं जान पड़ता कि दूसरे की बहू-बेटी की लज्जा और मर्यादा का इसे बिल्कुल ध्यान नहीं है? किसी भी युवती के सम्बन्ध में यह ऐसी बातें कर सकता है। आपने देखा नहीं कि लज्जा-हरण की बात करते हुए उसे रस कैसा मिलता है! जब उसकी आर्थिक स्थिति तीन कौड़ी की है। भला क्या तनखाह पाता होगा?”

सुनकर लालाजी हँस पड़े। बोले—“पहले तो मुझे इसी बात पर आपत्ति है कि तीन कौड़ी की हैसियत रखनेवाले शख्स को आप उस आजादी से दूर क्यों रखना चाहते हैं, जो उसका पैदायशी हक है। मैं पूछता हूँ, हँसीना ने जहाँ को हासिल करने का हक़ क्या पैसैवालों के हाथ बिक चुका है? और हँसी मज़ाक़ में हो या तहेदिल से, जो लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी से, मन से और पेट से, नगे और भूखे रहते आये हैं, मौक़ा मिलने पर भी वे ऐसी बातें क्यों न करें? मामूली तौर से जो चीज़ मिल नहीं सकती, उसकी प्यास आदमी में बढ़कती ही है। उस प्यास को क्या वे ज़बान पर भी न लायें?”

हम लोग अब पुल पर चढ़ने लगे थे। और यह स्पष्ट हो गया था कि लालाजी का मत क्या है। अतः मैं पूर्व की ओर भाँकने लगा, जहाँ से एक सभ्य जोड़ा जाता हुआ देख पड़ता था। तभी लालाजी बोले—

“इसके सिवा एक बात और है, जो लोग सिर्फ बातचीत करके अपने काम-शैतान को थोड़ा-बहुत जलपान कराते रहते हैं, वे समाज के उन बहुतेरे नेताओं और नुमाइन्दों से कहीं अधिक पाक है, जो दोस्तों के घरों में ठहरकर, उनकी बहू-बेटियों की लाज लूटने में कभी नहीं चूकते ! उनका कुसूर महज़ इतना है कि वे ऐसी बातें साफ-साफ कह डालते हैं, दिल के अन्दर छिपाकर नहीं रख पाते । क्योंकि वे जैसे भीतर है, वैसे ही बाहर भी । वे कपट नहीं रखते और कपट की कमाई भी नहीं खाते ।”

“इसका मतलब तो यह हुआ कि एक औसत आदमी को आप एक औसत बड़े आदमी से कहीं अधिक पवित्र मानते हैं ।” मुझे कहना पड़ा ।

“इसमें भी क्या कुछ शक है ?” लालाजी मैनपुरी मुँह में छोड़ते हुए बोले—“लेकिन यह बात जो तुम्हारी समझ में न आयेगी । क्या तुमने कभी सोचा है कि किसीके पाक दामन को गन्दा करने में कोई भी आदमी—ज़ोर-ज़बरदस्ती का सहारा उतना नहीं लेता, जितना ये बड़े आदमी—क्योंकि हर घड़ी क़ानून, शिकायत और तहरीक का मुँह बन्द करने के लिए उनके पास पैसा रहता है, महल, मोटर और फोन रहते हैं । पर आदमी के पास मुहब्बत के नाम पर लगाने और लुटाने के लिए सिर्फ ज़बान, पान, सिगरेट, मिठाई का दोना—और बहुत हुआ तो सिनेमा ! बस, इसके सिवा और क्या हो सकता है ?”

अब हम लोग फिर गाड़ी पर आ गये थे । बैठते ही लालाजी बोले—“लेकिन मैं जानता हूँ, तुम्हारे मन में उन लोगों के लिए ज़मा की जगह है ही नहीं, जो कुसूरवार हैं, गिरे हुए हैं या जिन्हें तुम्हारी तहज़ीब का कन्सेशन बरदाश्त कर नहीं पाता ।”

देखता हूँ रेलवे लाइन की ओर मालगाड़ी के डब्बे एक दूसरे को धक्का दे रहे हैं ।...बोरों से भरा ठेला फाटक के बाहर निकल रहा है । आगे भैंसा, उसके पीछे पसीना टपकाता हुआ मज़दूर ।

“इसका एक कारण है लालाजी” तब मुझे बोलना ही पड़ा—“जो गरीब हैं, जिनके पास रोटी-कपड़े के लिए सिर्फ हाथ-पैर की पूँजी है, अपनी बुद्धि का बल नहीं और सामाजिक चेतना का कोई मंगटित सहारा भी नहीं; जो सब तरह में असहाय और आश्रयहीन हैं, मैं सोचता हूँ, उन्हें ईश्वर और धर्म अधिक प्यारा है। बुराइयों से डरना उनके लिए अधिक आवश्यक और स्वाभाविक है। पर हमारे देश का यही निम्न समाज जब गैरज़िम्मेदारियों में लित, डूबा हुआ, बुरी तरह से बेहोश दिखाई पड़ता है, तो मुझे अधिक क्लेश होता है। इसका यह मतलब नहीं कि उच्चवर्ग के लिए मेरे मन में कोई पक्षपात है। मैं पूछता हूँ कि वही होटलमैन, जो कलिका के रूप पर लार टपका रहा था, क्या उसे सुखी रख सकता है ?”

रास्ते में इक्का गिरा पड़ा हुआ था। घोड़े की गर्दन इस बुरी तरह से फँसी हुई थी कि उसका दम छुट रहा था ! लेकिन क्षण भर में यह दृश्य आँखों से ओझल हो गया। सोचा—होटलमैन की भी यही गति होगी !

इतने में—“तुम अब भी नहीं समझे राजेन बेटे” लालाजी ज़रा मूढ़ में आकर बोले—“मेरा कहना तो सिर्फ इतना है कि दुनियाँ के अन्दर आज दिली इन्वाहिशों के पूरी होने की जितनी भी भूख और प्यास है, उसमें एक गरीब को आप इतना छोटा मानते ही क्यों हैं ? वह होटलमैन अगर रोटी-कपड़े से कलिका को खुश नहीं रख सकता, तो कोई पैसेवाला भी उसके लिए सच्चा और ईमानदार नहीं रह सकता। पूँजी की तरह वह उसका इस्तेमाल करेगा और चाहेगा कि रुपये की तरह हमेशा वह उसके हाथ का मैल बनी रहे। गरीब के पास लुटाने के लिए और कुछ नहीं तो दिल, ईमानदारी और अपनी मज़दूरी के गिने-चुने पैसे तो रहते ही हैं।”

“लेकिन इस प्रकार सब कुछ स्वाभाविक और लाजिमी मानकर क्या हम नैतिकता की हत्या करने के अग्राणी नहीं बन रहे हैं ?”

“माफ़ करना, इन्सानियत के हर तकाज़े को मैं तहज़ीब का बुनियादी पत्थर मानता हूँ।” लालाजी बोले—“हुस्न हो या पैसा, महज़ उपेज़ावरदस्ती लूटना बुरा है। लेकिन जो लोग मोची को हलवाई की बनिस्वत छोटा

गिनते और मानते है, वे यह भूल जाते है कि समाज की नज़रों में दोनों एक ही हाथ की दो अँगुलियाँ है ।”

गाड़ी हिवेटरोड पर खड़ी हो गयी थी । उससे उतरते हुए मैने कह दिया—“जिनमे एक अँगूठा और तर्जनी होती है, दूसरी छिगुनी ।”

लालाजी हँसते हुए बोले—“तुम बड़े शैतान हो राजेन ।”

## ग्यारह

मकान तो मैने बदल दिया, लेकिन मेरा यह मन नहीं बदला । भाभी की मधुर कलहासमयी बातें याद आती है; उनकी लज्जा-संकोच-युक्त मुद्राएँ और मन में उठने और फिर अपने आप विलीन हो जानेवाली कल्पनाओं से उत्पन्न भाव-भगिमाएँ जाग्रत स्वप्न-सी अहर्निशि मेरे मानस-पट पर छायी रहती है । उनकी भौंति-भौंति की चिकनी और तीखी फक्कियाँ याद आती है, तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे मैं उस वाटिका के समान हूँ, जिसमें वसन्त केवल एक ही बार आया है । कोयल बोल गयी है और अब मैं पतझड़ मात्र रह गया हूँ । जो स्थल उनकी किलकारियों से सदा गुंजित रहा करते थे, वे सब-के-सब मुझसे केवल इसलिये छूट गये है, जिससे मैं उनकी याद भी न कर सकूँ ! जिन दरवाज़ों, किवाड़ों, खिड़कियों और सीढ़ियों पर उनकी अमन्द पग-ध्वनियों, उनकी लुका-छिपी की अभिनव मृदुल चंचल गतियाँ, स्थिर-अस्थिर हो-होकर मेरे अन्तराल में सोये विराट सत्य को भी उभार-उभारकर मुखरित कर देती थी, वे सब-की-सब जैसे अन्तरिक्ष में लीन हो गयी है । जिस पावन भूमि पर मैं उनके निकट बैठकर आत्मीय मिलन की वैधानिक दूरी को भी एकदम से तिरोहित देखने का सुअवसर पा जाता था, वह भी मुझसे सदा के लिये दूर चली गयी है । दिन तो बिताने ही पड़ते हैं—आप उन्हें चाहे जिस तरह



बितायें, आम के उन पके फलों की तरह, जो न तोड़ने पर भी आप-से-आप गिर पड़ते हैं।

अग्रहन मास के एक दिन पाँच बजे के लगभग चँदिया चाय लेकर आयी, तो यकायक आकाश की ओर मेरी दृष्टि जा पड़ी। काली घटाएँ धिर-धिरकर गगन पर कुछ कानाफूसी-सी करती प्रतीत हुई। दिन का प्रकाश मन्द पड़ने लगा और पवन-दोलन में गति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। कमरों के कपाट और खिड़कियाँ खटाखट बोलने लगी। जैसे-तैसे उन्हें बन्द करवाया, तो खिड़कियों के शीशे टूट-टूटकर गिरने लगे ! पवनदेव सोंथ-सोंथ करके भागने लगे और पेड़ों की पत्तियाँ, टहनियाँ, घास और फूस के तिनके, सिगरेट और दियासलाई की टुकड़ियाँ, अधजली तीलियाँ, खाली डब्बियाँ, लत्ते-खुत्ते, रेत और बालू के कण चारों ओर उड़ने लगे। द्वार पर जो पेड़ खड़ा था, उसका एक भारी डाल टूटकर नीचे आ पड़ी और इस मकान के दुमहले का एक कोना बाल-बाल बचा। सोंथ-सोंथ की आवाज़ उत्तरोत्तर घनी और तीव्र होने लगी। बादल गरजने लगे और बात-कॉ-बात में घनघोर वर्षा शुरू हो गयी। प्रकाश इतना अधिक मन्द पड़ गया कि मकान के अन्दरवाले कमरों में अन्धकार छा गया। बिजली का करेट आफ हो गया। आँधी-पानी में बादलों का गर्जन, बिजली की लपभूष के साथ प्रबल वायु के झुकोरों में किवाड़ों का फटाफट खुल जाना और फिर बन्द करते-करते एक-दो बौछार में ही सारा कमरा भीग जाना और उसी समय ओले पड़ने लगना ! ... एकदम से जी घबरा उठा !

सोनेलाल मेरी मदद के लिये ऊपर आ गया था। नीचे से चाची ने पुकारा; पर उनकी आवाज़ किसी को सुनाई न दी ! तब माँ ने आकर कहा—“जा सोने। देख बेटा, कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं हुआ। शायद जीजी बुला रही है तुम्हें।”

मैं पर्लंग पर लगे हुए बिस्तर के सहारे उटकर बैठ गया। उसी समय किसी भारी चीज़ के गिरने की आवाज़ आयी। माँ बहुत घबराने लगीं। बोली—“न जाने क्या होनहार है !”

मैने कह दिया—“कोई खास बात नहीं होगी माँ। थोड़ी देर में सभी कुछ शान्त हो जायगा।”

सॉय-सॉय की आवाज़ अब और तीव्र हो गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों यह सारा जगत् इस प्रकार के एक हाहाकार के सिवा और कुछ नहीं है !

इतने में सुखराम की डूबती हुई सी आवाज़ सुनायी दी ! स्पष्ट कुछ नहीं मालूम हुआ। पर उसी क्षण लाली दौड़ती हुई आ पहुँची और बोली—“मोटर गैरेज का एक किवाड़ गिर पड़ा !”

तब काँपती हुई माँ बोलों—“हाय उसमें तो श्यामा बँधी है !”

और लाली ने कह दिया—“हाँ, जान पड़ता है वही...।”

आगे की आवाज़ बीच में ही कट गयी ; क्योंकि टूटे शोशे के भीतर से तूफान का एक ऐसा भोंका आया कि बिजली का बल्व भूलता हुआ फट से नीचे आ गिरा !

अब अन्धकार इतना घना हो उठा कि अपना ही अंग देखना दुष्कर हो गया। लेकिन इतना मालूम हो गया कि माँ चली गयी हैं। मैं भी विचलित हो उठा। नाना प्रकार और ध्वनियों से मैं बारम्बार यही सोचने लगा कि श्यामा गैया का दुध पी-पीकर ही मैं अपने को कुछ बना पाया हूँ। वह मेरी ऐसी मूक असहाय धाय है कि उसको बचाये बिना गति नहीं है।

तब झट से पलँग के नीचे पड़े हुए चप्पल धारणकर मैं नीचे जाने के लिये जो आगे बढ़ा, तो केशों की मृदुल राशि के साथ एक मांसल देह-लता से टकरा गया। मेरा रोम-रोम ऐसा सिहर उठा कि अरने आपको सम्हालना कठिन हो गया !

तत्काल मेरे मुँह से निकल गया—“अरे लाली !”

“हाँ भैया।”

“तू यहाँ क्यों आ मरी ?” न चाहते हुए भी कुछ दोम मुँहे हो

आया। फिर उससे परिहास के मिस कह दिया—“कहीं चोट तो नहीं लगी !”

“लगी तो नहीं, पर लग भी जाय तो क्या होना-जाना है ? मेरी चोटें देखता कौन है ?”

लाली के इस चुभते हुए वाक्य ने एक क्षण में सारे शरीर भर में जैसे बिजली का करंट मार दिया। सचमुच हिन्दू-विधवा के हृदय पर पड़नेवाले आघातों के सारे चीत्कार व्यर्थ हो गये हैं। समाज अपनी अन्धता में ज्यों-का-त्यों स्थिर है; यहाँ तक कि अब तो उसे आँखों पर लाज की पट्टी बाँधने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। आदर्शों के मुँहें गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में अब भी पड़े हुए सड़ रहे हैं !

“तुम यह सब कह क्या रही हो लाली ?” आगे बढ़ते-बढ़ते मैंने घूम-कर देखा और पूछ दिया।

आगे दीन थी, जिस पर बरफ़ के पत्थर—ओले—वायु के प्रबल झकड़ों के साथ गिरते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे प्रलय दाँत किटकिटा रही हो। मौत की बेशरम हँसी की तरह कौधा लपक उठता था और कुमारी संध्या वेश्या की बीभत्स रात जान पड़ती थी !

इतने में लाली ने भी पीछा करते-करते मेरे कंधे के सहारे से अपने को गिरने से बचाते हुए कह दिया—“वही, जिसे मैं और किसी से कह नहीं सकती !”

सुनकर सब रह गया मैं। धारे से उसका हाथ हटाता, चलता-चलता, आगे का पथ, सीढ़ियाँ, दरवाज़े, उस अँधेरे में खोजता और आगे बढ़ता हुआ यही सोचता रह गया कि ओधी, पानी, मेघ, पत्थर और बिजली के दुस्सह प्रकोप से भरे ऐसे दुर्दिन भी क्या इस प्रकार के प्रलयंकर मंयोगों का सृष्टि करने के लिए ही आते हैं ?

अथवा ऐसे कुअवसरों पर भी मनुष्य का यह दुर्बल मन अपना रागात्मक क्रिया-कलाप रोक नहीं पाता ?

या कोई ऐसी बात है कि सृष्टि के साथ प्रलय को अपना घनिष्ठ

सम्बन्ध प्रकट करने के लिए कभी-कभी, समय-कुसमय का ध्यान भुला देने के लिए विवश होना ही पड़ता है।

यह कैसी लीला है अहो लीलामय ?

इन्ही विचारों के साथ किसी तरह छतरी ढूँढ़-ढोँढ़कर नीचे जाने लगा। हृदय कॉप रहा है कि यह सब हो क्या रहा है ! भाभी के जाते ही लाली ने इस तरह सताना प्रारम्भ कर दिया ! फिर 'सताना' सोचकर एक बार ऐसे दुर्दिन में भी मैं अपने आप पर हँस पड़ा। नीचे पहुँचते ही देखा, फाटक का किवाड़ तो गिर पड़ा, पर श्यामा बच गयी है। हालाँकि पानी की बौछार अब भी उस पर आ जाती है।

तब बड़ी मुश्किल से, सुखराम की सहायता से, उसका स्थान बदलवाया। लेकिन जब मैं श्यामा के पास पहुँचा तो वह बहुत भीग गयी थी और हवा के झकोरों से कॉप-कॉप उटती थी। तब यह सोचते हुए कि लाली भी दूसरी श्यामा ही तो है—मेरा सारा शरीर जैसे सुन्न पड़ गया ! थोड़ी देर में जब प्रकृति का यह भीषण उपद्रव शांत हुआ, तब बड़ी की ओर देखा। पौने सात बज गये थे। तब चँदिया जो चाय ले आयी, तो मुझे तुरन्त भाभा की याद हो आयी। तब चाय ज्यों-की-त्यों पड़ी रही, मैं पलंग पर लेटा-लेटा मन-ही-मन कहने लगा—

“कहाँ चली गयीं तुम ? देखो चाय की यह केतली छूने को मेरा मन नहीं होता। तुम्हारी ही तरह बाहर से यह भी यथेष्ट मानवीय तापमान रखती है, किन्तु भीतर . ? नहीं नहीं, तुम्हारे साथ इसके तापमान की तुलना नहीं करूँगा। ...हाँ, लाली के साथ अलवृत्ता करसकता हूँ। ... लेकिन नहीं, वह तो दूसरी श्यामा है। यह कप, जो सामर की गोद में पेट के बल पड़ा है, अपने आप तो उठकर सीधा होने से रहा। और मैं—तुम जानती ही हो, तुम्हारे शुभागमन के बाद से उसे छूता भी न था। सच जानो, इस समय चाय पीने का बिल्कुल मूड नहीं है मुझे। तुम्हारी याद में चुपचाप इसी तरह पड़े रहने की तबियत होती है।”

लेकिन यह सब सोचना भी व्यर्थ है। भाभी कानपुर पहुँच चुकी हैं।

भाई साहब के साथ बैठी वे गुप लड़ा रही होंगी। रामलाल ड्राइवर से दोस्ती पैदा करने के लिए कार के ट्यूब को पप कर रहा होगा।

पलक झपक रहे हैं। झपकने ही देता हूँ उन्हें।—“चंदिया चाय उठा ले जा। मुझे नींद आ रही है।”

...

...

...

“उठो लम्बकर्ण, उठो। बिना हिले-डुले काम नहीं चलता इस दुनियाँ का।” दूसरे दिन स्वगत की भाँति अपने आपसे कहता और सासर के पेट में रक्खा उल्टा कप सीधा करता और केतली उठाकर उसमें चाय ढालता-ढालता मैं जो द्वार की ओर देखने लगा, तो माँ ने कहा—“लाली को ज्वर आ गया है। खाट पर पड़ी-पड़ी तड़प रही है बेचारी। जान पड़ता है, सरदी खा गयी है।” ऐसी बातें सुनने का मैं आदी हो गया हूँ।...चाय का कप मुँह से लगा है। ससार के सभी दुखी, पीड़ित, व्याकुल और असहाय प्राणियों की निरन्तर देखभाल करने का टेका मैंने नहीं लिया। चाय वैसे ठीक ही है, मगर वह बात कहों है!...टेका न कोई लेता है—न कोई देता है। फिर भी कवीर और बुद्ध की आँगवो के सूखे आँसू जगत के इतिहास और साहित्य की मरुभूमि के लिए सावन की गंगा बन जाते हैं!...भाभी मुझे पत्र भला क्यों लिखने लगी। और मैं? हुश!...इस कम्प्यूट आँधी ने भी मज़ा पैदा कर दिया। लाली से वह आकस्मिक टकराहट! वह मुलायम केशराशि!...फिर भाभी की याद आ रही है। स्नान के अन्दर उसके रेशम के लच्छों जैसे उड़ते केशों को वह बौछार कि—“यहाँ कोई डाक्टर नहीं है पड़ोस में? राजेन—ए राजेन!” यह माँ बोल रही है।

मैंने उत्तर दिया—“लेकिन डाक्टर की ऐसी ज़रूरत ही क्या है! बुखार ही तो आया है अभी! सो कल तक अपने आप उतर जायगा। फिर सोनेलाल भी तो घर में होगा। अगर दिखलाना ज़रूरी ही है, तो वह खुद डाक्टर को बुलाकर उसे क्यों नहीं दिखलाता?”

कोई इस भ्रम में न पड़े कि यह मानवता के प्रति उपेक्षा है मेरी।

असल बात यह है कि हम ज़रा तबियतदार आदमी हैं जनाब । इसलिये यह दुनियाँ जिस बेतकल्लुफी से मेरी तरफ़ देखा करती है, कभी-कभी उसकी अदा मुझे भी पसन्द आ जाती है । हालाँकि उस वक़्त दिल मेरा काफ़ी से ज्यादा जला-भुना रहता है ।

“सोने की बात निराली है ।” माँ कहने लगी—“वह तो कहा करता है कि स्त्रियों का इलाज भगवान के सिवा कोई कर नहीं सकता ; क्योंकि जिन स्त्रियों का इलाज होता है, वे बचती नहीं और जिनका इलाज बिल्कुल नहीं होता, वे दस-पौँच दिनों बाद आप-से-आप उठकर चक्की पीसने लगती है !”

माँ कहते तो कह गयी यह सब, लेकिन उन्हें सोनेलाल का यह कथन बुरा बहुत लगा । तभी वे मुझसे आशा करने लगी कि मैं ही कुछ व्यवस्था करूँ । पर मैं जब चुप ही बना रहा, तो वे बोली—“किसी का दुख मुझसे देखा नहीं जाता, यह बात तू अच्छी तरह जानता है राजेन । मैं तुझसे इसीलिये कह रही हूँ कि तू ही ज़रा उसकी नाड़ी देख ले । कहीं ऐसा तो नहीं है कि ज्वर का वेग इतना ज़्यादा हो गया हो कि फिर सम्हालते न बने । बड़ी बहू कहती थीं कि नाड़ी देखना तू जानता है थोड़ा-बहुत ।”

माँ के इस कथन में सत्य कितना है और मेरी प्रयोगात्मक लालसा और कौतुकपूर्ण चपलता कितनी, यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । इतने में चाची आ पहुँची ।

घोती का छोर मस्तक तक खिसकाती हुई द्वार के बाहर से ही कहने लगी—“मैं तो चाहती हूँ कि लाली मर जाय ! मैं साफ़ ही कहती हूँ आज । पर उसे कभी जुकाम भी नहीं होता । और जो यह पूछो कि फिर कल रात को ही उसे क्यों यह सन्निपाती बुझार आ गया, तो मैं उस बसीवाले की क्रसम खाकर कहती हूँ कि कोई-कोई घड़ी ही ऐसी आ जाती है, जब बिना सौ-दो-सौ रुपये पर पानी फिरवाये भगवान की भी आत्मा टंढी नहीं होती !”

“तुम घबरा बहुत जाती हो जीजी।” माँ बोली—“यह मैं सिर्फ आज की बात नहीं कहती, हमेशा मैंने तुमको इसी तरह पाया है।” और उठकर चाची के साथ कमरे से निकलती हुई कहने लगी—“चल रे राजेन, थर्मामीटर निकाल ले—और ज़्यादा नहीं, इतना तो देख ही ले कि बुखार है कितनी डिग्री का।”

तब मुझे उठना ही पड़ा। जा तो रहा हूँ, लेकिन यह कार्य है मेरे लिए दुष्कर। शरीर का तापमान देखते-देखते मैं कहीं शरीर के धर्म का तापमान देखने में न उलझ जाऊँ—तन का क्लेश देखते-देखते मन का दुख देखकर कहीं मैं रो न पड़ूँ!...या...?

यह लाली है।

...जैसे पलंग पर संगमरमर की एक प्रतिमा रखी हुई है। हिलने-डुलने से गिरकर कहीं टूट न जाय, इसलिए खड़ी नहीं की गयी। सिर के नीचे दो मुलायम तकिये जो रखे हैं, वे केवल सहारे के लिए हैं। ऊनी कम्बल इसलिए डाल दिया गया है कि धूल न पड़ जाय कहीं, जो प्रथम दृष्टि में स्वच्छता में अन्तर का भ्रम डाल दे।

नहीं-नहीं, यह प्रतिमा नहीं है। इसका शरीर पत्थर का नहीं बना। यह तो मानव-शरीर है—नारी है यह!

नारी है? भूठ।...अरे भई यह तो प्रतिमा है पत्थर की। मुँह खुला रखने के कारण सिर का केश-गुच्छ भी विश्रुंखलित रखना पड़ा है। माँग सूनी है—सिन्दूर-विहीन!...तो यह प्रतिमा कुमारी भी है! और मुखश्री की यह सुमन-शोभन आभा?...ना भई, मैं यह सब और न देखूँगा। बहुत कमज़ोर दिल का आदमी हूँ। मुझे अपने आप पर विश्वास नहीं है।...और अधरों पर यह लाली?...ओः! तभी इसका नाम लाली है।

पर मन का यह प्रमाद अधिक देर तक स्थिर नहीं रहा। तत्काल मुझे विवश होकर आकाश से उतरकर धरती पर आ जाना पड़ा;—क्योंकि लात ने एक बार पलक कुछ-कुछ खोले और फिर मूँद लिये। इकलाई साड़ी बादामी छोर सिर से खिसककर गले तक आ गया है। उसके नीचे ए

कोने से सोने की ज़ज़ीर भौंक रही है। ज्वराधिक्य से मुखपर तापकी ज्वाला लहक-लहक उठती है। श्वास के वेग से नथुने भी थोड़े उठ-उठ जाते हैं।

तो माँ ने यहाँ मुझे अंगारों से खेलने के लिए भेजा है ! द्वार पर दो मिनट खड़ा-खड़ा यही सब देखता रहा। इस बीच लाली को एक बार खाँसी भी आयी—और कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हाथ छाती पर जा पहुँचा है। एक बार उसने मेरी ओर देखा भी; पर जैसे ही मेरे मुँह से निकल गया—“कैसा जी है लाली ?” वैसे ही उसके मुँह से, हिलते हुए होंठों से, अस्फुट स्वर में निकला—“ठीक है।” पर शब्द स्वर बनकर फूट नहीं पाया—कण्ठ से निकलकर भी मानो बीच में रुक गया और तभी पलक भी झट से मुँद गये। तब मैंने कह दिया—“ज़रा हाथ दिखाना।”

इस बार हाथ तो लाली का उठ गया, पर नयन पलकों से आवृत ही बने रहे।—सोचा, इसका अर्थ ?

अर्थ स्पष्ट है कि तुम मुझे चाहे देख लो, मैं अब तुम्हें क्या देखूँ ! जितना देख लिया है, उतने से ही जी भर गया है।” सच कहता हूँ, मैं नाड़ी-वाड़ी देखना बिल्कुल नहीं जानता। केवल इतना जानता हूँ कि ज्वर का वेग जब बढ़ा हुआ रहता है, तब नाड़ी की गति तीव्र और शरीर का तापमान अधिक होता है। पर उसकी कलाई पर हाथ रखते ही मैं तापमान की उस अवस्था का अनुभव करने लगा, जब चाय लेते क्षण कप के स्थान पर अंगुलियाँ कलाईदार पीतल के गिलास पर जा पड़ती हैं ! इसलिए मुझे स्पष्ट कहना पड़ा—“डॉक्टर को दिखलाये बिना काम न चलेगा। ज्वर ऐसा कुछ मामूली नहीं है।” साथ ही मैं चुपचाप अपने निवास-स्थान की ओर चलने लगा।

इसी समय चाची बोली—“डॉक्टर सिनहा के पास तो सोने आता-जाता रहता है। उन्होंने कहा है कि अभी तो उन्हें फुरसत है नहीं। ग्यारह बजे बाद फुरसत मिली, तो देख जायेंगे।”

मैं डॉक्टर सिनहा को जानता हूँ। बल्कि कह सकता हूँ, उनसे मेरा अच्छा परिचय है। इसलिए सोचने लगा कि जब उन्होंने आने का वादा



किया है, तो वे आयेगे ही। सब तरह से निश्चिन्त होकर चला आया। पर ज्यों ही कमरे के अन्दर प्रवेश करने लगा, त्यों ही क्या देखता हूँ, “गौरीशंकरजी खड़े हैं।

भूट मेरे मुँह से निकल गया—“कहिये, सब कुशल-मंगल ?”

मारक्रीन की एक धोती, जिसे वे बगल से दबाये हुए थे, सम्हालते हुए उन्होंने उत्तर दिया—“और तो सब ठीक है। लेकिन करधना में जो डकैती हुई थी, जिसमें चार आदमी तो जान से मार डाले गये थे, उसमें पुलिस के हाथ में एक ऐसा कागज़ पड़ गया है, जो मिला तो था पानों पर लिपटा हुआ, पर है दरअसल वह रिवाल्वर की गोलियों का कैश-मेमो और नाम है उस पर श्रीमान एक-सौ-आठ रामलालजी का !”

सुनकर तबियत ख़ुश हो गयी मेरी।

लाली को देखने के लिए उस दिन कोई डाक्टर नहीं आया। संयोग से सड़क पर डा० सिनहा मिल गये तो मैंने उनसे पूछा—“सोनेलाल अपनी बहिन को दिखलाने के लिए आपको लेने आया था ?”

उन्होंने डब्बी से सुरती लेकर मुँह में छोड़ते हुए उत्तर दिया—“सोनेलाल अपने यहाँ कभी डाक्टर-वैद्य बुलाता भी है कि आज ही बुलायेगा।”

तब और भी अधिक स्पष्टीकरण के लिए मैंने पूछा—“क्या आपने उससे यह नहीं कहा था कि इस समय तो मैं व्यस्त हूँ। हाँ, हो सका तो ग्यारह के बाद आऊँगा ?”

वे कहने लगे—“क्या मेरी बात का यह मतलब नहीं होता कि न तो सोने खुद मेरे पास आया, न उसके यहाँ का कोई आदमी मुझे लेने आया। इतना ही नहीं, उसके घर से सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी बात किसीने मुझसे नहीं कही !”

अब मेरे समक्ष यह स्पष्ट हो गया कि चाची लाली के इलाज की आवश्यकता नहीं समझती। वे इस विषय में कुछ भी खर्च नहीं करना चाहती। वस्तुतः वे लाली का जीवन नहीं, मरण चाहती हैं। इसके लिए वे मुझसे झूठ भी बोल सकती हैं। और इतना ही नहीं, दुनियाँ की आँखों में धूल भोंककर परम पुण्य लाभ करती-करती निश्चिन्त भी हो सकती हैं।

तब आने समाज की वे सब घटनाएँ मुझे याद आने लगीं, जिनमें न तो विधवा के स्वास्थ्य की आवश्यकता समझी गयी, न उसके जीवन की। तभी कानो में कोई कहने लगा—“सारा हिन्दू समाज युवती विधवाओं की हत्या के लिए निरन्तर इसी प्रकार उद्यत रहता है। हमारे घरों के अन्दर वे दासी का-सा जीवन बिताती है। नित्य वे मेहनत-मज़दूरी के कार्यों में जुटी रहती है। साधारण शिक्षा प्राप्त रहने पर पाठशालाओं में अध्यापिका का कार्य उन्हें मिल जाता है। पर उनमें बिरली ही ऐसी होती है, जो आजीवन पवित्रता-पूर्वक सात्विक जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो पाती हों। नहीं तो अधिकांश विधवाएँ निरन्तर समाज की आँख बचाकर चलती हैं। वे चिकने, रंगीन और लुभावने वस्त्र नहीं पहन पाती। बलशाली पौष्टिक खाद्य पदार्थ खाने में वे सदा भय खाती और सशंकित रहती है। तरुण पुरुषों से मिलने-जुलने तक की रोक उनकी गर्दन पर अधिक की छुरी की भाँति चला करती है। कुटुम्बी जन, पड़ोसी और नाते-रिश्तेवाले निरन्तर इसी टोह में रहा करते हैं कि वह कहीं बैठती, किससे अधिक बातें करती और किस-किस से अधिक आत्मीयता रखती है। कभी जो उनसे एक बार भी मानवीय दुर्बलतावश कोई भूल हो जाती है, तो समाज के कोप-दानव की लाल-लाल भयावनी आँखें उन्हें खा जाती है। निर्वाह का साधन उनका नष्ट हो जाता है। समाज का दण्ड, वहिष्कार, उनकी मानसिक शान्ति और व्यवस्था का संतुलन नष्ट कर डालता है। विशेष अवस्थाओं में पड़कर वे आत्मघात तक कर बैठती, पागल हो जाती अथवा समाज का कलंक बनकर वेश्यालयों की शोभा बढ़ाती है। सदियों से यह अनाचार बराबर चला आ रहा है और कब तक चला जायगा, कौन कह सकता है?

...

...

घर आने पर चँदिया ने बतलाया कि माँ ने आज खाना नहीं खाया। सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मैं सोचने लगा कि लाली को बीमार पड़े दो दिन बीत गये। उसके कराहने का स्वर मेरे कानों में भी पड़ा है; फिर भी मैंने उसके इलाज की परवा नहीं की, केवल इसलिये कि उसका

पोंच हाथ का भाई सोने आखिर किस मरज़ की दवा है ? वह यदि अपनी विधवा बहिन का इलाज नहीं करना चाहता, तो मैं क्या कर सकता हूँ !

अर्थात् मेरी स्थिति उस तीसर व्यक्ति की-सी है, जो लाली से उतनी ही सहानुभूति रख सकता है, जितनी एक रास्ता चलता मुसाफ़िर ।

लेकिन तब प्रश्न यह है कि जिस रास्ते पर मैं चला जा रहा हूँ, उसका साथी—एक मुसाफ़िर—भी क्या मैं अपने आपको समझ सकता हूँ ?

अर्थात् मेरे मकान पर वह चाहे जितनी पीड़ित बनी रहे, मैं उसके साथ विशेष प्रकार की सहानुभूति रख नहीं सकता । सहानुभूति - सो भी एक विधवा नारी के साथ ! शिव-शिव !! अन्ततोगत्वा समाज के आगे इस सहानुभूति का एक अर्थ होता है । कोई भी वैसा अर्थ न लगाये, इसीलिये मैं मौन रक्खा गया हूँ । स्वयं मैंने अपने आपको मूक बनाया है ; क्योंकि मैं मर्यादा के हाथ बिका हुआ हूँ । उस मान्यता के साथ, जो अन्दर से खोखली और बाहर से चमकीली है ।

आज माँ ने खाना नहीं खाया, मानता हूँ । लेकिन मैंने तो खाया था । माँ उसकी सहायता करना चाहती है, करें ! पर मैं क्यों करूँ ? विधवा के साथ सहानुभूति रखनेवाला मैं होता कौन हूँ ! मेरी सहानुभूति उससे या तो बिल्कुल नहीं हो सकती, या फिर सम्पूर्ण हो सकती है, मेरे निखिल मन-प्राण की । यदि माँ मुझे उससे सहानुभूति रखने को विवश करेगी, तो मुझे यह स्पष्ट कहना पड़ेगा कि मेरी सहानुभूति सीमा नहीं हो सकती । ऐसा नहीं हो सकता कि वह एक बार प्रारम्भ हो—और फिर एक सीमा तक आगे बढ़कर बीच में ही रुक जाय । मैं गति हूँ, तो गति हूँ, रोध हूँ, तो रोध । मैं गति के क्षण रोध नहीं हूँ ।

इन्ही विचारों में उलझा हुआ मैं कमरे भर में इधर-से उधर टहल रहा हूँ । यद्यपि कल ही से मैं अगने भीतर के इस द्वन्द्व को भी इसी प्रकार टहलाता रहा हूँ । ... मैं अपने कानों से कुछ सुनना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि माँ मुझसे यह स्पष्ट कहे कि राजेन, तेरा यह कैसा निर्दय रूप है ! घर में एक प्राणी, बुरी तरह बीमार पड़ा रहे और तू उसकी

चिकित्सा के सम्बन्ध में मौन रहे—क्या यह तेरी मानवता के लिए उचित है ? : तो यह अच्छा ही हुआ कि माँ ने खाना नहीं खाया । इससे भी अच्छा यह होता कि उन्होंने कल से ही भोजन त्याग दिया होता ! और कुछ नहीं तो मुझे इस विषय में मुँह खोलने का अवसर तो मिलता !

लेकिन यह मैं माँ से लड़ रहा हूँ या अपने आपसे ?

तुरन्त माँ के पास जा पहुँचा और बोला—“क्या बात है माँ ?” माँ की ओंखें भरी हुई थी । बोली—“ऐसे घर में मेरा रहना नहीं हो सकता ।”

यद्यपि मैं जानता था कि क्यों माँ ऐसी बात कह रही है ; फिर भी मैंने पूछा—“आखिर क्यों ?”

उन्होंने अश्रुओं की भाषा में उत्तर दिया—“मैं उस घर में कैसे रह सकती हूँ, जहाँ के लोग अपनी कोख की जन्मी पाली संतान की दवा सिर्फ इसलिए नहीं करते कि वह विधवा है !”

आरोप यथार्थ है, जानता हूँ । प्रसन्नता की बात है कि उसे पुरातन संस्कृति पर विश्वास और आस्था रखनेवाली मेरी माँ कह रही है । लेकिन तब मुझे भी अपने उर-अन्तर का वह ब्रण खोल देना पड़ा, जिसकी पीड़ा से हमारा सारा समाज कराह रहा है ।

मैंने कह दिया—“वे लोग कुछ भी करें, उन्हें अधिकार है । उनके कामों में दखल देनेवाले हम होते कौन हैं ?”

माँ ने आँसू पोछ डाले थे । अतएव थोड़े आवेश के साथ वे बोली—  
“वे लोग इतने नर-पिशाच हैं कि लड़की का माल मार देने के लिए उसे जान से ही मार डालना चाहते हैं ! मुझे अगर पहले ऐसा मालूम होता, तो इनके साथ एक घर में रहना मैं कभी स्वीकार न करती । ऐसे आदमियों का मुँह देखना भी पाप है ।”

यकायक मेरे मुँह से निकल गया—“क्या पाप है—क्या पुण्य, यह तुम जानो । मैं तो इस समय केवल इतना ही जान रहा हूँ कि यह सब तुमको सिर्फ इसलिए सहन नहीं होता कि वह तुम्हारे समझ होता है ।”

“क्या मतलब ?” माँ ने जैसे चौकते हुए पूछा । और पूछने के साथ

ही उनकी भाव-भंगिमा भी बदल गयी। बोली—“तू साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहता मुझसे ? धुमा-फिराकर बात करना मुझे पसन्द नहीं है।”

तब मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उस बात के कहने का यह त्रिलकुल उपयुक्त समय नहीं है। इस समय किसी तरह वह बात कही नहीं जा सकती। मार्ग इतना पथरीला है कि दस कदम भी आगे बढ़ना दुष्कर है। चढ़ाई इतनी अधिक है कि थोड़ी ही देर में साँस फूल उठेगी।—आश्चर्य नहीं कि दम घुटने लगे।

लेकिन तत्काल कोई मुझसे कहने लगा—कायर व्यक्ति के लिए कभी उपयुक्त समय नहीं होता। सत्य कथन, उग्र विचार और कटु अनुभूतियाँ के स्वर दुस्ताहस के सहचर हैं। और वह विचारक वीर और क्रान्तिकारी कभी नहीं बन सकता, जो वातावरण और व्यवस्था-सम्बन्धी शान्ति-भंग हो जाने के भय से अशान्त जलराशि में पथर का एक टेला भी फेंकने से हिचकता है।

तब मैंने साफ़-ही-साफ़ कह दिया—“पर शरीर की दवा न करना ही कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं है; मन भी कोई चीज़ होती है। लाली के विधवा हो जाने के बाद ही सोने ने यह दूसरा विवाह किया है। यह बात तुम्हें पहले भी मालूम थी और अब भी मालूम है। जो लोग इस तरह के पाप नित्य करते हैं, उनसे हम क्यों मिलते हैं, क्यों बोलते हैं ? साफ़-साफ़ उनके मुँह पर क्यों नहीं कह देते कि या तो इस पाप को दूर करो या मेरी नज़रों के सामने से हट जाओ !”

माँ ने ज़रा भी विलम्ब किये बिना उत्तर दिया—“यह शिकायत तू उस भगवान से क्यों नहीं करता, जो ऐसी हालत में लाली जैसी लड़की का सुहाग लूट लेता है !”

माँ से मैं इसी तरह के उत्तर की आशा करता था। साथ ही मैं इसी अवसर को प्रतीक्षा में भी था।

तब मुझे कहना पड़ा—“यह शिकायत मैं उस माँ से कर रहा हूँ, जिसे यह जानना चाहिये कि यह पाप परमपुरुष भगवान ने नहीं, उसने

किया है जिसका नाम है समाज । जैसे विधुर के पत्न में एक स्त्री के मर जाने और तुरन्त उसकी जगह दूसरी आ जाने पर उसकी मन्थर गति में अन्तर नहीं आता, वैसे ही विधवा के पत्न में एक पति के स्थान पर दूसरा आ जाने पर उसकी नानी नहीं मर जानी चाहिये ।”

यह उत्तर माँ सहन न कर सकीं । कुछ बिगड़ती हुई-सी बोलीं—“यह सब तू आज क्या बके जा रहा है ! हमारे यहाँ ऐसा कभी हुआ है कि आज ही होगा । फिर ये बातें शान्ति के साथ बैठकर तै करने की है । जिस समय लाली की जान के लाले पड़े हैं, उस समय उसके ब्याह की चर्चा करते तुझे शर्म नहीं आती ! मेरी समझ में नहीं आता कि आज तुझे सूझा क्या है ! अरे समय-कुसमय का तो कुछ ध्यान रखकर ! जा, अभी जा, डाक्टर को अभी ले आ । जो भी खर्चा होगा, वह मैं दूँगी ।”

तब मुझे ऐसा लगा कि माँ ने मेरे मुँह पर कसकर ऐसा थप्पड़ जमा दिया है कि मैं सिर नहीं उठा सकता ।

और तब मैं कितना रोया, किस-किस प्रकार का पश्चाताप मेरी धमनियों की गति में—साँस-साँस में—विष की भाँति फैल गया, यह मैं ही जानता हूँ ।

चौबीस घंटे के निर्जल उपवास के पश्चात् मैंने माँ के चरण ओंसुओं से गीले कर दिये । रुदन की भाषा में मैंने पुकारा—

माँ !

तुम मुझे कभी क्षमा न करना । जब कभी मन का पाप मेरी वाणी पर उतर आये, तब तुम मुझे और भी अधिक दंड देना । तुम्हारी गाली, भर्त्सना और धिक्कार सदा मुझे कल्याण-पथ की ओर अग्रसर करेगा !

माँ !

तुम अपनी आत्मा के इस रक्त-पिंड को, अपराध के समय, कभी अपना प्यार न देना । तुम्हारा दारुण तिरस्कार ही मेरी आन्तरिक कालिमा को धो-पोंछकर मुझे निर्मल बनायेगा ।

माँ !

मू आज मुझे कोई ऐसा आशीर्वाद दे, जिससे पाप के पङ्क से भरी इस दुनियाँ के नाना प्रपञ्चों को मैं बिना किसी प्रतिक्रिया के सहन कर सकूँ ! चाहे मेरा प्राण चला जाय, पर तेरे आदर्श-रक्षा की मेरी कर्तव्य-निष्ठा को कभी आँच न आये ।

बार-बार माँ मेरे मूक बधिर हो रहे सिर को अपने चरणों से उठा रही हैं । लेकिन मैं हूँ कि सोचता हूँ, क्या अभी मेरे मन का पाप दूर हुआ है ? क्या मेरी आत्मा पूर्ण रूप से निर्मल हो पायी है ?

## बारह

डाक्टर को साथ लेकर जब मैं चाची के यहाँ पहुँचा, तो देखा—

अंगीठी की आँच से रुई का पुराना पहला गरम कर-करके लाली की पसली, पीठ और झगल के नीचे के भाग की सिकाई हो रही है । और लाली दर्द के मारे कभी-कभी कराह उटती है । यों डाक्टर साथ में ज़रूर थे, मगर उस क्षण मेरे निकट न थे ।

मैंने पूछ दिया—“डाक्टर को नहीं बुलाया न आखिर ?”

चाची ने जवाब दिया—“आये तो नहीं वो, पर दवा जो उन्होंने बतलायी, हो वही रही है ।”

जी मैं तो आया कि बिनयशीलता का मोह त्यागकर साफ़-ही-साफ़ कह दूँ कि झूठ बोल लेना जितना आसान तुमने समझ रखा है, वास्तव में वह उतना हुआ नहीं करता । अन्त तक उसका निर्वाह कर ले जाने वाले बिरले ही कलेजे होते हैं । लेकिन शील के प्रति इतना प्रकट विरोध मुझे स्वीकार नहीं हुआ ।

तब सारी परिस्थिति समझकर मुझे कहना पड़ा—“मैं जानता था, वे इस तरह नहीं आयेंगे । इसलिए मैं खुद उन्हें साथ ले आया हूँ । पर तुम किसी तरह की चिन्ता न करना चाची । उनकी फ़ीस ही नहीं, दवा के दाम

भी तुमको देने न होंगे। माँ के रहते इस घर का कोई भी प्राणी बिना इलाज के इस दुनियाँ से उठ जाय, ऐसा हो नहीं सकता।”

उसी क्षण मेरी दृष्टि जो लाली पर जा पड़ी, तो क्या देखता हूँ, कण्ट के बजाय उसके नयनों का स्वर फूट रहा है !

इसी समय डाक्टर सिनहा आ गये। मरीज़ के आराम का कितना ध्यान इस परिवार में रखा जाता है, यह बहुत कुछ तो वे पहले से जानते थे। थोड़ा-बहुत जो बाक़ी था, सो अब देख रहे थे। अतः बिना कुछ बोले रह न सके। कहने लगे—“इन लोगों को तो दवा की ज़रूरत पड़ती नहीं। ये तो केवल भगवान की इच्छा पर जीने-मरनेवाले प्राणी हैं। मैं बिना देखे इतना कह सकता हूँ कि मरीज़ को निमोनियाँ हो गया है। मगर बहुत हुआ तो गरम कड़ुवे तेल की मालिश और बस इन्हीं तरह की सेक काफी है। आप हमको बेकार यहाँ ले आये। ये लोग तो स्त्रियों की दवा कराते नहीं कभी।”

“दवा करायेँ तो सब कुछ” सिर की साफ धोती को थोड़ा और मत्थे पर खिसकाती हुई चाची बोली—“मगर दवा कराने की हैसियत भी तो होनी चाहिये।”

“हैसियत का अबल तो सवाल नहीं उठता” चैंदिया की लायी हुई कुरसी पर बैठते हुए डाक्टर साहब बोले—“क्योंकि जिन्हे ज़िन्दगी प्यारी होती है, वे उसकी रक्षा के लिए सब कुछ करते हैं, चाहे जैसे करें। क्योंकि धन-दौलत के सारे सुख-दुख लगे तो आखिर ज़िन्दगी से ही है। जब हमी न रहेगें, तो हमारी सम्पदा का होगा क्या ? वह है किस दिन के लिए ? फिर, आपकी हैसियत किस बात में कम है ? मुझे मालूम है, लाली ससुराल से कितना ज़ेवर लायी थी।”

“लायी थी, सो है तो उसी के लिए। कोई उसे खाये तो जा नहीं रहा। पता नहीं ज़िन्दगी में कब कैसे दिन काटने पड़ें !—पता नहीं कब किसका सहारा ताकना पड़े ! यह भी तो हो सकता है कि ज़िन्दगी मेरी जैसी इतनी बेशरम हो कि काटे ही न कटे !”



“लेकिन जान खो देने के बाद वह ज़ेवर तो फिर उसके काम आने से रहा।”

“जान जाना इतना सहज नहीं है डाक्टर साहब ! ऐसी ही होनहार होती, तो भगवान पहले इसके सुहाग को ही क्यों ले जाता !

चाची की बात सुनकर डाक्टर बोले—“सुना आपने ? तिसपर आप मुझे दवा के लिए ले आये है।”

चाची मेरी तरफ देख रही है।

लेकिन अपनी तरफ देखते समय मैं किसी की तरफ देखना पसन्द नहीं करता। मुझे कहना पड़ा—“आप यहाँ इनके विचारों की दवा करने तो आये नहीं; दवा तो आपको मरीज़ की करनी है, सो कीजिये।”

तब डाक्टर सिनहा लाली की पूर्ण परीक्षा करने में लग गये।

कई दिन से लाली की दवा चल रही है। उस दिन तो डाक्टर सिनहा ने कुछ आशंका भी प्रकट की थी; पर अब वैसा कोई डर नहीं रह गया है। सोनेलाल कई दिन में बाहर से लौटा है। दोपहर को मैंने उससे बात की; उलहना भी दिया कि लाली की ज़िन्दगी की तुम्हे ज़रा भी परवा नहीं है। पर वह इसके उत्तर में हँसने लगा। बोला—“आपभी खूब है पाण्डेय जी महाराज। इतनी जल्दी घबरा गये ! अरे सरदाँ लग जाने से या निमोनियों ही हो जाने से भला कोई मरता है ! जिसे ज़िन्दगी बढ़ी होती है, वह दारागंज के आंग उस श्मशान से भी सही-सलामत लौट आता है, जहाँ रात को बड़े-बड़े पिशाच कब्रड़ी खेला करते हैं ! यह सब ईश्वरी माया है सरकार, जिसका भेद ऋषि-मुनियो तक ने नहीं पाया, हम आप क्या चीज़ हैं !.. अरे कहों गयी लाली ? . ए लाली नहीं ओ री। ज़रा बीड़ी देना !”

दाँतो पर पान का कत्था इतना पुता हुआ है कि सभी पक्के चाक-लेट रंग के हो गये हैं। हाँठों पर भी कत्थे के पर्त पड़े हुए हैं। कान के अन्दर अतर का फाहा अब तक खासा हुआ है और बाहर चूने की गोली।

चाची तुरन्त आ गयी। बीड़ी का बंडल और दियासलाई की डबिया

सोने को देती हुई कहने लगी—“ससुराल से जब से लौटा है, तब से लाली की दवा में सैकड़ों रुपये खर्च कर देने के लिए तुम्हारी ही बड़ाई कर रहा है। कहता है—उनके रुपये क्यों खर्च करवा दिये ? तुम्हारे पास क्या थे नहीं ? मैंने कहा—राजेन को मैंने कभी दूसरा नहीं समझा। सो अगर बहन के लिए वह अपनी खुशी से कुछ खर्च करना ही चाहे, तो उसका हाथ मैं थोड़े ही रोक सकती हूँ।”

चाची वार्तालाप में चतुर है, सन्देह नहीं। लेकिन अतिरंजित प्रशंसा की भावुकता में आकर जान-बूझकर फँसते जाने को अब मैं भी परम मूर्खता मानने लगा हूँ। अपने मन की एक लघु-से-लघु तरंग पर चाहे सैकड़ों रुपये खर्च हो जायें, परवा नहीं ; पर कोई बेवकूफ बनाकर मुझसे रुपये ऐठना चाहे, यह मेरे लिए ज़रा कम सम्भव है। इसलिए मैंने अबसर अनुकूल देख कह दिया—“यह तुम्हारी बड़ी कृपा है चाची। लेकिन पता नहीं क्या सोचकर माँ ने कहा था कि लाली की दवा में जो भी खर्च हो, लिखते जाना। मौक़ा पड़ने पर जीजी कभी जो हिसाब माँग बैठें, तो दिखाना तो पड़ेगा ही। आज उनका हाथ खाली है, ज़ेवर भी शायद कोई सुनहला महीनो से कही बंधक रक्खा है; पर ऐसा थोड़े ही है कि महीना-पन्द्रह दिन में उनके पास रुपया न आ जाय !”

ज़ेवर बंधक रखने और सो भी महीने-के-महीने बीत जाने पर भी न छुड़ा पाने की बात मैंने माँ की अन्य बातों के साथ एकदम अपने मन से ही जोड़ दी। यह भी न सोचा कि यदि चाची इस विषय में माँ से पूछ ही बैठें, तो माँ मुझे क्या कहेगी !

यह कल्पना मैंने यह समझकर की कि जो व्यक्ति रुपये का लोभी होता है, यदि उसके पास कुछ पूँजी हो जाती है, तो किसी का यह कहना वह कभी सहन नहीं करता कि उसके पास दमड़ी नहीं है, उसको काफ़ी रुपया देना है या उसने कोई चीज़ कही रेहन रक्खी है। क्योंकि पैसे जमा करने का सबसे महत् उद्देश्य, उसकी दृष्टि में केवल मर्यादा-वृद्धि रहता है। वह सदा यही सपना देखा करता है कि सब जगह मेरी

धाक हो, समाज मे मेरी साख हो, दुनियाँ मुझे सम्मान की दृष्टि से देखे ।  
इशारे पर ही मेरे सब काम हो जाया करें ।

यों बातें गढ़-गढ़कर भूठ-भूठ किसी को चकर में डालने की मेरी  
आदत नहीं है । पर पता नहीं किस भावना से उस क्षण कुछ ऐसी बात  
मेरे मुँह से निकल ही गयी । हो सकता है कि असत्य की कल्पना का बौद्धिक  
रूप देखने की लालसा मेरे अन्तर्मन मे उत्पन्न हो गयी हो । यह भी हो  
सकता है कि निरन्तर पूँजी बढ़ाते रहने और समय आने पर भी कुछ खर्च  
न करने की सबसे हीन और अधम श्रेणी की कंजूसी के प्रति, एक द्वेषमूलक  
प्रतिहिंसा की भावना से मैंने इसका प्रयोग किया हो । इसके सिवा यह भी हो  
सकता है कि लाली के प्रति कही किसी प्रकार की सहानुभूति मेरे द्वारा  
प्रदर्शित न हो जाय, यही सोचकर मैंने यह चेष्टा की हो ।

जो भी हो, एक तरह से अपनी साधारण प्रकृति के विरुद्ध मैंने ऐसा  
कह ही दिया । फलतः चाची की दोनों आँखें अवमानना के अकल्पित  
आघात से जल उठी । अत्यन्त आश्चर्य मे वे बोली—“क्या कहा ? जीजी  
ऐसा कहती थी !”

उत्तर में मुझे कहना पड़ा—“हाँ हाँ जीजी ! मेरी माँ ऐसा कह रही  
थी । पर इसमे न तो आश्चर्य करने की बात है, न बुरा मानने की ।  
क्योंकि तुम्हारे सम्बन्ध मे सदा से उनका यही विश्वास रहा है कि चाहे  
जैसा संकट आ पड़े, कभी तुम रुपये का मुँह नहीं देखोगी । जहाँ एक की  
ज़रूरत होगी वहाँ सवा रुपया खर्च करने को पहले से तैयार रहोगी । रुपया  
पास होना भर चाहिये । रह गयी एहसान की बात, सो वह भी तुम अपने  
ऊपर कभी रख न सकोगी, चाहे वह अपनी सगी बहन ही क्यों न हो ।”

बीड़ी के शेष भाग को दरवाज़े के आगे सड़क पर फेंकता हुआ सोने  
इसी क्षण बोल उठा—“यह बात उन्होंने बिल्कुल ठीक ही कही है  
आपसे । इसमे रस्ती भर भी फरक नहीं है ।”

अभी सोनेलाल इतना ही कह पाया था कि चाची उठकर अन्दर चली  
गयी । तब मैं सोचने लगा—मेरा अस्त्र बेकार नहीं गया है । मुझे कुछ

उस प्रकार की प्रसन्नता हुई, जैसी किसी विद्यार्थी को परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने से होती है।

सोनेलाल कहने लगा—“आज किसी वक्रत खर्च का हिसाब मुझे दिखला दीजियेगा। तभी मैं आपको रुपया दे दूँगा।”

अन्दर पहुँचकर देखा, माँ रामायण-पाठ करके उठी है। ऐसे समय जब मैंने माँ को यह सवाद दिया कि लाली की बीमारी में जो भी खर्चा हुआ है, सोनेलाल उसे देने को तैयार है, तो माँ को आश्चर्य्य हुआ। बोली—“तैयार भले ही हो, मगर रुपया वह दे ही देगा, इसका कोई भरोसा नहीं।”

तब मैंने क्रम-क्रम से वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जिसके परिणाम-स्वरूप सोनेलाल को विवश होकर रुपया देना स्वीकार करना पड़ा। सुनकर इस बार माँ गम्भीर हो गयी। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनको मेरा यह कार्य्य रुचिकर नहीं लगा। शुद्ध घी में दीपक की बत्ती डुबोती-डुबोती वे कहने लगी—“यह सब अच्छा नहीं है राजेन। चाची परायी जाति की ज़रूर है; लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि उनका हमारे साथ अपनेपन का नाता नहीं है। हमारे साथ उनके सम्बन्ध इतने गहरे रहे हैं कि अगर सौ-पचास रुपये उनके लिये मुझे खर्च कर देने पड़ें, तो मैं कभी उनसे माँगना तो दूर, उनकी चर्चा तक नहीं करूँगी। इसलिए चाहे जिस रूप में हो, उनके मन पर तेरी बातों का यह असर नहीं पड़ना चाहिये कि हम लोग उनसे अपने रुपये वसूल ही कर लेना चाहते हैं। यह बात तुझे उनसे किसी तरह कहनी नहीं चाहिये थी कि आजकल उनका हाथ पैसे से बिल्कुल खाली है। यह बड़े दुःख की बात है—मैं तो लिहाज़ के मारे बहुत सौच में पड़ गयी हूँ। तू ने यहाँ तक कह दिया कि उन्होंने कोई सोने की चीज़ बन्धक रखी है ! मैंने तो तुझसे इस सम्बन्ध में कभी कुछ कहा नहीं, फिर मेरी समझ में नहीं आता कि तू ने यह बात अपने मन से गढ़कर कैसे कह डाली !”

माँ के इस कथन से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।—क्योंकि उससे मुझे दो

नयी बातों का परिचय मिला। एक तो यह कि चाची का उनके साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। यद्यपि उस घनिष्ट सम्बन्ध के विषय में उन्होंने स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा। दूसरे, कोई बड़ा गहना कहीं बन्धक रखने के विषय में मैंने योंही अपने मन से गड़कर जो बात कह दी, वह भी ठीक निकली। क्योंकि माँ ने कह दिया कि मैंने तो तुम्हसे इस सम्बन्ध में कभी कुछ कहा नहीं। अर्थात् उनको आश्चर्य्य है उनके न बतलाने पर भी मैंने उसे कैसे जान लिया।

अपने ऊपर लगे हुए आरोप की गुरुता को जान-बूझकर गिराते हुए तब मैंने कह दिया—“मैंने किसी बुरे भाव से तो उनसे ऐसा कहा नहीं। फिर भी अगर उन्हें बुरा लगा हो, तो इसके लिए मुझे खेद है। लेकिन मैं चाहता यह अवश्य हूँ कि पहले रुपये वसूल हो जायें, उसके बाद अगर तुम कहो तो मैं उनसे क्षमा माँग लूँ।”

मेरे इतना कहते ही माँ चाची के यहाँ जाती हुई बोली—“मैं अभी उनसे मिलकर उनके मन का भेद लिये आती हूँ। अगर उन्हें कुछ बुरा भी लगा होगा, तो भी मैं उन्हें ठीक कर लूँगी। उनको खुश करने में ढेर कितनी लगती है !”

माँ चाची के पास जा पहुँची है और मुझे लाली से आज फिर मिलना है। उससे मिलकर जब-जब लौटा हूँ, तब-तब अपने मन पर पड़नेवाले प्रभावों से बच नहीं सका हूँ। उन आँखों की भाषा पहचानने में मुझे कभी ढेर नहीं लगी, जो सदा कृतज्ञता में डूबी हुई रही है ! उन पलकों का उठना मैं कभी कैसे भूल सकता हूँ, अनवरत प्रतीक्षा की भूख से ज्वरित थके हुए प्रतीत हुए हैं ! वे लाल-लाल हाँठ, जो कई दिन से निरन्तर निराहार रहते-रहते मुरझा-से गये हैं, ज्वर के उत्ताप से जिन पर पपरी जम गयी है, उनका यकायक खिल उठना मैं कैसे भूल सकता हूँ ! और सब कुछ भूल जाऊँ, पर मन के भीतर का सारा मर्म, हृदय की वाणी की सारी व्यथा और नाना प्रकार की कल्पनाओं के अविकल आधार जिन आँसुओं ने व्यक्त किये हैं, उन मोनियों को मैं कैसे भूल सकता हूँ !

अमावस्या का दिन था। चाची गङ्गा-स्नान को गयी थी। सोनेलाल ससुराल से लौटा नहीं था। उसकी भार्या रसोईघर में रोटी बना रही थी। उसका दो वर्ष का बच्चा पालने में पड़ा सो रहा था। ऐसे समय मुझे लाली बुलाती भी, तो मैं उसके पास न जाता। किन्तु कल रात को जब माँ मेरे पास बैठी हुई मुझे खाना खिला रही थी, तब यकायक उन्होंने कहा था—  
“आज लाली का ज्वर उतरा है। दूध भी उसने थोड़ा-सा पिया है।”

मैंने पूछ दिया—“और मुसम्मी का रस?”

माँ बोली—“मुसम्मी नहीं पत्थर! दूध मँगाने में तो उनकी जान-सी निकली जाती है, मुसम्मी का रस देगी वे।”

मैंने पूछा—“लेकिन डाक्टर ने तो बतलाया था कि मुसम्मी का रस ज़रूर देना। बल्कि थोड़ा-सा ग्लूकोज़ भी उसमें छोड़ लेना। और दो-तीन मुसम्मी सुखराम बाज़ार से ले भी आया था।”

तब माँ ने कहा—“दो-तीन मुसम्मी में होता क्या है उस घर में! दो मुसम्मी तो उन्होंने दोपहर में ही नाती को खिला दी थी।”

“अच्छा, तो यह बात है।” तुरन्त मेरे मुँह से निकल गया—“मत-लब यह कि रोगी की बीमारी के नाम पर जो चीज़ें आती हैं, वे रोगी के पास पहुँचने के पूर्व ही उड़ा दी जाती हैं।”

“इसमें भी कोई बुराई नहीं है। नाती को मुसम्मी अगर खिला दी गयी हों, तो इसमें शिकायत की कोई बात नहीं देख पड़ती। क्योंकि वह भी तो नयी पौध के प्यार का एक पहलू है। पर सबसे अधिक विचार करने की बात यह है कि जिस बीमारी के इलाज का खर्चा हम दे रही हैं, उसके हिसाब में लाली के जेठ का सौ रुपये का बीमा अभी आज ही आया है और लिया भी गया है वह इतना छिपाकर कि मुझे पता भी न चलता, अगर मैं छुज्जे पर से पोस्टमैन को घर के अन्दर आते न देख लेती।”

इतना कहती-कहती माँ भगवान की आरती करने चली गयी। मैं बराबर यही सोचता रहा कि बीमे की बात छिपाने में चाची का क्या उद्देश्य हो सकता

है ? क्यों वे मुझसे इतना छिपाव-दुराव रखती है, जब हम सब सदा उनका भला ही सोचते और जो अपने से बन पड़ता है, उससे कभी चूकते नहीं । कहीं ऐसा तो नहीं है कि वे हमारी सहृदयता से अनुचित लाभ उठाना चाहती है ? फिर सम्पत्ति के प्रति उनको इतना मोह क्यों है ? अब उनको जीवन के सुख-आनन्द का कौन-सा अछूता कोना देखना शेष रह गया है ?

मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि दीवाल पर बैठी हुई छिपकली कीड़े की ताक में ध्यानावस्थित-सी देख पड़ी । तब मैं सोचने लगा—“पैसा छल्लो-छल्ल से, बल से, ज़ोर-ज़बरदस्ती और कपटाचार से, मिथ्या लोभ और भविष्य की कल्पित आशाओं के आश्वासन से, चोरी, डाका, खून और विष-प्रयोग से !” पर इस प्रकार जो लोग दूसरे का पैसा हड़प लेते हैं, वे इस छिपकली से किस बात में कम हैं ?”

वे ध्यान लगाये बैठे हैं कि कब किसीको उल्लू बनाने का अवसर मिले ।

यह भी ध्यान लगाये बैठी है कि कीड़ा सीमा के भीतर दिखलाई भर पड़े ।

वे इस अवसर की ताक में है कि कब कोई मुझसे अपनी कठिनाइयों का रोना रोये और मैं चार रुपये का लोभ ढंकर चौबीस रुपये बना लूँ । उसके लाभ का मुख्य भाग मार दूँ—इतनी खूबसूरती के साथ कि उसे पता भी न चले और रुपया अपनी तिजोरी में खिचा चला आये ।

यह भी इसी अवसर की ताक में है कि प्रकाश की मोह-माया में पड़कर कीड़ा उसकी सीमा में कदम भर रखे कि मैं अपना मुँह मार दूँ—एक झटके में काम पूरा कर लूँ ।

चाची, तुम बहुत बुरा कर रही हो । तुम्हें पता होना चाहिये कि कोई इस जगत में ऐसा भा है, जिससे तुम कोई बात छिपा न सकोगी ।

इतने में भगवान की आरती करके माँ जो मन्दिर से लौटी, तो कहने लगी—“किशोरी दूकान में बैठा बड़ियाँ छोटी-बड़ी अलग-अलग कर रहा था । मैंने पूछा—क्या कोई रजिष्ट्री आयी थी सोने के यहाँ ?”

उसने बतलाया—“रजिद्री नही, बीमा आया था लाली के जेठ के यहाँ से, सौ रुपये का।”

मैने कह दिया—“लाली ने चिट्ठी लिखवाकर रुपया मँगवाया होगा।”

तो वह बोला—“कौन जाने चिट्ठी लिखवायी या तार दिया। भेद तो इनका कुछ कभी किसी को मिल नहीं पाता। इसके सिवा इनकी बातों का भरोसा भी क्या ! भगतिन (चाची) कहती थी—“क्या होता है इन सौ रुपए मे। जब से लाली बीमार पड़ी है, दस-बीस रुपये तो दस बजते-बजते हुर्र हो जाते हैं।” इस पर किशोरी टिपणी जड़ता हुआ बोला—“दमड़ी तो कभी इन्होंने लाली पर खर्च की नहीं, दस-बीस रुपये रोज़ ये खर्च करेगी।” मैने उससे कुछ नहीं कहा कि अबतक कौन खर्च दे रहा है, कौन नहीं दे रहा है। क्योंकि कोई भी धर्म का काम हो, कर देने के बाद, फिर इधर-उधर कहीं उसकी बात करने में मुझे बहुत हलकापन मालूम होता है। जाने कैसे वे लोग हैं, जो धूल का एक कण भर काम निकाल देने पर दुनियाँ भर में गाते फिरते हैं कि मैने करुणाप्रसाद को पृथ्वीनाथ बना दिया।”

माँ ने जब ये बातें कह सुनायी, तब मैं बीच-बीच में केवल हँ-हूँ करता रहा। कोई भी बात अपनी ओर से मैने नहीं कही। लेकिन माँ कहीं यह न समझ बैठे कि मेरा ध्यान किसी दूसरी ओर है, केवल इस विचार से मैने इतना कह दिया—“खैर और जो कुछ हुआ सो हुआ; मुझे तो केवल इस बात से सन्तोष है कि तुम्हारी इच्छानुसार लाली की जान बच गयी। अब कैसी तबियत है उसकी ? मुझे तो देखने की फुरसत मिली नहीं।”

“तबियत तो अब अच्छी है। लेकिन तेरी शिकायत कर रही थी लाली। कहती थी—कई दिन से देख नहीं पड़े भैया। पहले आधे मिनट के लिये आकर तबियत का हाल भर पूछ जाते थे; अब इस बहाने भी नहीं आते। अबकी आयेगे तो मैं उनसे लड़े बिना न मानूँगी।”



सुनते ही लाली का कथन मेरे मानस पर तैरने लगा और तब विवश होकर मुझे उससे मिलना पड़ा ।

और किसी ने देखा हो, चाहे न देखा हो, पर मैंने सौन्दर्य को बोलते देखा है । और कोई उसकी मूक भाषा के मर्म को भले ही न पा सका हो, मैंने पाया है । और किसी ने उसकी लाड़-भरी किलकारियों की छवि-माधुरी को आँखों में भर-भरकर चाय की चुसकियाँ और नीद की भ्रमकियाँ न ली हों, पर मैंने ली है । मैं जानता हूँ, उसके उठते-गिरते पलकों और खुले-अधखुले अधरों से निकले नीरव शब्दों का मोल कैसे चुकाया जाता है ।

मैंने सौन्दर्य को उत्तरोत्तर म्लान पड़ते हुए भी देखा है । मैंने देखा है, पहले कमल की एक पखड़ी कुछ मुरझायी-सी रही है । फिर मैंने दूसरी पंखड़ी को मुरझाता हुआ देखते-देखते, बात-की-बात में अनेक पंखड़ियों को एक साथ मुरझाते हुए देखा है । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ है कि कमल का यह सौन्दर्य मैं स्वयं हूँ और उसकी ये पखड़ियाँ नहीं मुरझायी है—मैं स्वयं मुरझा गया हूँ !

लाली की ओर देखते हुए मुझे कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ । मैं सोचने लगा—“मैं इससे क्यों पूछूँ कि तुम्हें क्या कष्ट है ?—जब कि वह कष्ट स्वयं मेरा है ।”

मैं चुपचाप उसके पास पड़ी हुई चारपायी पर बैठ गया । मेरा बैठना था कि उसके पलक हिले और खुले । दायाँ हाथ जो चारपायी की पाटी की ओर बड़ा हुआ था, उसकी अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों भी हिली । फिर उसकी मुँदी हुई दायाँ आँख से आँसू का एक कण निकला, कुछ रुका और टुलका पड़ा ! फिर कई कण निकले और बिना रुके टुलकते रहे, टुलकते रहे !

मैं फिर भी चुप रहा ।

कुछ ऐसा हुआ कि वह भी चुप ही बनी रही ।

मेरे मन में आया कि जब मोती बात कर रहे हों, तब आदमी को बोल उठने की आवश्यकता ही क्या है ?

मैंने उस दिन डोरिया की कमीज़ पहनी थी। उसकी जेब में एक रूमाल पड़ा था। मैंने उसे ज्यों ही निकाला, त्यों ही उसकी कोमलता ने मुझे छू लिया। तत्काल मैं यह सोच ही न सका कि इतना कोमल रूमाल मेरी जेब में आया कैसे ! फिर भी मैं उससे लाली के आँसू पोंछने लगा। परन्तु मुझे यह अनुभव करते देर न लगी कि उससे भीनी-भीनी सुगन्ध फूट रही है। बिसकिट वर्ण की रेशमी ज़मीन पर चाकलेट रंग की बूँदें पड़ी हुई थी। तब ध्यान आगया, हो-न-हो भाभी इसे मेरी जेब में छोड़ गयी हैं।

पर आँसू पोंछकर मैं ज्यों ही उस रूमाल को जेब में यथावत् रखने की चेष्टा करने लगा, त्यों ही लाली का हाथ मेरे हाथ से छू गया। तब मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मेरे हाथ के उस भाग से बरफ के टुकड़े का स्पर्श हो गया हो। तब मैं यह कहते-कहते रुक गया कि तुम्हारा शरीर इतना शीतल है ! यद्यपि सर्ग अभी मुझसे केवल उसके हाथ-मात्र का हुआ था, सो भी क्षणभर के लिये। इसी क्षण यकायक उसकी आँखें खुल गयी और अत्यन्त मन्द स्वर में उसने पूछा—“यह रूमाल ...?”

मैंने रूमाल उसे देते हुए कहा—“यह रूमाल कुछ ऐसी बात है कि मुझे अभी, इसी समय, जेब में पड़ा हुआ मिला है। तुम चाहो तो सहर्ष इसे ले सकती हो।”

“पड़ा हुआ मिला है !—जेब में ? किसी ने दिया नहीं है तुम्हें ?” थोड़ा ज़ोर लगाते हुए उसने पूछा। इस विस्मय के साथ कि इतने अचेत रहते हो तुम !—इस कल्पना और आशंका के साथ कि किसी आत्मीय ने ही प्रेमोपहार समर्पित किया है, सो भी गुप्त रूप से।

तब मैंने कह दिया—“नहीं।”

ऐसा जान पड़ा, जैसे वह कुछ सोच रही है और उसने रूमाल ज्यों-का-त्यों मुझे लौटा दिया !

मेरे इस कथन का लाली पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उठकर बैठ गयी। मैंने कहा भी कि तुम्हें बैठने में कष्ट होगा; पर उसने उत्तर में कुछ ऐसा मुँह बना लिया, जिससे स्पष्ट प्रकट हो गया कि एक तो उसे कुछ कष्ट होगा नहीं, दूसरे अगर थोड़ा-बहुत हुआ भी, तो वह उसकी परवा नहीं करेगी।

इसके बाद बाये हाथ को दायी हथेली में लेकर उसकी रेखाओं की ओर ध्यान से देखती-देखती वह बोली—“पता नहीं, मेरे भाग्य में क्या लिखा है !”

अचानक मेरे मुँह से निकल गया—“भाग्य में कुछ लिखा नहीं होता। उद्योग, प्रयत्न और पुरुषार्थ से ही मनुष्य अपने भविष्य का निर्माण करता है।”

मेरा इतना कहना था कि क्षण भर टकटकी लगाकर उसने मेरी ओर देखा और कह दिया—“और सब कुछ कर-धर लेने पर भी जब उसे सफलता नहीं मिलती, तब वह ब्लेड से अपना गला भी काट डालता है !”

मुझे ध्यान आ गया कि यह सकेत उन बुद्धिजीवियों की ओर है, जिन्होंने जीवन से निराश हो उठने पर अन्त में आत्मघात की शरण ली। तब मैंने विवश होकर कह दिया—“हाँ, ऐसा भी हुआ है, मानता हूँ। पर इसके यह अर्थ नहीं कि उनका वह उद्योग और पुरुषार्थ ही वह कारण है, जिसने उनको गला काटने के लिये विवश किया। मन की वह स्थिति ही कुछ अजीब-सी होती है, जब क्षणिक उत्तेजना में पड़कर आदमी ऐसा अनिष्ट कर बैठता है। लेकिन कुछ भी हो, मैं मानता इसे कायरता ही हूँ।”

वह बोली—“मैं किसी दूसरे की बात नहीं कहती। मैं तो उन्हींकी बात कहती हूँ, जिन्होंने मुझे आज इस दुर्गम पथ की भिखारिणी बना डाला है।

मुझे ध्यान आ गया कि एक दिन माँ ने बतलाया था, लाली के पति-इतने सुन्दर और अमीर थे कि ब्याह के अवसर पर देखनेवालों ने कहा

था—“लड़का उमर में भले ही कुछ अधिक हो, लेकिन बनक, छवि और शोभा उसकी बिल्कुल राजपुत्र की-सी है।”

तब मैं विचार में पड़ गया। मुझे कहना पड़ा—“मुझे बड़ा दुःख है कि मेरी बात उनके लिए भी लागू हो गयी। वास्तव में मुझे ज्ञात भी न था कि ऐसी कोई बात उनके जीवन में हुई थी। पर जब तुमने स्वयं ही इसकी चर्चा कर दी, तब क्या तुम यह भी बता सकोगी कि उन्होंने ऐसा क्यों किया?”

अपनी बात कहकर वह तकियो के सहारे पुनः लेट गयी थी और एक चादर से उसने अपना शरीर ढक लिया था। किन्तु मैंने जब यह प्रश्न कर दिया, तब चादर से मुँह खोलकर उसने कह दिया—“बस यही बात मुझसे मत पूछो।” और उसने चादर से पुनः मुँह ढक लिया।

तब मैं यह कहकर चलने लगा—“मैं तो असल में तुम्हारी तबियत का हाल लेने आया था। लेकिन बातें कुछ ऐसी हो गयी, जिन्होंने तुम्हारी सोयी स्मृतियाँ जगा दीं। इसका मुझे दुःख है। अच्छा, अब मैं चलता हूँ। फिर बातें हाँगी। इस समय किसी प्रकार मैं तुम्हारे मन को दुखी नहीं करना चाहता।”

इतना कहकर मैं सचमुच चल दिया। पर मैं अभी उसके कमरे के द्वार तक भी न आ पाया था कि पीछे से फिर उसका स्वर सुनाई पड़ गया—“लेकिन तबियत का हाल तो अभी तक तुमने पूछा नहीं।” उसी क्षण मैं ठिठुककर खड़ा हो गया। फिर मैंने घूमकर उसका ओर देखा। वह उठकर पुनः बैठ गयी। तब मुझे लगा कि उसका मौन भी तूफान का एक ऐसा हाहाकार है, जिसमें मैं न चल सकता हूँ, न आगे बढ़ सकता हूँ, न खड़ा रह सकता हूँ !

तब मैंने कह दिया—“अब उसकी ज़रूरत नहीं है।” और मैं बिना रुके चला आया।

फिर सोचा कि क्या इसका उत्तर देना चाहिये?—समझने का प्रयत्न किया कि इसका उत्तर क्या कुछ है भी मेरे पास? मैं विधाता तो हूँ नहीं

कि एक क्षण में सृष्टि का रूप ही बदल दूँगा ।

फिर यह भी मन में आया कि हर एक कायर जब पीछे पैर रखता है, तब इसी भाँति सोचता है ।

फिर इसका भी उत्तर मिल गया तुरन्त—कि प्रत्येक बुद्धिमान ऐसे गम्भीर क्षणों में कायर होता है और वह वीर भी जो ताव खाकर क्षणभर में अपनी जान दे देता है, होता मूर्ख ही है !

## तेरह

एक अरसे के बाद आज फिर मुरलीबाबू के दर्शन हुए हैं ।

सिगरेट की जगह बीड़ी ने ले ली है । जान पड़ता है, सूट दो दिन का पहना हुआ है और पैट के दायी ओर का बकलस भी जवाब दे चुका है । सोचता हूँ, इस तरह की डुलिया बना लेना जिनके लिए नयी बात नहीं है, कम-से-कम उन लोगों का कोई भी प्रयोग मुझको अपने मार्ग से विचलित नहीं कर पायेगा ।

बहुत दिनों के बाद किसीसे मिलने पर प्रारम्भ में कुशल समाचारों के आदान-प्रदान की रस्म जब अदा हो जाती है, तब फुरसत और इतमीनान के साथ या तो साथ का कोई कार्यक्रम बन जाता है या फिर लोग एक दूसरे से विदा ले नमस्कारकर अपने-अपने काम में जा लगते हैं ।

पर आज कुछ ऐसा हुआ कि कुशल-क्षेम की भी बात नहीं उठी । आते-ही-आते मुरलीबाबू ने बतलाया कि अर्चना और कही नहीं, अपनी एक सखी के यहाँ गयी थी । और दो दिन बाद आपसे आप लौट भी आयी थी । बहुत लजित थी बेचारी ! कहती थी—अब मैं इस तरह कभी बाहर न निकलूँगी । मैंने उससे एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा, जिससे उसके दिलपर कोई चोट पहुँचती । सोचता हूँ, अब हमारी ज़िन्दगी फिर दरें पर आ गयी है । इतना ही अप्रसन्न है कि उस दिन उसे खोजने में ऐसे लोगों से भी बातें करनी पड़ी, जिनको घरेलू मामलों में एक शब्द

भी बतलाना मैं कभी पसन्द नहीं करता। इसके सिवा आपको भी तकलीफ देनी ही पड़ी।

मुरलीबाबू की इन बातों को मैं ध्यान से सुनता रहा। अन्त में मैं इसी परिणाम पर पहुँचा कि ऐसे व्यक्तियों के साथ मुझे मित्रता तो दूर, परिचय भी नहीं रखना चाहिये, जिन्होंने निरन्तर झूठ बोलना और दूसरों को धोखा देना पेशा बना रखा है।

खाना खाने के बाद मैं थोड़ा विश्राम अवश्य करता हूँ। शरीर-शास्त्रियों का चाहे जो मत हो, मेरे इस व्यक्तिगत विश्राम में कभी अन्तर नहीं पड़ा। इसलिए आज जब मैंने देखा कि भोजन के बाद भी मुरलीबाबू जमे रहना चाहते हैं, तो मैं अन्दर चला गया और वहाँ पहुँचकर मैंने चँदिया से कहला दिया कि अब तीन घंटे बाद ही मैं निकलूँगा और उसके बाद तुरन्त बाहर चला जाऊँगा। इसलिये अब आज मुझसे भेट न हो सकेगी।

मैं सोचता था, इतना काफ़ी है। पर चँदिया बैठक से लौटकर आयी, तो कहने लगी—“वह आतको वहाँ बुलारहे हैं। कहते हैं—उनसे एक ज़रूरी काम है मुझे।”

तब मुझे बैठक में जाना ही पड़ा; हालाँकि जाना मुझे खल बहुत गया।

मुरलीबाबू बोले—“आज भी आपको कुछ रुपये मुझे देने पड़ेंगे। तनख्वाह पहली को मिलती है। मैं उसी दिन आपको ये रुपये वापस कर जाऊँगा।”

मन में आया—यह पहली तारीख को तनख्वाह मिलने की बात वह व्यक्ति कर रहा है, जो कहीं नौकर नहीं है—जिसे कहीं भी तनख्वाह मिलनेवाली नहीं है! अभी उस दिनवाले रुपये लौटे नहीं, शायद लौटेंगे भी नहीं; पर उसके बाद फिर इसको रुपये की ज़रूरत पड़ गयी! मान लो ज़रूरत वास्तव में पड़ ही गयी, पर न तो ज़रूरत की कोई सीमा है—न उसको पूरा करनेवाला समाज में केवल मैं ही हूँ। और क्या यह सही नहीं है कि ऐसे आदमी एक बार रुपये लेकर लौटाया नहीं करते!

फिर भी मैंने पूछा—“कितने रुपये चाहिये ?”

वे बोले—“ज़रूरत तो दस रुपये की है, पर आप पाँच ही दे दीजिये ।”

मैं सोचने लगा कि रुपये की ज़रूरत के समय जिस आदमी का स्वाभिमान इतना मर जाय कि वह ज़रूरत के मान का भी गला घोट डाले, तब यही अच्छा है कि उसकी ज़रूरत पूरी न हो !

किन्तु इसी क्षण मेरी दृष्टि सहसा उस कागज़ पर जा पड़ी, जिसमें बाज़ार से पान लिपटकर आये थे और जिसमें कवि ‘रहीम’ का दोहा भूलकर रहा था—“रहिमन वे नर मर चुके जे कहूँ माँगन जाँहि—उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाँहि ।”

मुझे उस समय अपने एक ऐसे साहित्यिक बन्धु की याद हो आयी, पुरातन साहित्य की किसी भी रचना को ‘घिमी हुई’ कह देना जिनके लिए एक अतिसाधारण बात थी ।

जो हो, द्राव्हर खोलकर मैंने दस के बजाय ग्यारह रुपये—पाँच-पाँच के दो नोटों के साथ दो अठन्नियाँ भी—उनके हाथ पर रख दिये और कह दिया—“दस के बजाय ग्यारह रुपये ले जाइये, लेकिन अब आइन्दा कभी अपनी शक्ल मत दिखलाइये । मैं उस आदमी से धृणा करता हूँ, जो अपनी पत्नी को सन्तुष्ट रखना नहीं जानता ।”

बुझी हुई बीड़ी प्रशंसा पर फेकते हुए मुरलीबाबू बोले—“आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं ।”

लेकिन क्रोध से मेरा रोओ-रोओ जल रहा था । अतः आवेश में आकर तत्काल मैं उनके पास जा पहुँचा और मेरे मुँह से निकल गया—“चलिये, बाहर निकलिये । मुझे बैठक बन्द करनी है ।”

एक-एक शब्द कहने में शूल-भेदन जैसा कष्ट हो रहा था, पर तब भी मैं सोच यही रहा था कि एलोपैथी में कुछ दवाइयाँ होती ज़हर हैं, पर काम अमृत का करती हैं ।”

उनका चेहरा उतर गया था । उनकी आँखें खोखली-सी जान पड़ती थीं; स्वर भर्रा गया था । वे बोले—“मगर मेरी बात तो सुन लीजिये ।”

इस कथन के साथ वे जैसे जैसे पोछे हटते गये, वैसे-ही-वैसे मैं आगे बढ़ता-बढ़ता किवाड़ भेड़ता हुआ कहता गया—“बात मैं सिर्फ उसकी उनता हूँ, जो आदमी होता है।”

पोछे हटते-हटते भरी हुई आवाज़ में वे कहने लगे—“आम मेरे साथ जुल्म कर रहे हैं ! अन्याय है यह आपका । अन्याय... !”

और मैं किवाड़ भेड़ता-हुआ कह रहा था—“मैं उस न्यायपर विश्वास नहीं करता, जो आदमी का विश्वास खोना सिखलाता है । मैं उस बौद्धिकता पर विश्वास नहीं करता, जो मनुष्य को धोखा देने की निपुणता सिखलाती है । मैं उसे मक्कारी, बदमाशी और जालसाज़ी समझता हूँ !”

इस पर उखड़ती हुई आवाज़ में वे बोले—“लेकिन ... .।”

लेकिन तब तक किवाड़ बन्द हो चुके थे ।

...

...

..

रात को सोने से पहले माँ ने आकर बतलाया—“सोने की अम्मा ने आज मेरी बड़ी स्वातिर की । मैं ‘ना’ ही करती रही; पर वे किसी तरह न मानीं । बोली—मेरे यहाँ तुम्हारे चरणों की धूल ऐसी पड़ती ही कद-कद है ।

“मैंने कहा—तुम तो जीजी कभी-कभी इस तरह बात करती हो, जैसे मैं कोई देवी-देवता होऊँ ।

“उन्होंने उत्तर दिया—वाह जीजी, भले तुमसे ऐसा कहते बनता है । देवी-देवता आखिर और होते कैसे हैं ? जितना दया-धर्म तुम में है, कहीं और सुनने को भी मिलता है; जितनी माया-ममता दीन-दुखियों के लिए तुम्हारे मन में है, कहीं और देखने को भी मिलती है ! लाली कहती थी—एक जनम नहीं, पचास जनम भी अगर मैं उनकी सेवा करते-करते अपनी जीवन-लीला समाप्त कर डालूँ, तो भी मैं उनके ऋण से उद्धार नहीं हो सकती ।”

मानता हूँ लाली ऐसा कह सकती है; लेकिन यह मैं नहीं मानता कि उसने ऐसा कहा होगा, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है । तब मैंने



कह दिया—“चाची की यह सारी रचना केवल इसलिये है कि लाली की बीमारी का खरचा उन्हें देना न पड़े।”

तब माँ बोली—“अब यह बात तो बिल्कुल साफ़ हो गयी है। इसमें मुझे रंज-मात्र भी सन्देह नहीं रह गया है। पर और भी कुछ बातें हैं, जिनका पूरा भेद अभी नहीं मिला है।”

मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसी कौनसी बातें हैं, जिनका भेद छिपा रह गया है। मैं यह भी नहीं समझ सका कि उन बातों का मेरे और माँ के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है। अतः मैंने कह दिया—“पर उन बातों को अगर चाची गुप्त ही रखना चाहती हैं, तो हमको भी उनकी छानबीन की क्या ज़रूरत हो सकती है?”

“ऐसी बात नहीं है राजेन” यकायक अत्यन्त गम्भीरता के साथ माँ बोली—“आज मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है, जैसे - ...।” और उसी क्षण कण्ठावरोध के कारण वे रुक गयीं। प्रतीत हुआ उनकी आँखें भर आयी हैं !

रुदन को मैं मन का रोग मानता हूँ। मेरी मान्यता है कि इस ससार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो अपने हृदय के भीतर आँसुओं का एक झरना चुपचाप दबाये न बैठा हो ! देर केवल इतनी रहती है कि हम बहुधा उस मर्मस्थल तक पहुँच कम पाते हैं। लेकिन जो पहुँच जाते और उसे छू भर देते हैं, उन्हें आँसुओं का झरना तुरन्त देखने को मिल जाता है !

लेकिन आँसू भी कई प्रकार के होते हैं। शिशु का मन इतना कोमल होता है कि वह पुरुष स्तर तक नहीं सहन कर पाता और तभी रो उठता है। किन्तु उसमें कभी-कभी एक हठ भी रहा करता है। इसलिये शिशु की चिल्लाहट अधिक सुनाई पड़ा करती है, आँसू अपेक्षाकृत कम निकलते हैं। बालक बहुत भावुक होते हैं। उपेक्षा और अपमान वे सहन नहीं कर सकते।

मान लीजिये कि भाई-बहनों में मिटाई बँट रही है। रूपा को सन्देह

हो जाता है कि मां ने बड़े भैया को अधिक मिठाई दी है। तब उसकी मिठाई ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती है। थोड़ी देर में जब बात प्रकट होती है, तब रूपा का सारा रोष आँसू बनकर टपकने लगता है !

प्रेमगन्धा खुनियाँ भी ससुराल जाते क्षण अपनी माताओं के गले से लिपट-लिपटकर खूब रोया करती हैं। और वे माताएँ भी उनको विदा करती हुई कम नहीं रोती, जो यह जानती हैं कि मेरे यहाँ से कहीं अधिक सुख इसे ससुराल में मिलेगा ! तब ये आँसू एक रूढ़ि बन जाते हैं और करुणा के स्थान पर जड़तापूर्ण विद्रूप हास का रूप धारण कर लेते हैं।

प्रौढ़ गृहस्थ जन भी अपने प्रेमी जनों के चिरवियोग के क्षण प्रायः रो पड़ते हैं। और समाज के दारुण अत्याचार से त्रस्त नारियों के रुदन का तो अन्त ही नहीं है। परन्तु मैंने तो सत्तर वर्ष के वृद्ध गुरुजनों को भी अपनी जीवन-संगिनी के निधन पर फूट-फूटकर रोते देखा है !

इतना ही नहीं, डाकू, बदमाश से लेकर न्यायालयों के लब्ध-प्रतिष्ठ एडवोकेट और सालीसिटर भी वारुणी की उपासना में अत्यधिक लिप्त होकर प्रियतमा, प्रेयसी, प्रिय पुत्र, प्रियजन और डियर टामी तक के वियोग में दहाड़ मार-मारकर रोते हैं ! न्यायालय और जेल के अन्दर अपराधी से मिलनेवाले आत्मीय रोते हैं। सड़क पर खड़ी गोघातक रमणी रोती है ! थानेके अन्दर मार पड़ने पर चोर और गिरहकट रोते हैं; कान खींचे जाने पर विद्यार्थी और स्थान खींचे जाने पर शरणार्थी रोता है !

ऐसा जान पड़ता है, आज संसार का बहुगुञ्जित और बहुश्रुत स्वर केवल रुदन का है। ऐसे रुदन का, जिसे मनुष्य ने अपनी महत्वाकांक्षाओं, दुर्बलताओं और प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न किया है।—ऐसे रुदन का भी जिसे समाज ने केवल परम्परा, रूढ़ि और अभ्यास की भर्त्सा परिपाटी के नाम पर मानवात्मा की छाती पर निर्मम पदाघात कर-करके उत्पन्न किया है !—ऐसे रुदन का, जिनमें द्वेष, प्रतिहिंसा, दम्भ और अहम् का प्रत्यक्ष स्फूर्ति हाथ है !—और ऐसे रुदन का, जिसमें न स्वर गुञ्जित हुआ है, न शब्द प्रस्फुटित; जो केवल हृदय के एक कोने में उठा है और

केवल उठकर रह गया है। नितान्त उसी प्रकार, जैसे कोयल बोलने ही वाली हो, किंचित स्वर भी उसका गगनाञ्चल में गुंजित हुआ हो और टीक उसी क्षण किसी पिशाच के वज्रकटोर हाथ ने उसकी ग्रीवा को दबा-दबाकर मसल डाला हो !

किन्तु संसार की इस दयनीय स्थिति को भी मैं भूल सकता हूँ, यदि मेरी माँ की आँखों में कहीं आँसू हो।

माँ का आँसू !

मैं उसे मनुष्य नहीं श्वान मानता हूँ, जो माँ का एक आँसू भी देख कर चुप रहता है। मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि अगर माँ की आँखों में आँसू है, तो पुत्र उसका जीवित क्यों है ?

इसलिये मैंने तत्काल पूछा—“कैसी हो माँ ? ... बात क्या है ? ... कसा जान पड़ता है तुमको ? कहो न साफ-साफ ?”

पता नहीं, क्यों माँ विचार-मग्न-सी हो उठी। बात-की-बात में मेरी ओर देखकर चुप हो रही। झट आँसू उन्होंने पोंछ डाले। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस बात की आशका से उन्हें सकोच हो रहा है, वह इतनी छोटी है, इतनी साधारण कि उस पर उन्हें हँसी आ रही है। फिर कुछ ऐसी बात हुई कि वे सकुचाती-सकुचाती मुसकरा भी उठी और बोली—“बात जितने दुःख की है राजेन, उससे कहीं अधिक हँसी की, और आश्चर्य की तो थाह नहीं उसमें ! सोने की माँ कहती थी—“वे अब भी शायद जीवित हैं।” साफ़ तो नहीं कहती थी, पर जो कुछ कहा उन्होंने उसका मतलब यही होता है। कहती थी—वे देवता थे। भला वे कभी मर सकते हैं ! मैं जब पुरी गयी थी, तो मैंने उनको संन्यासी के भेस में देखा था। मैं वहाँ जितने दिन रही, नित्य मैं उनको कभी सामने और कभी अपने इर्द-गिर्द देखती रही। कभी-कभी तो मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे वे बातें कर रहे हैं और मैं चुपचाप सुन रही हूँ। वे हज़ारों की सख्या में इकट्ठे नर-नारियों के बीच में बैठे उपदेश कर रहे हैं और मैं उस उपदेश को सुन-सुनकर सन्न रह गयी हूँ। उन्होंने मुझे देखा भी है, पर वे मुझसे बोले नहीं।”

मेरे मुँह से निकल गया—“चाची की सब बातें ऐसी ही होती हैं। वे कब क्या कहेगी, यह समझना बड़ा कठिन है। उनकी इन बातों में कौन सत्य है और शेष किस सीमा तक असत्य है, कुछ नहीं कहा जा सकता।”

“नहीं राजेन तू नहीं जानता, उनकी इन बातों के अन्दर कुछ-न-कुछ सार अवश्य है” माँ कुछ ऐसे ढङ्ग से बोलीं, जैसे कोई बात है अवश्य पर वे उसे कह नहीं पा रही हैं। उनके मन में कोई बात उठती अवश्य है, पर उसके सम्बन्ध में वे निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कह सकती, मानो उन्हें स्वयं उस पर सन्देह हो उठता है। कुछ ऐसी स्थिति है कि हो भी सकता है—अर्थात् जो नहीं हो सकता, उसे सोचती-सोचती वे तत्काल सोचने लगती हैं कि हो भी सकता है।

तब मेरे मुँह से निकल गया—“क्या सार है? किस बात का सार है? आगिर तुम कहना क्या चाहती हो? बतलाओ न एकबार जी खोलकर। पिताजी ने जीवन में कभी कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसके सम्बन्ध में हमें कभी सोच करने की आवश्यकता हो। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि यदि कोई नयी बात तुमको मालूम ही हुई है, तो तुम उसे छिपाना क्यों चाहती हो!”

“मैं तो तुमसे कुछ नहीं छिपाती राजेन!” माँ बोली—“पर तेरे पिता अवश्य मुझसे कुछ छिपाते थे।”

इतना कहकर माँ चुप हो गयी। मेरी समझ में नहीं आया कि पिताजी के जीवन में ऐसी कौनसी घटनाएँ घटी, जिनको माँ से छिपाना उनके लिये आवश्यक हो गया था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने मेरी छाती पर सवार होकर त्रवरदस्ती मुझे विप पिला दिया है। अतएव क्षण भर के लिये मैं सन्न रह गया। फिर किसी प्रकार अपने आपको स्वस्थ कर सहज भाव से ही मैंने पूछा—“तो इसका मतलब क्या मैं यह समझूँ कि पिताजी भी तुमसे बहुत कुछ छिपाते थे?”

“पहले तो नहीं, पर सोने की माँ की बातों से आज मुझे सन्देह हो

रहा है कि ज़रूर मुझसे कुछ छिपाकर वे विदा हो गये हैं ।”

तब तक पल्लेग पर लेटा हुआ ही मैं ये सब बातें कर रहा था, पर अब मैं उठकर बैठ गया और किंचित मन्द स्वर में मैंने पूछा—“क्या-क्या बतलाया सोने की माँ ने ? मुझे रक्ती-रक्ती सब-का-सब बतलादो । नहीं तो मैं रात भर न सो पाऊँगा ।”

माँ बोली—“सभी कुछ तो बतला दिया । अब और क्या बतलाऊँ ? सिर्फ आज ही नहीं, पहले भी एक-आध बार वे भिभकते-भिभकते कह चुकी हैं कि वे मरे नहीं, जीवित हैं और मैंने उन्हें जगन्नाथपुरी में देखा है ।”

‘पर सोने की माँ जगन्नाथपुरी गयी कब ?’ मैंने पूछा ।

माँ बोली—“एक जगन्नाथपुरी ही नहीं, वे सारे तीर्थों का भ्रमण कर चुकी हैं ! इसमें दा-चार महीने ही नहीं, पूरे तीन वर्ष लगे हैं उनको । यहाँ तक कि सर्दी के दिनों में भी वे घर नहीं लौटती थी ।”

“किसके साथ की थी उन्होंने तीर्थ-यात्रा ?” मैंने तत्काल कुछ संचकर पूछा ।

माँ ने उत्तर दिया—“यह तो मुझे नहीं मालूम । पर वे कहती थी कि उनके एक सगे सम्बन्धी थे और हरवंशपुर से वे उनके साथ हो गयी थीं ।”

यह हरवंशपुर वही गाँव है, जहाँ आँधी-पानी की उस भयानक रात को बैलगाड़ी पर से पिताजी का शव अचानक लोप हो गया था !

इतने में सुखराम आ गया । बोला—“आम का अचार है माँ जी ।

माँ ने पूछा—“किसके यहाँ से आया है ?”

इतने में रामलाल सामने उपस्थित होकर माँ के पैर छूने लगा । मैं उसे देखकर चकित हो उठा । मैंने पूछा—“अरे रामलाल तुम ! मैं तो समझ रहा था कि अब तक तुम जेल में होगे ।”

मैं माँ के पास से उठकर रामलाल के साथ चला आया । अतः मेरी बात सुनते ही रामलाल बोल उठा—“मुझे जेल में डालनेवाले मर गये !”

मैंने हँसते-हँसते कह दिया—“सम्भव है कुछ बच भी रहे हों।”  
तब रामलाल ने उत्तर दिया—“जो बच रहे हैं, वे आजकल शीशे में अपना मुँह देख रहे हैं।”

रामलाल का यह उत्तर मुझे सह्य नहीं हुआ। तभी पुनः ऊपर आकर मैंने माँ से पूछा—“माँ, मेरे द्वारा तुमको कभी जीवन में कोई कष्ट हुआ है?”

मेरा प्रश्न सुनकर माँ यकायक चौक पड़ी। बोली—“नहीं तो ! लेकिन यह मवाल आज तेरे मन में उठा ही क्यों ?”

मेरे मुँह से निकल गया —“क्यों उठा, यह फिर कभी पूछ लेना। उस समय मैं चाहता सिर्फ यह हूँ कि तुम इस अचार को बस वापस ही कर दो। जो लोग ईमान बेचकर जीवन में बड़ा बनना चाहते हैं, मैं उस जाति का आदमी नहीं हूँ। और इसीलिये उस जाति के साथ अब मेरा सम्बन्ध किसी तरह निभ नहीं सकता। ऐसे आदमी से मिलना-जुलना भी मैं अपने लिये अपमानजनक समझता हूँ !”

माँ बोली—“जैसा चाहे वैसा कर। मैं कुछ नहीं जानती।”

जान पड़ना है, रामलाल ने सारी बातें सुन ली थी। तभी वह उसी स्थान से बोल उठा—“अच्छी बात है। अचार वापस लिये जाता हूँ। दायी, प्रणाम !”

और ज्यों ही मैं नीचे पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि सुखराम सचमुच झुल्ला मकान के बाहर रखने को द्वार की ओर चल पड़ा है। स्वभावतः मैंने उस समय रामलाल से कुछ नहीं कहा।

किन्तु दस-पाँच मिनट बाद जब मैं कुछ सोचता हुआ द्वार पर आया, तो रामलाल इक्के पर बैठ चुका था। फिर मुझे आया जान वह इक्के से उतरकर मेरे चरण छूने को आगे बढ़ा, तो मैं एक पग पीछे हट गया और मेरे मुँह से निकल गया—“नहीं, यह अधिकार भी अब तुमको नहीं है। मैं उस श्रद्धा पर विश्वास नहीं करता, जो प्रदर्शन का

मुँह लगाकर बिल्ली की तरह चुपके से पास आतो और वास्तविकता को चूँहे की तरह मुँह में दबाकर भाग खड़ो होती है ।”

“आप भावुक आदमी ठहरे । इधर-उधर की झूठ-सच बातों में आकर सहज ही उत्तेजित हो उठते और चाहे जो कह सकते हैं । पर वास्तव में मेरा आक्षेप आप पर तो था नहीं । फिर आप मुझ पर बेकार बिगड़ उठे ! पता नहीं, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है, जो आप मुझे ग़ैर समझते हैं । ख़ैर, यह अचार बुआजी ने भेजा था और यह भी कहा था—कह देना, अगर खुद आ नहीं सकते, तो क्या पत्र भी नहीं डाल सकते ?”

सुनकर मैं सन्न रह गया । रामलाल इसके पर चला जा रहा था और मैं सोच रहा था—क्या मैंने ग़लती की है ?

## चौदह

आजकल नुमाइश चल रही है ।

वही नुमाइश, जिसमें रात के आठ-साढ़े-आठ बजे से ग्यारह बजे तक अपने बन्धुजनों के साथ घूमता संसार की गति-विधि पर नाना प्रकारों और शैलियों से विचार करता-करता, मैं एक अत्यन्त साधारण लफंगे, चिड़ीमार, कुली-मज़दूर-किसान और गिरहकट से लेकर महान दार्शनिक, विचारक, संत और सिद्ध पुरुष तक बन जाता रहा हूँ !... वही नुमाइश, जिसमें एक अतिसाधारण लालसा के नाम पर मन-ही-मन अत्यधिक अपमानित अनुभव कर मैंने अपने आपको ही नहीं, जीवन और जगत के यथार्थ रूप तक दो देखने का सुअवसर पाया है ।... और वही नुमाइश, जिसमें प्रवेश करते क्षण मेरे मन पर नाना प्रकार की आशकाओं, कल्पित सम्भावनाओं और अकल्पित निष्कर्षों के साथ-साथ अनादृत, अनियंत्रित अवस्थाओं, प्रतिक्रियाओं और आतंक-गर्भित किम्वदंतियों का जाल-सा तना रहा है; किन्तु जिससे लौटते क्षण पहले से सोचा हुआ बिल्कुल व्यर्थ हो गया है । मैंने यही अनुभव किया है कि मनुष्य के लिए सौन्दर्य जैसे भगवान का एक

अन्यतम वरदान है, ऐसे ही उसका व्यक्तित्व भी पुष्प में सुगन्ध के समान है। इसलिये मैं जिऊँगा, मुझे जीवन प्यारा है—मैं भी जीवन को प्यारा लगता हूँ।

कल की बात है। कुछ लड़कियों, जो काफ़ी वयस्क थीं, एक सिल्क-स्टोर में साड़ियाँ देख रही थी। मैं उधर से दो बार गुज़रा और मित्रों के साथ-साथ चहलकदमी करता हुआ आगे बढ़ गया। संभवतः न तो मेरा ध्यान ही उस ओर गया—और न मैं उधर ज़रा भी ठहरा ही। इतने पर भी जान पड़ता है, किसी ने मुझे पहले राउंड में ही देख लिया था। मैं अभी कमलों की दूकान के आगे बढ़ा ही था कि एक लड़की भट से मेरे पास आकर बोली—“मिस्टर पाँडे यू नो, यच वाट्स यू, एण्ड यू आर बैडली रिकवायर्ड’देअर। ‘लीज़ कम एलॉग फ़ार ए फ़्यू मिनिस्ट्स।

यह लड़की मुश्किल से बारह वर्ष की होगी। जान पड़ा, मैंने इसे कही देखा भी है। फिर भी उसकी इस बात पर मैं हक्का-बक्का-सा रह गया! मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या जवाब दूँ। लेकिन मित्र लोग कब मानने वाले थे। एक बोले—“जाइये-जाइये साहब।” दूसरे ने कहा—“कालिदास का कहना है कि चास ज़िन्दगी में सिर्फ़ एक बार मिलता है। लेकिन मनुष्य अपनी मूर्खता से उसको भी अकसर खो देता है।...जाइये-जाइये साहब!”

ये साहब अपनी बात को संसार के महापुरुषों का कथन बनाकर मौके-बेमौके चपका देने के लिए बुरी तरह से बदनाम हैं, इतना जानता हूँ। फिर भी पता नहीं क्यों, मैं उनकी भड़ी में आ गया। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा कि अगर मैं इस लड़की के साथ नहीं जाऊँगा, तो ये लोग मेरी जान खा जायेंगे।

फलतः मैं उस लड़की के साथ चल दिया। लकड़ी के खिलौनों की यह दूकान काशी की है और यह नक़ली मूछो, दाढ़ियों और केशों की। यह...अभी दस कदम भी मैं न चल पाया था कि वह लड़की बोली—“मुझको तो आप जानते न होंगे।”



साथ-साथ चलते हुए मैंने कहा—“बात तो कुछ ऐसी ही है।”

तब हॉट दबाती-दबाती वह बोली—“लेकिन मैं आपको जानती हूँ। आपने फ़ादर से जो-जो बातें कीं, वे सब मुझे मालूम है। मुझे यह भी मालूम है कि आप लड़कियों से बातें करने में बहुत शरमाते हैं। बतलाइये, सच-सच बतलाइये, हम लोगों में ऐसी क्या बात होती है, जिससे आप डरते हैं।”

लड़की काफ़ी चंचल है। मैंने सोचा—लेकिन दाना चुगना और बात है! और मैंने बिना सोचे-समझे कहना शुरू कर दिया—“सिर्फ़ लड़कियों से ही क्यों, मैं तो एक नन्ही-सी हरी पत्ती से भी डरता हूँ। क्योंकि जिस समय मैं उसे देखकर उस पर मोहित हो-होकर प्रसन्न होता हूँ, उस समय भी यह नहीं भूलता कि दो दिन बाद ही यह सूखकर पीली पड़ जायगी और फिर उसके दो दिन बाद तो इस दुनियाँ में इसका पता भी न चलेगा!”

मेरी बात सुनकर वह लड़की काँप गयी। दोनों हाथों से उसने अपना मुँह ढक लिया और सहमती-सी आवाज़ में वह बोली—“आप यह क्या कह रहे हैं! क्या कह रहे हैं आप!!”

ये रहॉट के खगोले मनुष्य के उतार-चढ़ाव का पाठ खूब पढ़ाते हैं। और यह मौत का कुवा तो प्राणों को एक बार झकझोर डालता है!

पीछे से कुछ आगे आकर मैंने कह दिया—“कहा तो मैंने बिल्कुल ठीक है। लेकिन तुमको डरने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि पत्ती, कला और फूल, एक ही चीज़ की उमर के अलग-अलग नाम हैं। और तुम तो अभी पूरी पत्ती भी नहीं हो पायी हो। तुमको फूल की खिली अवस्था तक पहुँचने में अभी बहुत देर है। फिर ऐसा भी तो होता है कि कोई-कोई फूल धूल में मिल जाने के बाद भी अपनी जगह पर डटा रहता है।—और दुनियाँ हमेशा उसकी सुगन्ध से महकती रहती है!”

कानों में आवाज़ें आ रही है—“पान में थोड़ी खराबू भी मज़ा पैदा कर ही देती है।...मगर तम्बाकू की खुशबू तो ज़हरीली होती है!”

मेरी बातों से वह कुछ प्रसन्न-सी हो उठी। बोली—“तो क्या ऐसा भी कोई फूल होता है, जो हमेशा खिला हुआ बना रहता है, यानी कभी ज़मीन पर नहीं गिरता !”

‘कानों में और भी आवाजें आ रही हैं—“ब्याह करो, लेकिन आतिश-बाज़ी से बचो।”

“ज़रूर होता है।” मैंने कहा—“और मेरा तो खयाल है, तुम उसे जानती भी हो, बल्कि, तुमने उसे देखा भी है।”

“आप तो मज़ाक कर रहे हैं”—मुसकराती हुई वह बोली और पलक खोलती-मूँदती हुई मेरी ओर देखने लगी।

तब मैंने कह दिया—“तुम मेरी छोटी बहन के समान हो। तुमसे भला मैं क्यों मज़ाक करने लगा ! अच्छा सचसच बोलो—तुमने बापू को कभी नहीं देखा था ?”

वह विस्मय में डूब गयी। वह बापू की जीवनमयी स्मृतियों में डूब गयी। उसके नयन सजल हो उठे। तब उसी क्षण उसके मुँह से निकल गया—“अब मैं समझी कि फ़ादर क्यों आपकी इतनी तारीफ़ करते हैं। आप तो वाकई फ़िलसफ़र हैं।”

इतने में वह लड़की फौवारे के पास आती-आती एकदम से हैरान-सी होकर खड़ी होगयी और बोली—“अरे, जाने करते-करते हम बहुत आगे निकल आये !” फिर पीछे की ओर देखती हुई कहने लगी—“लेकिन ठहरिये वे इन्धर ही आ रही हैं ! पीछे लौटने की ज़रूरत नहीं है।”

उन लोगों के निकट आते ही जान पड़ा, हीरा सखियों के साथ नहीं, अपने परिवारवालों के साथ है। माँ वृद्ध हैं। पास आते ही उन्होंने पूछा—“अच्छे तो हो राजेन ?”

हाथ जोड़ते-जोड़ते मेरे मुँह से निकल गया—“आपके आशीर्वाद से माताजी।” वे पुनः आशीर्वाचन बोलने लगी—“सदा जीते रहो बेटा।”

और श्रीमती मोदी ने मुसकराते हुए अपनी मातृभाषा में पूछा—

“केम छु राजेन ?”

भाषा के हिमाच से देश के त्रिलकुल दूसरे छोर से मैं बोल उठा—  
“आपनार कृया कटावे खूब भालो आछि ।”

इस पर सब लोग एक साथ हँस पड़े। मिस्टर मोदी कहने लगे—  
“लो, और गुजराती बोलोगी इनसे ?” और उन्होंने मुझे अपने बदन में समेट लिया।

हीरा बोली—“उस दिन के बाद आप फिर गोता लगा गये।

मोदी साहब के मुँह से निकल गया —“आदत से लाचार है !”

इस पर फिर उन लोगों को हँसी आगयी।

मोदी साहब बोले—“चलिये, आपको रास्ते में छोड़ता चलूँ ।”

मैंने कह दिया—“मगर आपकी गाड़ी में पैसेधर भी तो काफी है।  
मेरे लिये जगह निकलेगी ?”

हीरा बोल उठी—“भाईसाहब बेकार आग्रह करते हैं। जाइये-जाइये  
साहब. गाड़ी में वाकई जगह नहीं है !”

संकुचित और विस्मित-सी होकर श्रीमती मोदी बोली—“क्या बक  
रही है हीरा ?”

इतने में वह लड़की बोल पड़ी, जो मुझे साथ ले आयी थी।

—“आपको मालूम नहीं—और शायद आप सोच भी नहीं सकते  
कि हमारे दिलों में कितनी जगह है आपके लिये ।”

प्रसन्नता से उछल पड़े मिस्टर मोदी और बोले—“बेल डन ।” और  
उन्होंने बदन से लिपटाकर उसे चूम लिया।

श्रीमती मोदी बोली—“मेरा खयाल है, नीलम आपकी लाइन की  
तरफ बढ़ेगी !”

मैंने कह दिया—“आसार तो कुछ ऐसे ही नज़र आते हैं ।”

श्रीमती मोदी बोलीं—“देखिये आपके आशीर्वाद से अगर कुछ हो  
जाय ।”

मैं इस सोच-विचार में पड़ गया कि क्या मेरे आशीर्वाद में इतना बल है ? फिर यकायक मुरलीबाबू का मुझे खयाल आ गया और तब मैंने पूछा—

“वह धोत्री उस दिन जो शिकायत ले आया था, उसका क्या हुआ?”

मिस्टर मोदी बोले—“मिस्टर राजहंस से गुडबाई कर लेना पड़ा।”

तब एक बार मेरे मन में आया—“गाड़ी में बैठकर घर उतर जाने में हर्ज ही क्या है ?”

पर दूसरी बार मैं सोचने लगा—“और फिर ऐसा समाचार सुन लेने के बाद !”

तब हाथ जोड़कर मैंने उनसे विदा ले ली। कुछ कह नहीं सका मैं। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे मेरे अन्दर का देवता नहीं, शैतान प्रसन्न हो उठा है !

...

...

माधवी को ससुराल गये कई महीने बीत गये। उसको बुला लाने के लिए माँ ने कई बार कहा भी, लेकिन मैंने उन्हें समझा-बुझाकर राजी कर लिया। आज फिर जब उन्होंने मौक़ा देख उसको बुला लेने की बात उठाई, तो मैंने कह दिया—“ससुराल ही तो गयी है वह, जो अब उसका अपना घर है। कहीं अन्यत्र तो गयी नहीं। चिट्ठी भी उसकी बराबर आती रहती है। सोभी इस संवाद के साथ कि वह बड़े मज़े में है। इसलिये अब उसको बुला लेने की बात कहीं से उटती है मला ?”

“बात उटती है उस माँ के पेट से, जिसने अपने भीतर नौ महीने रखकर उसे जनम दिया है।” कढ़ाई में से सेवई परोसती हुई माँ बोली—“जिसने संतान के आराम और सुख के लिए लस्सी, दही, रायता, खट्वाई, मट्ठा और भात जैसी चीज़ें वर्षों तक, इस डर के मारे मुँह से नहीं लगायी कि जुकाम हो जाने के कारण कहीं बेबी को सरदी न लग जाय ! लेकिन ये सब बातें तेरी समझ में क्यों आने लगी ! अगर तेरा ब्याह हो गया होता—और भगवान् इतनी कृपा करते कि बहू की गोद भी नन्हे-मुन्ने से भर

जाती, तब तुझे पता चलता कि सतान की ममता क्या चीज़ होती है !”

तब खाना रोककर मैंने कह दिया—“अच्छा माँ, तुम्हारी यह बात मैं माने लेता हूँ। लेकिन फिर सवाल उठता है कि मृत्यु के मुख से निकलकर सफ़ बच जाने पर भी पिताजी को हम लोगों की ममता क्यों नहीं हुई ?—जीवन धारण करने पर भी उन्होंने क्यों हमसे मुँह मोड़ लिया ? मेरी समझ में नहीं आता कि यह बात अगर मैं नहीं समझ सकता, तो क्या तुम भी नहीं समझ सकती ?”

मेरा इतना कहना था कि माँ की आँखें भर आयी। रुद्धकण्ठ और अश्रुगर्भित स्वर में वे बोली—“मैं कुछ नहीं समझ सकती;...मैं किसी के मन की कैसे जान सकती हूँ। मैं क्या जानूँ कि...!” और इसके बाद वे चुप हो रही।

तब स्पष्ट जान पड़ा, मेरी भोंति माँ को भी इस बात पर विश्वास हो गया है कि पिताजी जीवित है। और इसी कारण वे दुखी भी हैं कि उन्होंने यहाँ हम लोगों के बीच आकर रहना क्यों स्वीकार नहीं किया ! पर क्या इसके भीतर कोई भेद की बात है ? वह भेद की बात क्या है ? क्यों उसको वे अपनी वाणी पर लाना नहीं चाहती ? वे क्यों उसे हम लोगों से छिपाना चाहती हैं ? और क्या वह कोई ऐसी बात है जिसे छिपाना उनके लिए आवश्यक है ? क्या वह केवल उनके और पिताजी के बीच की बात है और हमको उसमें पड़ने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है ?

लेकिन मेरी स्थिति सर्वथा भिन्न है। मैं शिष्टाचार, विनम्रता और सम्भ्यता के उन नियंत्रणों पर विश्वास नहीं करता, जो जीवन की मानवी दुर्बलताओं पर परदा डालकर उसके महाप्राण सत्य का गला ही घोट लेना चाहते हैं ! मेरा अन्तःकरण पुकार-पुकारकर मुझमें कहता है कि जो व्यक्ति अपना पार्थिव शरीर और जीवन साथी रखते हुए भी मेरी जैसी पति प्राणा, सती साध्वी माँ से सर्वथा पृथक् जीवन व्यतीत करता है, उसकी रूचियों और प्रवृत्तियों को मैं आज के सामाजिक मानव की एक अमानवी भूलक

मानता हूँ।

• इमालिये मैं तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हूँ कि सम्यक्ता के आदि काल में आज तक सती-साध्वी और आदर्श पतिव्रता नारी ने सर्वस्व समर्पण के रूप में अपने प्राणों का जो समस्त आसव, जीवन-अनुगमन के रूप में अपने सान्निध्य, साथ और सहयोग की जो समस्त अर्चना और पवित्र ममतामयी माँ के रूप में अपनी निखिल व्यक्तिगत इच्छाओं के शमन, दमन, मर्गाकरण और संतुलन का जो परम पावन अबाध अर्थ दिया है, उसके गौरव-पूर्ण इतिहास की प्रतिष्ठा इसी में है कि वह ऐसे पति की अवली मुधियाँ आने पर भी उसे वेदना का विषय कभी न बनाये।

इन्हीं विचारों में बहते-बहते मैंने कह दिया—“मैं तुम्हारे गंगाजल से पवित्र दुग्धामृत की उसम खाकर कहता हूँ माँ कि जीवन धारण करने पर भी यदि पितार्जा को हमलों की सुधि नहीं आती, तो वे एक सामाजिक प्राणी कदापि नहीं हैं। वे उन वन्य देव-प्रतिमाओं में से हैं, जिनकी पूजा गिरे-पड़े मटों और खंडहरों के अन्दर मनुष्य नहीं, श्वान, शृगाल और शूकर किया करते हैं!”

जान पड़ा, मेरा यह कथन माँ को सहन नहीं हुआ। खाद्यान्न पकाने की तात्कालिक क्रिया को सहसा स्थगित कर गिरते हुए आँसुओं की मूक धवल धारा को धोती के आँचल से पोछती हुई वे बोली—“ऐसा न कह रे उन्हें राजेन ! भूल उनकी नहीं, मेरी है।”

यहाँ मेरी वाणी मूक है, कर्तव्य भावना जड़। सोचता रह जाता हूँ कि यह भूल कैसी है। मेरी माँ और भूल करती है ! क्यों, आखिर क्यों ? ...नहीं-नहीं, भूल अगर कोई करता है, तो उसका दंड उसे भोगना पड़ेगा। चाहे वे मेरे माता-पिता ही क्यों न हों—उनके कर्म के भोग कौन मैं कैसे रोक सकता हूँ !

अब दुःख का एक भूभावात-सा मेरे चारों ओर घिर रहा है। पिता जीवन धारण करते हुए भी अग्रोचर है और माँ का कथन है कि इस सम्बन्ध में अपराध उनका नहीं, मेरा है। तो अब मैं कहाँ जाकर अपना

मुँह छिपाऊँ ? मेरा जो अपना ससार है, कैसे—किस मुँह से—उससे कहूँ कि माँ के अपराध से ही मेरे मृत्युञ्जय पिता घर नहीं लौटे !

हाय रे दुर्भाग्य ! मेरी माँ का वह अपराध कैसा है, जिसका ऐसा प्राणहंता भोग हमलोगों पर आ पड़ा है ! और यदि वह अपराध है, तो उन्हेमे उमे मुझसे आज तक प्रकट जो नहीं किया, उसका क्या कारण है ? यह कैसी कालिमा है, जो मेरे मुँह पर पुतने जा रही है ! जीवन रहते क्या मैं उसे धो पाऊँगा !” वह पुत्र कैसा, जो माँ के कलंक को धो न सका !

—लेकिन माँ का कलंक पुत्र धोयेगा कैसे ? यह कोई आर्थिक ऋण तो है नहीं, जिसकी पूर्ति संतान के द्वारा हो जाया करती है । यह तो उस कर्म का फल है, जो कर्त्ता ही को भोगना होता है ! कर्म कोई करे, फल कोई और भोगे—ऐसा कोई विधान यहाँ नहीं है ।

पर माँ ऐसा कोई अपराध करने ही क्यों लगी ! नहीं-नहीं, यह उनका भ्रम है । मे उनकी इस भूल का निवारण करके मानूँगा । मौन रहनेवाला प्रार्थी मैं नहीं हूँ ।

तब मुझे कहना पड़ा—“पर मुझे विश्वास नहो होता कि तुम मेरी माँ होकर ऐसी कोई भूल कर सकती हो, जो हमलोगों के लिए पश्चात्ताप का कारण हो !”

माँ ने आँखें पोंछ डाले । श्वेत, उज्ज्वल दीप्तिमान मुख से वे बोली—“नहीं-नहीं राजेन्, भूल मेरी ही है ! पर अन्तर्यामी के सिवा उसे कोई ज्ञान नहीं सकता !”

यह है मेरी माँ का सच्चा स्वरूप कि भूल स्वीकार करते क्षण उनकी मुखश्री परमोज्ज्वल हो उठती है ! पश्चात्ताप भी यहाँ आकर—उनके चरणों की धूल छूकर—गंगा की शीतल रेणुका बन जाता है ।

स्पष्ट है कि माँ का वह अपराध मेरे लिए दुःख का कारण नहीं, गौरव की वह हरी-भरी बेलि है, जो मेरी मान-मर्यादा के शिरोभाग पर शीतल छाया की भाँति लहरा रही है । और मैंने जो नाना कल्मषाएँ करली—बिना जाने-समझे—वह सब मेरे मन का प्रमाद है, और कुछ

नहीं। इतने पर भी मन के भीतर जो एक महाग्रसन-सा बनकर रह गया है, सोचता हूँ उसका उत्तर तो खोजकर निकालना ही है। सहज ही उसे छोड़ कैसे सकता हूँ ?

इसके बाद कई दिन बीत गये। न मैंने माँ से कुछ पूछा—न उन्होंने कुछ बतलाया। एक दिन भोजन कर लेने के बाद पाना पककर गिलास क यथास्थान रखते-रखते मेरे मुँह से निकल गया—“क्यों माँ, चाची अवस्थ में तुमसे थोड़ी ही कम है; पर वे ऐसी कुछ बूढ़ी जान नहीं पड़ती। बल्कि यदि चाचाजी जीवित होते, तो उनकी सौभाग्य-रूप-सम्पदा में विशेष अन्तर भी न आता। पर मैं देखता हूँ, अवस्था में उनसे छोटी होने पर भी तुम्हारी वृद्धता मेरे लिए दिन-पर-दिन चिन्ता का विषय बनती जा रही है। तुम्हारे और उनके इस स्वास्थ्य-भेद का कारण क्या है ?”

तब अगने लिए भोजन की थाली लगाना रोककर माँ बोल उठी—  
“तूने जा बात आज सोची है, तेरे पिता ने उसी समय कह डाली थी, जब तेरी उमर पन्द्रह-सोलह के लगभग थी। तेरे बड़े भाई का बिछोह हुए वह तामरा बर था। दुःख के कारण रोते-गते मेरा आँखें गड्ढों में घँस गयी थी। सिर में तेल न डालने के कारण बालों का कालान्न धीरे-धीरे सफेदी में बदल गया था। मनोदशा कुछ ऐसी बदल गयी थी कि वर्षों से माँग में सिद्ध तक नहीं लगाया था। रात-दिन मैं मृत्यु की ही कामना किया करती थी। उस समय मैं यह सोच ही न सकती थी कि तेरे पिता के सम्बन्ध की मेरी जिम्मेदारियों का अन्त जब आया नहीं, तब उससे पहले ही नारी-धर्म के सम्बन्ध में अरुचि उत्पन्न कर लेना स्वामी के साथ कितना बड़ा अन्याय करना है ! एक बार उन्होंने इन्हीं बातों को लेकर मुझे बुरा-भला भी कहा था। पर उस समय मन का भगवान के ही ध्यान में लगाये रखने की कुछ ऐसी धुन सवार थी कि उनकी इन बातों पर मैंने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। और अपनी इस भूल का पता मुझे तब चला, जब उन्होंने मुझसे प्रेम से बोलना भी छोड़ दिया !”

मे स्पष्ट देख रहा हूँ कि इस कथन के अन्तिम वाक्य के साथ माँ की



आँखें भर आयी हैं। कण्ठ-स्वर में हृदय के स्तर-स्तर से पश्चात्ताप-दग्ध एक असीम वेदना फूट रही है। ऐसा जान पड़ता है, मानो उनके शरीर का समस्त रक्त-मांस तक प्रायश्चित्त की ज्वाला में भस्म हो जाना चाहता है !

तब माँ ने वह परसी-परसायी थाली ज्यों-की-त्यों रखदी और आँसू गेंछती हुई वे अपने विश्राम-कक्ष में चली गयी ।

## पन्द्रह

लाली की तबियत अब बिल्कुल अच्छी हो गयी है। अङ्गों का शिथिलता में कड़ाई और चिकनापन झलकने लगा है। मुख की म्लानता पर गुलाब के फूलों की-सी हलकी लाली बोलने लगी है। माँ जब कभी गृह-कार्य में लग जाती है, तब पता नहीं किस तरह पता लगाकर लाली उनके पास आ पहुँचती और तुरन्त उपस्थित कार्य को उनके हाथ से छीनकर स्वयं उसमें प्रवृत्त हो जाती है। लेकिन खाना तो लाली बना नहीं सकती।

बना नहीं सकती, इसका यह अभिप्राय नहीं कि खाना बनाने का उसे ज्ञान नहीं है। अभिप्राय यह कि उसके हाथ का बनाया खाना अपने जातीय गुण के कारण हमलोग स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिये थोड़ी ही देर में लाली के कार्य-कलाप की सीमा निकट आ जाती है। लेकिन लाली भी कुछ ऐसी दीठ है कि ऐसे अवसर पर बिना माँ से उलझे मानती नहीं।

और भी एक बात है। वह बात पहले कभी इतनी स्पष्ट नहीं हुई थी, इधर ही हुई है। मैं जब माँ की आँखों के सामने रहता हूँ, तब वहाँ लाली एक तो आती ही नहीं; दूसरे यदि आती भी है, तो अधिक बोलती नहीं; यदि बोलती भी है, तो ऊधम नहीं मचाती। परन्तु माँ का परोक्ष प्राप्त होते ही हृदय के रुद्ध द्वार खोलकर गिलहरी की भाँति मकान भर में इधर-से-उधर फुदकने लगती है।

चेंदिया कहीं काम से गयी थी। लाली ने लौकी छीलकर टुकड़े-टुकड़े करके जव भगौने में रखदी, तब माँ कहने लगी—“बस बेटी, अब मैं झूठी लूँगी, तू जा। कहीं तेरी भाभी याद न कर रही हों।”

मन की कुछ ऐसी स्थिति थी कि मैं जीने पर खड़ा था और मेरे कान उधर ही लगें थे। मानता हूँ कि चोर बनकर इस तरह छिपकर दूसरों की बातें सुनना स्वस्थ मन का लक्षण नहीं है; लेकिन चरित्रों के अध्ययन के लिए मैंने इसे क्षम्य मान रखा है।

लाली बोली—“अभी कैसे चली आऊँ ! मसाला भी तो पीसना है।”

माँ ने कह दिया—“नहीं, यह काम मैं तुझसे न लूँगी।”

“लोगी कैसे नहीं ? मैं कहती हूँ, लेना ही पड़ेगा।”

लाली के इस कथन पर अवाक्-सी रहकर माँ जव कुछ विचार में पड़ गयी, तो लाली स्वतः बोल उठी—“बोलो न, क्या नहीं लोगी ? मेरा यह शरीर फिर किसके काम आयेगा और वह दिन कौनसा होगा ? क्या तुम मेरी सगी माँ से कुछ कम हो ! क्या जन्म देने से ही कोई माँ माँ होती है, हृदय की ममता कोई चीज़ नहीं होती ?”

मालूम नहीं क्यों, माँ फिर भी चुन हो बनी रही। पर लाली माँ से बिना पूछे ही भंडार के अन्दर चली गयी और एक मिनट के अन्दर ज़रूरत-भर सारा-का-सारा मसाला एक कटोरी में रखकर ले आयी। क्योंकि तभी तो माँ लाड़ की भाषा में बोल उठी—“अब मेरे घर की कोई चीज़ उठ जाय, और चोरी तुझे लगे, तो मुझे दोष न देना कभी ! क्योंकि अगर कोई पूछेगा, तो मैं साफ-साफ कह दूँगी कि मेरे भंडार का राई-रस्ती भेद लाली जानती है।”

माँ की यह बात सुनकर लाली प्रसन्नता से उछल पड़ी। सिल के ऊपर मसाला रखकर उसे लोढ़े से पीसती-पीसती कहने लगी—“कह देना। बल्कि और भी जो कुछ कहना चाहो, वह भी कह देना।”

पर कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि इतने मात्र से उसके मन का तार-तार

स्पन्दित हुआ नहीं, तभी भट से बोली—“पर तुम्हारे घर की कोई चीज़ कभी उठने ही क्यों लगी। बल्कि ऐसा भी हो सकता है कि दूसरों के घरों की चीज़ खुद तुम्हारे यहाँ उठकर चली आये।”

“यह सब आज तू क्या कहे जा रही है लाली ! कुछ मेरी समझ में नहीं आ रहा है। तेरी तरह चारो तरफ़ निगाह रखनेवाली मेरे यहाँ बैठी कौन है ! एक माधवी थी, वह भी ससुराल में है। पता नहीं राजेन उसे कब लेने जायगा।”

“कौन गया है, कौन बैठा है और कौन कब आनेवाला है, यह सब तो मैं कुछ जानती-जूनती नहीं। मैं तो सिर्फ़ फूल देखकर फल का अन्दाज़ लगाना जानती हूँ।”

कड़ाही में घी छोड़ा जा चुका था। आँच लगते ही घी में मिश्रित नवनीत के बचपन की सवाक् सुगन्ध घर भर में फैलती जा रही थी।

लाली के उपर्युक्त कथन का क्या अर्थ होता है, यह मैं समझ रहा हूँ। लेकिन अब देखना यह है कि माँ के शंका करने पर समाधान वह कैसे करती है !

इतने में सचमुच माँ बोल उठी—“साफ-साफ कह दे बेटी, यह फूल फलवाली बात क्या है ? घुमा-फिराकर कही बातें मैं ज़रा कठिनाई से समझ पाती हूँ।”

पहले तो ऐसा मालूम हुआ कि लाली सचमुच चक्कर में पड़ गयी। पर फिर वह जैसे गीले मसाले को कटोरी में उतारती हुई बोली—“बात माँ से कहने की नहीं है। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ माँ।”

सुनकर माँ चुप हो रही।

चोर की भाँति मैं तब भी ज़ीने पर खड़ा ही रहा। न जाने क्यों, इस समूचे दृश्य को आँखों से नहीं, तो कानों से ही देख लेने को मेरा मन अतीव आतुर हो उठा।

तब लौकी के साग को कड़ाही में छौंकती-छौंकती माँ बोली—“बीजी के साथ मैं वर्षों रही हूँ। दो-दो चार-चार घंटे मैंने नित्य उनके साथ बिताये

हैं; लेकिन उनके मन का भेद मैं कभी पा नहीं सकी। बहुतेरी बातें हैं, और अब तो मैं उन्हें भूल भी गयी हूँ।”

लाली ने एक बार अँगन में भोंककर देखा, कोई नीचे है तो नहीं। फिर नीचे से ऊपर आनेवाले ज़ीने के किवाड़ भेड़कर कह दिया—“यह मकान लाला सॉवरे के यहाँ रहन ही था, बिका नहीं था उनके हाथ। मॉ ने तुमसे झूठ-मूठ ही कहा था कि मकान लालाजी का है। बेचना तो—उन्हे तब पड़ा, जब लालाजी को अपने रुपये निकालने की ज़रूरत आ पड़ी। तभी तो इसी बात को लेकर मॉ कहा करती है कि बीबी भाग्य की बड़ी प्रबल है। देखो न, इच्छा करते ही मकान हाथ लग गया। अभी कल की बात है, कहती थी—साल भर के भीतर एक-न-एक दूसरा मकान उनकी मुट्ठी में आकर रहेगा, देख लेना।”

सुनकर कानो पर विश्वास नहीं हुआ। तो चाची उसी दिन लिखा-पढ़ी करा देने पर इसीलिये ज़ोर दे रही थी ! साथ ही यह भी मालूम हो गया कि बंधक की रकम के बाद जो कुछ शेष बचा है, वह सब लालाजी के बजाय चाची के ही हथ्ये चढ़ा है। और तभी तत्काल अपनी इस मूर्खता पर भी कम आश्चर्य नहीं हुआ कि बयनामा जो लिखा गया, उसे शब्दशः क्यों मैंने पढ़ा तक नहीं ! मैनेजर साहब और मुंशीजी पर मैं क्यों इतना निर्भर बना रहा !

“अन्यथा उसी दिन से यह भेद मालूम हो गया होता ! किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि इन बातों की ओर मॉ का ध्यान भी नहीं गया। अत्यन्त सरल भाव से हँसती-हँसती वे कहने लगी—“यह उनका खयाल भर है बेटी। सचाई का इसमें लेश भी नहीं है। पर यह बात अब भी मेरी समझ में नहीं आयी कि उन्होंने मेरे साथ इतना छिपाव-दुराव क्यों किया ?”

तब पार्श को नाखून से कुरेदती कुछ झिझकती हुई-सी लाली बोली—  
“तुम तो जानती हो माँ, मॉ अपना मन किसी को नहीं देती।”

बस इतना सुनने के पश्चात् मैं अपने कक्ष में चला आया।

उस समय सशय-पर-संशय मेरे मन में उत्पन्न हो रहे थे। चाची को

रूपये की इतनी अधिक आवश्यकता क्यों हुई ? तीन वर्षों तक वे तीर्थ-यात्रा ही करती रही ! करती रही तो किसके साथ ? और यह सोनेलाल कैसा व्यक्ति है ? क्या उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है ? वह अपनी माँ पर निर्भर क्यों नहीं रखता या इस तीर्थ-यात्रा के अन्दर कोई ऐसा रहस्य है, जिस पर इस सोने का कोई वश नहीं है ! आखिर यह सब है क्या ?

उसी दिन की बात है। दिन की नहीं, रात की। नौ का समय रहा होगा। मैं जो घूमकर घर लौटा, तो यह देखकर अवाक रह गया कि इक्का दरवाज़े पर खड़ा हुआ है। टूक, बिस्तर का बंडल, बाँस की तीलियों की एक डोलची—यह सब सामान उस इक्के पर रक्खा जा चुका है। देर है तो केवल बैठनेवाले की।

इतने में सोनेलाल भीतर से बाहर आ गया और मैं ज्योंही द्वार की सीढियों चढ़कर सदर फाटक के निकट पहुँचा, त्योंही वह हाथ पकड़कर एक तरफ ले जाकर बिल्कुल कान के पास मुँह लगाकर कहने लगा—

“बात अपने ही तक रखने का है। अम्मा तीर्थ करने जा रही है। मामाजी खुद उनको लेने के लिए आये हैं।”

आश्चर्य से मैंने कहा—“लेकिन इतनी जल्दी तैयारी हो गयी !”

“तैयारी तो जल्दी की ही ठीक रहती है। क्योंकि आप तो जानते हैं, दुनियाँ की आँखें बिल्कुल बन्दर की-सी हैं। जिस चीज़ से उसका कोई मतलब नहीं, उसको भी उलट-पुलटकर सूँघे, तोड़े, खाये या चीरे बिना उसने जी को सतोष नहीं होता। मतलब यह कि अम्मा मामाजी के यहाँ कुछ दिन रहेगा। रात-दिन एक ही जगह रहते-रहते किसकी तबियत नहीं ऊबती ? मैं तो कहता हूँ सोने का मंदिर भी हो, अगर दो दरस बन्द रहना पड़े तो चमड़े का-सा लगने लगेगा। लगेगा कि नहीं ? अरे कहाँ मर गयी लाली ! बीड़ी नहीं दी मुझे। कब से मेरा गला तिकुर-तिकुर बोल रहा है !”

अब स्पष्ट हो गया कि अवश्य इस तीर्थ-यात्रा में कोई ऐसी भेद की बात है जो मुझसे छिपायी जा रही है !

फिर भी मैंने पूछ दिया —“तो पहले किस स्टेशन का टिकट कटाने का विचार है ?” कुछ सोचता हुआ-सा सोने बोला —“यहाँ से तो पहले वृन्दावन, फिर आगरा, आगरा क्यों मथुरा जायँगी । उसके बाद फिर जहाँ का प्रोग्राम बने । वैसे इरादा तो दिल्ली जाने का भी है ।”

तब अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया —“हॉ, दिल्ली बहुत बड़ा तीर्थ है !” सुनकर सोने का मुख जैसे सफेद हो गया । बोला—“तीर्थ तो नहीं है ।” लेकिन कहते-कहते थोड़ा रुका । कुछ कहने जा ही रहा था कि ऊपर से रोने और सिसकने की-सी आवाज़ आने लगी । स्पष्ट हो गया कि चाची मां से भेंट कर रही है ।

...

...

...

रात के दस बजे होंगे । माँ सो गयी थी । सड़क से गुज़रनेवाले लोगों इक्के-तांगे, टमटमों और कारों के हटो, बचो, भोंपुओं, हानौं, रेडियो से निस्सृत गीतों, धूम-फिरकर, चना, चूरन, सुरमा और केलेवालों की धृष्ट पुकारों के नाना प्रकार, रीति और ढङ्गों की बोलियों, आवाज़ों और ध्वनियों का सामूहिक कोलाहल अब मन्द पड़ने लगा था । शीत ऋतु का प्रभाव कुछ अधिक स्पष्ट हो चला था । गुलगुले गद्दे और हलके लिहाफ़ के बीच दुन्नककर चुन्चान लेटे रहने की तबियत हो उठती थी । यहाँ तक कि एक-आध बार जमुहाई भी ले चुका था । इतने में द्वार के शीशे पर एक श्वेत छाया-सी झोकती देख पड़ी । साथ ही शब्द हुआ—कुट् कुट् ।

तुरन्त उठकर जो द्वार खोला, तो देखा सामने लाली खड़ी है । इस समय लाली के पैरों में सफेद मुलायम स्वेड की जूतियाँ थी । कानों में हीरे चमक रहे थे । एकदम श्वेत साड़ी । और शरीर पर—साड़ी के भीतर कसे हुए वस्त्र पर—श्वेत चिकन का ब्लाउज़ था । लेकिन सरदी के दिन थे, इसलिए रक्षा के लिए मक्खन वर्ण का एक मुलायम शाल भी उसने दक्षिण स्कन्ध-मूल के भीतर से ग्रीवा और फिर बाम बाहु के ऊपर तक ढाल रक्खा था । केश सँवारे हुए थे और ऐसा प्रतीत होता था जैसे सम्पूर्ण शरीर से भीना-भीना मौलश्री का-सा सौरभ धीरे-धीरे निस्सृत हो रहा है ।

मानता हूँ कि कुल मिलाकर उसके इस वेश में मेरे लिए एक अभि-  
नव आकर्षण था, बल्कि इससे पूर्व लाली इतनी सुन्दर मुझे कभी प्रतीत  
नहीं हुई थी ।

किन्तु मेरा मन आज कुछ अधिक चिंतित और अशांत था । इसलिए  
कुछ रूखेपन के साथ मैंने पूछा—“क्यों, क्या बात है ?”

वह नासिका पर थोड़ा बल देकर बोली—“कुछ नहीं । यों ही ।”

तबतक मैं द्वार के एक ओर हट गया था । इसलिये शीघ्र पहले  
भीतर प्रवेशकर आगे बढ़ती हुई वह बोली—“माँ के चले जाने से  
घर यों भी सूना-सूना लगता है । भैया भी शायद सिनेमा देखने चले गये  
हैं । भाभी सदा की भाँति नौ बजते ही सो गयी है । और आजकल रातें  
कुछ इतनी बड़ी होती हैं कि काटे नहीं कटती ।”

“हाँ, रातें तो सचमुच बड़ी सख्त बल्कि बेरहम होती हैं ।” मुझे भट  
कह देना चाहिये था ।—आँखों में आँखें डालकर और इतमीनान से  
उसके हाथ-पर-हाथ रखकर—थोड़ा उसे सहलकर । लेकिन ऐसा कुछ  
नहीं हुआ । वरन् “हूँ, तो यह कहो कि यहाँ बच्चा काटने आयी हो !” मैंने  
पलंग पर न जाकर कुरसी पर बैठते हुए कह दिया और तब लाली भी  
थोड़े फासले से एक कुरसी पर बैठ गयी ।

जान-बूझकर फर्श की ओर देखती-देखती लाली बोली—“आयी तो  
इसीलिए थी । लेकिन देखती हूँ, आपको मेरा आना अच्छा नहीं लगा !”

मैं स्पष्ट कहना तो नहीं चाहता था, लेकिन मुझे कहना ही पड़ा—  
“हाँ, इस मामले में एक तो तुम मुझसे कम समझदार नहीं हो । दूसरे  
जहाँ तक साहस का सम्बन्ध है, उसमें भी मैं तुम्हारी अपेक्षा कदाचित् कुछ  
उन्नीस ही पड़ता हूँ ।”

देखता हूँ, बात समाप्त होते-होते लाली का चेहरा सफेद पड़ गया है ।  
बिना कुछ बोले वह इकट्ठक फर्श की ओर देख रही है ।

लेकिन अभी तो बात नहीं, वाक्यमात्र ही पूर्ण हुआ था । क्योंकि—  
इसके आगे मुझे यह भी कहना था—“और क्यों न पढ़ बटल के बीच

से आम कभी उत्पन्न नहीं होता और भेड़िये का बच्चा मॉद से ही मांस खाना सीखता है। जैसी कुछ तुम्हारी माँ है, वैसी ही बने बिना तुम्हारे लिए और गति कहाँ है ? एक बार तीर्थ करके तीन वर्ष बाद लौटी थी। इस बार न जाने कितने वर्ष की समाधि लेने गयी है !”

आज मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है कि उस समय लाली से ऐसी कड़ी बात मैं कह कैसे सका। बल्कि एक दारुण ग्लानि-सी मुझे अपने प्रति हो रही है कि वाणी का संयम मुझसे इस भाँति यकायक भंग हो कैसे गया। किन्तु फिर यही सोचकर सतोष कर लेना पड़ता है कि भयानक भ्रंशावात के उस तरुण वेग में सब सम्भव था।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी समझ में आती है।

वह यह कि हो सकता है, नीरव रजनी की उस शून्य बेला में उसका इस प्रकार चुपचाप अपने निकट आना मुझे एक धृष्ट अभिसारिका के समान प्रतीत हुआ हो। अथवा यह कि उसकी तत्कालीन रूप-सम्पदा के गर्वोन्मुख मार्दव ने मेरी सुषुप्त अहंकार-वृत्ति को सहज ही इतना उत्तेजित कर दिया हो कि उस स्थिति पर फिर मेरा कोई वश न रह गया हो।

और हाँ, यह भी तो हो सकता है कि चाची की रहस्यमयी लीलाओं के प्रति मेरी स्वाभाविक घृणा का वेग इस सीमा तक बढ़ गया हो कि उनकी संतान को भी मैंने उसी वर्ग का पतित मान उसकी माँ के ऊपर चिरकाल से संचित होते आ रहे रोष को तेज़ाब की तरह उसकी बेटी पर डाल दिया हो !

तत्काल मेरी समझ में नहीं आया कि क्यों लाली ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। और यह देखकर तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि एक भी शब्द कहे बिना वह उठकर चल खड़ी हुई !

पहले तो कुछ क्षणों तक मुझे यही भ्रम बना रहा कि वह लौटकर आयेगी; लेकिन ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, त्यों-त्यों यह बात बिल्कुल स्थिर, दृढ़ और स्पष्ट होती गयी कि वह अब नहीं आयेगी।

तब इसी बात को लेकर मैं उलझन में पड़ गया कि उसने मेरी इतनी



कठोर बातका कोई उत्तर क्यों नहीं दिया ? मैंने उसको अपमानित करने में जब कोई कोर-कसर नहीं रखी, तो उसने मुझे अच्छूता क्यों छोड़ दिया ? उसने मुझे भी उससे अधिक अपमानित क्यों नहीं किया ? क्या उसके पास मेरी बात का कोई उत्तर नहीं था ?

एक बार जैसे यह भी कोई कानों में फुसफुसा गया कि उत्तर रखने वाला व्यक्ति कभी चुप नहीं रहता । ...लेकिन यह कितनी गलत बात है ! मैं स्वयं इस पर विश्वास नहीं करता । अनेक बार ऐसे अवसर मेरे जीवन में आये हैं, जब आक्षेपों का मुहँ तोड़ उत्तर रखते हुए भी मैं चुप ही रहा हूँ । अपनी इस वृत्ति से मुझे अपार सुख भी मिला है और कालान्तर में पश्चात्ताप से हाथ मलता-मलता जैसे मैं अतीव दुर्बल और रुग्ण भी हो गया हूँ ।

रात और बीती । मैं आज सो नहीं सकूँगा, एक तरह से यह स्पष्ट और निश्चित-सा ज्ञान पड़ने लगा । याद हो आया वह दिन, जब मैं भाभी पर नाराज़ हुआ था । कई दिन तक स्वयं उनसे मिला नहीं था । बल्कि उसके बाद भी वे ही मुझमें मिली थी ।

नीचे यह किवाड़ किसने खोले ? ...खोले नहीं, ठीक तरह से बन्द किये हैं । ...लेकिन लाली जिस कमरे में सोती है, उसमें पश्चिम, उत्तर और पूर्व की ओर तीन दरवाज़े हैं । उत्तरवाला दरवाज़ा प्रायः बन्द रहता है । पूर्ववाला दरवाज़ा उस कमरे में खुलता है, जिसमें भाभी सोती थी । वह भी अब बन्द ही रहा करता है । रह गयी पूर्ववाले कमरे की बात, सो उसमें सोनेलाल की बहू सो रही होगी । तो इस पूर्ववाले कमरे को बन्द करने की ऐसी क्या जरूरत पड़ गयी ? ...पड़ गयी होगी ज़रूरत । जब ज़रूरतें हैं, तो वे पड़ेंगी ही, उनपर नियंत्रण कोई रखेगा कैसे ?

फिर ध्यान आ गया उन बातों का, जो माँ ने कही थी । कहा था कि नारी-धर्म के प्रति मेरी अत्यधिक उदासीनता ने ही तुम्हारे पिताजी को मुझसे विरक्त बना दिया था । तो उस दिन लालाजी ने सत्यासत्य की व्याख्या करते हुए जो बात कही थी, उसमें बड़ा तथ्य था । पुरुष जाति-

जो नारी के सम्बन्धों को लेकर इतनी दुर्बल छिछोरी दिखलायी पड़ती है, इसका मुख्य कारण अपने देश के अन्दर जमी हुई निरक्षरसंस्कृति के वै विचार हैं, जिनका मूलाधार है सन्तों का यह विरक्तिवाद कि यह संसार मिथ्या है, यह जीवन मिथ्या है, यह शरीर मिथ्या है; इसको सुख पहुँचाना मिथ्या है, इसकी आवश्यकताओं की ओर अधिक ध्यान रखना और उनके प्रति मोह रखना मिथ्या है। ...कदाचित् इन्हीं विचारों का यह परिणाम हुआ कि तीन-चार बच्चों की माँ बन जाने के अनन्तर नारी यह समझने लगी कि अब पति को प्रसन्न रखने—उसकी दृष्टि में आकर्षक बनी रहने—की मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। मैं वैश्या नहीं हूँ, जो मुझे रूप के प्रति सतर्क और सावधान रहने की आवश्यकता हो। मैं तो अब गृहणी हूँ, माँ हूँ मैं। ...जैसे माँ हो जाने के बाद नारी-धर्म का लोप हो जाता हो !

...देखता हूँ, लाली पर मेरी डाँट की क्या प्रतिक्रिया होती है।

...जब प्रतिक्रिया हो जायगी, तब ! तब तुम देखोगे क्या ?

...मुझे कुछ देखना नहीं है, मैं फ़िज़ूल की भूँछों में नहीं पड़ता। इतना सस्ता मैं नहीं हूँ। मुझे बहुत से काम करने हैं।

...जिनमे से एक काम यह भी है कि जो अपने से मिलने आये, उसे जली-कटी सुनाकर गेटआउट कर दिया जाय !

...कोई भी हो, न्याय तो उसके साथ करना ही पड़ता है। दुनियाँ कुछ भी कहा करे।

...अच्छा, ऐसे समय अगर लाली को बुलाया जाय, तो कैसा हो ? लेकिन कोई सुन्दर, सभ्य तरीक़ा भी तो होना चाहिये।

...ग़लत काम का सुन्दर तरीक़ा सोच लेने में अपनेराम किसी नेता से कम नहीं है !

चुपचाप नीचे चला गया और उसी कदम में जा पहुँचा, जहाँ लाली लेटी हुई थी।—यह सोचता हुआ कि कहूँगा, वह उपन्यास अभी तक तुमने लौटाया नहीं जो उसदिन ले गयी थी। लाओ दो उसे। ...द्वार पर खड़ा होकर दरवाज़ा खटखटाया। मालूम हुआ, भीतर से बन्द है। यकायक

आश्चर्य से भर गया—हे प्रभु ! यह क्या होनहार है ! दरवाज़ा इसने क्यों बन्द किया ? अन्दर से जब कोई उत्तर नहीं मिला, तो कुछ शका और प्रबल हुई, यह मामला क्या है ? कोई दुर्घटना तो मेरी छाती पर नहीं घटित होने जा रही है ! तब पुकारा—“लाली ! लाली ! !” फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला । केवल इतना जान पड़ा, चारपायी कुछ हिली है, लाली भी कुछ अस्त-व्यस्त हुई है । तब मैंने कह दिया— “अरे लाली, खोलो दरवाज़ा । कुछ काम है तुमसे ।”

अब लाली ने दरवाज़ा खोल दिया । मैंने अन्दर जाकर बिजली का बटन दबाया तो लाली चुपचाप मुझे देखकर सहम गयी ! ओखों में अवसाद भरा है । मुख इतना म्लान है, इतना श्रीहीन कि मन में अनेक आश-काएँ उभर उठी हैं । क्या यह मेरे ही कथन-दोष का फल है ? क्या मेरे शब्दों में अब इतनी जगला भर गयी है कि सुननेवाले दहल सकते हैं ? क्या मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरे शब्दों में हाहाकार बोलता है ?

मैंने पूछा—“क्या बात है ? ठीक-ठीक बतलाओ ।”

वह सिसकियाँ ले-लेकर फूट पड़ी !

यकायक चारपायी के नीचे दृष्टि जा पड़ी । वहाँ एक पत्थर की कटोरी रखी थी । झट उसे उठाकर देखा, नाक से लगाया, तो बात-की-बात में सब समझ में आ गया ।

लाली ने अफीम खा ली है !

...

...

...

तौलिये से हाथ पोंछते हुए, बड़ी मुश्किल से डाक्टर साहब ने कहा—  
“अब कोई चिन्ता की बात नहीं; भगवान ने बड़ी कुशल की ।”

सोनेलाल कहने लगा—“यह तो मैं पहले से जानता था कि अम्मा जब गयी है तो कोई-न-कोई संकट हम पर आने ही वाला है । उस बार जब तीर्थ करने गयी थी, तब घर में आग लग गयी थी !”

मेरे मन में आया—इस बार लाली के हृदय में आग लग गयी है

सोनेलाल यों एक पैसा खर्च करनेवाला नहीं था। लेकिन कहीं कोई अनर्थ न उठ खड़ा हो, इस आशंका से दस रुपये का एक नोट निकाल ही लाया। इस पर डाक्टर साहब ने तत्काल जो मेरी ओर देखा तो मैंने कह दिया—“ले लीजिये जो कुछ मिले।”

उनको सड़क तक भेजने चला आया। रात के चार बजे थे। ऑखों में कड़ुवाहट भरी थी, हृदय में चिर अशान्ति के बाद अब कुछ इतमीनान आया था कि चलो और जो कुछ हुआ सो हुआ; एक हत्या के दोष से मुक्ति तो मिली !

डाक्टर साहब बोले—“अब आप जाइये। सोइये इतमीनान से।...पर हों, लाली से इसके सम्बन्ध में अभी कुछ पूछताछ न कीजियेगा कि आखिर उसने ऐसा क्यों किया ? समय आयेगा, तब वह अपने आप ही सब उगल देगी।”

मैंने झट कह दिया—“हाँ, यह आपने ठीक कहा। अच्छा नमस्कार।

डाक्टर साहब को विदा करता हुआ जब मैं घर को लौट रहा था, तब मेरे मन पर बारम्बार एक ही बात हथौड़े की-सी चोट कर बैठती थी। जो नारी मेरी एक भर्त्सना पर प्राण देने को तत्पर हो गयी, वह मेरे लिये क्या नहीं कर सकती !

पर सोचता हूँ, चोटें तो इस तरह की मुझ पर पहले भी हुई हैं और सम्भव है आगे भी हों। फिर उन्हें सहने के सिवा और चारा क्या है ? मान लूँ, थोड़ी देर के लिए कि लाली मेरी है। लेकिन मैं यह कैसे मान लूँ कि मैं भी लाली का हूँ—और किसी का नहीं !

...और यह प्राणोत्सर्ग ? क्या इसका कोई मूल्य नहीं ?

...होता रहे मूल्य, मैं कर ही क्या सकता हूँ !

यही सब सोचता-सोचता जब मैं अपने घर का ज़ीना चढ़ रहा था, तभी यकायक कर्त्तव्य की पीठ पर फिर एक हथौड़ा-सा जा पड़ा !—नहीं-जिन्हीं, तुम्हें इस समय ऊपर नहीं जाना है। मृत्यु के मुख से जिस नारी के

प्राण ने अभी-अभी त्राण पाया है, तुझे उसी के निकट बैठना है। दुनियाँ में चाहे जितना छल-छन्द चलता रहे, लोग चाहे जो बकते रहें, लेकिन मानवीय हार्दिकता से तुझे एक इंच भर टस-से-मस नहीं होना है। वर्ष-के-वर्ष और युग-के-युग काल के गाल में समा जायेंगे, लेकिन प्रेम् की पावन अर्चना के नाम पर नारी के सर्वस्व-समर्पण का प्रतिदान कभी पूरा न होगा। ...यह सोच लेना बड़ा सरल है कि मैं कुछ नहीं जानता, मैं इस पचड़े में नहीं पड़ता। लेकिन इतना सोच लेने मात्र से प्रेम की जलती हुई ज्योति तो सहसा बुझ जायगी नहीं।

तब विवश होकर फिर ऊपर जाकर अपने पलंग पर लेटने की अपेक्षा मैं लाली के ही कमरे में पड़ी चारपाई पर जो लेट गया, तब मुझे नींद आ गयी।

...

...

...

ओ: ऐसा विषाद ! मैंने इसकी कल्पना भी न की थी। लाली चुपचाप पड़ी है। शरीर एकदम ठड़ा है। ज्वर नहीं है थोड़ा-सा भी।

साड़ी अभी तक वही पहने हुए है, जो मेरे कमरे में आते समय धारण किये हुए थी ; यद्यपि दो दिन में कुछ मरगजी हो गयी है। केशपाश रूखा-बिखरा-सा है। आँखों की पलको पर कुछ गहराई और कुछ उसके साथ थोड़ी कालिमा-सी देख पड़ती है। नाक की कील का नग अब भी दमक रहा है।

पूछता हूँ—“कैसा जी है ?”

उत्तर मिलता है—“बहुत अच्छा है।”

“कुछ खाने की इच्छा ?-”

“नहीं ?”

“दूध ?”

“नहीं।”

“चाय ?”

“नहीं।”

“पतली-पतली दाल मूँग की ?”

“नहीं ।”

“कुछ नहीं ?”

“जी !”

“क्यों ?”

उत्तर में एक स्थायी मौन । मानो यह मौन ही उत्तर है । छूट कितनी बड़ी है इसमें कि जो मन में आवे सो सोच लो—समझ लो कि यही उत्तर है !

और इस घटना को बीते आज दूसरा दिन है । आज सबेरे भी यही स्थिति थी । इस वक्त शाम हो रही है, फिर भी लुधा के नाम पर यह नकारात्मक उत्तर है । सोनेलाल बेचारा इधर-से-उधर कल रात से दौड़-धूप में लगा रहा । बार-बार यही पूछ बैठता था—“अब क्या होगा मैया जी ?” मै समझा देता—“अब कुछ नहीं होगा, तुम घबड़ाओ मत ।”

और वह रो देता ।

आज की बात है । कहने लगा—“मैं तो थोड़ा सयाना भी था, पर लाली बिल्कुल बच्ची ही थी, तीन वर्ष की, जब बाबूजी चल बसे थे । रह गयी अम्मा, सो ..कहना बेकार है ।...हम भाई-बहन दो आदमी । एक तो लाली के जीवन में सुख ही क्या ! फिर भी मेरे लिए सहारा कितना है ! मुन्नु, तिन्नो और पुत्तू सबको वही तो सम्हालती है ।

सोनेलाल देख रहा है—लाली का शरीर तो ठीक है, लेकिन कुछ खाने की जो उसकी इच्छा नहीं, सो यह क्या बात है ? कुछ उसकी समझ में नहीं आता है

अभी थोड़ी देर पहले माँ आयी थी । आयी थी गंगा-स्नान करके । कमरे के द्वार पर खड़ी रही दो मिनट और हाल-वाल पूछती रही । लाली से पूछा—“कैसा जी है ब्रेटी ?”

लाली ने करवट ले ली, आँखें खोली और कह दिया—“ठीक है ।”  
और फिर आँखें बन्द कर ली ।

माँ ने सोने से पूछा — “कुछ खाने को दिया ?”

सोने बोला—“वह कुछ खाना चाहे तब तो दिया जाय । ऐसे कैसे दिया जाय ?”

तब माँ ने कहा—“लेकिन कुछ देना तो चाहिये ही । डाक्टर से पूछा था ?”

“डाक्टर से अब क्या पूछना है ?” सोने बोला—“जब तबियत ठीक है, तो भूख लगेगी ही । अभी तक नहीं लगी, तो शाम तक लगेगी ।”

एक तरह से सोनेलाल का कथन सही है । इसलिये माँ ने अगर इसे सही मान लिया और वे ऊपर चली गयी, तो बिल्कुल ठीक हुआ । मै भी चुप हूँ और दुनियाँ के देखने में मै भी इस कथन को सत्य मानकर माँ के पीछे-पीछे चला आया हूँ । लेकिन... ..।

और यहाँ मुझे इस लेकिन की ही बात कहनी है । सच्ची बात तो यह है कि मृत्यु की पूरी तैयारी कर लेने के बाद बीच में आधार में डूबती-डूबती लाली यह जो पुनः पास ही लगी जीवन की नाव पर आ गयी है, यही इस मान-लीला का मुख्य आधार है । अर्थात् इस सारे रोष का कारण एकमात्र मै हूँ ! मुझी पर यह रोष उतारा जा रहा है ।

## सोलह

ऊपर पहुँचते ही माँ बोली—“राजेन, अब मुझसे तेरी हठ न मानी जायगी ।” मैंने पूछा—“कैसी हठ ?” तो कहने लगी—

“मधू को लाना ही होगा । आज मैंने देखा, जमना समुगलसे आ गयी । बड़ी प्यारी लग रही थी । अब तो और भी सम्हल गयी है । मुझे तो ऐसा लगता है, तीनक महीने चले भी है ..... । देखकर मुझे मधू की याद हो आयी । बहुत हो चुका । माना कि मधू अब सयानी हो गयी थी, ससुरे में उसे रहना ही चाहिये था कुछ दिन । लेकिन

आपने कह दिया—“बस माताजी, मुझे और कोई लड़की नहीं चाहिये। मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझूँगा, अगर आप !”

ब्राह्मणी के पास कुछ ज़मीन भी थी, ऐसा नहीं था कि दो-चार सौ रुपये दहेज में दे न सकती। लेकिन अपने बुढ़ापे के लिए भी उसे कुछ हिसाब-किताब रखना ही था। इसलिये तपाक से बोली—“हमाये पास धरोई कहा है देवे कों। फिर हमार्ई छोरीऊ अवै छोटी है।”

आप से रहा नहीं गया। बोल उठे—“हमको कन्यादान में आप टका न देना माताजी। बस ऐसी ही साथ कर देना। रह गयी यह बात कि अभी वह छोटी है, सो हमारे सिर माथे। सोलह साल की उमर तक बिल्कुल गऊ की बहिया की तरह मैं इसे पालूँगा—आप बेफिकर रहे। जब आप कह देगी कि हों, अब मैं ब्याह करने को तैयार हूँ, तभी गाजे-बाजे के साथ यही इसी घर से ब्याह करके ले जाऊँगा।”

ब्राह्मणी चुप रह गयी। और चुप रहने का भी एक अर्थ होता है।

महँगू समझ गये, मामला जम रहा है। बोले—“आप सोच लें। मैं तो अभी दो दिन यहाँ रहूँगा ही !”

और तीसरे दिन आप बारात के साथ न जाकर उसके एक दिन बाद गये। नित्य सबैरे-शाम उस घर में आते-जाते रहे। पक्की सड़क के किनारे का गाँव था। हर तरह की चीज़ें बस के अड्डे पर आती-जाती रहती थी। कभी खरबूजे ले आते, कभी-कभी आम और जामुन। ब्राह्मणी ने तीसरे दिन लड़की से कह दिया—“ये मेरे भतीजे है। तुम्है अपने साथ ले जेहे।”

लड़की ने समझा, दो-चार दिन के बाद फिर लौट ही आऊँगी। शहर देखने को अभिलाषा भी क्यों न पूरी कर लूँ ! कुछ सोचती हुई बोली—“जे हमकों नीकी तरह रखहे अम्मा ?”

“पगली, नीकी तरह नई रखहैं, तौ का तोय गङ्गाजी में परवाह कदीहैं ?”

और महँगू महाशय ने उस कली को छ साल तक बिल्कुल लड़की



की तरह पाल-पोसकर रखवा । जब कभी कली की तबियत होती, तब वह अपनी माँ को देख जाती और दो दिन बाद फिर महँगू भैया के साथ चल देती ।

• एक बार उसकी माँ ने उसका मन टोलने की नियत से पूछा—  
“अब कैसे मेरो मन नाई मानत । ढ़ै चार महीना ह्याई काये नई बनी रहत ?”

कली बोली—“अब ऐसो कैसे है सकत मैया ? भैया के संग मोकों जैसो सुख मिलो, तैसो तूनेऊ नाथ दै पायो ।”

ब्राह्मणी की आँखें आनन्दाश्रु से भर गयी ।

महँगू अब चार बच्चों का पिता बनकर एक सुखी गृहस्थ का जीवन व्यतीत कर रहा है !

नम्बर ग्यारह की एक्सप्रेस में बैठा हुआ सोच रहा हूँ, यह महँगू स्वयं अपने जीवन का निर्माता है । समाज ने जब इसकी उपेक्षा की, तब यह स्वयं समाज को चुनौती दे बैठा । सास को राज़ी करने, उसे समझाने-बुझाने में वह झूठ नहीं बोला । कली को साथ रखकर आदमी का चोला त्यागकर वह कभी कंटक नहीं बना । धीरे-धीरे कली के जीवन के विकास को वह एक सुनहली आशा की किरणों से देखता रहा । धीरे-धीरे शरीर-धर्म की आवश्यकताओं और मन की उटती-गिरती स्थिर-अस्थिर हो-होकर टढ़ती भावनाओं के मर्म को छू-छूकर, उन्हें प्यार की मिठास से सींच-सींचकर परिपुष्ट करता चला गया । इस छह वर्ष के जीवन में उसके मन में पता नहीं कितने प्रकार के पवन-भूकॉरे आये होंगे । ज्येष्ठ मास में आँधियों के बवण्डर आमो की खट-मिट्टी मादक ऋतु को किस निर्ममता के साथ ध्वस्त कर जाते हैं ! पता नहीं ऐसे कितने बवण्डर महँगू के जीवन में आये होंगे !

लेकिन कहते हैं, ब्याह से पूर्व उसने सास के चरणों की शपथ लेकर कहा था—“मेरा कैसा सम्बन्ध रहा है, एक बार तुम्हीं अपनी इस कली से पूछ देखो माँ ।”

और सास ने कहा था—“अब हम काये को पूछे कछू । भगवानई ने

जब हमारी सिगरी आसा पूरी कइई, तब कौन बात की कमी रेह गई ?”

महँगू की इसी साधना ने समाज को चढी आँखें भुका दी। कोई यह नहीं कह पाया कि उसका यह ब्याह अनुचित हुआ है। यहाँ तक कि उसके श्वानदान के जो लोग पहले इस लड़की को घर ले आने पर महँगू को बुरा-भला कहते रहते थे और इस सम्बन्ध में काना-फूसी तो लगी ही रहती थी, ब्याह हो जाने पर वे भी मान गये कि महँगू ने प्रशंसा का काम किया। उसने उन लोगों—अपने बन्धुओं—के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया कि इस तरह जिया जाता है।

आज उस कली को मैं स्वयं आने आँगन में माठ और लड्डू बनाते देख आया हूँ। तभी से बराबर एक बात मेरे मन में आ रही है कि जो लोग अपनी बुद्धिहीनता के कारण जीवन का निर्वाह नहीं कर पाते, दैव-दैव प्रायः वही चिल्लाते हैं। जो व्यक्ति निर्माण का कोई प्रयोग नहीं कर सकता, वह यदि अपने जीवन में सफल नहीं होता तो उसके दैन्य और फ्रैस्ट्रेशन के लिए समाज कहीं तक उत्तरदायी है ? इस स्थल पर मैं यह भूल नहीं रहा हूँ कि आज की हमारी सामाजिक स्थिति भी ऐसी है कि आदमी प्रायः फ्रैस्ट्रेशन का शिकार रहता है।

पर फिर वह समाज महँगू के इस प्रयोग के लक्षण कहीं सो रहा था !

परन्तु एक बहुत बड़ा शून्य मेरे अन्दर बनता जा रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं जीवन-भर तरस-तरसकर मर जाऊँगा, पर मुझे मन का मीत नहीं मिलेगा। जो भी मीत मुझे अब तक थारा लगा है, वह कच्चा नहीं, एकदम पका-पकाया रहा है। यहाँ होरा मानिक को छवि-माधुरी और उसकी सांस्कृतिक सुसुचियाँ मेरे मन में मोह उत्पन्न करती हैं। पर सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मैं प्रेरक नहीं बन सकता। तभी मुझे खयाल आ गया कि फिर इस कथन का क्या अर्थ होता है—  
“तुम्हारी चाय ठण्डी हुई जा रही है हीरा।” तो क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि एक मैं ही नहीं, प्रत्येक औसत आदमी यौन-सम्बन्धों में मूलतः प्राथमिक प्रेरक होता है ?

...

...

...

इण्टरक्लास के डब्बे में बैठा हूँ। सामने की बर्थ पर एक बंगीय सुजन लेटे हुए है। शरीर तो उनका ऐसा कुछ दुर्बल नहीं है, लेकिन दाढ़ी बढ़ी हुई है और कमजोर भी डाल रखवा है उन्होंने अपने ऊपर। इसलिए जान पड़ा, थोड़े अस्वस्थ आप जरूर है। कानपुर-स्टेशन पर गाड़ी खड़ी है और उनकी वह भारी गिलास-भर गरम पानी की तलाश में कभी डब्बे के द्वार पर जाकर प्लेटफार्म की ओर देखती है, कभी फिर निराश होकर लौट आती है। शरीर से पूर्ण स्वस्थ है। गोल-गोल सूर्यमुखी-सा मुख है। कानों के दास पर मुकुट बने हुए है। गोरी मासल ग्रीवा पर सोने की लकीर पड़ी हुई है। दाहिने हाथ में गिनी-गोल्ड की दो चूड़ियाँ हैं, बायें में घड़ी। दाके की बनी साड़ी पर ज़री का काम है। और रंग उसका स्लेटी जैसा है। जरूरत तो नहीं थी, पर ट्रेन के ही रेस्त्रो का ब्वाय जो पास से जाता हुआ देख पड़ा, तो मैंने कह दिया—“एक ट्रे में चाय और दो कास गरम-गरम पानी, किसी पॉट में—और देखो, पानी काफ़ी गरम होना चाहिये।” बहुत जल्दी।”

“बहुत अच्छा हुआ।” कहकर ब्वाय चला गया। तभी उस मंगनारी ने एक बार मेरी ओर देखा। पर मैं जानबूझ कर ‘रीडर्स डाइजैस्ट’ के एक पृष्ठ पर जम गया। जानबूझकर इसलिये कि रास्ता चलते-चलते जो निमंत्रण मिलते रहते हैं, उनका महत्व मेरी दृष्टि में अस्थायी और क्षणिक होता है।

जान पड़ता है, ब्वाय काफ़ी होशियार है। कितनी जल्दी वह चाय की ट्रे ले आया! मैंने पूछा—“और गरम पानी?”

उत्तर में उसने एक पाट की ओर जो संकेत किया, तो मैंने उसे उस बंग-नारी की ओर बढ़ा देनेका आदेश दे दिया।

वे भद्रजन तो चुपचाप लेते रहे, पर उस बंग-नारी की मुखकान्ति ने गुलाब के फूल की तरह खिलकर मानो शत-शत मूक धन्यवादों से भरे आभ्यासित कर दिया। सोचा तो ऐसा लगा, जैसे मेरा शरीर तो मेरे

समझ खड़ा है और मेरा मन यह अलग मैं स्वयं हूँ और अपने उस शरीर से पृष्ठ रहा हूँ—“क्यों, कैसा रहा ?”

वह मुसकराता हुआ कह देता है—“ठीक है। बस, इतना ही तेरे भाग्य में लिखा है। इसके आगे कुछ नहीं।”

देखा आपने, यह शरीर मेरा कितना चपरकनाती है ? उन घटनाओं को उद्घा भो यह सहज हो कर डालता है, जो मेरे जीवन में सदा विशेष महत्व रखती आयी है।

उस बग-न री ने दो कप चाय बनायी। एक कप अपने स्वामी को पिलाई और एक कप स्वयं पी।

इधर मैं भी अपनी ट्रे की चाय समाप्त कर रहा हूँ। सोचता हूँ, कितना अच्छा होता, अगर मैंने अलग से अपने लिए चाय इस ब्वाय से न मँगवाकर केवल यह गरमपानी ही मँगवाया होता। और कोई बात न सही, तो इतना तो प्रेमपूर्वक कह ही सकता था कि ओ सृष्टि की आदि चिर-सगिनी, एक कप तेरे कोमल हाथों के स्पर्श से बनी हुई चाय का अधिकारी मैं भी हूँ।” तब ऐसा तो कभी सम्भव न था कि वह इनकार कर देती।

लेकिन मेरा यह शरीर जो अलग खड़ा है, कह रहा है—“बस, यही सोचते रहो। कह तो ऐसा सकोगे नहीं कभी।”

अच्छा माना कि नहीं कह सकूँगा, पर यह सोच लेना भी क्या बुरा है ?

ब्वाय को मैंने बिदा कर दिया। गरम पानी ले आने के लिए उस बंग-नारी ने भी उसे दो आने पैसे दे दिये। इतने में गाड़ी चल दी। सम्बलकर बैठने लगा, तो उस नारी की सज्जनता देखिये कि उसने अपने बिस्तर पर हाथ रखकर मुझ से कह दिया—“आप सोइयेगा तो नहीं ? सोयें तो मैं आप के लिए जगह निकाल दूँ ?”

सोचता हूँ, सहस्राधिक ऐसी घटनाओं को अपने जीवन के साथ संलग्न रखते हुए भी मेरा यह शरीर अभी कह रहा था—“बस, इतना ही

तेरे भाग्य में लिखा है। इसके आगे कुछ नहीं !”

“बोलो, अब मैं किसका कपाल अपने आगे दे मारूँ !— किसे समझाऊँ कि इस के आगे और होता क्या है ?”

• पूरी नींद तो नहीं आयी; पर बैठे-बैठे भापकियाँ लग जाती रही। कभी-कभी एक विचार-बिन्दु-सा मेरे मानस पर आ गिरता कि यह जीवन ही मानो दैहिक सुख से हीन ऐसी रजनी है कि विश्राम और निश्चिन्तता की मनचाही सुविधाएँ सहज सुलभ नहीं रह गयीं। संयोग से सौजन्य ही थोड़ा-बहुत मिल सकता है। सो भी सदा और सर्वत्र नहीं।

इसी तरह दो-ढाई घंटे बीत गये। इतने में इटावा स्टेशन आ गया। ज्यों ही गाड़ी खड़ी हुई, त्यों ही कई छात्र एक साथ आ धमके। कुछ तो डब्बे के अन्दर आ-आकर प्लेटफार्म पर उतरे और फिर उसी डब्बे में चढ़ आये। कुछ छात्र दूसरे डब्बे में जाने के लिए उनसे अनुरोध भी करते रहे। किन्तु चार छात्र उनमें से डटे ही रह गये। एक-आध ने उस बंग-युवती की ओर लालच-भरी दृष्टि से सकेत करके प्रकारान्तर से यह समझाने की भी चेष्टा की कि यही डब्बा ठोक है। एक ने किसी टी० टी० ई० की कृपा का लाभ उठाने की भी बात कही, किन्तु तब तक दो छात्र मेरे पास आकर बैठ गये। जगह तो वास्तव में एक व्यक्ति ही के बैठने की थी; परन्तु उस छात्र ने उस युवती के निकट जाकर जगह खाली कर देने का जब अनुरोध ही कर दिया तो उसे उठना पड़ा। त्रिवश होकर वह दीवाल में लगकर अधलेटी हो गयी।

अब गाड़ी चल रही थी। मैं स्पष्ट देख रहा था कि खिड़की में खड़े दो छात्र किस-किस प्रकार से अपने उस साथी के इस साहस पर हँस-हँसकर उसे उत्साहित कर रहे थे। थोड़ी देर में मैं क्या देखता हूँ कि उस बंग-युवती के पास बैठा हुआ युवक नींद आ जाने का अभिनय कर रहा है। धीरे-धीरे उसका हाथ, कन्धा और शिरोभाग उस युवती की जाँघ का स्पर्श करना चाहता है। पर तुरन्त ही उसकी नींद उचट जाती है और वह ऐसा भाव प्रदर्शित कर देता है, जैसे वह अब भी सावधान ही बना

है। पर स्थिति यह है कि उस सोट पर कुल मिलाकर दो व्यक्तियों की जगह से अधिक उसने अकेले घेर रखी है। अर्थात् जितनी जगह इस डब्बे में आने से पूर्व उस युवती को प्राप्त थी, उतनी अब उस छात्र के अधिकार में आ गयी है और वह युवती उत्तरोत्तर डब्बे की दीवाल की ओर सिकुड़ती चली जा रही है। उधर द्वार की ओर खड़े हुए युवक हँसी-मजाक कर रहे हैं और बीच-बीच में इस युवक को भी संकेत से उत्साहित करते जा रहे हैं।

धीरे-धीरे मेरे शरीर का रक्त गरम होते-होते इस सीमा तक खौल उठा है कि अभी उठकर इस छात्र का मिजाज़ दुरुस्त कर दूँ। पर मेरी इस इच्छा के सामने कुछ बाधाएँ बहुत स्पष्ट हैं। एक तो मैं उस शिष्टता को कायरता और भय ही कहूँगा, जो यह बगयुवती उस युवक को देती जा रही है। दूसरी बात यह है कि उसका स्वामी जो पहली बर्थ पर लेटा है, उसका पुरुषार्थ और उसकी रुचि इस छात्र के दुस्साहस को क्यों स्वीकार करती जा रही है? क्या वह इतना हीन और असहाय है जो उठकर इतना भी नहीं कह सकता कि ठीक से बैठिये हज़रत, मैं ढेर से आप ही का अभिनय देख रहा हूँ। लेकिन देख रहा हूँ कि वे महाशय भी कभी-कभी अँख उठाकर इस दृश्य को देख भर लेते हैं, कहते कुछ नहीं।

महत आश्चर्य से इस स्थल पर मैं यही सोचने में लगा रहा कि यह बात क्या है? एक विचार मन में आता—एक जाता। कभी सोचता कि तुम्हें क्या पड़ी है? होने दो, जो कुछ हो रहा है! पर फिर बारम्बार यही विचार मेरी निष्क्रियता के कपाल पर ईंट की-सी चोट जमा देता था कि संसार में जो कुछ हो रहा है उसे सहन करता हुआ भी अगर तू चुप रहता है, तो फिर तेरे जन्म धारण करने का मूल्य क्या है? तेरा अस्तित्व, तेरा बल-पौरुष, तेरी संस्कारशीलता, तेरा अभिमान—तेरा सब कुछ दो कौड़ी का है! छुद्र है तू अतिछुद्र! तेरी वीर भावना मर गयी है—पूरा वृहन्नला है तू! और एक मात्र सुख-सुविधा की जगह तेरे लिए वे नगर वे मुहल्ले हो सकते हैं, जहाँ आज्ञाद हिन्दुस्तान

की यह कलंक-कालिमा निवास करती है !

इतने में यकायक वह छात्र जिस परिस्थिति के लिए व्याकुल था, वह उत्पन्न हो गयी। उसका दाये हाथ का कन्धा और सिर उस युवती के बामाङ्ग से जा लगा। किन्तु तत्काल मैं क्या देखता हूँ कि उस वीराङ्गना ने एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना अपने स्लेटी रंग की ज़मीन और हरी पत्तियों से युक्त चपल उतारकर उस छात्र के लहराते बालों वाली चोंद और कनपटी पर तड़ातड़ तीन-चार जमा दिये। चपल उतारते क्षण उसने अत्यन्त तिरस्कार-दग्ध वाणी में कहा—“कत क्षन थेके आमि तोमाके देखते छिलाम। तुमि क्षुद्र कुक्कुर ! भद्रतार एई उपहार नि ए जा !”

इस आवाज़ छात्र के एक साथी मेरे पास बैठे थे। उनसे और तो कुछ करते न बना; पर इतनी बहादुरी का काम उन्होंने अवश्य किया कि वे तुरन्त ही उठकर खड़े हो गये और उस युवती से कहने लगे—“अगर नींद आ जाने से उसका बदन छू ही गया था थोड़ा-सा, तो आपको उसे दूसरी तरफ ढकेल देना चाहिये था। पर ये चपल मारने का आपको क्या हक था ? अफसोस कि आप औरत है; वरना आपको अभी मालूम हो जाता।”

इस पर नीचे बैठे एक आदमी ने उठकर उसके गाल पर एक हलका थप्पड़ लगाकर आस्तीन सन्हालते हुए कहा—“श्याला लोक एक तो गून्डागीरी कोरता—तार पोरे बहाश करने माँगता, बदमाइश।”

इसी समय यकायक अबतक हतप्रभ खड़े हुए शेष दोनों छात्रों का मनोभाव बदल गया। दोनों की हाकी-स्टिक्स उठ गयी और एक क्षण के बाद उस व्यक्ति को खोपड़ी सचमुच फट जाती, अगर उस युवती का पति चुपचाप उठकर उनके सामने पिस्तौल दागकर यह न कह देता—“यू बिलीव इन वेडलिज्म, आइ थिंक !”

बात-की-बात में दोनों के हाथों की हाकी-स्टिक्स प्रशं पर छूट पड़ी। दोनों के हाथ-पैर कॉपने लगे और उनके चहरो पर हवाईयों उड़ने लगी। इसी समय शिकोहाबाद स्टेशन आ गया और गाड़ी रुक गयी।

बहुत इतमीनान से एक साथी ने उसका सिर सहलाते हुए कहा—“अभी रिपोर्ट करता हूँ पुलिस में ।” और फिर सब-के-सब भीगी बिल्ली की तरह उस डब्बे से उतर गये ।

बड़ी देर तक मैं सोचता रहा—हो सकता है कि वाकई पुलिस आ जाय । पर फिर सोचा, ऐसा प्रायः कम होता है । एक बार अपराधी साबित हो जाने पर बड़े-बड़े तीसमारखाँ लोगों का साहस मर जाना है; वे तो फिर भी छात्र ही थे ।... लेकिन चप्पलों की आवाज़ भी काफ़ी ज़मी ! मज़ा पैदा कर दिया उसने !

ट्रेन तेज़ी से जा रही थी और मैं इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ था कि क्षण भर के प्रसाद ने इस छात्र को क्या से क्या कर डाला ! फिर उसका दुस्साहस भी कितना बड़ा था ! उसने उस नारी की आराम की जगह छीनी जिसने भलमनसाहस से उसे जगह दी थी । उसका बदला आपने इस तरह चुकाया कि बैठने के बजाय आप उस पर पसर रहे ! फिर आपने चाहा, लगे हाथों उसकी मांसल देहलता से क्षणिक नाता भी क्यों न जोड़ लिया जाय ! कौन जाने वह इसको भी चुपचाप सहन ही करले !

मन के भीतर कुछ ज़हर-सा फैल रहा है कि साहस और वीरता की यह कितनी सुन्दर शिक्षा इन लोगों को दी गयी है और सभ्यता इनकी कितनी विकसित हो रही है ! फिर इसी क्रम से और भी एक घटना का स्मरण हो आया ।

एक दिन की बात है । टिकट मैंने लिया था इन्टरक्लास का, लेकिन गाड़ी थी वह कानपुर-आगरा-पैसेंजर । इसलिये उसका प्रबन्ध कुछ विशेष तो होना ही चाहिये था । सो इस प्रकार हुआ कि पूरी गाड़ीभर में इन्टरक्लास का कोई डब्बा ही न मिला ! तब विवश होकर थर्डक्लास के डब्बे में बैठना पड़ा । बस ट्रेन कानपुर स्टेशन से चलने ही वाली थी कि एक शरणार्थी कम्पट बेचता हुआ आ पहुँचा । उमर उसकी कोई पचास-पचपन की होगी । बाल सफेद हो गये थे और कुछ बड़े हुए भी थे । बेचारा एक आने में सोलह के हिसाब से बेच रहा था । इतने में एक आदमी



ने कह दिया—“क्या आपके घर में कोई कमानेवाला लड़का नहीं, जो आया यह छोटा काम करते है ? इसमें आपको भला क्या मिलता होगा !”

अस, इतना पूछना था कि वह वृद्ध रो पड़ा। बोला—“क्या बताऊँ, मुसीबत का सारा हूँ। जवान लड़का था बाइस साल का। उसका ब्याह जिस लड़की के साथ हुआ, चाल-चलन उसका खराब निकल गया। माँ-बेटी दोनों ने मिलकर मेरे बेटे को घर पर खाने को बुलाया। वहाँ दस बजने पर उसने खाना खाया। घर लौट आने पर बारह बजते-बजते वह बेहोश हो गया और दो बजे इस दुनियाँ से कूच कर गया। डाक्टर ने जाँच करके साफ-साफ बतला दिया था कि इसको खाने के साथ संख्या दी गयी है। पर संख्या किसने दी, कहाँ दी, इसका कुछ पता नहीं चला। चौदह तोले भर सोने का ज़ेवर था, वह भी लड़की और उसकी माँ ने दाव लिया। छै महीने भी न बीतने पाये थे कि सुना, उस बहू का एक एस० पी० के लड़के से ब्याह हो गया। तब से मेरा यही हाल है। जितने दिन ज़िन्दगी है, उतने दिन तो किसी तरह पार करने ही होंगे।”

सोचता हूँ, इन दोनों घटनाओं में एक ही-सा ज़हर है। जो संस्कार उस छात्र को इटरक्कास के डब्बे में अपनी सीट पर लेटी हुई युवती को उठाने, उससे अपने बैठने की जगह लेने और फिर अधिक-से-अधिक जगह में पसरकर, फैलकर, सोने का अभिनय करते-करते उसे अपमानित करने का प्रेरित करते है, वही उस शरणार्थी की चरित्रहीना बहू और उसकी माँ के द्वारा उसके नौजवान बेटे को ज़हर दिलाकर उसका चौदह तोले भर सोना मार देने और फिर तुरन्त पुनर्विवाह कर लेने को भी उत्साहित करते हैं।

पर ये कैसे संस्कार है ? कौनसी विचारधाराएँ इन घटनाओं को प्रोत्साहन देती है ? उनसे मानवता का कौन-सा हित होना सम्भव है ? और जो समाज और राष्ट्र इनके सम्बन्ध में मौन रहता है, जिस शासन-व्यवस्था के पास इस ओर देखने का समय नहीं है उसकी मर्यादा क्या है और उसका भविष्य कैसा है ?

नींद तो भला क्या आती; इसलिए वह सारा रात इन्हीं प्रश्नों की उधेड़-बुन में बीत गयी।

दिक्खी जंकशन आ जाने पर जब हम गाड़ी से उतरने लगे, तब मैंने उन वंगीय महाशय से कहा—“और जो कुछ हुआ सो हुआ, पर आपका यह पिस्टल बिल्कुल ठीक मौके पर निकला।

तब उन्होंने मेरी ओर पीठ करके बिस्तर लपेटते हुए इतमीनान से कह दिया—“इट वाज़ बेरी एसेंशल ऐट दैट मोमेंट।”

थोड़ी देर में तागा-टैक्सी (अपने क्रिस्म की एक नयी सवारी) पर चढ़कर जब मैं नयी दिक्खी जाने लगा, तब उस अति शीघ्रगामी वाहन पर उछलता-उछलता बराबर यही सोचता रहा—“पति को विष देकर मार डालनेवाली युवती भी हमारे समाज में क्यों खप जाती है? क्यों लोग उससे बात करते हैं? क्यों उसका बहिष्कार नहीं होता? और ये गुण्डे क्या हमारी शिक्षा-संस्थाओं और विश्व-विद्यालयों की देन नहीं हैं?”

पर यही पर मैं गहरे विचार में पड़ जाता हूँ। सारे शरीर भर का रक्त ठंडा पड़ जाता और जैसे उसका जमना भी शुरू हो जाता है, जब सोचता हूँ कि अपना रामलाल भी तो ऐसा ही व्यक्ति है! और ये मुरली बाबू! और उनकी ज़मानत करनेवाले श्रीमान् लालाजी—और फिर उनका साथी मैं! हे प्रभू यह तेरी कैसी लीला है! हम कहाँ जा रहे हैं?

## सत्रह

मधू को देखने पर जैसी प्रसन्नता हुई, पहले से उसकी कोई कल्पना नहीं थी। स्वास्थ्य अब पहले से कहीं अधिक सुधर गया है। वस्त्राभूषणों के प्रयोग में पहले की अपेक्षा अब अधिक आस्था जान पड़ती है। और सबसे बड़ी बात यह है कि वह पहले की अपेक्षा व्यावहारिक भी अधिक हो गयी है।

मकान कैरोलबाग में है। मकान न कहकर उसे एक छोटा-मोटा

बंगला कहना अधिक उचित होगा। लान पर हरी दूज खूब सघन है। किशारों पर गमलों में जो फूल-पौधे लगे हैं, उनमें सौन्दर्य-साधन की ओर दृष्टि अधिक है, सुगन्ध-साधन की ओर अपेक्षाकृत कम। फिर भी गुलाब और दोनामरुआ की सुवास ने शिकायत का अवसर नहीं दिया और सबसे बड़ी बात यह हुई कि ज्योंही टैक्सी-तांगा पोर्टिको के अन्दर पहुँचा, त्योंही मेरी दृष्टि एक मृग-छौने पर जा पड़ी, जो छल्लोंग भरता हुआ बंगले के पीछे जा रहा था। मन में आया, चलो जीवन का चिह्न तो देखने को तो मिला।

मधू की मास बिल्कुल मेरी माँ के समान वयोवृद्ध है। अन्तर केवल इतना है कि मेरी माँ किञ्चित् दुर्बल है, और ये कुछ स्थूल। मस्तक के ऊपर के केश इनके भी पक गये हैं। इसके सिवा ये चरमा भी लगाती है।

एकान्त पाते ही चाय में चीनी छोड़ती हुई मधू बोली—“मैं जानती थी, यह भैया की ही लीला है, जो मुझे तुरन्त बुलाया नहीं जा रहा है।”

“पगला, किसी वन में तो छोड़ नहीं दी गयी थी, जो आशका होती कि कहीं कोई वन्य पशु अपने एकादशी व्रत का पारण न कर बैठे !” मैंने जो कहा, तो वह हँसने लगी और बोली—“हाँ, मैं इतनी सस्ती जो हूँ !... अच्छा, क्या माँ ने अब तक दो-चार बार भी बुलाने के लिए नहीं कहा ?”

“कहा क्यों नहीं, पर मुझे इतना अवकाश ही कहाँ था। तेरे ब्याह के बाद ही मकान खरीदना और फिर उसमें शिफ्ट करना...”

“हाँ, सो तो तुमने लिखा था।... विसकिट नमर्कान है, जैसे तुम्हें पसन्द है।”

“दीक्षितजी कै बजे जाते हैं दफ्तर ?” मैंने पूछा, तो उसने सकोच से सिर नीचा कर लिया। मुझे बुरा कम लगा, अच्छा अधिक। मैंने बतलाया—“लाली बीमार पड़ गयी। वे लोग उस मकान के नीचे ही तो रहते हैं।”

“यह लाली कौन ? अच्छा-अच्छा वह सोने की बहन ? देखा है मैंने उसको । बड़ी मोहिनी है उसके मुख पर । लेकिन बेचारी का भाग्य ! चाय कैसी है ? अच्छा बोलो है कौन ?” मगर उसकी बीमारी से तुम्हारी दिनचर्या में अन्तर आने की क्या बात थी ?”

“बात तो नहीं थी, मगर अम्मा को तो तू जानती ही है । उन्होंने जब उसकी दवा के लिए भगड़ना शुरू किया, तब क्या करता मैं ? चाय मुझको तो कई मेल की मिक्स्ट मालूम पड़ी । नहीं तो बोल कौनसी है ?”

मधू हँसने लगी । इतने में दीक्षितजी आ गये । लम्बी नाक, विशाल भाल—और क्रद लम्बा । शरीर पर ढीला पायजामा, बनियाइन और कलकतिया स्लीपर पैरों में डाले । सिर पर घना केश-गुच्छ, माँग दुधारा, क्लीन शेव्ड, बहुत हल्का आसमानी चश्मा । आते ही बोले—“कहो मौज में ?”

मैंने कहा—“दया है आपके चरणों की ।”

बस गम्भीर हो गये इतनी-सी बात पर । थोड़ा नाक पर बल आया, दायी भौह भी कुछ ऊपर उठी । बोले—“बस, ये चरणों की दया-बया कट । शिष्टाचार की किताबी भाषा भी कट । साफ़-साफ़, एकदम ठेट दिलफेक बात करनी होगी । समझे पाँड़ेजी ।”

पीछे से मृग-छौना आकर मेरा शिरोभाग जो अपनी गुदगुदी थूथुन से सूँघने लगा, तो मैं सिहर उठा । मन-ही-मन मैं सोचने लगा—यह मृग मुझे जिसकी याद दिला रहा है, क्या मैं उसे बुलाकर यहाँ ला नहीं सकता ?

इसी क्षण अवसर पाकर मधू घूँघट सम्हालती हुई चल दी । दीक्षितजी ने वही से पुकारा—“अरे वैशाली, ओ वैशाली ! चल इधर देख, तेरा एक और भाई आया है । बिल्कुल बेजान-पहचान का—लेकिन कबूतर की तरह उड़ान-पसन्द और खर की तरह-फलेक्सेबिल । और हाँ, अपनी भाभी को भी साथ लेती आ ।”

“इस कथन में पहले गुण पर मुझे कोई आपत्ति नहीं, बल्कि एक

तरह से स्वीकार ही समझिये; किन्तु स्वर की तरह अपेक्षानुसार बढ़ जाने के पश्चात् फिर उसी प्रकार संकुचित हो जानेवाला व्यक्तित्व तो मैं हूँ नहीं।”

• मेरा यह उत्तर सुनकर दीक्षित जी बोले—“वाह ! क्या बात है तुम्हारी !”

इतने में क्या देखता हूँ, एक साथ तीन लड़कियाँ चली आ रही हैं। इनमें एक तो मधू है, कुछ संकुचित-सी—जैसे ज़बरदस्ती उसे ले आया जा रहा हो। दूसरी भी कुछ-कुछ परिचित-सी लगी; यद्यपि याद नहीं आ रहा था कि कहाँ परिचय हुआ। तभी सोचने लगा कि यह तीसरी ही कदाचित् वैशाली है। गोरी, छरहरे बदन की, दुबली-पतली गोल-गोल कटोरे-सी आँखें, केशपाश को दो लटों में विभाजित किये हुए; हलके हरे रंग की डोरियाँ की इकलाई धारण किये हुए। पैरों में हरे और सुनहले रंग के चप्पल।

दीक्षितजी ने परिचय कराया—“यह है मेरी बहिन वैशाली; पर इसका दूसरा नाम शैतान की आँत भी है।” और वैशाली ने मुसकराते हुए हाथ जोड़ते-जोड़ते बतलाया—और ये मेरी गुरुजी—श्रीमती अर्चना देवी।”

बिना किसी प्रकार का भाव-परिवर्तन दिखलाये मुझे कहना पड़ा—“मैं आपको जानता हूँ। इलाहाबाद में आपको...।”

अर्चना कुछ संकुचित-सी जान पड़ी। फिर साड़ी के अंचल को बायें भाग में स्थिर कर वे बोली—“हाँ, आप लालाजी के साथ एक बार मेरे घर आये थे। पर अब तो हम यहाँ आ गये हैं।”

मैंने पूछा—“कब ?”

अर्चना ने उत्तर दिया—“यही कोई दस दिन हुए होंगे। एक कन्या-विद्यालय में नियुक्ति भी हो गयी है।”

“चलो, यह बहुत अच्छा हुआ। सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।” तुरन्त मैंने कह दिया।

दीक्षितजी वैशाली व मधू दोनों को लक्ष्यकर बोले—“अब तो इस बैठक का कलेवर काफ़ी बढ़ गया। चाय तथा अन्य सामग्री ...?”

मधू ने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया—“अभी आयी जाती है ।”

अब दीक्षितजी अर्चना देवी की ओर देखकर कहने लगे—“पांडेयजी को आप जानती है, यह भी खूब रहा !”

अर्चनाजी कही कुछ अन्यथा न अनुभव करें, इसलिये मैंने कह दिया—“इनके पतिदेव मुरलीबाबू तो मेरे यहाँ प्रायः आते रहते हैं ।”

पर मेरा इतना कहना भी उनके लिए बहुत हो गया । बेचारी अपने भावों को बहुत मर्यादित रखती हुई बोली—“उस रोज़ आपसे मिलकर ही हम लोग आना चाहते थे; पर कुछ ऐसी जल्दी थी कि फिर आ नहीं सके ।” और इतना कहकर तुरन्त घड़ी देखती हुई कहने लगी—“ब्रामा कीजियेगा, मुझे थोड़ी देर तो वैशाली को...!”

मेरे मुँह से निकल गया — “पर थोड़ी देर क्या, पूरा समय देकर ।”

वैशाली को लेकर अर्चना देवी जाने लगी, तो दीक्षितजी बोले—“अच्छा अर्चनाजी, चाय हम आपको वही पहुँचा देंगे ।”

आज यहाँ यह अर्चना मुझे इतनी भली क्यों मालूम पड़ रही है ? सोचता हूँ, पर कुछ स्थिर नहीं कर पाता हूँ । यद्यपि उस दिन लालाजी के साथ जो बातें हुई थीं, उनमें भी इसकी ओर से कोई कुरुचिपूर्ण प्रसंग मेरे समक्ष उपस्थित हुआ नहीं था । मुरली बाबू के ही कुछ छिपे रग-दङ्ग अवश्य प्रकाश में आ गये थे ।

अर्चना को लौटते हुए अभी देख ही रहा था कि दीक्षितजी बोले—“देखो मधू, ये पांडेयजी तुम्हारे भाई मेरे परोक्ष में ही नहीं हैं, समक्ष भी हैं । मेरा और तुम्हारा नाता भी इनकी इन दोनों अवस्थाओं में अपनी जगह से टस-से-मस नहीं होता । इसलिए इनके सामने मुझसे बात करने में तुमको सकोच नहीं होना चाहिये ।”

“मैंने भी दीक्षितजी की इस बात का समर्थन करते हुए कह दिया—“हाँ मधू, मैं भी इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता । बल्कि मेरे सामने अगर तू खुलकर हँसे-बोलेगी, तो एक तरह से ‘बापू की संस्कृति’ की रक्षा ही होगी ।”

दीक्षितजी बोले—“यह ‘बापू की सस्कृति’ का प्रयोग आने खूब किया।”

इतने में दासी चाय की ट्रे लिये हुए आ पहुँची और साथ ही वह मृग-छौना भी घूम-फिरकर पुनः उपस्थित हो गया। कुछ यों ही कुतूहल-वश मैंने पूछा—“इस मृगछौने को अगर चाय पिलायी जाय तो कैसा हो?”

वे बोलने भी न पाये थे कि मधू हँसती-हँसती बोली—“आ रे श्रवण!”

और सचमुच मधू ने दुग्ध-पात्र को खाली करके उसमें जो चाय ढाल दी, तो श्रवण ने उसमें अपनी थूथुन इस तरह जमा दी कि मैं विस्मय-विमुग्ध होकर इकटक उसे देखता रह गया!

लेकिन तभी दीक्षितजी बोल उठे—“कितना अच्छा होता, अगर श्रवण बकरी का दूध पीना स्वीकार कर लेता! मैंने हरचन्द कोशिश की, मगर किसी तरह श्रवण राजी न हुआ।”

मधू भी समर्थन करती हुई कहने लगी—“सचमुच भैया, यह श्रवण सिर्फ गाय का दूध ही पीता है। यो अब तो चाय भी थोड़ी-थोड़ी पीने लगा है।”

इधर ये बातें हो ही रही थी कि माँ हॉफती हुई आ पहुँची। बोली—“बिल्ली टुइयाँ को मुँह में दबाकर चम्पत हो गयी! पता नहीं पिंजड़ा किस तरह खुला रह गया। हाय अब मैं क्या करूँ!”

मधू तुरन्त अन्दर चली गयी। दीक्षितजी बोले—“इसमें हमलोग कर ही क्या सकते हैं।” तब खिन्न मन से माँ भी अन्दर चली गयी। साथ ही श्रवण भी चला गया। दीक्षितजी ने अपना कप ममात्त करते हुए कहा—“टुइयाँ जब पाली गयी थीं, तभी हमको सोच लेना चाहिये था कि किसी दिन वह बिल्ली का भोजन बनेगी। पर जैसे पिंजड़े का खुला रह जाना प्रकृति का लक्षण है, वैसे ही बिल्ली को नया भोजन देना भी प्रकृति का ही एक गुण है।”

कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे दीक्षितजी की आत्मा में प्रविष्ट होकर लालाजी हमको लेक्चर पिलाने के लिए यहाँ भी आ पहुँचे हों।

मनुष्य ने भूल की, तो वह प्रकृति का लक्षण बन गयी। विल्ली दुइयों को जबड़ों में दबोच ले गयी, तो वह भी प्रकृति का गुण बन गया। कही चोरी हो गयी, तो चोरी करना मानव-प्रकृति का लक्षण हो गया और चोर पकड़ा नहीं गया तो वह भी मनुष्य-स्वभाव किवा प्रकृति का लक्षण बन गया। देशभक्तों की जो जाति हमारे देश में शासन कर रही है, उसकी भी एक प्रकृति है। और प्रकृति तो सदा अपना काम करती ही रहती है। सो अगर कार्याधिक्य और समयाभाव के कारण उसको रामलाल जैसे लोगों की ओर अधिक ध्यान देने का यथेष्ट अवसर नहीं मिल पाता, तो यह भी मनुष्य-स्वभाव किवा प्रकृति का लक्षण ही ठहरेगा। तात्पर्य यह कि दुनियाँ में आज जों कुछ भी हो रहा है, सब स्वाभाविक है; क्योंकि मनुष्य के पीछे प्रकृति का पावन हाथ है !

...और प्रकृति का हाथ चाहे न भी हो, पर उसका समर्थन करनेवाले जीवन-दर्शन का हाथ तो है ही !

जब जी नहीं माना, तब मुझे भी दुइयाँ का वह सूना पिंजड़ा देखने को जाना ही पड़ा, जहाँ श्रवण थूथुन उटायें खड़ा हुआ चुपचाप उसी सूने पिंजड़े को देख रहा था !

बराण्डे के कोने में दुइयाँ के हरे-पीले पखों के छोटे-छोटे टुकड़े पड़े हुए थे और कही-कही दो-चार रक्त के बूँद। उन्हें देख-देखकर मधू आँसू पोंछती हुई कह रही थी—“बेचारी अब सीताराम कहना थोड़ा-थोड़ा सीख गयी थी !” माँ चुपचाप बैठी थी। इतने में मुनियाँ जो आयी, तो माँ बोली—“गिहूँ तो दुर्लभ हो गया। इसलिये पाँच सेर बेभर कँगलो को जो दान करना होगा, सो भंडार से निकाल लो अभी।”

और इतना कहकर उन्होंने चाभियों का गुच्छा उसकी ओर फेंक दिया।

इतने में दीक्षितजी भी वहाँ आकर खड़े हो गये। एक क्षण स्थिर रहे। दुइयों के वे छोटे-छोटे हरे-पीले पख और रक्त के चिह्न उन्होंने भी देखे। फिर माँ से कहने लगे—“जीवों के प्रति दया रखना बहुत उत्तम है ; पर उससे भी उत्तम है उस प्रकृति का विकास, जो उनको उन पर दया



के योग्य बनाती है। लेकिन बिल्ली की हिंसकवृत्ति को कभी हम बदल सकेंगे, इसमें सन्देह है। मेरी समझ में तो आता नहीं कि चूहे और पालतू चिड़ियों पर होनेवाले उसके शिकारों को भी हम कैसे बन्द कर पायेंगे !”

मैं सोचने लगा—पर यह भी कितनी अजीब बात है कि एक ओर हम देखते हैं कि बिल्ली का भोजन दूध है—दूसरी ओर चिड़ियों और चुहियों का मांस भी। इस उभय पक्ष की रुचि का पालन-पोषण भी मुझे कुछ विचित्र-सा लगता है। इसी क्षण बहुत मर्माहत सी वैशाली आ गयी।

दासी को सामने से आता देख दीक्षितजी बोले—“यहाँ सफाई करनी होगी मुनियाँ। समझती है कि नहीं? नहीं तो इन लोगों का रोना-धोना जल्दी बन्द नहीं होगा।”

मुनियाँ बोली—“अभी कर देती हूँ सरकार।” फिर मेरी ओर आकर कहने लगी—“आपको एक मिनट के लिए वैशाली बिटिया की गुरुजी ने याद किया है; वे बाहर फाटक पर खड़ी है।”

और बाहर आने पर अर्चनाजी रूमाल मुँह पर से हटाकर बोली—“यहाँ मैं अकेली ही आयी हूँ पाडेयजी। उनका साथ अब छूट गया है। इसलिए आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि यहाँ कहीं आप उनकी चर्चा न करें। आप जानते हैं, हमारा समाज कैसा है। इलाहाबाद में तो अब हमारा शान्तिपूर्वक रहना भी उन्होंने दुष्कर कर दिया था।”

यह समाचार सुनकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। अतएव मैंने कह दिया—“यह अच्छा हुआ कि आपने बता दिया। अब आप निश्चिन्त रहिये। मैं कहीं भी इस विषय की चर्चा न करूँगा।...पर तीन-सौ-त्रेसठ वाले उस केस की पैरवी के लिए तो आपको वहाँ जाना ही होगा।”

वे बोली—“जाना ही होगा, ऐसी तो बात नहीं है; लेकिन हो सकता है कि जाना पड़े। पर उनकी पैरवी में नहीं, पुलिस के पक्ष में !”

उनको यह बात मुझे आश्चर्य में डाल रही थी। आज जीवन में यह पहला अवसर था, जब अपने पति के विरुद्ध एक स्त्री से मैं ऐसी बात सुन रहा था।

मुझे चुन देखकर अर्चनाजी फिर बोल उठी—“कुछ ऐसी बातें है,

जिन्हें मैं सहन नहीं कर सकती, चाहे कोई हो। मैंने यह नै कर लिया है कि जो पापी है, वह मेरा कोई नहीं है। उससे मेरा किसी तरह का सम्बन्ध नहीं हो सकता। मैं तो सदा यही सोचती हूँ, अगर मेरा हाथ बदलू करने लगे, तो दवा करने के बदले उस अंश को साफ कर देना ही श्रेयस्कर होगा। पति भी यदि हमारी सारी निष्ठा को, प्रेम के नाना रूप-रस-गन्ध को, स्नेह और उसकी पावन गगंधार को गन्दा करने में ही अपना सुख मानता है, तो वह मेरे मन-प्राण-सर्वस्व का अधिकारी नहीं, वह तो उस क्षुद्र श्वान के समान है, जिसे आत्मिक मिलन की अपेक्षा रक्त-मास खाने और बची-खुची अस्थिर्यो चचोरने में ही अधिक संतुष्टि मिलती है ! आप यह न समझें कि मुझमें सती-साध्वी नारी के पवित्र पातिव्रत-धर्म का सर्वथा लोप हो गया है। उसका समस्त कोष मेरे हृदय में अब भी सुरक्षित है, पर है वह केवल उस प्राणी के लिए, जो मेरे प्रति सच्चा और कर्तव्यनिष्ठ है।

अर्चनाजी के इस कथन के पश्चात् मैं कुछ कह नहीं सका। रह-रह कर यही मन में आता था—दुःख में डूबी नारी है। कैसे इसका कल्याण होगा, जबकि अभी तरुणावस्था का मध्यकाल भी नहीं बीता है ? उधर समाज हमारा पालक-पोषक उतना नहीं, जितना पीड़क, नाशक और हत्यारा है !

तभी अर्चनाजी ने विदा लेते हुए कह दिया—“बस, मुझे आपसे इतना ही कहना था। आशा है, इस कष्ट के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।”

अब मुझे बोलना पड़ा। मैंने कह दिया—“आपकी स्थिति सच-मुच चिन्त्य है। ऐसी दशा में अभी कुछ कह सकना मेरे लिए सम्भव भी नहीं है। इलाहाबाद पहुँचने और मुरलीबाबू से भेंट होने पर देखूँगा कि मैं आपके किसी काम आ सकता हूँ या नहीं।”

अर्चनाजी को गये हुए पाँच मिनट से अधिक हो गये हैं। लेकिन मैं उसी स्थल पर पूर्ववत् खड़ा हूँ और वैशाली, वह दूर खड़ी हुई रो रही है !

## अठारह

खाना तो दीक्षितजी के साथ ही मैंने खाया था; पर पान उसके पश्चात् मुझे अपने पलंग पर आसन लगा लेने के बाद मिला । फिर माताजी मेरे पास आकर बैठ गयी । मैंने पूछा — “कहिये, मधू आपकी खूब सेवा करती है न ?”

“हाँ, सेवा करने में तो वह हमारे घर में सबसे आगे है ।” पान चचाती हुई माताजी बोली—“लेकिन स्वभाव की गम्भीर कुछ ज्यादा है । बात कम करती है । अपनी इच्छा और पसन्द पर ज़ोर देना तो जैसे जानती ही नहीं ।”

मैं इसका उत्तर देने ही वाला था कि चलो यह बड़ा अच्छा है; क्योंकि दोनों के गुण एक दूसरे के पूरक हैं । पर इतने में वैशाली आ पहुँची ।

इस समय वह बाफ़ता का स्लीपिंग-गाउन पहने हुए थी । बेशों का एक लट आगे थी, एक पीछे । केवल एक कान में हीरा पहने हुए थी, जो दूर से ही झलक रहा था । तत्काल मेरे मन में आया, पूछूँ—यह एक कान में क्यों ? लेकिन पूछने में कुछ हलकापन-सा मालूम हुआ । इसके सिवा यह भी सोचने लगा कि इसमें रुचि का भी प्रश्न हो सकता है । क्योंकि आजकल की ये पढ़ी-लिखी छोकरियाँ विचित्रता में हम पुरुषों से दस कदम आगे ही रहना चाहती हैं । नित्य ही देखता हूँ कि कोई-कोई स्त्री चूड़ी केवल एक हाथ में पहनती है, दूसरे में घड़ी बाँधती है । कोई नाक छिदवाना ही पसन्द नहीं करती और कोई तो नाक में दोनों ओर हीरे की चमचमाती कनी धारण करती है ।

पास आती हुई वैशाली टाफी चूसती हुई जान पड़ी । फिर भी मैंने पूछा नहीं कि क्या चूस रही है । पर माँ ने पूछ दिया—“क्या है ? सोती क्यों नहीं जा कर ? नौ बजे देर हुई ।”

वह ज़ांभ के चटकारे मारतो और आँखें मीचकर खोलती हुई बोली—  
“जल्दी सो जाना ठीक है, मगर कब ? सिर्फ़ छै दिन । आज का दिन  
उसमे शामिल नहीं किया जाता । मालूम है—टु डे इज़ द सैटरडे ।”

माताजी को जान पड़ता है वैशाली का यह कथन अच्छा नहीं  
लगा । तब उन्होंने अनखाते हुए कह दिया—“सब मालूम है । यह  
भी मालूम है कि पढ़ने में तेरा मन नहीं लगता, जितना बाते बनाने में ।”

“देखिये माताजी, मैं आपसे बहुत विनयपूर्वक यह निवेदन करना  
चाहती हूँ कि... ” गम्भीरतापूर्वक इतना कह लेने के अनन्तर वैशाली  
फिर हँस पड़ी और बोली —“ये जो मेरे नये भ्राता जी हैं न, मैं इनको  
एक चिट्ठी देने आयी थी असल में । आपका अमूल्य समय नष्ट करने  
के लिए नहीं !”

और इतना कहकर उसने सचमुच बायें पार्श्व में से एक लिफाफ़ा  
निकालकर मुझे दे दिया । अब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।  
मैं यह सोच ही न सका कि यहाँ आये अभी मुझे पूरा दिन भी नहीं  
हुआ ; फिर भी यह पत्र कहाँ से आया और किसने भेजा !

इसलिये पत्र बिना खोले ही मैंने आश्चर्य से पूछा—“मेरा पत्र !  
मेरा पत्र कैसा ? यहाँ मुझे पत्र भेजनेवाला कौन बैठा है ? फिर कौन  
आदमी यह पत्र ले आया है ? और वह आदमी है कहाँ ? मुझे उससे  
मिलना होगा ।” और साथ ही मैं उठकर बैठ गया ।

माताजी बोली—“पहले पढ़ तो लो पत्र, फिर उस आदमी से भी  
मिल लेना, अगर ज़रूरत समझना ।”

पर वैशाली बोली—“आपको पढ़ने में दिक्कत हो, तो लाइये मैं पढ़  
दूँ ।” और हँसने लगी ।

तब पत्र को कोने से लेकर उसे किनारे-किनारे चीरते हुए  
ख़याल आया कि सचमुच पत्र का समाचार और विषय की उपयोगिता  
जाने बिना ही मैंने कह दिया कि मुझे उस आदमी से मिलना  
पड़ेगा !

पत्र बहुत संक्षेप में लिखा हुआ है। पर उसका समाचार कुछ ऐसा है कि मेरे हृदय की गति यकायक तीव्र हो गयी है।

२४ बिअर्डरडोड, नई दिल्ली

प्रिय राजेन्द्र,

२५/११/५०

तुमको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आजकल हमलोग एक सप्ताह से यही है। अर्चनादेवी इस बँगले के अन्दर ही एक ओर रहती है। तुम्हारे आगमन की सूचना प्रकारान्तर से आज उन्हीं से मिली है। कल सबेरे मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। गाड़ी तुमको लेने आयेगी।

तुम्हारा—

वंशी

“जैसा मैंने कहा था, वही बात हुई। उस आदमी से मिलना ही पड़ेगा।” माता जी से कहता हुआ चुपचाप उठकर मुझे वैशाली के साथ चल देना पड़ा।

शयन-कक्ष के बाद बराण्डा, उसके बाद ज़ीना, ज़ीने के नीचे फिर कोरिडर पर आते-आते...हूँ, तो यह बात है। भाईसाहब सैर-सपाटे के लिए नहीं, जान पड़ता है, किसी काम से आये हैं। पर अबकी बार यह सगरिवार आने का क्या अर्थ है?—वैशाली के साथ-साथ बाहर की ओर जाता हुआ सोचता जाता हूँ। और वैशाली एक नटखट है। पूछती है —“तो आप भाभी को ले ही जायेंगे क्या? लेकिन हमलोगों ने तो यह तै किया है कि भाभी को अभी न भेजा जाय! सिर्फ माताजी जरूर इस मत की है कि हम इनकार कैसे कर सकते हैं! और चाचाजी से भी पूछना होगा, वे लखनऊ गये हुए हैं। कल आने की आशा है। तब तक आप खूब घूमिये। दिल्ली घूमने लायक जगह है। पर एक शर्त है। उसे पहले से पक्का कर लीजिये, तो अच्छा होगा। वह यह कि घूमने जहाँ कहीं जाइये, मुझको साथ-साथ रखना ही होगा। मैं आपकी पूरी सेवा करूँगी।”

यह आया दरवाज़ा । “बस, यही आदमी चिट्ठी लाया था ।”

“अरे यह तो हरिया है । उठकर बोला—“चरन छुअत हइ सरकार ।”

“शुश रहो । कहो हरी—सब लोग मजे मे ?”

“हो सरकार, सब लोग आनन्द मा अहै । आपकै खबर उइ याक ब्रिटिया जौन हिर्यो पढ़ावै आवति है, उनहिन ते मिलगै रही ।”

“कौन-कौन आया है ?”

“बड़ी सरकारै साथ मा आयी है, छोटी तौ नाही आई ।”

“घूमने-फिरने के लिए आयी है, या कोई खास काम है ?”

“अब सरकार यहु हम का जानी । कलिह तो आप अइबै करिहै । तबही सब मालुम हुइ जई ।”

“अच्छा तो आठ बजे हम तैयार रहेंगे ।”

“बहुत अच्छा सरकार । बहुत अच्छा । चरन छुअत हई ।”

हरिया इतना कहकर चला गया । वैशाली फिर मेरे साथ हो ली । फिर हम अपने कमरे की ओर चल पड़े । वैशाली बोली—“यह किसके यहाँ जाने का प्रोग्राम आपने बना लिया बिना कुछ सोचे-विचारे ?”

बड़ी ढोठ लड़की है । फिर भी मैं कुछ कह नहीं रहा हूँ ।

“ये लोग कौन है आपके ?...ये बड़ी सरकार कौन है ?”

“हमारे मौसेरे भाई आये हुए हैं । भाभी भी साथ मे है ।”

“आये होंगे मौसेरे भाई । ऐसे कितने मौसेरे, ममेरे, फुफेरे, चचेरे, अबेरे, सबेरे, लमेरे भाई आते ही रहते हैं यहाँ । दिल्ली है न आपटर-आल ! मैं अभी माँ से जाकर कहती हूँ कि कल हमलोग कुतुबमीनार देखने चलेंगे ।”

“देखो वैशाली, तुम्हारी सब बातें मुझे अगर पसन्द न आये, तो तुम बुरा तो न मानोगी ?”

“बापरे बाप ! मैं तो डर गयी थी । लेकिन आपको पता होना चाहिये कि मैं किसीसे नहीं डरती । भैया, भाभी, अम्मी, चाचा, चाची—किसी से नहीं । ईश्वर से भी नहीं । समझते हैं कि नहीं ? अच्छा बतलाइये,

मेरी कौनसी बात आपको पसन्द नहीं आयी ?”

हम अपनी जगह पर आ गये। देखा, माताजी चली गयी है।

“अच्छा वैशाली अब तुम भी सोओ।”

“नहीं, मैं आपके साथ बैठकर थोड़ी देर बातें करूँगी आपसे। मुझे सबसे पहले यह जानने की जरूरत है कि आपको मेरी कौनसी बात पसन्द नहीं आयी। आपके विषय में मैंने बड़ी विचित्र बातें सुन रखी थी। आज मुझे उनका परिचय प्राप्त कर लेना है।”

“वैशाली, मैं कहता हूँ तुम चली जाओ यहाँ से ! मुझे अकेला रहने दो। मुझे इस समय तुमसे क्या, किसीसे बात करने की इच्छा नहीं। मैं इस समय केवल अपने आप से बात करना चाहता हूँ। जाओ वैशाली, ज़िद मत करो। जाओ, सो जाओ भट से; जाओ।”

अब वैशाली बोल उठी—“देखिये भाई साहब, आप चाहे जितने बड़े थिकर हों, महात्मा हो या सन्त कबीर ही क्यों न हो ! आपको मेरा अपमान करने का कोई हक़ नहीं है। जब मैं कहती हूँ कि मैं आपके पास बैठूँगी, तब आपको कोई अधिकार नहीं कि आप मुझे इस तरह का आदेश दें कि तुम चली जाओ यहाँ से ! यह मेरे मान का प्रश्न है। मैं इस पर जान दे दूँगी !”

अच्छा तो यह वैशाली मुझ पर अपने हठ का आतंक दिखलाना चाहती है। खूब !

तब मैं चुपचाप माताजी के पास चला गया। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया—“देखिये माता जी...” और मैंने घूमकर वैशाली की ओर देखा।

अरे ! मैं तो समझ रहा था कि वैशाली मेरे साथ आ रही है। पर वह कहीं देख न पड़ी। तब मैंने कह दिया—“वैशाली अभी मेरे साथ थी। वह मुझसे भागड़ रही थी। और इसी बात की शिकायत मैं आपसे करना चाहता था।”

भोक में आकर मैं उसकी शिकायत करने को माताजी के पास चला तो आया और कह भी गया यह सब पर फिर .. . !

फिर जब माताजी के साथ हम पास के कक्ष में पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि वैशाली अपने रेशमी लिहाफ़ पर औंधे मुँह लेटी हुई सिसकियाँ भर रही है !

देखा आपने ? यह स्थिति है । आज चारों ओर जो भी मारकाट, ध्वंस, हाहाकार, कोलाहल और हाय-हाय मची हुई है, उसका मूल आधार है केवल अहंकार । मेरी बात रहे, मेरा ही स्वर बोले, मेरी ही पुकार सुनी जाय, मेरा ही मान हो, सबसे अधिक मेरा मूल्यांकन हो, सर्वश्रेष्ठ मैं ही कहलाऊँ, बस लोग केवल यही इतना ही चाहते हैं । तब सोचता हूँ और सोचता रह जाता हूँ कि जो लोग इस जगत में सेवक जाति के हैं, अर्थात् जो चाहते हैं कि ससार की कुछ सेवा कर जाऊँ—कुछ ऐसी सेवा, जो इतिहास की स्थायी सम्पत्ति बन जाय, उनके सामने यह एक महान प्रश्न आज उपस्थित है कि इन परिस्थितियों में वे क्या करें ।

और भी एक बात है । विचारकों की जाति में भी सबसे अधिक दुखी वे लोग हैं, जो दूसरों के दुख से दुखी हैं । उनका अपना सुख कुछ नहीं होता । वे तो दूसरों को सुखी देखकर सुखी होते हैं । वे सतत चेष्टा-शील रहते हैं कि उनके द्वारा किसी को दुख न पहुँचे, उनमें कुछ भी पुरुषार्थ अगर होता है तो केवल इसलिए कि वे सब के प्रिय बने रहें । और उनके इस प्रयत्न का परिणाम यह होता है कि वे सुख की नींद नहीं ले पाते !

वैशाली की ही बात लीजिये । क्यों वह मुझसे नाराज़ हो गयी ? क्योंकि मैंने उसकी बात नहीं मानी । आज पहली भेंट थी उससे । पर इसी भेंट का प्रतिफल यह है कि वह मुझ पर अग्न । सर्वाधिकार चाहने लगी । और इस महत्वाकांक्षा का मूल आधार यह है कि वह अपने में कुछ ऐसा देखती है, जो इस जगत् के लिए सर्वथा अनूठा है । और यह कितने प्रमाद की बात है कि वह समझने लगी है कि मैं उसके उस अनूठे-पन का भक्त हूँ ! यद्यपि इसमें भी सन्देह नहीं कि अनूठापन मुझे बहुत प्यारा है, चाहे वह कहीं भी हो । पर ऐसी तो कोई बात नहीं है कि उस प्यार के आगे मेरे समस्त जीवन का और कोई महान लक्ष्य है ही नहीं ।

लेकिन मेरी यह निखिल विचार-सरणि भी इस समय व्यर्थ हो गयी है ।



क्योंकि यह सुकुमारी बालिका वैशाली समझ बैठी है कि मैंने उसका अगमान किया है। पर क्या उसके इस चरित्र के मूल में माताजी तथा बड़े दीक्षितजी के संस्कारों का वह प्रभाव-दान नहीं, जिन्होंने इसको इस सीमा तक अहवादी बना दिया है !

इच्छा तो हो रही है कि मैं एकदम से कठोर मार्ग का ही अनुसरण कर लूँ और इस विषय में सर्वथा मौन हो जाऊँ; किन्तु इस प्रकार मैं स्वयं अपनी दृष्टि में हीन हो जाऊँगा। क्योंकि मुझे कुछ भी क्यों न हो जाय, मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहता, जिससे उस व्यक्ति को दुःख पहुँचे, जो कहीं-न-कहीं से मुझसे कुछ आशा रखता है !

इस प्रकार मैं अब भुक्त रहा हूँ। मेरा मस्तक भुक्त रहा है। जिस बात को मैं पसन्द नहीं करता, जिसपर मुझे अड़ जाना चाहिये, उसी के लिए मैं अपने धुटने टेक रहा हूँ। संसार के समस्त विचारक देख लें कि मैं इस क्षण अपने सिद्धान्त से सर्वथा च्युत होकर कितना हीन हो गया हूँ !

लेकिन इतना और बतला दूँ कि यह सब किसलिए ?

यह सब केवल इसलिए कि चाहे मेरा मान, मेरा अभिमान मिट्टी में मिल जाय, पर मेरे द्वारा किसी प्राणी को कष्ट न हो !

“सुनो वैशाली, देखो, मेरी ओर देखो। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। मेरी आज्ञा मानने में तुम्हारे बड़प्पन की कोई हानि नहीं होती। मैं तुमसे अवस्था में ही नहीं, ज्ञान में भी बड़ा हूँ। इसलिये तुम्हें सोचना चाहिये कि अगर मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मानता, तो उसका यह कारण नहीं कि मैं तुम्हारी उपेक्षा करना चाहता हूँ। क्योंकि मैं तुम्हारी कोई भी बात केवल इसीलिए तो टाल देता हूँ कि उसका मार्ग अभी इस समय तुम्हारे लिए अनुकूल हो नहीं पाया है। तात्पर्य यह कि तुम्हारी बात रह जाय, यह बात मुझे उतनी प्यारी नहीं है, जितनी यह बात कि तुम्हारी मति-गति और मर्यादा की जो कल्पना हमने कर रखी है, उसकी लाज बनी रहे। अब तुम्हीं सोच देखो कि इन दोनों बातों में कितना अन्तर है !”

“इसके सिवा और भी एक बात है। देखो, उठो तो मेरी प्यारी वैशाली

बहन, संसार में आज तक कोई भी ऐसा आदमी उत्पन्न नहीं हुआ, जिसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी हो गयी हों। आम की मजरी में जितनी अमियाँ नन्ही-नन्ही-सी फलती हैं, वे सभी पककर, टूटकर रसदान नहीं करती। बहुतेरी तो आरम्भ में ही अधियों में समाप्त हो जाती हैं। ऐसे ही मनुष्य की सारी आशाएँ भी पूरी नहीं हुआ करती। दुःख की जीवन के साथ कुछ ऐसी निकटता है, जैसी दुग्ध और पानी में होती है। हमारी आकांक्षाएँ भी जीवन में उतनी निकटता रखती हैं। दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं।”

“अर्थात् जीवन में एक ओर दुःख है, तो दूसरी ओर आकांक्षाएँ हैं। आकांक्षाएँ न हो, तो दुःख भी न हो। इसलिये आकांक्षा को दुःख की आधार-भूमि कहा गया है।”

“तो मेरी मनोहर वैशाली, तुझे यदि दुःख पहुँच रहा है, तो उसका एक मात्र कारण तेरी महत्वाकांक्षा है, तेरा प्रमाद है। तुझे दुःख न हो, इसका सबसे सुगम मार्ग यह है कि तू उन कतिपय आकांक्षाओं से बचकर चल, जो पूरी होनेवाली नहीं हैं। तू ने आज तक यदि इस बात को नहीं समझा है, तो अब समझ ले।”

“रात्रि के नयन दुःख रहे हैं वैशाली ! नक्षत्रों के पलक थक गये हैं। वैशाली ! देखो अब भी अगर तू रोयेगी, तो उनको कष्ट न पहुँचेगा ? और मेरी वैशाली क्या गगनमण्डल को किसी प्रकार का कष्ट देने को उत्पन्न हुई है ? नहीं-नहीं, ओ नैशगगन के सहचर नक्षत्रगण ! मेरी वैशाली अब नहीं रोयेगी। उठ तो वैशाली !”

और वैशाली तत्क्षण उठती-उठती आँखें मलती-मलती ऊँ-ऊँ करती-करती यकायक खिलखिलाकर हँस पड़ी !

प्रफुल्लित माताजी बोली—“सचमुच तू बड़ा सयाना है रे राजेन्द्र ! तेरी बोली में इतना प्रभाव है, मैं तो सोच भी न सकती थी।”

मैंने तब माताजी के चरण छू लिये और कह दिया—“मेरा मुझमें कुछ नहीं है। जो कुछ भी है, इन्हीं पवित्र चरणों का प्रताप है माँ।

और शील के पावन आलोक से खेलती वैशाली बोली—“मैं तो जैसे स्वर्ग-लोक में पहुँच गयी थी मैया ! बारम्बार मेरे मन में आता था—एक दिन बापू की वाणी भी सारे संसार को अमृत पिलाती थी। वह दिन सचमुच हमारे देश के लिए कितने गौरव का था !”

मैने कह दिया—“हाँ वैशाली, तुम ठीक कहती हो। पर वह दिन अब फिर नहीं लौटेगा ! एक बार जो घड़ियाँ चली जाती है, वे फिर हमें देखने को नहीं मिलती।”

एक रैपर लपेटे दीक्षितजी इसी समय आ पहुँचे। बोले—“आप अभी सोये नहीं। और वैशाली तू भला इतनी रात को क्यों जगरही है ?”

वैशाली बोली—“क्योंकि सुनती हूँ, जागरण की ऐसी घड़ियाँ जीवन में प्रायः कम मिला करती है।”

..

...

...

बड़ी भाभी की रूप-रेखा अब कुछ बदल गयी है। पहले वस्त्राभूषणों के प्रति एक सहज उपेक्षा अथवा उदासीनता भी थोड़ी-बहुत चल जाती थी। प्रायः सूती इकलाई ही धारण किये रहती थी। अब ऐसी बात नहीं है। रात-दिन जारजेट की साड़ियाँ बदली जाती हैं। दिन भर दासी कपड़ों की सफाई, सिलाई और लोहा लिये जमी रहती है।

भंडार में फल, मेवे और मिठाइयाँ रक्खी रहती हैं। रेडियो के सिवा ग्रामोफोन भी बजा करता है। नाश-कैरम की बहार दिखलायी पड़ती है। कभी-कभी एकांकी नाटक भी चलते हैं। गोष्ठियाँ होती हैं। कविता-पाठ, संगीत, लतीफे, हँसी और क्रहक्रहेबाज़ी की धूम मची रहती है। दो दिन से यही सब देख रहा हूँ। बस केवल कभी एक बात की स्पष्ट जानकारी है। वह यह कि छोटी भाभी इस राग-रंग के वातावरण से इतनी दूर रक्खी गयी है। और साथ-ही-साथ यह बात भी है कि इन बड़ीभाभी का गात पहले की अपेक्षा कुछ कृश हो गया है।

वंशी मैया भी कम मौजी नहीं हैं। केवल महीना भर के लिए आये हैं, फिर भी गाड़ी क्यों किसी की साँगनी पड़े, इसलिये कानपुर से वह भी

मँगा ली गयी है। एक नौकर से काम नहीं चलता था, इसलिए दूसरा भी बुला लिया गया है। लेकिन सबेरे से दोपहर होने आयी, अभी तक यह नहीं मालूम हुआ कि इस दिल्ली-प्रवास का मुख्य कारण क्या है। मैंने भी पूछना उचित नहीं समझा।

मिलते ही बड़ी भाभी बोली—“कहो भैया, मौसी अच्छी तरह तो हैं? मैं तो जब से आयी, तबियत ठीक नहीं रही।”

इस कथन में मुझे कुछ सुकुमारता अधिक जान पड़ी, वास्तविकता कम।

मैंने कह दिया—“यो माँ की तबियत तो ठीक है; पर तुम्हारी याद बहुत करती थी। कहती थी—बड़ी बहू को मैं हर साल दो महीने के लिए जरूर बुलाया करूँगी। उसकी-सी दाल तो कोई पका ही नहीं सकता।”

यह बात मैंने बनाकर अपने मन से कह दी थी। केवल इस अभिप्राय से कि आज के समाज में सारा प्रेम बनाबटी रहता है। सत्यकथन से दूर जितना अधिक हम रह सकें, जितनी अधिक बनाबटी आत्मीयता हम प्रकट कर सकें, लोग उतना ही अधिक प्रसन्न होते हैं। किसी कुरूप धनपशु को यदि हम परम छुविवान कह दें और ढँग हमारा कुछ ऐसा हो कि व्यंग्य की आशंका भी न हो पाये, तो उस धनपशु की कृपा-ष्टि का अवलम्ब प्राप्त होते ढेर न लगेगी। इन भाभी से यद्यपि ऐसा कोई मन्तव्य मेरा नहीं था, फिर भी मैंने जो यह मिश्री धुली बात कह दी, तो भाभी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। बोली—“मधू के ब्याह के दिन भी याद रहेगे। पर जा कब रहे हो? मधू को एक-आध दिन के लिए यहाँ बुलाना चाहती हूँ।”

मैंने कह दिया—“दो दिन से तो यही टिके हैं। माँ घबराती होगी कि वहाँ मेहमानी में इतना लिप्त हो गया कि घर का खयाल ही भूल गया।”

लेमनड्राप चूसती हुई वे बोली—“यह सब कुछ नहीं। मधू पहले यहाँ आयेगी। कम-से-कम दो दिन मेरे साथ रहेगी, तब जायगी। चाहे इस कान से सुनो, चाहे उस कान से।”

विरोध करना उचित न समझ भट्ट से मैने कह दिया—“जो हुक्म सरकार ।”

तब वे कहने लगी—“तो सुनो, पड़ोस में गर्ग साहब की कोठी है । अपने भैया के संग चले जाओ । फोन पर बुला लो मधू की सास को और कह दो कि मधू यहाँ होकर जायगी प्रयाग । आज ही शाम को विदा करनी होगी ।”

इतने में किसी के खाँसने की आवाज़ हुई । अन्दर आने पर मालूम हुआ, भाईसाहब है । मुसकराते हुए वे बोले—“मैने सोचा, खाँस के ही जाना ठीक है । पता नहीं आपलोग किन बातों में लीन हों !”

भामी ने उधर तिरछी चितवन से देखा, फिर अवगुण्टन छूकर थोड़ा सम्हालने की चेष्टा की, फिर अधन्नी भर हास अधरों पर प्रस्फुटित हुआ । फिर बोली—“जाओ, अभी चले जाओ इनके संग ।”

भाईसाहब के पीछे एक मज़दूर भी आ पहुँचा । तब भाईसाहब कहने लगे—“उस पल्ले पर रख दो । बस-बस, वहीं । और ये लो पैसे ।”

मज़दूर पैसे लेकर जाने लगा, तब भाईसाहब ने कहा—“देखो राजेन, गद्दा कैसा रहेगा ?”

मैने देखा, गद्दे का आवरण साटन का है और रंग उसका बहुत गोरा बलिक उस तरह का गुलाबी, जो स्किन कलर का एक विकसित रूप होता है । रुई बहुत मुलायम पड़ी हुई है ।

मैने कह दिया—“भामी की पसन्द बोलती है ।” इसी समय मैने दीक्षितजी से फ़ोन करने की बात की । कहा कि भामी मधू को यहाँ बुलाना चाहती है ।

भाईसाहब दाँत के भीतर अँगुली से कुछ टटोलते हुए बोले—“हाँ-हाँ, चलो ।... मगर एक बात है । मेरा उनके यहाँ जाना उचित होगा ?” और वे कुछ सोचने लगे ।

मैने पूछा—“क्यों ?”

वे सिर खुजलाने लगे। फिर बोले—“अच्छा इधर आओ” और हाथ पकड़कर मुझे अपने कमरे में ले आये। मेरे कन्वों पर दोनों हाथ धरकर कहने लगे—“तुमको मालूम है यह कोटी किनकी है?”

मैंने कहा—“मुझे क्या मालूम?”

वे बोले—“ठाकुर रिपुदमनसिंह का नाम सुना है?”

“नहीं।”

“एक एम० पी० हैं।”

“तो?”

वे जिस क्षेत्र से संसद के लिए खड़े हो रहे हैं, वही क्षेत्र मेरा भी है। इसलिये.....।”

मैंने कह दिया—“मगर व्यक्तिगत व्यवहारों में तो ..।”

“व्यक्तिगत व्यवहार नेता का कुछ नहीं होता।” बात काटते हुए वे बोले—“मैंने दूसरा ब्याह किया और खूब समझ-बूझकर किया। इसमें मैंने समाज के बाप की किस बेटी को...आप समझते हैं न? मगर देख लेना, मेरी इसी बात के कितने अर्थ लगाये जायेंगे। इसलिये तुम ऐसा करो कि गाड़ी ले जाओ और मधू को ले आओ।”

“मगर ऐसा कैसे हो सकता है कि वे तुरन्त मेजने को...। फिर तैयारी में समय भी तो लग सकता है।”

“हाँ, यह तो तुमने ठीक कहा। ...अच्छा तो गोल-गोस्ट्राफ़िस चले जाओ।”

इतने में हरिया सामने दिखाई दिया। पास आकर बोला—“सरकार माताजी कै तबियत फिर खराब हुई गै।”

इसी क्षण दासी आ पहुँची। उसके हाथ कुछ-कुछ दही से सने हुए थे। बोली—“दीदी बुला रही है आपको।”

भाईसाहब बोले—“मैं अभी आया। तुम तब तक रेडियो सुनो।” और साथ ही उन्होंने रेडियो को ऑन कर दिया।

पर इतने में मैं क्या देखता हूँ, अर्चनाजी दरवाज़े पर खड़ी हैं। मैंने

रेडियो बन्द करते हुए कहा—“आइये ।”

वे सकुचाती-सकुचाती सोफे की मुँडेर से लग गयी और बोली—“उस दिन मैंने आपसे कुछ कहा था । आपको याद तो होगा ।”

मैंने कहा—“हाँ, कहिये ।”

वे बोली—“अभी आये है । क़रीब एक घण्टा हुआ ।”

मेरे मुँह से निकल गया—“मुरली बाबू ?”

वे धबराती-सी कहने लगी—“जी । जान संकट में डाल, रखी है उन्होंने । कहते है, राशनिंग-इन्स्पेक्टर हो गया हूँ । अब तुमको कोई तकलीफ़ नहीं होगी । रोटी-कपड़ा से, मान-मर्यादा से, तुम अब रानी की तरह रहोगी ।”

मेरे मुँह से निकल गया—“इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ?”

“लेकिन आप मेरी स्थिति से परिचित है । मुझे उनकी किसी बात पर विश्वास नहीं रहा । वे अब सोने के हो जायें, तो मेरे लिए मिट्टी के है ! मेरे हृदय के अन्दर छाले पड़े हुए हैं, पांडेयजी । आपको मैं कैसे बतलाऊँ !”

और इतना कहते-कहते अर्चना रो पड़ी ।

इतने में भाईसाहब आ गये और अर्चना ने थोड़ा मुँह फेर लिया ।

भाईसाहब बोले—“क्यों मुझसे कुछ कहना है अर्चनाजी ? लेकिन देखता हूँ, आप रो रही हैं । क्या बात है ? बतलाइये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?”

तब विवश होकर मुझे कहना पड़ा—“यह भी मेरी एक बहन है बंशी भैया । अपना दुख-सुख कह रही थी । अच्छा हुआ, आपके सामने भेट हो गयी । कभी कोई संकट पड़े, तो आशा है, आप पूरी सहायता करेंगे ।” इसके पश्चात् मैंने अर्चनाजी को लक्ष्य कर कह दिया—“आप थोड़ी देर बाद आये अर्चनाजी । बस, एक आधेपौन घण्टे बाद । मुझे थोड़ी देर के लिए बाहर जाना है अभी ।”

अर्चनाजी चली गयी, तब मैने पूछा—“क्यों क्या हुआ?”

भाईसाहब बोले—“कुछ नहीं, यों ही ज़रा वमन हो गया था।”

मुझे आश्चर्य हुआ। पूछा—“वमन?”

वे बोले—“जी।”

मैने फिर पूछा—“आज ही हुआ कि इधर प्रायः होता रहता है?”

उन्होंने तब नीलम की अँगूठी घुमाते हुए बतलाया—“मेरी जीवन-कहानी तो तुमको मालूम ही है।”

मैने कहा—“कुछ-कुछ।”

“तो बस समझ लो कि कुछ उलट-फेर हो रहा है। तभी मन बहलाने के लिए इनको यहाँ ले आना पड़ा है।”

अच्छा, तो यह बात है! अब सबकुछ समझ में आ रहा है। छोटी भाभी को नियति अपना कौतुक दिखलाना चाहती है! उनका ब्याह जिस अभाव की पूर्ति के लिये हुआ था, भगवान ने उसका यह रूप उपस्थित कर दिया है! मानवी पुरुषार्थ के लिए प्रकृति की यह स्पष्ट चुनौती है। मनुष्य कितने भ्रम में रहता है, अपने स्वार्थ-साधन के लिए वह भटपट कौन-कौन से मार्ग खोज लेता है, अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए वह उचितानुचित का ध्यान किस सीमा तक रखता है, यह इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

वाह भाईसाहब, आपने सचमुच कमाल का काम किया है!

किन्तु हमें चित्र की दूसरी ओर भी तो देखना है। छोटीभाभी के पिता ने क्या समझकर यह ब्याह किया? इस प्रश्न की आन्तरिक स्थितियों पर उनका ध्यान क्यों नहीं गया? अपनी लड़की के भविष्य पर उन्होंने विचार क्यों नहीं किया?

अब छोटी भाभी को क्या कहूँ? गाय की भाँति दिक जाना उन्होंने स्वीकार कैसे कर लिया!

कुछ नहीं, मैं कुछ सोचना नहीं चाहता। मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मैं मौन हूँ, मेरे मुँह पर ताला लग गया है!

इतने में भाईसाहब बोले—“चलो पहले खाना खा लो, उसके बाद-



और कुछ करना ।”

“पर मुझे भूल है कहीं ?”—इतना ज़बरदस्त जलपान कर लेने के बाद.....।

“कहते क्या हो ? जवान आदमी हो ।”

“नहीं, मुझे माफ कीजिये । खाना खाने की मेरी ज़रा भी इच्छा नहीं है ।”

लो, ये बड़ी भाभी भी आ गयी । भूनी-भूनी महीन सरसराती हुई साड़ी पहने है । लम्बी वेणी कमर के नीचे जानु-पर्यन्त लटक रही है । मेरे पास आते ही बोली—“श्रीखंड बड़ा अच्छा बना है । चलो तो भट से ।” और तभी भाईसाहब भट एक ओर चल दिये ।

मै भाभी के साथ चला तो आया, किन्तु मैंने खाना स्वीकार नहीं किया । भाभी मेरे पीछे पड़ गयी । बोली—“तुमको खाना ही पड़ेगा । मैंने श्रीखंड बड़े मन से बनवाया है ।”

तब मुझे कहना पड़ा—“तो मैं श्रीखंड ही थोड़ा-सा चख लूँगा । पर एक तो मै खाना नहीं खाऊँगा इस समय, दूसरे मुझे अभी मधू के यहाँ जाना होगा ।” तब बड़ी मुश्किल से भाभी का समाधान हुआ ।

मै श्रीखंड चखता जाता हूँ; पर उसके प्रत्येक ग्रास को कण्ठ के नीचे उतारता हुआ मै यह नहीं भूल रहा हूँ कि इस स्वागत और आदर-सत्कार के अन्तराल में जो उल्लास और आनन्द है, क्रीड़ा-कौतुक है, उसका दूसरा पक्ष कितना विकराल है । और मुझे तो संसार और उसकी इस सृष्टि का वही कोना देखना है, जो उपेक्षित है । स्पष्ट देख रहा हूँ कि आज इस परिवार में छोटी-भाभी का कोई मान और महत्त्व नहीं है । क्षण-क्षण पर उनकी व्यर्थता मेरे मर्मस्थलो में शूल की भाँति पीड़ा पहुँचा रही है । मै यही सोचता हूँ, क्या यह समस्त सृष्टि ही ऐसी दुर्वृत्ति-मूलक है ? जब प्रत्येक रुदन के आगे-आगे हास-उल्लास की मृगतण्डा है, जब प्रत्येक सौख्य एवं आनन्द के पीछे हाहाकार, चीत्कार, अश्रवर्षण और मृत्यु की भयानक-से-भयानक विभीषिकाएँ हैं, तब सुख-शान्ति का

स्थायित्व एक स्वप्न ही तो है !

इतने मे भाभी बोली—“एक प्लेट और । तुम्हे मेरी क्रसम ।”

मैंने भाभी के चरणों पर सिर रख दिया । कुछ कहा नहीं । कहने लगता, तो मेरा अन्तर्पट खुल जाता ।

उन्होंने झट मेरा मस्तक उठा लिया । फिर वे बोलीं—“श्वैर, कोई बात नहीं । फिर सही । जब इच्छा हो तब खाना ।”

आचमन करने के बाद मैं चलने लगा । तब वे बोली—“तो मधू को ला रहे हो न ?”

मेरे मुँह से निकल गया—“प्रयत्न तो ऐसा ही करूँगा । पर सब कुछ है तो दीक्षितजी की माँ के ही अधिकार में ।”

“हाँ, यह तुम ठीक कहते हो ।” भाभी ने कहते हुए मुझे कुछ ऐसी दृष्टि से देखा, जैसे वे मेरे हृदय का सारा मर्म पढ़ लेना चाहती है । जैसे वे यही अध्ययन कर रही है कि मैं यकायक क्यों इतना गम्भीर हो गया हूँ ? क्यों झटपट मैं यहाँ से भाग जाना चाहता हूँ ? क्यों मैंने श्री-खण्ड दुबारा नहीं लिया ? क्यों मैंने भोजन से ही इनकार कर दिया ?

अब मैं चल खड़ा हुआ । इस समय मैंने जान-बूझकर न तो भाईसाहब को प्रणाम किया, न भाभी के चरण छुए । केवल यह सोचकर कि कहीं इसका यह अर्थ न लगाया जाय कि मेरे मन में कुछ और है ।

चलते समय मैंने चेष्टा की कि अर्चना से मिल लूँ; पर वह उस समय अपने कमरे में मिली नहीं । तब अधिक प्रतीक्षा न करके मैं चला आया ।

गाड़ी पर तो मुझे जाना ही था । इसलिए मैं चुपचाप उसमें बैठा हुआ जगत की व्यस्तता और उसके भीतर छिपे रहस्यों पर विचार करता जा रहा था । ...छोटीभाभी को कदाचित् यह बतलाया भी न गया हो कि वे ब्याहकर जहाँ जा रहीं हैं, वहाँ एक सौत भी पहले से उपस्थित हैं । फिर उस ब्याह का यह परिणाम कि उन्हें हिस्टीरिया ने ग्रस लिया है !

इधर बड़ी भाभी की गोदी भरी जाने को है !

प्रभु, तेरी यह कैसी लीला है ?

यह स्त्री कौन जा रही है, जिसके चप्पल सफेद हैं ? सारी वेश-भूषा किसी सुसंस्कृत नारी को-सो जान पड़ती है । ओः यह तो अर्चना है !

“टहरो, रुको एक मिनट !” मैंने ड्राइवर से कह दिया ।

गाड़ी रुकी और मैंने पूछा—“आपको कहाँ जाना है अर्चनाजी ?”

‘जी मैं, मैं चली जाऊँगी ।’

“फिर भी जाना कहाँ है ?”

“जी, मुझे जाना तो है सब्जीमंडी ।”

“चलिये, आपको वही छोड़ देंगे और बातें भी आप की सुन लेंगे ।” और मैंने अर्चना को दायी ओर बैठा लिया ।

अब गाड़ी फिर चल दी ।

अर्चना बोली—“आप तो मुझसे बड़े हैं और सब तरह से बड़े हैं ।

मेरा मतलब यह कि अवस्था में ही नहीं, मर्यादा में भी ।”

मुझे कहना पड़ा—“तो इससे क्या हुआ ?”

वह पुस्तकों को बगल में रखती हुई बोली—“मैं कहना यह चाहती हूँ कि आज ही आपने जौहरी साहब से मेरा जो परिचय कराया है, उसमें मुझे अपनी एक बहन ही तो बतलाया है ।”

“ओः तो क्या हुआ, बहन तो आप है ही !”

“मगर बहन तो ‘आप’ नहीं होती । बहिन हो जाने के बाद नारी की संज्ञा ‘तुम’ बन जाती है ।”

“तुम ठीक कहती हो अर्चना !”

अर्चना हँसने लगी ! बोली—“तो भैया, मुझे आप क्या करने को कह रहे हैं ? मैं उनसे क्या कह दूँ ? अभी तो मैंने सोचकर जवाब देने के लिए कह दिया है ।”

मैं पहले तो चुप रहा । फिर मुझे कह देना पड़ा—“आप ..आप नहीं तुम...एक काम करो कि उनको मेरे पास भेज दो । एक बार मैं उनसे

बात कर लूँ, तब कुछ बतलाऊँ ।”

तब अर्चना चुप रह गयी ।

क्षण भर बाद मैने पूछा—“क्या सचमुच उनको राशनिग-इन्स्पेक्टर की जगह मिल गयी है यहाँ ?”

“कहते तो यही थे वे । पर आप तो जानते हैं, उनके पास सत्य की पूँजी कितनी है !” वह बोली और चुप रह गयी ।

कितना अन्तर्विरोध है जीवन में ! मन कुछ कहता है, आदर्श कुछ । संस्कार कहते हैं—समाज के अन्दर अपनी मर्यादा बनाओ और जीवन की प्राण-पीड़क परिस्थितियों कहती है—अन्याय के आगे घुटने मत टेको । प्राण उत्सर्ग कर दो, पर हाथ मत पसारो, दैन्य मत दिखलाओ । आदर्शों के लिए मर मिटनेवाले ही इतिहास बनाते हैं, वही राष्ट्र-निर्माण करते हैं । सिद्धान्तों की अर्चना में जिनके खून हुए हैं, जिनके खून बहे और सूखे है, वे ही हमारे वास्तविक राष्ट्र-निर्माता हैं ।

मैने कह दिया—“खैर, मैं सब पता लगा लूँगा । यों तो मैं आज ही लौट जाना चाहता हूँ, पर अगर हो सका तो मैं रुकने की भी चेष्टा करूँगा ...ए ज़रा एक मिनट को । मुझे यहाँ एक तार देना है । ...गाड़ी रुकी, मैं उतर गया । इसके पश्चात् अर्चना भी उतर पड़ी । बोली—“मैं अब यहाँ से ड्राम पकड़ लूँगी । अभी तो आप वहाँ आयेगे न एक-आध बार ?”

मैने कह दिया—“ठीक कह नहीं सकता । आ भी सकता हूँ और ऐसा भी हो सकता है कि टाल जाऊँ । लेकिन इससे क्या ? तुम मुरली-बाबू को भेज ज़रूर देना मेरे यहाँ । यही बस आठ बजे तक ।”

अर्चना चली गयी । मैं टेलिग्राफ़ ऑफ़िस के अन्दर चला गया । मुझे आज ही कानपुर पहुँचना है । मैं सबसे पहले छोटीभाभी से मिलूँगा । मेरी टैल्स्व-डाउन गाड़ी कानपुर पौँच पचास पर पहुँचती है । भाभी को मैं वही बुला लूँगा ।

...

...

...

शाम को मुरलीबाबू मेरे पास नहीं आये और मुझे इलाहाबाद की

मेरा यह उत्तर सुनकर वह स्तब्ध रह गयी। फिर बोली—“आपके आरगूमेंट्स से मैं हार गयी। अब तो आप खुश हैं! अच्छा, अब हमलोग अगर काम की बातें कर लें, तो अच्छा हो। क्योंकि आज तो आप चले ही जायेंगे।”

मैने कहा—“हाँ, निश्चय तो ऐसा ही है।”

“इसमे आप टस-से-मस नहीं हो सकते?”

“नहीं।”

“एक दिन भी और नहीं ठहर सकते?”

“नहीं”

“रात भर भी नहीं?”

“नहीं।”

“आप वास्तव में ‘हाँ’ कहने के बजाय ‘ना’ कहना बहुत अच्छा जानते हैं।”

ऐसे कथनों का उत्तर मैं प्रायः दिया नहीं करता। इसलिए मैने कुछ नहीं कहा।

तब वह बोली—“अच्छा, बहुत गम्भीरतापूर्वक मैं आपसे एक वादा लेना चाहती हूँ।”

“कौनसा वादा?”

“पहले यह स्वीकार कीजिये कि आप उसे अपने मन में ही रक्खेंगे, किसीसे कहेगे नहीं।”

“स्वीकार।”

“तो आप कृपा करके मेरे पत्रों का उत्तर अवश्य दिया करेंगे।”

“स्वीकार।”

“और पढ़ लेने के बाद आप उन्हें फाड़ भी डाला करेंगे तत्काल—क्योंकि मैने भी ऐसा ही निश्चय किया है।”

“स्वीकार।”

“देखिये, सदा-सर्वदा ‘ना’ करनेवाले से मैने किस चातुर्य से ‘हाँ’

करवा ली ।”

ऐसे स्वप्नों को मैं कभी पलने नहीं देता ! ऐसे मोहों को मैं अपने निकट खड़ा नहीं होने देता ! ऐसी बातें मैं बहुधा याद भी नहीं रखता !

• लेकिन... ।

भेंट एक और हुई थी, जब हम कुतुब देखकर लौट रहे थे ।

उसने कहा था—“देखिये भाईसाहब, मैं बात ज्यादा करती हूँ न ? आपको मुझसे यही तो शिकायत हो सकती है ? क्योंकि जो भी कोई बात अधिक करेगा, वह कुछ तो निरर्थक बोलेगा ही । सो अपना यह दोष मैं स्वीकार करती हूँ ।”

“लेकिन फिर मैं एक बात पूछती हूँ कि जीवन के लिए जो बातें अत्यधिक प्रिय होती हैं, वही बातें जीवन-यात्रा के लिए विष क्यों हो जाया करती हैं ? मेरी बात आप फ़ालो कर रहे हैं न ? अर्थात् जिनको आप एक तरफ़ से बहुत आवश्यक मानते हैं, उन्हीं को दूसरी तरफ़ से अनावश्यक और निरर्थक फिर क्यों कहने लगते हैं ?”

मैं इसका उत्तर देना नहीं चाहता था । क्योंकि मैं सोचता था वैशाली से कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, जो अत्यधिक गम्भीर हो ।

तब धूप के चश्मे का स साफ़ करती-करती गम्भीरतापूर्वक वह स्वयं बोली—“आपने अभी मेरे सामने गाड़ी में बैठे-बैठे केले छीले, मुझे खिलाये और आपने स्वयं भी खाये । आप जानते हैं कि केले के ये छिलके, जिन्हें आप गाड़ी में बैठे-बैठे अपनी सुविधा के लिए फेंक रहे हैं, उन लोगों के लिए मृत्यु भी बन सकते हैं, जो प्रायः पैदल चला करते हैं ! फिर जान-बूझकर आप ये छिलके सड़कों पर क्यों फेंकते हैं ? आप कहेंगे कि फेंकते क्षण हमें इसका ध्यान नहीं रहता । तब मैं यह कहूँगी कि उल्लास अथवा विषाद की उत्तेजना के क्षण भी किसको इस बात का ध्यान रह सकता है कि मेरी बातों का इतना अंश निरर्थक है ?”

मैंने वैशाली की पीठ ठोकी, उसे अपने हृदय से लगा लिया । मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि मेरी वैशाली जो सोचती है, वही करना

भी चाहती है। उसके मन और कार्य में भेद नहीं है। और आज हमको अपने देश का गौरवपूर्ण इतिहास निर्माण करने के लिए ऐसी ही संतान की आवश्यकता है।

“लेकिन भाईसाहब, क्षमा कीजियेगा” तब वैशाली ने कहा था—  
“मैं कदाचित् दूसरे जीवन में भी आपकी यह बात याद रखूँगी कि एक ऐसा भी क्षण आया था जब आपने मुझसे बात करने तक से इनकार कर दिया था।”

...मैं उन दृश्यों को भी याद नहीं रखता हूँ, जो मुझे मर्यान्तक पीड़ा पहुँचाते हैं। मैं उस छवि को भूल जाता हूँ, जो मेरे जीवन की शान्ति को, विवेक की स्थिरता और अनुभव-जन्य निष्कर्षों के प्रयोगों को व्यर्थ कर डालना चाहती है।

मैं जब विदा होने लगा, तब मैंने वैशाली को एक फ़ाउन्टेनपेन भेंट किया। उस पगली ने सबसे पहले उसे अपने गुलाबी होठों का स्पर्श दिया और फिर अपने ब्लाउज़ में खोंस लिया। और अभी-अभी जब मैंने बेडिंग खोलकर तकिया यहाँ सिरहाने रखवा, तो देखता क्या हूँ, एक सुन्दर-सी लेदरबाउंड नोटबुक बिल्कुल कोरी रखी है, जिस पर बहुत सुन्दर अक्षरों में उसने लिखा है—

इस पर आप जो चाहे सो लिख सकते हैं। केवल आपकी इस स्वच्छन्द रूचि के नाम पर—

—वैशाली

अकस्मात् सधू की आँख खुल गयी। करवेट लेते हुए उसकी दृष्टि मेरे मुख पर जा पड़ी। भट आश्चर्य से उठकर बैठ गयी। बोली—“अरे भैया, तुम्हारी आँखों में यह आँसू कैसा?”

कण्ठस्वर बिना बदले मैंने कह दिया—“कुछ नहीं, केवल शरीर का धर्म है। योही आ गया होगा। तू सो जा, अभी इलाहाबाद दूर है।”

मैं क्या बतलाता उसको! कैसे बतलाता उसको कि मैं उन उपहारों

को भी अपने पास नहीं रखता, जो सामने आ पड़ने पर मेरा कार्यक्रम बिगाड़ दिया करते हैं ! तभी मैंने वैशाली की यह नोट-बुक अभी-अभी ट्रेन के नीचे छोड़ दी है—केवल इतना-सा वाक्य कहकर, कि—

हे प्रभू, हम सब तेरी अर्बोध सन्तान हैं । कभी हमसे ग़लती न हो, इसलिए सम्मेलन-सम्मेलन कर कदम रखनेवालों के कठोर संयम की अमानवी रक्षता को तू क्षमा कर दे ।

सच कहता हूँ, मैं ऐसा कदापि न करता, अगर वैशाली मेरे दिये हुए फ़ाउन्टेनपेन को होठों से लगाकर उसका चुम्बन न लेती । मैं किसी को मिथ्या आश्वासन नहीं देना चाहता और मैं किसीको मिथ्या भ्रम में डालना भी स्वयं अपने लिए एक रोग मानता हूँ ।

प्रातःकाल हो गया है और हम कानपुर-स्टेशन पर पहुँचने ही वाले हैं ।

मधू ने कहा—“तार मिल गया होगा, तो भाभी स्टेशन पर आ गयी होंगी ।”

मैंने कह दिया—“आशा तो ऐसी ही है ।”

अब ज्यों ज्यों प्लेटफ़ार्म पर गाड़ी आगे बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों नाना प्रकार के व्यक्तियों तथा कुलियों के शिरोभाग सामने से हटते जाते हैं । जैसे घड़ी टिक-टिक होती जाती है तो मैं अनुभव करता हूँ, एक-एक करके ये समस्त क्षण चले जा रहे हैं ...चले जा रहे हैं !

कोलाहल के बीच मैं गाड़ी खड़ी हो गयी । मैं भी दरवाज़े पर खड़ा हो गया था । इतने में एक कुली ट्रंक और बेडिंग लिये हुए प्रवेश करने लगा । उसीके पीछे भाभी देख पड़ी । मैंने झट से सामान रखवाया । पर कुली को निपटाकर क्या देखता हूँ कि मधू भाभी से लिपटकर सिसकियाँ भर रही हैं ।

मैं जो भाभी के चरण छूने लगा, तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—“बस, इतना ही ...।”

• अब मैंने उनकी आँखों के अन्दर अपनी आँखें डालते हुए कह



दिया—“नही-नही, मेरा यह अधिकार तुम नहीं छीन सकोगी।”

उन्होंने झट अपना हाथ खींच लिया। मधू ने भी अपनी आँखें पोंछ डाली। फिर उसने भाभी का बिस्तर खोलकर बिछा दिया। कुली को विदा करते क्षण रेस्तराँवाले ब्याय से मैंने चार-पाँच कप चाय और तदनुसार टोस्ट का ऑर्डर दे दिया था। थोड़ी देर में वह चाय की ट्रे ले आया। भाभी चाय बनाने लगी, तब मैंने पूछा—“भाईसाहब का कोई पत्र आया दिल्ली से? कब तक रहने का विचार है?”

इस पर उन्होंने सम्मुख दृष्टि स्थिर करके कुछ ऐसा संकेत किया कि फिर मैंने बात का रुख ही बदल दिया। कहा—“मुझसे तो कह रहे थे कि अभी कुछ दिन और रहेगे।”

अब भाभी ने दृष्टि नीची किये हुए कह दिया—“पूरे महीने भर के लिए कहकर गये हैं। हो सकता है, और भी दस-पाँच दिन अधिक लग जायें।”

मधू को कुछ मालूम न था। इसलिए उसने कह दिया—“मगर यह बात कितनी अजीब-सी लगती है कि तुमको वे यही छोड़ गये।”

चाय तैयार हो गयी थी। अतः मेरी ओर बढ़ाती हुई भाभी बोली—“इसमें अजीब लगने की तो कोई बात है नहीं। इस वक़्त उनको शरीर और मन से जिस तरह स्वस्थ और प्रसन्न रखने की आवश्यकता है, उस तरह की कोई स्थिति मेरे साथ तो है नहीं। और यह तो अपनी तबियत की बात है कि कभी मेरे साथ रहने में उन्हें सुख मिले और कभी अकेली रहने में।”

जिस स्थिति से मैं पहले से ही डर रहा था, अब वही उपस्थित हो गयी। इसलिए जान-बूझकर मुझे विषय बदल देना पड़ा और मैंने कह दिया—“और कहो, आजकल दूकानदारी कैसी चल रही है? सट्टे में कितना पैदा किया?”

भाभी हँसने लगीं। मधू ने पूछा—“तो क्या भाईसाहब सट्टा भी करते हैं?”

भाभी बोलीं—“रात में सोते-सोते तो अकसर मात्र पूछने लगते हैं। ऐसी दशा में सट्टा न करें, तो नींद कैसे आये ! रही बात पैदा करने की; सो इसका लेखा-जाखा न मैंने कभी लिया, न आगे कभी ऐसा इरादा है।”

टोस्ट पर मधू मक्खन लगा रही थी। भाभी ने झट से सभी शेष टुकड़ों पर चम्मच से ही मक्खन लगा दिया। तब हँसती-हँसती मधू बोली—“देखती हूँ, भाभी इस काम में भी बढ़ी तेज़ हैं।”

मैंने मन-ही-मन कह लिया—“मक्खन लगाने में।”... इतने में डब्बे में बैठे-एक अधूरे अँगरेज़ पूछने लगे—“क्यों साहब, यहाँ उबले हुए अंडे नहीं मिल सकते ?” एक साहब ने मुसकराते हुए जवाब दे दिया—“यहाँ ईश्वर के सिवा सब मिल सकता है। फ़क़त पसा होना चाहिये !”

उधर भाभी बोली—“मैंने कभी सोचा नहीं था कि भूख प्यास या पेट में दर्द हो उठने पर बच्चे जो रो उठते हैं, वे बहुधा वास्तव में रोते नहीं, सिर्फ़ रोने का अभिनय करते हैं ! मैंने कभी नहीं सोचा था कि खूब पीले, कुछ कुछ ललछरे और एकदम नारङ्गीरङ्गवाले आम भी खट्टे निकल जाते हैं और एक दम से हरे आम भी बड़े मीठे निकलते हैं ! लेकिन दुनियाँ ने सब सिखा दिया। चाहे रोयें-रोयें में काँटे छिद रहे हों, पर कहो यही कि वाह यह तो पुष्पों की शैया का स्वर्गीय सुख है ! साँप के डस लेने पर बदन पेंठता है जैसे... ?”

बस, भाभी इतना ही कह पायी थी कि मूर्छित होकर वहीं लुढ़क रही। डब्बे में और भी कई सम्भ्रान्त जन बैठे थे और मालूम तो यह हुआ कि उनमें से एक-आध तो भाभी की यह बात भी सुन रहे थे, वे इस दृश्य को देखकर स्तब्ध रह गये !

मधू ने उठकर पंखे को भाभी के मुख के ठीक सामने कर दिया। फिर सुराही से गिलास में पानी डालकर भाभी के मुख पर छींटे भी दिये, पर इसका कोई परिणाम न निकला। तब मधू घबरा-सी गयी। बोली—“क्या करें मैया ?”

अब चाय बेचारी रखी रह गयी ।

मैने कह दिया—“करना कुछ नही होगा । चुपचाप पड़ा रहने दो । बल्कि अच्छा हो, ठीक तरह से पूरी सीट पर लिटा दो ।”

तब मधू ने उनके पैर पूरे फैला दिये । जारजेट की मुलायम ब्राउन साड़ी को भी जहाँ-तहाँ सम्हाल दिया । सुनहली कॉच और सोने की मिली जुली चूड़ियों से भरी । दायाँ हाथ सीट के पटरे पर लटक-सा रहा था, उसको जानु के निकट रख दिया ।

इसके पश्चात मधू बोली—“यहाँ कोई डाक्टर मिल सकता इस समय, तो कितना अच्छा होता ?”

मेरे मुँह से निकल गया—“इससे भी अच्छा यह होता कि यहाँ भाभी को मूर्छा ही न आती । पर संसार में जो सबसे अच्छा और अपेक्षित है, क्या वही सदा होता है ? अकसर मैं सोचा करता हूँ मधू कि यह भी कितना अच्छा होता कि हम पैदा ही न होते ।”

डब्बे में और एक दुर्जन से सज्जन आ गये । इसी समय गाड़ी चल दी ।

जान पड़ा, मधू को मेरी बात पसन्द नही आयी । कुछ उदासीन होकर वह बोली—“तुम्हारी कोई-कोई बात बड़ी कठोर हो जाती है भैया ! तुम्हें इतना भी ध्यान नहीं रहता कि किसके सामने हम ऐसी बात कह रहे हैं । दिल्ली में उस दिन तुमने वैशाली को तो जैसे पागल बना दिया था ! घर भर में नाची-नाची फिरती थी । कहती थी—“मैंने इतना सभ्य व्यक्ति अब तक नहीं देखा ।”

मधू को इस बात का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़े, इसलिए मैंने कह दिया—“वैशाली को चित्तोरोग हो गया है । मुझे भय है कि यही हाल रहा, तो वह कहीं पागल न हो जाय ।”

इसी समय भाभी ने एक टढ़ी सास ली ! मधू बोली—“सुनती हूँ, जिनका मन अति सुकुमार और अत्यधिक कोमल होता है, उन्हीं को यह बीमारी अधिक होती है ।”

मेरे मुँह से निकल गया—“अगर जल्दी ब्याह न हुआ, अगर उचित

और स्वस्थ वर नहीं मिला—और अगर अभी से सन्हाला न गया, तो सम्भव है, वैशाली को भी शीघ्र यही दिन देखना पड़े।”

गाड़ी यद्यपि सीटी दे रही थी, पर चाल उसकी ज़रा भी धीमी नहीं पड़ी थी। डब्बे में बैठे दो-तीन सज्जन मिलकर ताश खेल रहे थे। कभी-कभी उनके शब्द कानों के स्वर भाग पर लटकन की तरह लटक जाते थे—“मेरे पास क्वीन है जनाब।”...उधर से उत्तर मिलता—“उसे मत्थे पर चिपका लीजिये—मेरे पास यह इक्का है पार्टनर !”

गाड़ी की गति अब धीमी हो गयी थी।

एक महाशय बोले—“अरे कुत्ता कट गया।...वह पड़ा हुआ है ! ..यह आया यह !”

मैंने जो देखा तो मधू भी उसे देखने लगी। पर वह उसे देखती-देखती एकदम से कॉप उठी। बोली—“हाय आगे के पैर फड़फड़ा रहा है ! जान पड़ता है दम तोड़ रहा है !”

वे महाशय कहने लगे—“ड्राइवर बेचारे ने स्पीड कम करने की तो बहुत कोशिश की, पर बचा नहीं सका !”

तब पता नहीं क्या सोचकर मधू बोली—“कहीं ऐसा न हो कि भाभी की मूर्छा टूटने में इतनी देर लग जाय कि इलाहाबाद-स्टेशन पर साथ ले जाना ही एक समस्या बन जाय !”

मेरे मन में आया—जब भाभी का जीवन ही एक समस्या बन गया है, तब एक इलाहाबाद-स्टेशन क्या चीज़ है !

गाड़ी फिर तीव्र गति से चलने लगी और मैं सोचने लगा—उस दिन जब इन्ही छोटीभाभी को मूर्छा आ गयी थी, तो बड़ीभाभी रो पड़ी थी। पर आज इन्हें कालरा भी हो जाय, तो भी वे दिल्ली न छोड़ सकेंगी !

कान में कोई मुँह लगाकर पूछ रहा है—उस दिन और इस दिन में भेद क्या है ?

बहुत बड़ा भेद है। उस दिन वे उस आशा-किरण से सर्वथा निराश थीं, जो आज उनके जीवन में प्रभात बनकर उदय हो रही है। उस दिन

सौत की सन्तान को वे अपनी मानने को तैयार थीं। पर आज तो उनको इतना भी सहन नहीं है कि वे इन्हे साथ भी रख सकें !

इसका कारण ?

कारण स्पष्ट है। उन्हें छोटी भाभी की मानवता पर विश्वास नहीं है। उन्हें उनके मातृत्व पर विश्वास नहीं है। और उन्हें उनकी आत्मीयता पर भी विश्वास नहीं है। कदाचित् वे सोचती है कि मेरी कुदृि से किसी सन्तान के उत्पन्न होने में उन्हें जलन होगी। इसलिए कौन जाने, कभी वे मेरा अहित ही कर बैठें ! क्योंकि कुछ हो, है तो वे सौत ही !

इसी समय फतेहपुर स्टेशन आ गया। गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी हो गयी। मैने जो भाभी की ओर दृष्टि डाली, तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वे मन-ही-मन कुछ बुदबुदा रही है। तब मैने मधू से कह दिया—“ज़रा सुनना तो मधू, भाभी कुछ कह तो नहीं रही हैं ?”

मधू ने कान भाभी के मुँह से लगा दिये।

इतने में ब्वाय ट्रे उठाने आ गया। मैने कह दिया—“चाय का पानी ला दो गरम-गरम, तो पी लूँ थोड़ी-सी। अचानक इन भाभी को मूर्छा आ जाने के कारण चाय ज्यों-की-त्यों रखी रह गयी।”

ब्वाय चाय की केतली उठाकर लिये जा ही रहा था कि दो सिपाही एक खहरपोश आदमी के हाथों में हथकड़ी डाले उसे पीछे की ओर ले जाते हुए देख पड़े। पास आ जाने पर मेरी दृष्टि जो उस पर स्थिर हुई, तो यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि वह रामलाल था और उससे कुछ फ़ासिले पर पीछे-पीछे गौरीशंकर महाशय ख़रामा-ख़रामा चले आ रहे थे। जल्दी में मै उनसे कुछ भी कह न सका। क्योंकि उसी समय भाभी ओखें खोलती हुई कहने लगीं—“अरे! मै कहाँ हूँ ?” तब मेरे मुँह से निकल गया—“तुम अभी तक स्वर्गलोक में थी; पर अब पुनः मर्त्यलोक में आ पहुँची हो !”

## उन्नीस

मेरे पर्वत चलता हुआ दिखलाई पड़ सकता है। मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, काशी, अयोध्या, गया तथा पुरी के गगनचुम्बी मंदिर चलते हुए दिखलायी पड़ सकते हैं। तारागण और चन्द्र-सूर्य चलायमान हैं ही और पृथ्वी तो घूर्णनशील मानी ही जाती है। तब अचल एक मानव-धर्म रह जाता है। और मानव-चेतना सदा गतिशील रही है। इसलिये मानव-धर्म भी अचल नहीं हो सकता। जीवन बदलेगा, तो जीवन के मान भी बदलेंगे। इसके लिए हम क्या कर सकते हैं और कोई भी क्या कर सकता है ?

मधू को आये कई दिन हो गये। भाभी की तबियत वैसी ही चल रही है। खाना, पीना और साधारण रूप से हँसना-बोलना सब पूर्ववत् है। माँ आजकल पहले से कुछ अधिक प्रसन्न रहती है। किन्तु सुनता हूँ, लाला जी की तबियत ठीक नहीं है। बाहर निकलना बन्द है। जो मिलने को आते हैं, उनसे मिलना भी बन्द है।

यह संवाद मेरे लिये नया है। इसलिये विवश होकर मुझे उनसे मिलने को जाना ही पड़ा। “वही पुराना नौकर है। देखते ही मुझे पहचान गया। मैंने पूछा—“लालाजी की तबियत तो ठीक है ?”

वह बोला—“ठीक नहीं है सरकार।”

“ज्वर आता है ?”

“नहीं, ज्वर तो नहीं आता। मगर .।”

“दमा उभर आया है ? साँस फूलती है, ऊपर को उठती है—नीचे उतरती कम है ?”

“नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। फिर भी...।”

“फिर भी चुपचाप पड़े-पड़े कुछ सोचा करते हैं ?”

“जी।”

“घर से नहीं निकलते ?”

“जी।”

“किसीसे मिलते भी नहीं ?”

“जी ।”

“पूछ आओ, मुझसे मिलना पसन्द करेंगे ?”

नौकर अन्दर चला गया । मैं सोचने लगा—अवश्य कोई घटना ऐसी हो गयी है, जिसका प्रभाव उनके मन पर से हट नहीं रहा है ।

ज़ीने के ऊपर जो दरवाज़ा है, वही खड़ा था । उसके कोने में चींटियों की सेना नीचे से ऊपर जा रही थी । जानेवाली चींटियों की संख्या अधिक थी, लौटनेवालों की कम । तब मैं सोचने लगा—हो सकता है कि इस जानेवाली सेना को भी लौटना ही पड़े । पर क्या यह बात इस सेना के नेता को नहीं सुझायी देती ?

कोई कह रहा है मुझसे—इस जाति को भगवान ने इतनी बुद्धि नहीं दी ।

और तभी मैं सोचने लगा—मनुष्य जाति में भी ऐसी चींटियों की कमी नहीं है ।

इतने में नौकर ने आकर कहा—“चलिये । आपको बुला रहे हैं सरकार ।”

पहले लांगशाट से देखना चाहता था लालाजी । को पर वह तो सम्भव था नहीं । तब मिडशाट ही सही । इसलिये दरवाजे पर क्षण भर रुक गया । देखा, बदन पर एक कम्बल पड़ा है । पल्लंग पर लेटे हुए हैं । मुँह खुला है और दाढ़ी बड़ी हुई है । हुक्के की निगाली का सिरा ऊपर की ओर है । पीक़दान नीचे रक्खा है । कमरा साफ़ है । मगर कलैंडर में तेरह दिसम्बर की तारीख़ लगी है और आज अभी नवम्बर की उन्तीस तारीख़ चल रही है । वाह ! प्रगतिशीलता इससे बढ़कर और क्या हो सकती है !

यकायक द्वार पर खड़ा देखकर लालाजी उठकर बैठ गये । नौकर ने सिरहाने कई तकियों का सहारा लगा दिया । तभी लालाजी बोले—  
“कुरसी साफ़ नहीं की थी ?”

नौकर ने कन्धे पर रखे गमछे से उस पर पड़ी धूल पोंछ दी ।

उसी क्षण सड़क पर किसी ने आवाज़ लगाई—“कपड़े का टुकड़ा न दे सको, तो कफ़न ही दे दो !”

लालाजी अनखाते से बोले—“आओ न ?”

• मैं जैसे ही कुरसी पर बैठा, वैसे ही लालाजी नौकर से बोले—“देखो, चुपचाप तश्तरी में पान-इलायची रख जाओ और दरवाज़ा बन्द करके बाहर बैठो। जब तक मैं न बुलाऊँ, तब तक कोई आने न पाये। बस जाओ।”

नौकर चुपचाप चला गया।

मैंने पूछा—“यह कैसी शक्ल बना रखी है आजकल ?”

वे संक्षेप में बोले—“यही ठीक है।”

मैंने कह दिया—“बुरी बात है। हम तो आप पर भरोसा रखते हैं, और आप है कि रास्ता चलते-चलते खड़े हो जाते हैं !”

लालाजी कुछ नहीं बोले।

मैंने कहा—“आखिर बात क्या है, कुछ तो कहिये। क्या आप समझते है कि मैं आपकी समस्या को सुनकर उसे सुलझाने के बजाय और उलझा दूँगा ?”

लालाजी कुछ इस तरह मुसकराये, जैसे वे नहीं, उनकी पीड़ा मुसकरा उठी हो !

मैंने कह दिया—“देखिये लालाजी, अगर आप यह चाहते हों कि आपको इस दशा में देखकर मैं भी रो दूँ, तो आप मुझे क्षमा कीजिये। मुझे और भी बहुतेरे काम है।”

“आज तुम मुझे चाहे जो कह सकते हो !” कहते-कहते लालाजी सचमुच रो पड़े।

अब मैं भी दुःखित हो उठा। मैंने कह दिया—“मेरे संस्कार ऐसे नहीं हैं लालाजी कि मैं किसीसे भी कभी कोई कड़ी बात कह सकूँ। यह बात दूसरी है कि मैं जो कुछ भी कहूँ, विशेष परिस्थितियों में वही कड़ी



हो जाय । जो भी हो, अब आप एक वाक्य में बतला दीजिये कि किस बात ने आपको इतनी गहरी चोट पहुँचायी है ?”

लालाजी ने तकिया का सहारा त्याग दिया । एक बार द्वार की ओर देखा, एक बार बायीं ओर के खुले दरवाज़े से नीले आसमान की ओर भी देखा । फिर कुछ स्थिर होकर वे बोले—“मेरी एक लड़की थी जमना । एक बहुत अच्छे घर में उसका ब्याह हुआ था । आज पन्द्रह दिन से उसका पता नहीं है ! अभी तीन दिन पहले पता चला है, दिल्ली के ही मेरे एक मित्र ने लिखा है—मैंने उसे राजहंस नाम के एक आर्टिस्ट के साथ मोती-सिनेमा की बालकनी में देखा था । पर तब तक मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं था । इसलिये मैंने उससे कुछ कहना उचित नहीं समझा । अब पता लगाकर लिखूँगा कि ये राजहंस साहब कौन हैं और कहाँ रहते हैं । साथ ही यह भी कि जमना वहाँ किस तरह रहती है !”

इतना कहकर लालाजी ने सबसे नीचेवाली तकिया के नीचे से एक लिफाफा निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिया । मैंने उसे खोलकर देखा, सचमुच गोकुलचन्द नाम के एक सज्जन ने उसमें यही सब लिखा था ।

मैंने पत्र लौटाते हुए कह दिया—“संवाद वास्तव में चिन्ताजनक है । अब यह बतलाइये कि आप चाहते क्या है ?”

लालाजी बोले—“अब मेरे चाहने-न-चाहने का सवाल ही नहीं रह गया ! खानदान की सारी इज्जत धूल में मिल चुकी । मैंने भी समझ लिया—जमना मर गयी !”

अब मुझे कह देना पड़ा—“पर अभी आपको एक बात और समझना बाक़ी है । वह यह कि ये राजहंस साहब और कोई नहीं, वही मुरलीबाबू हैं, तीन-सै-त्रेसठवाले मामले में उन दिनों जिनकी आपने ज़मानत की थी !”

अब लालाजी कड़कीली आवाज़ से बोल उठे—“क्या कहा ?”

“यही कि राजहंस और मुरलीबाबू एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं

मैंने उस दिन भी आप से यही कहा था और आज भी मैं विनय-पूर्वक आप से यही कहना चाहता हूँ कि क्षमा केवल उस व्यक्ति के लिए कल्याणमयी हो सकती है, जो अपने प्रति ईमानदार और निष्ठावान हो। पर उस व्यक्ति के लिए क्षमा विष है, जिसे यह अनुभव करने का अवसर ही नहीं मिला कि विश्वासघात की पीड़ा कितनी मर्मान्तक होती है, जो यह जान ही नहीं सका कि प्रवचना का आत्मीय आघात किसी विषाक्त इंजक्शन से कम प्राणघातक नहीं होता।”

इतना कहकर मैं थोड़ा रुक गया। तब लालाजी ने तकियों का सहारा लगाकर कह दिया—“तुम कहते जाओ आज। इसकी परवा मत करो कि मैं विरोध करूँगा या समर्थन।”

तब मैं फिर बोलने लगा। मैंने कहा—“मुरलीबाबू जैसे लम्पट और आवारे आज हमारे देश में घर-घर पैदा हो गये हैं। जिसे पेट भर अन्न नहीं मिलता, वह तो भूखा है ही; जिसे पथ्य लेने के लिये मूँग की दाल के पैसे भी नहीं जुटते, वह तो नंगा है ही। पर तृष्णा और अतृप्ति के नाम पर आज तो फैक्टरी का वह मालिक भी भूखा बनता है; व्यावसायिक संघर्ष में अग्रसर होने के लिये जिसके पास नयी और अपटूडेट मशीनें नहीं हैं! मैंने तो एक प्रोफेसर को एक कवि-साहित्यकार से यहाँ तक कहते हुए सुना है कि आपका स्वर्चा ही कितना है, जो आपको अधिक पैसों की आवश्यकता हो! पैसों की आवश्यकता तो मुझे है, जिसके होटलों का दिल महीने में तीन-चार सौ हो जाता है! अब मैं आप से पूछता हूँ कि तृप्ति और अतृप्ति का माप भी आप कुछ रखेंगे या सबको हर समय यह कहने की छूट दे देंगे कि मैं भूखा हूँ, मैं प्यासा हूँ, मैं नंगा हूँ, मैं असंतुष्ट हूँ जीवन से—ज़िन्दगी मेरे लिये मौत की मंज़िल है?”

लालाजी बोल उठे—“मैं तुम्हारी बात समझ रहा हूँ राजेन्द्र। लेकिन मैं अपनी जमना पर कैसे अविश्वास करूँ! अगर उसको कोई कष्ट नहीं था तो वह मुरलीबाबू के साथ भागी क्यों?”

तब मुझे कहना पड़ा—“ठीक है, मैं मानता हूँ कि जमना को अपने पति के यहाँ कष्ट होगा। पर मुझे यह जानने की भी आवश्यकता है कि उस कष्ट में वास्तविकता कितनी और किस मात्रा में थी और कल्पना की उड़ान किस मात्रा में ! मैं तो अब साफ-ही-साफ कहना चाहता हूँ कि उसको भगा देने को उन्ही प्रवृत्तियों ने विवश किया, जो सृजनात्मक नहीं, संहारात्मक है—जो संघर्ष के उस स्वरूप पर विश्वास करती हैं, जो गहन कान्तार की भाँति रात-दिन जलता ही रहता है ! ज़रा सोचिये तो सही, किशोरीलाल की स्त्री मर गयी, तो उसने भट से दूसरा ब्याह कर लिया। पर कुन्ती विधवा हो गयी, तो उसे ज़हर क्यों न पिलाया जाय !.. गदाधर की नौकरी छूट गयी, इसलिए वह भूखा है बेचारा। चोरी न करे, तो और करे क्या ?... शिवशकरलाल की स्त्री सुन्दर नहीं है। बेचारा तभी तो पड़ोस की सुवती कन्या को लेकर भाग गया है !.. क्षमा कीजिएगा अगर मैं कहूँ कि ऐसी भी तो स्थिति हो सकती है कि तीन-चार संतान हो जाने पर भी कोई स्त्री यह कहने लगे कि मेरा पति तो शुरू से ही नपुंसक था ! बतलाइये न मुझे, अतृप्ति की क्या परिभाषा आप बनाना चाहते हैं ?”

नौकर ने आकर इसी समय लालाजी के हुक्म के की चिलम बदल दी। तब भट से हुक्म गुड़गुड़ाते हुए लालाजी बोले—“तुम कहते जाओ आज, जो भी तुम्हें कहना हो। मुझे कुछ कहना नहीं है।” और मैं देखने लगा, उनके मुँह का वह धुआँ, जो वे क्षण-क्षण पर दोनों ओर से निकालते जा रहे थे।

तब मैं फिर बोल उठा। मैंने कहा—“आपको मालूम होना चाहिये कि मेरे एक मौसेरे भाई हैं वंशीधरजी। घर के बड़े अमीर और पुस्त-दर-पुस्त से जौहरी हैं। उनको शिकायत थी कि उनकी गृहिणी के शरीर में ही कुछ ऐसा अभाव है, जिससे वे संतान से वंचित हैं। और बस इसी बात पर उन्होंने भट से दूसरा ब्याह कर डाला। परन्तु आप तो जानते हैं प्रकृति के खेल को। दूसरी भाभी जो आयी, तो पहली भाभी ने भी अपना नक़शा बदल दिया। फल यह हुआ कि दूसरी भाभी से तो अभी

तक कोई सन्तान नहीं हुई, पर पहली की गोदी भरी जा रही है ! अब आप ही बतलाइये, दूसरी भाभी के लिये आपका क्या संदेश है ? बहुत होगा तो आप यही कहेंगे कि उनको भी अन्यत्र आश्रय खोज लेना चाहिये । लेकिन मैं पूछता हूँ, जिसके संस्कार ऐसे नहीं हैं, वह क्या करे ? अब क्या मैं आप से यह निवेदन करूँ कि कल ही अगर दूसरी भाभी के जीवन को कुछ हो जाय, तो उस हत्या का उत्तरदायित्व क्या भाईसाहब पर न होगा ? पर जो भी घटनाएँ नैतिकपतन की हों, सब के लिये आप एक जीवन-दर्शन तैयार रखिये और कहते जाइये कि हाँ, ऐसा तो होता है । इन स्थितियों में ऐसा ही स्वाभाविक है । तब मैं विनम्र शब्दों में यह कहूँगा—यह स्वाभाविक नहीं, विकार-ग्रस्त है; मानवीय नहीं, पाशविक है; सांस्कृतिक नहीं, वन्य है । अस्तु, आज हमारे समाज की जैसी स्थिति है, उससे उद्धार का एक ही मार्ग है—नैतिक मानों का निर्बाह । मैं तो कहता हूँ, यह न्याय नहीं, परले दरजे की कायरता है, बुझदिली है, जो काला बाज़ार और घूसखोरी बन्द नहीं हो रही है ! हमारी आज़ादी के गौरव के साथ एक खासा मज़ाक है यह ! देश के अभ्युदय के विरुद्ध चरित्रहीन सफेदपोशों का एक सगठित षडयंत्र है यह !”

अब लालाजी ने हुक्के की निगाली को अलग मोड़ दिया और पुकारा—“अरे उजागर ?”

उत्तर मिला—“जी सरकार ।”

लाला जी बोले—“ज़रा नाई को तो बुला लाना । मैं हंजामत बनवाना चाहता हूँ सबसे पहले ।”

उजागर ने गमछा बदलते-बदलते अन्दर आकर कह दिया—“अभी ले आता हूँ सरकार ।”

“और देखो,” लालाजी बोले—“पहले आपको कुछ जलपान के लिए...।”

मैंने कह दिया—“लालाजी, जलपान की कोई ज़रूरत तो है नहीं इस समय ।”

पलंग से उतरते हुए लालाजी बोले— “जिसके संस्कार ऐसे हैं, उसको तो ज़रूरत है ।”

...

...

...

आठ बजने का समय था और मैं शोव कर रहा था । इतने में किसी के आने का शब्द हुआ । फिर—“देखिये भाईसाहब, यह आपकी चिट्ठी है ।” लाली ने स्वयं मेरे पास आकर मुझे एक लिफाफा देते हुए कहा—“कल शाम को आयी थी । पर आप एक तो देर से लौटे, दूसरे मैं भी मॉ जी को देना भूल गयी ।”

मैंने चिट्ठी ले ली और कह दिया—“और कहो लाली । तुम्हारी तबियत तो ठीक है ?”

उसने सिर नीचा कर लिया, थोड़ी मुसकराहट भी उसके होंठों से झलकी, पर फिर वह चुप रह गयी ।

मैं देख रहा हूँ, उसके पलकों के नीचे की गहराई अभी तक भर नहीं सकी है । ग्रीवा के नीचे की हँसलीवाली हड्डी अभी तक उभरी हुई है, मांस की मोटी तह उस पर जम नहीं पायी । कानों के छिद्र खुले हुए पड़े हैं, वे टाप्स जो इनको अतीव शोभन रखा करते थे, स्वप्न की भाँति एक अतीत स्मृति-चिह्न बन गये हैं !

यद्यपि कुरसी पास पड़ी हुई थी फिर भी लाली उस पर बैठी नहीं । पलंग के सिरहाने बिस्तर लपेटा पड़ा था । उसका शेष भाग बिल्कुल खाली था । लाली उस पर भी नहीं बैठी । केवल दीवाल से लगकर खड़ी रही मूर्तिवत् ।

तब मैंने कह दिया — “जान पड़ता है, अब भी तुम्हारी तबियत ठीक नहीं हो पायी ।”

“आज तो मेरी तबियत ठीक है ।” इसी क्षण मामी ने प्रवेश करते हुए कह दिया । फिर दायें हाथ बायें हाथ की नाड़ी पर रख्वा, कुछ अनुभव किया और कह दिया—“देखो तो, तुमको कैसा लगता है ?”

लाली इसी समय चुपचाप कमरे से बाहर हो गयी ।

सारे जगत की यही दशा है। भूख-प्यास, कपड़े-लत्ते, वनाव-श्रंगार कला और सस्कृति में मनुष्य की छिपी-मुदी सोंसों के ज्वार, वेदना के तप्त उद्गार, संसृति की युग-युग व्यापी परम्पराजन्य फूत्कार—चारों ओर और दशों दिशाओं में एक ही पुकार है—“पहले मुझको।”

मैने चुपचाप उठकर बिना कुछ कहे अलमारी से थर्मामीटर निकाला और भाभी को देते हुए कह दिया—“तापमान भावना का हाथ धरकर नहीं, बौद्धिक प्रयोगों से बना यन्त्र लगाकर लिया जाता है।”

भाभी कुरसी पर बैठ गयी, मुँह खोला और उन्होंने थर्मामीटर को जिह्वा के नीचे लगाकर होंठों के नीचे दबा लिया।

इतने में मधू आ गयी और ब्लाउज़ का वह अंश, जो कंधों पर फूला-फूला रहता है, दिखलाती हुई भाभी से कहने लगी—“ऐसा ठीक रहेगा भाभी ?” फिर उनको थर्मामीटर लगाये हुए देखकर चुप रह गयी।

लिफ़ाफ़ा मैने अब भी नहीं खोला था। मुहर देखकर केवल इतना जान लिया था कि चिट्ठी दिल्ली की है। सोचा—भाईसाहब का पत्र होगा, उपालम्भ से भरा हुआ। फिर यह भी मन में आया—सम्भव है, माताजी का हो और उलहना दिया हो कि राज़ी-खुशी पहुँच जाने की सूचना भी न दी।

भाभी कुरसी से उठकर पल्ले पर एक सचित्र साप्ताहिक के पन्ने उलटने लगी और मधू बोली—“अम्मा पूछती थी कि तुम्हारे वे दोस्त कहाँ गये, जिन्होंने हमको ज़रूरत पड़ने पर दो-चार सेर चीनी कगट्रोलरेट से ही दिलवा देने का बचन दिया था।”

मैने कह दिया—“इस तरह प्राप्त हुई चीनी उन्हीं को पचा करती है, जिनको देश के मान और गौरव की लाज नहीं है !—जिनको दूसरों के अधिकार स्वयं हड़प जाने में कोई बुराई नहीं देख पड़ती।... “भूठहि लेना भूठहि देना—भूठहि भोजन, भूठ चबेना।” गोस्वामीजी ने इसी साम्प्रदायिक देशभक्ति को लक्ष्यकर पहले से लिख दिया था ! वे कितने बड़े

• भविष्य-दृष्टा थे।”

इतने में दाढ़ी की एक कील फट गयी और खून आ गया थोड़ा-सा ।

भाभी अब मेरे पास आकर थर्मामीटर दिखलाने लगी ।

मैंने कह दिया—“निन्यानबे प्वाइंट फोर निश्चयपूर्वक हरास्त है ।”

अब भाभी मधू की सिलाई देखकर बोली—“ठीक है । बस ऐसी ही नोंक ऐसा ही फैलाव अच्छा लगता है ।”

फ़ट उनकी इस बात पर मेरा ध्यान आकृष्ट हो गया और उसी क्षण मेरी दृष्टि भाभी की चितवन से जा मिली ।

मधू बोली—“जाती हूँ । अम्मा कहती हैं—आज करायल बनेगा; सो पकौड़ी बनानी है । चाय के साथ थोड़ी खाओगी न भाभी ? भेजू गरम-गरम ?”

मेरे मुँह से निकल गया—“मक्खन से तलकर भेजना इनको । और देख, दही में डालने से पहले पानी में छोड़ देना, जिससे उनकी गरमी शान्त हो जाय ।”

मधू हँसने लगी और बाहर जाती हुई बोली—“लो और सुनो, अब पाक्-शास्त्र भी मुझे भैया से पढ़ना पड़ेगा !”

इस पर भाभी का भी जी न माना । बोली—“भैया की बात ही अलग है । संसार की हर एक बात का श्लेषात्मक भाव निकालकर मन-ही-मन मिश्री घोल-घोलकर पीना और मौन रहकर अपने को अशोकस्तम्भवत् चिर स्थिर व्यक्त करना कोई उनसे सहज ही सीख सकता है ।”

तब तक शेविंग समाप्त करके मैं चिद्‌ठी पढ़ने लगा था । वह इस प्रकार थी:—

दीक्षित-निवास

कैरोलबाग, दिल्ली

ता० २८-११-५०

मेरे मन के देवता,

आशा है, आप प्रसन्न होंगे और पूर्ववत् आपका प्रवचन चल रहा होगा । कविता तो इसे क्या कहूँ, कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, जिनमें श्रवण के

उन मनोभावों की कल्पना की गयी है, जो दुइयों की हत्या के अवसर पर उसमे उदय हुए थे । आशा है, वचन के अनुसार आप इसको भी पढ़कर फाड़ डालेंगे ।

सदा आपकी—

वैशाली

## पंछी

जाओ पंछी !

मुझे तुम याद रहोगे ।

तुम्हारी जूठन जो कभी

फर्श पर गिर जाती थी,

उसको सूँघ-सूँघकर

मैं अपनी नासिका

और जिह्वा मे लपेट-लपेटकर

अपनी बावली रसना मे

जिन विविध, नाना

प्रकार के खट्टे-मीठे और कसैले

स्वादों का अनुभव करता था

अब उनसे सदा के लिए

बंचित रहूँगा पंछी !

तुम जाओ पंछी ।

×

×

×

तुम्हारे सूने पिंजड़े को

चुपचाप खड़ा-खड़ा ध्यान से देख रहा हूँ ।

मनुष्य तो अपनी इच्छाओं को

दूसरों की रुचि पर लादना जानता है ।

वह अपने भोग को दूसरे की

रुचि बनाना जानता है ।

पर यह कौन जानता है पंछी

कि यह श्रवण भी उन स्वरों को



सुनना जानता है,  
 जो प्राणों के पंख फड़फड़ाते क्षण  
 तुम्हारे अबोध कंठ से फूटे थे !  
 वे मेरे—श्रवण के—भी स्वर थे पंछी  
 और वे निखिल मानवी संसृति के भी  
 स्वर थे पंछी !  
 तुम जाओ पंछी !

देखता हूँ, वैशाली की इन पंक्तियों में कवित्व का परिपाक तो नहीं है, पर कल्पना की आधार-भूमि कवित्वपूर्ण अवश्य है। लेकिन मुझे जो उसने यह 'मन के देवता' सम्बोधन लिख दिया है, इसमें कितना प्रमाद है ! देवता तो किसी भक्त की श्रद्धा-भेंट को अस्वीकार नहीं कर सकते। भेंट की उत्तमता चाहे जिस कोटि की हो। उसमें देवता की अपनी रुचि-अरुचि का प्रश्न ही नहीं उठता। उसमें तो भक्त की सामर्थ्य और अर्चना-प्रणाली की हार्दिकता ही मुख्य मानी जाती है।

लेकिन यहाँ स्थिति बिल्कुल दूसरी है। यहाँ तो भेदाभेद में पूरी तरह डूबा हुआ मेरा यह सर्वथा भौतिक शरीर है। यहाँ इस शरीर के अन्दर मन नाम की जो वस्तु है, उसमें रुचियों और अरुचियों के स्पष्ट अर्थान्तर हैं। यहाँ सीमाओं की श्रेणियाँ और उनमें आदशों के तुलनात्मक प्रतिबन्ध हैं। यहाँ इतनी स्वतंत्रता ही नहीं है कि क्षण भर के लिए यह सोच सकूँ—हाँ, मैं तुमको भी स्वीकार करता हूँ। यहाँ संस्कारों और मान्यताओं में जकड़ा हुआ मानव सर्वथा सीमित, संकुचित और मर्यादित है।

मानता हूँ कि मेरी यह दयनीय स्थिति है। परन्तु इस स्थिति से परे भी मैं कुछ हूँ। मैं जहाँ कटोर हूँ केवल वहाँ पत्थर हूँ। किन्तु ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ मेरी स्थिति उस पत्ती की-सी है, जो स्पर्श-मात्र से शरमा जाती है। मैं प्यार केवल ले ही नहीं सकता, दे भी सकता हूँ। मैं वैशाली को प्यार करता हूँ। मैं चाहता हूँ, उसका जीवन चले और वह सुखी

रहे। मैं उसे आशा, संतोष और शान्ति की निधियों संसार भर से बटोर-बटोरकर देना चाहता हूँ। मैं उसके दीर्घजीवन के लिये अपना रक्त दे सकता हूँ। मैं उसकी प्राण-रक्षा के लिये अपने प्राण दे सकता हूँ। केवल यह उद्देश्य रखकर कि सम्यता के विकास के लिए उस जैसी बहनों और लड़कियों की हमें आवश्यकता है।

भाभी मेरे कमरे में इधर-उधर रक्खी और पड़ी हुई वस्तुएँ देख रही थी। और मैं वैशाली का पत्र पढ़कर यही सब सोच रहा था। इधर माधवी के ब्याह के बाद से ज़मींदारी-कारबार देखने का अवकाश नहीं मिला था। इसलिये माधवी और छोटी भाभी को ले आने के दूसरे ही दिन मैं गाँव की ओर चला गया था। छोटी भाभी से एकान्त में प्रेम-चर्चा करने और उनके दुख-सुख के नवीन समाचार जानने को मेरा मन जैसे युगों से भूखा और अधीर बैठा था।\*\* आज इस समय रह-रहकर यही सोच रहा हूँ कि जिन कारणों से भाभी इधर अधिक दुर्बल और अस्वस्थ हो गयी है, उनको मैं कैसे दूर कर सकता हूँ! इस विषय में सबसे अधिक चिन्त्य स्थिति मेरी है और वह इसलिये कि मैं अब उनसे हृदय के कपाट खोलकर बात करने से डरने लगा हूँ। मालूम नहीं, मेरी कौनसी बात उनके मर्मस्थान में चुभ जाय और उन्हें तत्काल मूर्छा आ जाय! इसीलिये जब कभी हार्दिकता से बातें करने का साहस भी उभरता है, तभी तत्काल मन मसोसकर रह जाना पड़ता है।

इस प्रकार सच पूछिये, तो इन भाभी के सम्बन्धों में भी मैं दयनीय हो गया हूँ!

स्वास्थ्य-रक्षा विषयक एक पुस्तक के पन्ने उलटते-उलटते जब काफ़ी समय हो गया, तब उसे लेकर वे मेरी ओर आती हुई बोली—“आज कल सरसों-मटर खेतों में फूलने लगा होगा। सबेरे अगर उनकी मेड़ों पर घूमने का कार्यक्रम बनाया जाय, तो कैसा हो?”

“बहुत अच्छा होगा, इसमें सन्देह नहीं।” कहते-कहते मैंने तब यह भी कह डाला—“पर इससे भी अच्छा यह होगा कि मन की लहलहाती

हुई खेती की मेड़ों पर संकोच त्यागकर घूमा जाय !”

उन्होंने मुसकराते-मुसकराते सम्यक् गम्भीर होते हुए कह दिया—“जो अब मेरे लिए स्वप्न बन गया है ।”

तब मैंने कह दिया—“मेरा तार मिलने पर तुम फौरन जो चल खड़ी हुई, यह सोचकर मुझे अब चिन्ता हो उठी है । बल्कि कभी-कभी तो यह भी मन में आता है कि तुमको बुलाकर एक तरह से मैंने वैधानिक ग़लती की है ।”

“इस विषय में तुम्हें ज़रा भी चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है ।” दर्पण को अलमारी से लेकर सामने टेबिल पर रखती हुई भाभी बोली—“तार हमको आठ बजकर बीस मिनट पर मिला था और नौ बजे मैंने ट्रंक काल करके उनसे बातें कर ली थीं । उस समय अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा था—तुम्हारी जीजी कह रही है कि जब ऐसी तबियत खराब है तो यही क्यों नहीं आ जाती ? इस पर मैंने सिर्फ़ इतना कह दिया था कि ऐसा ही था, तो चलते समय क्या वे मुझे साथ नहीं ला सकती थी ? इसका उत्तर बिल्कुल सीधे तौर से न देकर उन्होंने कहा था—इस विषय को इस तरह सोचकर तुम अपनी जीजी के साथ ही नहीं, अपने साथ भी अन्यायकर रही हो । क्योंकि तुम स्वतः भी तो कह सकती थी—मैं भी चलूँगी जीजी । इतनी बड़ी कोठी में मुझसे किसी तरह रहा नहीं जायगा । तब जानते हो, मैंने इसका क्या उत्तर दिया था ?”

इतना कहकर भाभी दर्पण को टेबिल पर मुख के बल लिटाकर मेरी ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगी ।

मैंने कह दिया—“बतलाओ न ?”

वे बोली—“मैंने कह दिया—इन बातों में कुछ दम नहीं है । दो मास पूर्व से मासिक न होने पर भी तीन दिन तक विधिवत् वे जब उसका अभिनय करती रही, तभी मैं जान गयी थी कि अब मेरी स्थिति क्या है । मेरी इस बात को सुनकर वे एकदम सन्न रह गये ! तब अन्य उपाय न देखकर कहने लगे—खैर, जो भी हो । मुझे तुम्हारी उच्चशिक्षा और

सम्यता पर अभिमान है। इसलिए आशा है कि एक साधारण मानवी दुर्बलता समझकर तुम इसका कुछ बुरा न मानोगी।...मौसी के यहाँ जाना चाहो, तो चली जाओ; पर बहुत परहेज़ से रहना। इस बार कानपुर आने पर मैं सबसे पहले डाक्टर भाटिया से मिलकर तुम्हारे विधिवत् इलाज का प्रबन्ध करूँगा।”

देखता हूँ, भाई साहब की इस बातचीत में, छोटी भाभी के प्रति उनकी हार्दिकता अब भी पूर्ववत् है। अर्थात् उनकी ओर से इन पर अन्याय ही हो रहा हो, ऐसी कोई बात नहीं है। तब कहना होगा कि भाई साहब काफ़ी व्यावहारिक व्यक्ति है। यद्यपि मुझे उनसे कभी कोई काम पड़ा नहीं है। तब उनसे विदा लिये बिना मैं जो चला आया, क्या यह मेरी भूल नहीं है?

देखता हूँ, बड़ी-छोटी भाभियों के इस सघर्ष में मेरा कार्य्य कही पक्षपात पूर्ण तो नहीं हो रहा? यह तो स्पष्ट ही है कि बड़ी भाभी की शिक्षा-दीक्षा, उनकी संस्कार-शीलता बहुत उच्च नहीं है। यह भी सही है कि वे कपटाचार में बड़ी निपुण हैं। पर प्रश्न यह है कि मेरे साथ तो उनका व्यवहार बड़ा मधुर है। जिस आत्मीयता के साथ उन्होंने मेरा सत्कार किया, उसके सम्मुख मैं नतमस्तक हूँ। फिर मैंने माधवी को उनके यहाँ ले जाने की बात पर जो ध्यान नहीं दिया, इसका कारण? इसका कारण हैं छोटी भाभी। बड़ी भाभी ने इनके साथ क्यों छल-प्रपञ्च किया? और उनके साथ किया, तो मेरे साथ किया।

अच्छा यह मैं क्यों कहता हूँ कि उन्होंने इनके साथ किया, तो मेरे किया? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि इनको मैं अपनी निधि मानने लगा हूँ? अपनी सौंसों का स्वर, अपने हृदय की धड़कन, अपने अन्तस्तल का मर्म, अपना सब कुछ।...लेकिन इसका मुझे अधिकार भी है?...मुझे पूरा अधिकार है। मैं प्रत्येक पीड़ित मानव के सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानता हूँ। उसकी लाज, उसकी संकोच-शीलता, उसकी हिचकिचा-हट, उसकी मर्यादा—सब कुल मेरी है। मेरा यह अधिकार कोई छीन नहीं

सकता । मानता हूँ, है यह पक्षपात । मानता हूँ, मैं पक्षपाती हूँ । पर किनके लिए ? इस अखिल मानव-सृष्टि के उस वर्ग के लिए, जो अत्याचार पीड़ित है । मैं सदा उस दल का पक्ष करूँगा, जो दीन-दुखी और असहाय है । मैं इस विषय पर कभी समझौता न करूँगा !

स्नान करके मैं लौटा ही था कि मधू ने मूँग की गरम-गरम पकौड़ियाँ और चाय भिजवा दी । भाभी की पकौड़ियाँ दही में डूबी हुई थी । देखकर मैंने पूछा—“पकौड़ियाँ कड़ी तो नहीं है ? ज़रा एक को दबाकर देखो तो ।”

सुनकर भाभी मुसकरायी । बोली—“यह काम मुझसे न होगा ।”

मैंने कह दिया—“अच्छा, यह बात है ! तब मुझे अभी डाक्टर सिनहा के यहाँ जाना पड़ेगा । मैं कोई जोखिम नहीं लेना चाहता । तुम्हारे पैर पड़ता हूँ भाभी, तुम ये पकौड़ियाँ मत खाओ । देखो, कहा मान जाओ ।”

उन्होंने बिना किसी आपत्ति के चुपचाप पकौड़ीवाला प्लेट मेरी ओर बढ़ा दिया । फिर वे प्याले में चाय ढालने लगी । दहीवाली पकौड़ियाँ चखते-चखते मैंने अनुभव किया, मधू ने उन्हें काफ़ी भिगोकर दही में छोड़ा है । तब मैंने वही प्लेट फिर भाभी की ओर बढ़ाकर कह दिया—“मेरे विचार से तुम्हारे खाने लायक हो गयी हैं ।”

भाभी ने नीचा मुँह किये हुए दोनों पलकों के किनारे एकमात्र मुझ पर डालते-डालते कह दिया—“अब मैं कैसे ग्रहण कर सकती हूँ ?” और इतना कहते-कहते सलोना मन्द-मन्द हास भी फूट पड़ा उनकी मुख-कान्ति से ।

मुझे उस घटना का स्मरण हो आया, जब रामलाल मधू के ब्याह में बहुत रात हो जाने पर अकस्मात् आ गया था और उसको खाना खिलाने के झमेले में भाभी की और मेरी अधखायी थालियों ही बदल गयी थी । अतएव मैंने कह दिया—“एक तो मैंने केवल एक ही बार चखा है; दूसरे तुम्हारे लिये यह कोई नयी बात भी नहीं है ।”

वे कुरसी से उठकर खड़ी हो गयी। फिर चाय के प्याले को मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली—“वह बात दूसरी थी। अज्ञान में जो भूलें हो जाती है, उनका विशेष महत्त्व नहीं होता।”

• मैंने पहला घूँट कण्ठगत करते-करते ज़ोर देकर कहा—“बैठो-बैठो।”

वे बोली—“बड़ियाँ तो अभी बचा रखी होंगी मधू ने। मैं दूसरा प्लेट भेज देने के लिये कहे देती हूँ।”

मुझे कहना पड़ा—“नहीं, चाय की गरमाहट के साथ इस तरह की एकदम ठण्डी चीज़ें मैं लिया नहीं करता। इसलिये तुम ये बड़ियाँ सहर्ष ग्रहण कर सकती हो।—और, भूलें तो सदा अज्ञान में ही होती है।” फिर मैंने चाय का प्याला उठा लिया। वे इस बार कुरसी पर न बैठकर समेटे हुए बिस्तर के सहारे पलंग पर लेट रही। कुछ बोलों नहीं और क्षण भर के लिये उनके पलक भी बन्द हो गये। यह दशा देखकर मैं घबरा गया। कुरसी से झूट उठा और यह देखने के लिये कि कहीं मूर्छा तो नहीं आ गयी, उनके निकट पहुँचते ही बोला—“भाभी ?”

उन्होंने तुरन्त आँखें खोल दी। कमलनयनों से थोड़ी मुसकरायी भी। फिर बोली—“डर गये थे क्या ?”

मैंने स्वीकार करते हुए कह दिया—“सचमुच भाभी, मैं तुमसे अब बहुत डरने लगा हूँ।”

“क्यों ?”

“यह मत पूछो।”—कहते-कहते मुझे एक कविता की कुछ पक्तियाँ याद हो आयी और मैंने कह दिया—

जगत आज कह दे कि मैंने किसीके चमन का कभी एक अंगूर चीखा।  
धनञ्जय न कह दें कि मैंने दिगञ्जल कभी जो छुआ हो किसी उर्वशी का ॥

तब वे जैसे अपनी सारी तरुणाई प्रश्न के एक ही प्रकार में भरकर

बोली—“यह दावा तुम मेरे सामने कर रहे हो ?”

मैने भी दृढतापूर्वक कह दिया—“हाँ, तुम्हारे सामने, अपनी माँ के सामने, अपनी मधू, अर्चना और वैशाली बहनों के सामने । इतना ही नहीं, उन लाली और हीरामानिक के सामने भी सहर्ष कहने को तैयार हूँ, जिन्होंने प्रायः मेरे मन के तारों में झंकारें उत्पन्न की है ।”

तब भाभी तुरन्त उठ बैठी और उसी कुर्सी पर आकर चुपचाप बड़ियाँ खाती-खाती बोली—“इधर कई दिन से मैं अपनी मृत्यु की कामना करने लगी थी । पर अब मैं जीना चाहती हूँ !” और भाभी के समक्ष मौन बैठा चाय पीता हुआ मैं समझ रहा हूँ कि उसके इस कथन के अन्दर समर्पण की कितनी बड़ी चुनौती है ?

प्रातःकाल होने से कोई एक घंटा पूर्व ओख जो खुली, तो विमाजन-वाली लकड़ी की आठ फ्रीट ऊँची दीवाल के ऊपरी भाग से भाभी के कमरे में रोशनी दिखलायी पड़ी । तुरन्त मैने पुकारा—“भाभी ?”

उत्तर मिला—“हाँ ।”

“क्यों, क्या बात है ?”

“बात-वात कही कुछ नहीं है । मैं नित्यक्रिया से निपटकर तैयार हूँ । तुम भी तुरन्त तैयार हो जाओ । घूमने चलेंगे । डाक्टर सिनहा की भी यही राय पड़ी है कि फूली सरसोंवाली मेड़ों और वाटिकाओं में सबेरे घूमना लाभदायक होगा ।”

मैंने ज़रा अँगड़ाई लेते और आलस्य प्रकट करते हुए कहा—“ऐसा ही था, तो कल से बतला देना था । क्योंकि अब इतनी जल्दी तैयार हो जाना तो मेरे लिये दुष्कर है ।”

“दिखो गड़बड़ करोगे, तो ठीक न होगा । फ़ौरन तैयार हो जाओ । लाली ऊपर आ गयी है और चाय का पानी गरम हो रहा है ।”

भाभी का इतना कहना था कि मुझे उर्दू की एक पंक्ति का स्मरण

हो आया—“हुस्न इक ख्वाबेप नाज़ है, जिसके चौक पड़ने को इश्क कहते हैं।”

...

...

अब हम आज़ाद-पार्क में नित्य प्रातः घूमने आने लगे। यहाँ हीरा नीलम से भाभी का भी परिचय हो गया।

आज का दिन मुझे बहुत ज़ेच रहा है। और इसका कारण यह है कि मेरे चारों ओर सौन्दर्य, सौरभ और हास-परिहास लहराता हुआ देख पड़ता है। गुलाब के फूल को कुछ पंखड़ियों को धूल से उटाती हुई भाभी कह रही हैं—‘जो पंखड़ियाँ भूमि पर गिर जाती हैं, उनका दुःख कौन मिटा सका है?’

अध्ययनलीन हीरामानिक ने झट अपनी पुस्तक बन्द कर ली। फिर भाभी की ओर क्षण भर ध्यान से देखती-देखती बोली—“उनके दुःख को यह धरती अपने वत्स से लगाकर कितनी प्रसन्न होती है, आपने कभी सोचा है? आपने कभी विचार किया है कि बिखरे और धूल में मिले हुए सौन्दर्य को अपनी बाहों में भरकर ही यह प्रकृति जाड़ा-गरमी, ओषधी-पानी, तुहिन-तुषार और हिम-उपलों की वृष्टि करती है।”

और नीलम दौड़ती हुई भाभी के पास आकर कहने लगी—“दिखिये भाभी, अब आप कानपुर जाने का नाम भी न लीजिएगा। भाई साहब आयें, तो उनको मेरे पास भेज दीजियेगा। मैं उनको यों राज़ी कर लूँगी, बों !” और चुटकी बजाकर अपने कथन को उसने एक रूप भी दे दिया।

भाभी हँस पड़ी और बोली—“ऐसा कैसे हो सकता है नीलम? जाना तो पड़ेगा ही।”

“अच्छा, जाने से पहले क्या एक बार आप हमारे यहाँ आने की कृपा न करेगी? ब्रदर से कहकर आपका एक फ़ोटोग्राफ़ लेना चाहती हूँ।” हीरा ने कह दिया।

“लेकिन मैं इससे भी अच्छा एक प्रस्ताव आपसे करूँ तो !”

“तो उसमें पूछने की क्या बात है, कीजिये न ?”



“कल इनका जन्मदिन है। आपलोग हमारे यहाँ आने की कृपा करें।”

हीरा चुप रह गयी। फिर सिर नीचाकर नखो को देखती कुछ सोचती हुई बोली—“ब्रदर से पूछना पड़ेगा।” फिर होंठों को विकास के मोड़ पर लाकर कह दिया—“मै पूरी कोशिश करूँगी।”

नीलम बोली—“इनको हर काम के लिए पहले सोचना और फिर कोशिश करना पड़ता है। लेकिन मुझे किसी चीज़ को सोचने में गाड़ी के डिरेलमेन्ट हो जाने का-सा डर लगता है। आपकी क्या राय है?”

मुझे उसकी इस बात को सुनकर वैशाली की याद हो आयी।

धूप चढ़ आयी थी। इसलिये गरम मुलायम चेस्टर को उतारती और वल्ड पर इधर-उधर बहकती साड़ी सम्हालती हुई भाभी बोली—“राय देने का काम अब मैने छोड़ दिया है। अब तो मै आदेश देने के पक्ष में आ गयी हूँ। इसलिए मिस हीरा, चाहे जिस तरह आओ, मगर कल आओ जरूर।”

बैच से उठकर हीरा बोली—“अच्छी बात है, आ जाऊँगी। हो सका तो अपने कैमरामैन को भी साथ लेती आऊँगी।”

तदनन्तर मुक्तवायु-संसद की बैठक समाप्त हो गयी और हमलोग अपने-अपने स्थान को चल दिये।

कैनिगरोड के चौराहे पर तोंगा आ गया था और हम उस पर सवार हो गये।

तभी भाभी बोली—“मै आज तक तुमको समझ नहीं पायी!”

मैने कह दिया—“समझ तो जाती, पर कुछ ऐसी बात है कि मैं समझाना चाहता नहीं।”

भाभी आश्चर्यान्वित होकर कहने लगी—“मै चाहने-न-चाहने पर अब ज़रा कम विश्वास करने लगी हूँ।”

“यह तो अपने-अपने दृष्टिकोण की बात है।”

“दृष्टिकोण की नहीं, प्रकृति की शक्ति, परिस्थितियों के मोड़ और संयोगों के आकस्मिक हस्तक्षेप की बात है। परिस्थितियों दृष्टिकोणों को जैसे ताक

पर रख देने को हमे विवश कर देता है, वैसे ही वे कभी-कभी उनका नव-निर्माण भी करती है ।”

“पर उन परिस्थितियों को जन्म कौन देता है ?”

• “प्रकृति ।”

भाभी इतना ही कह पायी थी कि मालूम हुआ, सामने से आकर जो गाड़ी बाये से निकल रही थी, वह यकायक खड़ी हो गयी और तत्काल किसीने पूछा—“इतने सबेरे कहाँ पाँडियजी ?”

यह स्वर लालाजी का था । तोंगे से उतरकर मैंने उनके पास जाकर कह दिया—“बहुत सबेरे घूमने निकले थे । अब लौटे जा रहे हैं । और कहिये, मुरलीबाबू का क्या हुआ ?”

लालाजी बोले—“इस तरह नहीं, आज घर पर मिलो तो बताये ।” बहुतेरी बातें हैं और तुमसे उनके सम्बन्ध में राय भी लेनी है ।”

“पर इस समय आप जा कहों रहे है ?”

“वकील साहब के पास ।”

“घर पर कै बजे पहुँचेगें ?”

“नौ-साढ़े-नौ तक । आठ तो बज ही गया ।”

• “अच्छी बात है । मैं घर पर मिलूँगा ।”

“अच्छा, एक बात और सुनो ।”

“कहिये ।”

“अर्चना आज जनता-एक्सप्रेस से आ रही है । उसे अपने यहाँ ठहराना होगा ।”

सुनकर मुझे आश्चर्य कम प्रसन्नता अधिक हुई । मैंने तुरन्त कह दिया—“अवश्य ।”

“कोई उसे लेने आवे, तो जाने न दीजियेगा ।”

“अच्छा, स्वीकार है ।”

“तो मैं निश्चिन्त रहूँ ?” शब्दों के साथ गाड़ी स्टार्ट होने लगी ।

• मैंने कह दिया—“पूर्ण रूप से ।” फिर यह भी पूछ दिया—“पर यह

तो बतला दीजिये कि मुरलीबाबू है कहां ?”

वे बोले—“पता नहीं, कहीं छिपे हुए हैं ।”

मै सोचने लगा—यद्यपि लालाजी और हम विपरीत दिशाओं में जा रहे हैं, किन्तु पहुँच रहे है एक ही लक्ष्यबिन्दु पर ।

भाभी ने अपना हाथ ताँगे के विभाजनवाली पटिया पर रखते हुए पूछा—“ये मुरली बाबू कौन है ?”

मैने बतलाया—“हमारे एक पथ-भ्रष्ट बन्धु ।”

“तुम्हारे अधिकांश बन्धु ऐसे ही है ।” कहकर भाभी मुसकराने लगीं ।

“और उन्हीकी कृपा का यह फल है कि मुझे तुम्हारी जैसी प्राणमयी भाभी मिली है । अगर अब मै मर भी जाऊँ, तो मुझे भगवान से कोई शिकायत न होगी ।” मेरा उत्तर था ।

तब “यह तुम कह क्या रहं हो ?—यह क्या कह रहे हो तुम ?” कहती-कहती और महत् आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर मुझे देखती-देखती भाभी मूर्छित हो गयी !—इस दशा मे यदि मै उन्हे हाथ से—बगल से—सम्हाल न लेता, तो सम्भव था, वे नीचे गिर ही पड़ती !

डाक्टर सिनहा के यहाँ से होता हुआ ज्यो ही घर पर पहुँचा, त्यों ही देखा, दरवाज़े पर ताँगा खड़ा है और देहली पर खड़े हुए दीक्षितजी सुखराम से कह रहे है—“अब मैं जाता हूँ । यही एक बाक्स रहगया है, सो लेते आओ ।” और उनके पीछे सुनहले फ़ोम का डार्क चश्मा लगाये हाथ जोड़े खड़ी वैशाली नमस्कार कर रही है ।

दीक्षितजी के चरण स्पर्शकर मैंने कहा—“खूब हैं आप । तार न सही, कम-से-कम पत्र तो डाल सकते थे ।”

पान मुँह मे भरे हुए दीक्षितजी बोले—“पहले से कुछ निश्चय तो था नहीं । मधू का पत्र पाते ही मै चल दिया । क्योंकि तुम्हारे जन्म-दिन का आनन्द लूटना तो मै छोड़ नहीं सकता था ।”

और सिर उठाकर चश्मे के भीतर से झाँकती हुई वैशाली बोली—  
“आकस्मिक मिलन की बात ही और है । पत्र या तार से सूचना देकर-

आने में मुझे तो कोई चार्म जान नहीं पड़ता ।”

माभी अब थोड़ी स्वस्थ हो चुकी थीं । उन्होंने भी दोनों का चरण स्पर्शकर कहा—“अहोभाग्य कि मुझे भी दर्शन मिल गये ।” फिर वैशाली को छाती से लिपटाकर उसका प्यार करती हुई बोली—“इस हरिणी को आप साथ खूब ले आये ।”

सब लोगों को ऊपर भेजकर मैं जीने से चढ़ ही रहा था कि रास्ते के एक कोने में चुपचाप खड़ी लाली बोली—“मेरी एक बात सुनोगे भैया ?”

आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए मैंने कह दिया—“अब मैं तुम्हारी हर एक बात सुन सकता हूँ लाली ।”

“देखा भैया, हर एक बात कहनेवाली लाली तो मर गयी । अब तो वही लाली बर्बाद है, जो गिनी-चुनी दो बातें ही कर सकती है; सो भी तब, जब तुम्हें अवकाश हो ।...खैर, मुझे कहना यह है कि अब मैं पढ़ना चाहती हूँ । सो किसी विद्यालय में भरती करवा दो ।”

यो भी ऐसे कामों में ढेर-दार करने की मेरी आदत नहीं है । फिर लाला का अनुरोध ! अतः मेरे मुँह से निकल गया—“तो भट से तैयार हो जाओ, दस मिनट में । मैं अभी चलता हूँ ।” सड़क पर देखा, ताँगे-वाला जा ही रहा था । तब मैंने कह दिया—“ज़रा इस ताँगेवाले को रोक लेना लाली ।”

ऊपर पहुँचते ही देखता हूँ, माँ प्रसन्नता के मारे फूली-फूली फिरती हुई दीक्षितजी से कह रही है—“तुमने यह बहुत अच्छा किया बेटा कि वैशाली त्रिटिया को भी मुझे दिखला दिया । देखो तो, भगवान ने बिल्कुल पारवती की-सी सूरत-मूरत दी है ! अरी चँदिया, एक थाल तो ले आ । मैं खुद अपने हाथों से त्रिटिया के पैर पखारूँगी ।”

जब थाल और बाल्टी भर पानी आ गया और वैशाली को कुर्सी पर बैठाकर माँ उसके पैर धोने को तत्पर हुई, तभी दीक्षितजी आ गये और अँगरेज़ी में बोले—“देख वैशाली, तू माताजी से अपने पैर-वैर

मत धुलवाना । और अगर वे ज़िद करें, तो स्पष्ट कह देना कि तुम मेरी माँ हो, मेरा धर्म है तुम्हारी सेवा करना, न कि तुमसे सेवा लेना । सो अगर तुमने ज़्यादा ज़िद की, तो मैं खाना-पीना तक त्याग दूँगी । ऐसे समय पर बापू का दिया हुआ सत्याग्रह तो अस्त्र बड़ा अचूक बैठता है !”

इसी समय एक साफ़ तौलिया कपड़ोवाले ट्रंक से निकालने को जो माँ अपनी कोठरी के अन्दर गयी । तुरन्त उनके पास पहुँचकर मैंने पूछा—  
“थोड़ी देर तक मेरे बिना सब काम सम्हाल लोगी न ? मुझे इस समय लाली को एक स्कूल में भरती कराने के लिये ज़रा बाहर जाना है, तोंगा बाहर खड़ा हुआ है ।”

कुछ आश्चर्य के साथ माँ बोली—“जो चाहे सो कर । अभी भाभी को लेकर बाहर से चला आ रहा है । अब लाली को लेकर फिर बाहर जानेवाला है ! लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ! सब लोग मेरी तरह तेरी माँ तो है नहीं, जो भरी गंगा में पैठकर यह क्रसम उठा जायेंगे कि मेरा राजेन्द्र भीष्मपितामह का अवतार है !”

राह चलते समय कोई मुझे पहले देख भर पड़ जाय, फिर चाहे वह मुझ पर भाला का वार कर दे चाहे तलवार का, मैं समझ लूँगा । पर अगर कोई राह चलते हुए छुज्जे पर से मुझे गोली से उड़ा दे, तो मैं क्या कर सकता हूँ ! इस समय मुझे कुछ ऐसा ही मालूम हुआ कि वार सामने से नहीं, आसमान से हुआ है !

इसके अतिरिक्त और भी एक उलझन है मुझे । सत्य-कृष्ण की / राम जाने । उसे बतला देना मेरा काम है । अब तक मेरी मान्यता यह रही है कि कर नहीं तो डर नहीं । अभिप्राय यह कि अगर मैंने वास्तव में अपराध नहीं किया है, तो मुझे किसीसे भी डरने की आवश्यकता नहीं है । पर आज मैं कुछ ऐसी घटनाओं से घिरता चला जा रहा हूँ कि करना-धरना तो दूर रहा, डरना-ही-डरना शेष रह गया है ! भाभी की स्थिति ऐसी दयनीय हो रही है कि उनसे दिल खोलकर बात करना एक नया संकट मोल लेना है । और बात करने का मेरा दङ्ग कुछ ऐसा विचित्र है

कि साधारण-सी फुलझड़ी पर पंडाल जल उठता है ! मैं जानता हूँ कि भाभी का मन कितना कोमल है । मैं यह भी जानता हूँ कि उन्होंने मुझे किस प्रदेश का राजा बना रक्खा है । लेकिन स्वर्णों का राजा जीवन के चौराहे पर खड़ा होकर बैड़ ब्रजाने को तो तैयार हो नहीं सकता ! मैं मर जाऊँगा, पर भाभी की मर्यादा की रक्षा मेरे शव का कफ़न तक करेगा ! वे मर जायेंगी, पर कभी यह न चाहेगी कि कोई मुझे एक शब्द कहने का साहस करे ! पर अब आज से हमारे स्वर्णों का राज लुटना प्रारम्भ हो गया ! माँ ने ऐसी बात कह दी है, जिसको मैं सहन न कर पाऊँगा । मैं चाहूँगा कि भाभी जितनी जल्दी हो सके, कानपुर लौट जायें । कानपुर न लौटे, तो दिल्ली चली जायें । मैं अब उनके बीच में नहीं पड़ूँगा । रह गयी लाली, सो उसको भी साथ लेकर मैं बाहर नहीं निकलूँगा । माँ ने ठीक कहा है कि सब लोग उनकी तरह मेरी माँ तो है नहीं । मतलब यह कि दुनियाँ जो कहेगी, मुझे मानना ही होगा उसको । मैं जो कहूँगा, उसे दुनियाँ माने चाहे न माने । मैं सत्य चाहे जितना बोलूँ, दुनियाँ उस पर विश्वास न करेगी । दुनियाँ जिसको सत्य कहेगी, मुझे उस पर विश्वास करना पड़ेगा । आज दुनियाँ ने मेरे ऊपर अंगुली उठायी है । अच्छी बात है, मैं दुनियाँ के अंगुलि-निर्देश पर नाचना स्वीकार करता हूँ ।

मैंने तुरन्त कह दिया—“अच्छी बात है । मैं लाली से कह दूँगा, मुझे अवकाश नहीं है ।”

“ना रे राजेन, तू मेरी बात समझा नहीं ।” तौलिया लेकर उटती हुई माँ कहने लगी—“मैं उसके काम के लिए एक-दो बार बाहर जाने को तुझे मना नहीं करती । मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि इस समय न जा तू कहीं । जब घर में मेहमान आयें, तब तो तुझे बाहर जाने के और काम थोड़ी देर के लिए छोड़ ही देने चाहिये ।”

“नहीं माँ, मैं इतना सस्ता नहीं हूँ । मैं लाली का कोई काम नहीं करूँगा । आखिर समाज में मेरी भी तो एक मर्यादा है । तुमने ठीक मौके पर मुझे सचेत कर दिया । भाभी को भी मैं हमेशा तोंगे में बैठाकर जहाँ

देखो वहाँ डोलता फिर्लूँ, यह भी कोई तमाशा है ! बड़े आदमियों को ये छोटी-मोटी बीमारियों तो चला ही करती है । फिर कौन उनके पीछे भूख प्यास सहे, दौड़े-धूपे और लोगों की आँखों में तिनके की भाँति सही-गलत खटकने की वस्तु बने । मैं आज उनसे भी साफ़-साफ़ कह दूँगा—कान-पुर में डाक्टरों की कमी नहीं है । वहाँ भी तुम्हारा इलाज ठीक तरह से हो सकता है । यहाँ मुझे इतना अवकाश ही कहाँ है जो तुम्हारे पीछे मारा-मारा फिर्लूँ ! जो कुछ और जहाँ तक हो सका, उतना ही बहुत है । आज चलो मैं तुम्हें कानपुर भेज आऊँ । है न ठीक माँ !”

“पर आज तू मुझको इतना ग़लत क्यों समझ रहा है, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है ! मैं कहाँ कहती हूँ कि तू बहू की दवा करने में कोताही कर !—मैं कहाँ कहती हूँ कि उनके साथ दहलने, घूमने अथवा डाक्टर साहब के यहाँ जाना बन्द कर दे । मैंने तो सिर्फ़ इतना कहा है कि यह भी कोई बाहर जाने का वक़्त है, जब मेहमान घर में बैठे हों । मैं कहती हूँ और कोई न सही, मेहमान ही अगर कुछ कहने लगें, तो मैं उन्हें क्या जवाब दूँगी ?”

“नहीं माँ, मैं इतना बेवकूफ़ नहीं हूँ, जो तुम्हारी बात का अर्थ न समझूँ ! जिस बात को आज तक कोई ज़बान पर लाना दूर रहा, कल्पना में भी न ला सका, वही तुम कह रही हो और मैं सुन रहा हूँ । जो बात कोई दूसरा मेरे लिए कभी कह नहीं सकता—सोच नहीं सकता—वही तुम सोचने लगी हो ! तब मैं कैसे मान लूँ कि मुझमें कहीं खोट नहीं है । खोट होगी, तभी तो तुमने उसकी तरफ़ इशारा किया है ! और खोट मुझमें है, तो मैं अपने को भी देख लूँगा । मैं छोड़ूँगा नहीं अपने आपको भी । अब मेरा जन्मदिवस न मनाया जाय, मैं स्पष्ट कहे देता हूँ । मेरी शुभ-कामनाओं पर कोई भी मंगल-गान न हों, मैं सावधान किये देता हूँ । मेरे घर अब किसी की दावत न हो, मैं ऐलान किये देता हूँ । मेरे घर के खान-पान में कोई मामूली-सा भी परिवर्तन न हो; यह मेरा स्पष्ट आदेश है ।”

इतना कहकर मैं चुपचाप अपने कमरे में चला आया। माँ ने उत्तर में एक शब्द नहीं कहा। और मैंने भी उनका उत्तर पाने की प्रतीक्षा नहीं की। लेकिन कमरे में आते-आते मैं स्वयं रो पड़ा। मेरा रोना सुनकर माँ मेरे पास आयी और मेरे सिर को अपनी गोद में लेकर कहने लगी—  
“मैं जानती हूँ, मेरा लाल ऐसा नहीं है कि कोई उस पर अँगुली भी उठा सके। बस यही विश्वास भगवान मेरा दृढ़ बनाये रखे।”

विसूचित का ज्वालामुखी अब शान्त हो गया है। घर में मुझको और माँ को छोड़कर अब और कोई नहीं है।

उस दिन सब जगह मैंने सूचित कर दिया था कि जब देश भर में आग लगी हो, तब मैं अपने यहाँ जशन नहीं मनाऊँगा। मुझे क्षमा कर दिया जाय। मैं उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ, जिनके महलों में जीवित लाशें और नर-कंकाल पड़े रहते हैं, पर जिनकी तु द-वृद्धि के नुस्खों में कोई अन्तर नहीं पड़ता ! मैं वह ज़लील भाड़-भँखाड़ नहीं हूँ, जो प्रवाह में पड़कर बहता चला जाता है—बहता चला जाता है। मैं वह मच्छ नहीं हूँ, जो अपनी ही जाति के बच्चों-कच्चों को निरन्तर उदरस्थ किया करता है। मैं वह अज्ञा नहीं हूँ, जो अपनी ही कुत्ति में उत्पन्न हुए अज से सहर्ष सगौरव गर्भधारण करा लेती है। मैं वह विकृत दोगी साधु नहीं हूँ, जो भोजन करके तुरन्त वमन इसलिए कर डालते हैं कि उन्हें केवल स्वाद का लोभ होता है; पर सच पूछो तो मनुष्य रूप में है वे जीभ लपलपाते हुए लार टपकानेवाले कुत्ते मात्र !

माँ ने बड़े संयम से काम लिया। वे चुपचाप अपने काम में लगी रही। पर उनका मुख उतरा-उतरा-सा था। आगत-स्वागत में उन्होंने किसी प्रकार की कौर-कसर नहीं रहने दी। दीक्षितजी, वैशाली और मामी को तो उन्होंने स्वयं बारम्बार परोसकर खिलाया। बातचीत में कभी-कभी प्रसन्नता भी उन्होंने प्रकट की। दीक्षितजी ने अनुरोध किया कि मैं उनके साथ बैठकर खाना खाऊँ; पर मैंने कह दिया कि फिर



मुझे संतोष न होगा। किसको कौनसी चीज़ कब चाहिये, इसका निरीक्षण मैं स्वयं करूँगा।

मैं जब इन कार्यों में व्यस्त था, तब मुझे क्षण-क्षण पर अपने संकल्प की शिथिलता का भान होता जाता था। पर मुझे ग्लानि नहीं थी; क्योंकि तत्काल मुझे ध्यान आ जाता था कि संकल्प मेरा पूरा अवश्य हो जाता, पर उसका परिणाम बड़ा भयानक होता। मेहमानों का स्वागत न होता, तो माँ का आमरण अनशन निश्चित हो जाता। फिर एक ज़रा-सी बात पर उनका निधन होना कितनी दुःखद घटना होती! इस घटना को बचा ले जाने में मेरी हार की जो स्थिति है, उसे मैं सहन कर सकता हूँ। इसके सिवा क्रोध और उत्तेजना में किये हुए संकल्पों को कभी अधिक महत्व भी नहीं देना चाहिये। ऐसे व्यक्ति बड़े भयावह होते हैं, जो प्रतिक्रिया में पड़कर कुछ-का-कुछ कर डालते हैं।

अब जो अपने आप पर सोचने और विचार करने लगता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं सभा-समाज में बैठने-उठने लायक नहीं हूँ। कोई भी व्यक्ति मेरी दुर्बलताओं से अनुचित लाभ उठा सकता है। कोई भी व्यक्ति मुझे कड़ी बात कहकर रो पड़ने को विवश कर सकता है। अच्छा, तो अब मुझे कड़ा बनने की आवश्यकता है! पर क्या मैं इतना कठोर बन भी सकता हूँ!

लेकिन जहाँ तक बाहरी लोगों के स्वागत-सत्कार का प्रश्न था, मैं अपने संकल्प पर यथावत् स्थिर बना रहा। दोपहर की ट्रेन से अर्चना आकर जब मेरे यहाँ ठहरी, तो एक बार फिर माँ का माथा टनका। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा तो कुछ नहीं, पर उनकी मनोभावनाएँ मुझसे छिपी न रह सकी। परिचय कराते क्षण मैंने माँ से कहा था—“यों तो ये देशाली की गुरुजी है, पर मैं इनको और भी पहले से जानता हूँ—जब ये यहाँ रहती थीं। और इधर कुछ दिनों से तो इन्होंने मुझे अपना भाई बना लिया है।” इस अवसर पर मैंने यह नहीं बतलाया कि वे अपने पतिके विरुद्ध चलने वाले एक मुकदमे में पुलिस के पक्ष में गवाही दे

अपने मानस पट पर छाप लिया, जो कह रही थी - “अब मुझे मरने में कष्ट न होगा।”

यद्यपि मेरा हृदय उन क्षणों की कल्पना करके थर-थर कम्पित हो जाता है, जब भाभी का निधन होगा ? सोचता हूँ मैं उनकी उस महायात्रा को सह कैसे सकूँगा ? मेरे प्राण कैसे स्थिर रहेंगे ? मेरा मन कहाँ आश्रय पायेगा ? मैं किसको देखकर जीवित रहूँगा ? कहीं मैं पागल तो न हो जाऊँगा ? और हो ही गया पागल, तो दुनियाँ मुझे क्या कहेगी ! कहेगी कि यह भी उन्हीं में से एक है । इसका भी नाम नोट करलो । बड़ा विचारक बनता था । अब दिमाग ठिकाने लग गया । जिस पशुशाला में बन्द कर देने योग्य था, घूम-फिरकर वही आ पहुँचा ।

हा हा हा हा ! हा हा हा हा !!

तब तुरन्त सावधान होकर क्षण-क्षण पर मैं उसी समय की कल्पना कर रहा था, जब भाभी यहाँ से चली जायँगी । पहाड़ों के पथरों को पीठ और कंधों पर लादकर चला जा सकता है, मानता हूँ । लेकिन उन्हें छाती पर छादकर जीवन की सौख्य भी पूरी की जा सकती हैं, इसका पहले अनुभव न था । पर प्रभु की इस अद्भुत इच्छा को क्या कहूँ कि आज इसका भी अनुभव करना पड़ा ।

दीक्षितजी को जिस कमरे में ठहराया था, वह सड़क के दूसरी ओर एक ऐसे मुहल्ले में पड़ता था, जहाँ दूधवाले ग्वालों की बस्ती थी । वहाँ छज्जे पर से मैतों के छोटे-छोटे बच्चे भी कभी-कभी देखने को मिल जाते थे ।

दीक्षितजी ने जब मुझे बुलाकर कहा—“मैं तो सोचता था, तुम रात-दिन आनन्द-विनोद में डूबे रहते होगे । पर यहाँ आकर मुझे तुम्हारा दूसरा ही परिचय मिला । जब देखो तब पढ़ना\*\*पढ़ना । पढ़ना भी कोई शगल है जो ! इससे तो कहीं अच्छा है यह मैतों का तबेला । पशु-प्रकृति का कभी-कभी परिचय तो मिल जाता है ! अभी-अभी मैंने देखा—एक मैस अपने आपको मैसा समझकर निमंत्रण की कामना प्रकट कर रही थी । तभी

मेरे ध्यान में आया कि तुम्हारी अपेक्षा इस में अधिक उपयोगिता है संसार के लिए ।”

मैं इसके उत्तर में कुछ नहीं कह पाया । बात यह हुई कि जब दीक्षित जी की यह बात पूरी हो रही थी, उसी समय वैशाली उस कमरे में प्रवेश कर रही थी । साड़ी उतारकर उसने शर्ट-पैट धारण कर रखी थी उस समय । आते ही उसने कमीज़ के जेब से वही मेरा उपहार में दिया हुआ फ्लाउन्टेन-पेन निकाला और अपनी शर्ट-पैट खोलकर एक कापी के बीच से एक पन्ना फाड़ते हुए यह लिखकर पूछा—“बतलाइये, उस कापी के लिए इस फटे हुए पन्ने की क्या उपयोगिता है ?”

संयोग की बात तो देखिये, उसी समय उस द्वार से भाभी गुज़र रही थीं । वैशाली का प्रश्न सुनती-सुनती वे भी उस कमरे में आगयीं । उनकी वेणी पर वह स्वर्णभरण अब भी पूर्ववत् सुशोभित था । उनके कानों के झूमर आज ही सोने के यहाँ से साफ़ होकर आये थे । दीक्षितजी उन्हें देखते ही बोले—“देखो भाभी, इस बार तुमको मेरे साथ चलना ही पड़ेगा । जब जौहरी साहब दिल्ली में राग-रंग मना रहे हों, तब भी तुम अपना यह उदास-उदास मुख लिये जहाँ-तहाँ पड़ी रहो, यह ठीक नहीं है ।”

तब भाभी मुसकराती हुई कहने लगी—“ये सब बातें बाद में कीजियेगा । पहले यह बतलाइये कि वैशाली के प्रश्न का आपके पास क्या उत्तर है ?”

चँदिया तश्तरी में पान दे गयी ।

चार बीड़े एक साथ मुँह में दबाकर दीक्षितजी बोले—“वैशाली को तो सदा एक-न-एक ऐसा व्यक्ति चाहिये, जिसको वह खिलौने की तरह बजा सके, बन्दर की तरह नचा सके और रेल की तरह दौड़ा सके ! वैसे चाहे भाभी यहाँ देख भी न पड़ती, लेकिन वैशाली ने ऐसा प्रश्न कर दिया कि अंगूर के गुच्छे की तरह लोग हाथ बड़ा-बड़ाकर उसे तोड़ने का प्रयत्न करने लगे !”

तब वैशाली के सिर पर हाथ फेरती और उसे अपनी सलोनी देह में समेट-

दती-सी भाभी बोलती—“आप चाहे जो समझें दीक्षितजी, आपकी बात ही दूसरी है। लेकिन मैं तो अभी से यह मानने लगी हूँ कि इस अवस्था में इतनी सांस्कृतिक चेतना आपको शायद ही किसी लड़की में मिले।”

वैशाली मुसकराती हुई बोली—“आप चाहे जो कहिये। पर मुँह पर प्रशंसा करने से बच्चों की ही नहीं, बुढ़ों तक की आदत खराब हो जाती है, यह मैं जानती हूँ।”

भाभी बोली—“तभी तो मैं यह कह रही थी कि वैशाली वैशाली है। ..अच्छा वैशाली, अपने प्रश्न के सम्बन्ध में तुम्हीं न बतला दो कि आखिरकार तुमने उसका क्या उत्तर सोचा है?”

वैशाली आज भी टाफ़ी लेकर आयी थी। एक टेबिलेट मुँह में डालकर उसका रस चूसती हुई बोली—“अच्छी बात है, सुनिये। कल्पना कीजिये कि भैया ने उत्तर देते हुए कहा—कापी की साधारण उपयोगिता यह है कि उसका हर पृष्ठ पूरा-पूरा लिखा जाय। जिसका अर्थ यह हुआ कि जीवन के सारे अंग पूर्ण किये जायें—सुख-दुख, जमा, दया, उदारता, वीरता, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, प्रतिहिंसा—यहाँ तक कि कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत दुर्बलता भी।”

“लेकिन कुछ हो, भाभी को उनका यह उत्तर कुछ जँचा नहीं और उन्होंने कहा कि सारे गुणों के पश्चात् अन्त में यदि दुर्बलताओं के द्वारा हमारा अधःपतन ही हो जाय, तो इससे तो अच्छा यह होगा कि वह पन्ना खाली ही पड़ा रह जाय। चाहे आवश्यकता के समय कोई उसे इसी तरह भले ही फाड़ ले।”

किवाड़ की ओट में खड़ी चुपचाप मधू सब कुछ सुन रही थी। अतः इसी समय वह प्रकट हो गयी और सिर नीचाकर हँसती हुई बोली—“यह मेरा मत नहीं हो सकता। क्योंकि मैं यह कभी पसन्द नहीं कर सकती कि जीवन का कोई पन्ना इतना कोरा छोड़ दिया जाय कि कोई उसे फाड़कर ही चम्पत हो जाय।”

सुनकर भाभी प्रसन्न होकर बोल उठीं—“मधू ने भी अच्छा तर्क पेश किया ।”

तब वैशाली ने एक टाफी मधू को देते हुए धीरे से कहा—“इसी बात पर बखकर बतलाइये, कैसी है ?” फिर कुछ ज़ोर से बोली—“मगर मेरे इन भाईसाहब को भाभी का यह उत्तर भी अगर पसन्द न आये तो आप क्या कीजियेगा ? अतः आपने कहा—पूरा पेज लिख लेने के बाद भी अगर तबियत न भरे, तो उसकी दूसरी ओर भी लिख डालने में मत चूको । आप जानते हैं इसका क्या मतलब हुआ ? मतलब यह हुआ कि अगर प्रयत्न करते-करते आप अभी सफल नहीं हुए हैं, तो फिर प्रयत्न कीजिये, फिर कीजिये प्रयत्न । अन्त में आपको अवश्य सफलता मिलेगी । अर्थात् आप सफलता के पीछे लड़ लिये फिरते रहेंगे, तो वह भागकर जायगी कहाँ ? उसे मिलना ही पड़ेगा ।”

“अब रह गये अपनेराम” वैशाली कुछ विनोद की भाषा में बोली—“तो उसकी राय इस मामले में आपको बिल्कुल अजीब लगेगी । क्योंकि अगर दूसरे पेज पर ही लिखना है, तो सबसे अच्छा यह होगा कि जो पेज एक बार भरा जा चुका है, उसे दो आड़ी लकीरों से काट डाला जाय और फिर जो कुछ भी कहना हो, उसे दूसरी ओर चार पंक्तियों में लिख दिया जाय । अर्थात् जीवन में बहुत कुछ कर डालने पर भी यदि ऐसा प्रतीत हो कि सब गुलत हुआ है, तो फिर क्यों न उसको काटकर—सब कुछ समाप्त करके—कुछ ऐसा लिखा जाय, कुछ ऐसा किया जाय, जो युग-युग तक अमरबेलि की भाँति लहराता और सौरभ फैलाता रहे !”

भाभी इस बात को सुनकर सन्न रह गयी; कुछ बोली नहीं । दीक्षितजी ने कहा—“इसके विचार कभी-कभी बड़े रेडिकल हो जाते हैं । यद्यपि मानता हूँ कि यह भी एक दृष्टिकोण है । यह बात दूसरी है कि हमको अभी व्यावहारिक न जान पड़े ।” “अब मुझे बोलना पड़ा । मैंने कह दिया—“पर यह सब तो वैशाली की अपनी बात हुई । मेरा मत, कुछ और है । वास्तव में आप लोगों ने मूल प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया । प्रश्न तो

यह था कि फटे हुए पन्ने की, उस कापी के लिए, क्या उपयोगिता है ? और उत्तर उसका यह होना चाहिये था कि उस पन्ने की उपयोगिता तभी तक है, जब तक वह उस कापी का अंग है। विलग हो जाने पर उस कापी के साथ उसकी कोई उपयोगिता नहीं—वियोग में आँसू बहाने के अतिरिक्त !”

इधर ये बातें हो रही थी। उधर दरवाज़े पर कोई खड़ा-खड़ा प़कार रहा था। स्वर से ही जान पड़ा, लालाजी आ गये।

ज्यों ही उनके पास पहुँचा, वे बोले—“अभी चलना होगा। बहुत आवश्यक काम है। मैंने कहा—“मगर क्या दस-पाँच मिनट भी न बैठियेगा ?”

वे बोले—“नहीं। इस समय एक-एक मिनट का हिसाब रखना पड़ रहा है।” तब मुझे विवश होकर जाना ही पड़ा।

## बीस

जान पड़ता है, आज फिर मुझे नीद नहीं आयेगी। सारी रात यों ही करवट बदलते बीत जायगी। लालाजी ने मुरलीबाबू के नाम वारंट तो निकलवा दिया, पर उनका पता नहीं चला। अर्चना से यो चाहे सहायता मिल भी जाती, पर जब से यह निश्चय हो गया कि वे इस बार सदा के लिए मुरलीबाबू से पृथक् हुई हैं, तब से मुरलीबाबू ने भेद देना दूर रखा, उससे मिलना-जुलना भी बन्द कर दिया था।

फिर भी जब लालाजी अर्चना से मिले और उनसे अर्चना को यह ज्ञात हुआ कि लालाजी की लड़की जमना मुरलीबाबू के साथ है, तो उसका खून खौल उठा। उसने जमना का पता लगा लेने की प्रतिज्ञा कर ली। वह सुना करती थी कि यहाँ अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियों की एक ऐसी संस्कृति पनप रही है, विवाह-विच्छेद और स्वच्छन्द विहार जिसका एक मात्र उद्देश्य है। इस दल में उच्चपदाधिकारियों, बड़े से लेकर कम-से-कम प्रान्तीय ख्याति के नेताओं और मिल-मालिकों की लड़कियाँ प्रमुख हैं।

उनका सब से बड़ा बल है स्वावलम्बन और उनकी सबसे बड़ी शक्ति है रूप और फ्रैशन। उनमें मुख्यतया अविवाहिता है। जो विवाहिता भी है, वे अपने स्वामियों के साथ न रहकर पिता-माँ-बहिन के साथ रहना अधिक पसन्द करती है। स्वामी के घर रहने पर भी वे सेवा और परिश्रम का कोई काम नहीं करती। न वे समय पर खाना पकाकर खिला सकती है—न नौकर के अभाव में एक बर्तन मल सकती है। बटन दूट जाने पर वे उसे कुरते में टॉक तक नहीं सकती। हाँ, दो-एक काम वे कर सकती है। वे साथ में सिनेमा देखने को तैयार हो सकती है। समा-समाज में साथ दे सकती है। और अगर आप धुमाने का वादा करें, तो कार पर आपकी बगल में बैठ सकती है। उनके पास रुपये की कमी नहीं है; पर नये मित्र होने के कारण उपहार में आप उन्हें कोई भी कीमती वस्तु दे सकते हैं। कोठी या बंगले पर सबके सामने आप उनसे मिल तो नहीं सकते, पर पत्र भेजकर या फोन के द्वारा पहले से कार्यक्रम तै कर के आप उनसे मिलने का लाभ कभी भी प्राप्त कर सकते हैं। आप उनसे विवाह तो नहीं कर सकते, पर अपने कार्यालय अथवा सयोजन में किसी मर्यादा-पूर्ण पद पर आप उन्हें सहर्ष रख सकते हैं। उस समय आप उन्हें घर पर भी बुला सकते हैं। यों आप उन्हें अपने घर पर एक दिन भी नहीं ठहरा सकते; किन्तु आपका कार्यालय यदि शिमला, मसूरी, नैनीताल अथवा दार्जिलिंग चला जाय, तो आप एक साथ छै महीने तक उन्हें साथ रख सकते हैं !

इस समाज की नारियों संतानोत्पादन स्वीकार नहीं करती। जिस अवधि तक वे शिक्षा-सस्थाओं में उच्च पदों पर कार्यरूढ़ रहती हैं, उस कार्यकाल में, कहीं-कहीं यहाँ तक देखा गया है कि कुछ अपवादों को छोड़कर विवाहिता अध्यापिकाएँ अपनी सस्था तक में रखना उन्हें स्वीकार नहीं होता !

एक बार इसी दिल्ली में अर्चना ने पहले भी एक संस्था में अध्यापिका की जगह प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। पर उस समय उसे इसमें सफ-

लता नहीं मिली थी। किन्तु इस बार विवाह-विच्छेद की योग्यता प्राप्त करते ही उसे शरण मिल गयी। यह बात दूसरी है कि इस तरह की योग्यता कम-से-कम अर्चना को स्वतः प्राप्त करने की आवश्यकता न पड़ी हो, परिस्थितियों ने ही उसे जीवन के इस मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया हो।

जो हो, अर्चना जब उन देवियों से मिली, जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करती हैं, तौ उसे बड़ा प्रोत्साहन मिला। भोंति-भोंति के आश्वासन उसे मिलने लगे। ...एक देवीजी टेलिग्राफ-आफिसमें थी। वे नखों पर पालिश कर रही थी। उन्होंने बतलाया—माल होटल में आपको सिर्फ कैशबुक लिखनी होगी। लाजिग-फूडिंग-फ्री। आप हमारे साथ चलेगी, तो मैं आपको प्रोप्राइटर से मिला दूँगी। ...एक देवीजी इन्शोरेस कम्पनी में थी। वे ग्रामलेट को चाकू से काट रही थी। कहने लगी—जब आप व्याख्यान दे सकती हैं तब तो आप हमारी संस्था की लाइफ-मेम्बर भी बन सकती हैं। फिर आपको कोई चिन्ता न रह जायगी। रह गयी बात विचारों की। सो आपके निजी विचार चाहे जो हो, केवल कार्यक्षेत्र में आपको संस्था के उद्देश्यो का ध्यान रखकर बोलना पड़ेगा। उसके बाहर आपको पूरी स्वतंत्रता रहेगी। ...एक टेलिफोन-गर्ल थी। घण्टे-भर इधर-उधर की बातचीत के अनन्तर वह बोली—“और तो सब ठीक है। पर आपको नृत्य तो सीखना ही पड़ेगा। हमारे यहाँ इस कला का लोप हो गया है। रावण जब सीता को हरण करने आया था, तब वह किस तरह उनको ज़ोर और ज़बरदस्ती से उठा ले गया होगा, अगर आप नृत्य में इस भाव का प्रदर्शन कर सकें, तो दिल्ली भर में, मैं कहती हूँ, ‘विदिन वन नाइट’ आप प्रसिद्ध हो जायें ! आप मुझे फ़ालो कर रही हैं न ? तो ऐसा कीजिये, आप तीन बजे हमारे आफिस में आ जाइये। काम तो हमारा ख़तम हुआ रहेगा; इसलिए थोड़ी देर ग्रुप-शप और चायमें व्यतीत करके आप हमारे साथ चली चलेगी। फिर सब ठीक हो जायगा। पर आपकी यह इकलाई-विकलाई काम न देगी। उस वक्त आपको जारजेट की साड़ी पहिनकर आना होगा। और भी दो-एक बाँते



है, जिन्हे मैं आपको ठीक अवसर पर बतला दूँगी।”

अर्चना को मालूम था कि ये सब देवियाँ अपने-अपने देवताओं को साथ लेकर एक बार कनाट-लेस का चक्कर अवश्य लगाती हैं। इसलिये कई दिन तक तो वह सायकाल सात बजे के लगभग वही चक्कर काटती रही। उसके साथ की एक अध्यापिका ने पूछा भी कि आपको कुछ खरीदना है क्या ? तब अर्चना ने कह दिया—“खरीदना तो है, पर मैं उसके लिए एक फ्रेंड की प्रतीक्षा कर रही हूँ।”

उसने पूछा—“कौन फ्रेंड ?”

अर्चना—“आप उनको नहीं जानती।”

वह—“पर आप नाम तो उनका बता ही सकती हैं।”

अर्चना—“राजहंस नाम है उनका।”

वह—“क्या काम करते है ?”

अर्चना—“देशोद्धार का।”

वह—“लीडर हैं ?”

अर्चना—“लीडर क्या चीज़ है उनके सामने ! लीडर तो केवल भविष्य का स्वप्न देखते हैं। पर वे ऐसे वीरपुरुष है कि परिणामों पर विचार किये बिना स्वप्नों को चरितार्थ करके देखते हैं !”

वह—“आप मज़ाक कर रही है।”

अर्चना—“मज़ाक नहीं, मैं सत्य कह रही हूँ।”

वह—“ऐसा व्यक्ति आपका मित्र हो सकता है, मैं इस पर विश्वास नहीं करती।”

अर्चना—“और अगर मैं यह कहूँ कि ऐसा व्यक्ति मेरा पति रहा है, तो आप इस पर विश्वास करेंगी ?”

सुनकर वह अवाक़् हो उठी। तब हाथ पकड़कर वह अर्चना को अपने निवास-स्थान पर ले गयी। वहाँ जब अर्चना ने उसे जमनावाली घटना बतलायी, तब उसने कह दिया कि अगर वे दिल्ली में होंगी, तो मैं उनका पता अवश्य लगा दूँगी।

उसी दिन सायंकाल उसे एक बहिन से पता चला कि राजहंस साहब अभी कल तक तो यहीं थे, पर आज कहीं चले गये हैं। फिर जिस मकान में वे रहते थे, वहाँ के लोगों ने बतलाया कि वे एक नयी लड़की को साथ लिये फिरते थे। कभी-कभी वे उसे अभिनय-कला की शिक्षा भी अपने कमरे के अन्दर देते थे।

लालाजी सौभाग्य से उस समय माथ थे। उन्होंने जब लड़की की रूप-रेखा पूछी तो उत्तर मिला—“लड़की ज़रा लम्बे क़द की है। शर्ट-पैट में ज़्यादा रहती है। बाब्ब हेयर रखती है।”

लालाजी सुनकर हैरान रह गये। ऐसी एक भी बात ज़मना में तब तक पैदा न हुई थी। यद्यपि उसे सिनेमा देखने का चसका लग चुका था।

इसी क्षण लालाजी ने पूछा—“यदि आपने उसे निकट से देखा हो, तो उसके हाथ, मुँह या कान पर कोई चिह्न बतलाइये। या फिर गुणों या आदतों की कोई बात।”

तब एक साहब जो ध्यान से सब बातें सुनते हुए चारपाई बिनने में लगे थे, बोल उठे—“मैंने उस लड़की को देखा है। उसका गला बड़ा सुरीला है। वह गाना बहुत अच्छा गा लेती है।”

लालाजी को कुछ आशा हुई। उनके मुँह से निकल गया—  
“अच्छा और?”

उन्हे उत्तर मिला—“और जिनके साथ वह रहती थी, वे साहब सिगार पीते थे। एक बार उनको दियासलाई की ज़रूरत पड़ी और इत्ति-फ़ाक़ की बात कि रात के नौ बज गये थे। तभी वह लड़की मुझसे मैच-बाक्स मॉग ले गयी थी। मेरा ख़याल है, उसके मुँह में बायें होठ के ऊपर, बिल्कुल किनारे, एक तिल है।”

यह बात सुनते-सुनते लालाजी की मुखाकृति बदल गयी। कुछ आशा का संचार हुआ। बोले—“बस, वह ज़मना है।”

इतने में उस मकान का कुक आ गया। उसने पूछा—“आप लोग किसकी तलाश कर रहे हैं?”

अर्चना बोली—“मिस्टर राजहंस आर्टिस्ट और जमनादेवी की।”

“ओः पर वे दोनों तो कल बम्बई चले गये।”

“बम्बई चले गये?” लालाजी ने आश्चर्य से पूछा।

• “जी।”

“यह तुमने कैसे जाना?”

“मैं उन्हें स्टेशन तक भेजने गया था। भला मैं न जानूँगा!”

“वे लोग बम्बई में कहाँ ठहरेंगे?—कुछ चर्चा हुई थी।”

“यह तो मैं नहीं कह सकता, पर वे अँगरेज़ी बोलते हुए बार-बार एक कम्पनी का नाम ले रहे थे।”

“उस कम्पनी का नाम याद है?”

“नाम तो याद नहीं रहा साहब। पर नाम से क्या होता है? बम्बई जाने पर वहाँ पता चल ही जायगा”।

और तब लालाजी को बम्बई जाना पड़ा।

इसी समय बारह बजने की आवाज़ हुई। तभी ख्याल हो आया, अभी एक साहब ‘टुडे’ के आफ़िस से लौटेंगे, सड़क पर खड़े होकर अपनी बहिन को बुलायेंगे। मुहल्ले भर में उनकी पुकार का स्वर गूँज उठेगा—“मालती”!

मैं तो जानता था, आज की रात नींद आना मुश्किल है।

लालाजी इसके पश्चात् बम्बई पहुँचे। वहाँ वे सभी स्टूडियो में कई दिन तक चक्कर काटते रहे। जहाँ-जहाँ नयी हिरोइनों या अभिनेत्रियों के चुनाव की खबर पाते, वहाँ अवश्य पहुँचते। वहाँ वे कई डाइरेक्टरों से भी मिले। लालाजी का व्यक्तित्व देखकर उन्हें डाइरेक्टरों ने कुछ और समझ लिया। एक महाशय ने पूरा समाचार सुनने के पूर्व ही कह दिया—“ए साहब, हम कानों के प्रजाय आँखों से देखते हैं। इसलिए लड़की को आप साथ लाइये। आप के कहने से हम यह कैसे मान लें कि वह कालिदास की साक्षात् शकुन्तला है!”

अब लालाजी की समझ में आने लगा कि हम कहाँ आ पहुँचे हैं।

वहाँ वे अपने ऐसे बाल्य-बन्धु के यहाँ ठहरे थे, जो एक गुजराती पत्रकार थे। नित्य रात को उनके साथ बैठक जमती। नित्य लालाजी अपने अनु-संधान-कार्य का विवरण उपस्थित करते। दो-तीन दिनों के बाद उन पत्र-कार-बन्धु ने क्रम-क्रम से एक्स्ट्रा-सप्लायर्स को अपने यहाँ बुलाना शुरू किया। हर एक्स्ट्रा-सप्लायर से वे एक प्रश्न करते—“तुम्हारे यहाँ कोई नया माल तो नहीं आया है?”

पहली बार जब उन्होंने एक से यह प्रश्न किया, तो लालाजी उसे सहन न कर सके। उठकर कमरे के बाहर चले गये। जब वह एक्स्ट्रा-सप्लायर चला गया तो लालाजी बोले—“आपने मेरे ही सामने उससे ऐसी भाषा का प्रयोग किया, यह तो बड़े खेद की बात है!”

दर्द तब होता है, जब अपने ऊपर बीतती है। आज लालाजी यह कहना भूल गये कि “हाँ, ऐसा तो अकसर होता है!”

उन्होंने बतलाया—“आप अभी तक सिद्धान्तों और विचारों को केवल कमरे के अन्दर बैठकर—केवल प्रवचन के द्वारा—तौलते रहे हैं। पर यह वह जगत है, जहाँ राजनीति के बिना काम चल ही नहीं सकता। मैं साफ़ कहता हूँ कि अगर इसी एक्स्ट्रा-सप्लायर को कहीं से इस बात का सुराग़ लग जाय कि आप अपनी भग्यायी हुई लड़की ( माफ़ कीजियेगा ) की खोज में निकले हैं, तो उसका पता लगाना दूर रहा, जानने पर भी वह उसे छिपा डालेगा। अतः मुझे तो उससे ऐसी तबियत से बात करने की ज़रूरत है, जिससे उसे अपना रोज़गार चलने और कोई अच्छी खासी रक़म हाथ लगने की आशा हो।

अब लालाजी चुप रह गये थे। फिर उन्होंने बतलाया था—“सच कहता हूँ राजेन्द्र, तुम अगर उस समय मेरे पास होते तो मैं तुम्हें गोद में लेकर उछाल देता।”

विचार और कर्म में भेद, मन और बचन में भेद, कर्तव्य और भावना में भेद रखते-रखते ऐसा जान पड़ता है, हम यह भूल ही गये हैं कि जो भी व्यक्ति इस मुहल्ले, नगर और देश में रहते हैं, हमारी निज की संतान भी उन्हीं की संस्कृति की देन है। दूसरे लोग, पास-पड़ोस के लोग, हमारे मिलने

जुलनेवाले, हमारे घरों में आने-जानेवाले ये सभी बन्धु-बान्धव नौजवान, वृद्ध और बच्चे, बालिकाएँ और युवतियाँ जो संस्कृति रक्खेंगे, जो भाव, विचार और कर्म रक्खेंगे, उनके प्रभाव से हम कैसे बच सकते हैं !

• लालाजी की लड़की जमना ससुराल में भी नित्य सिनेमा देखने के पीछे अपने स्वामी से लड़ा करती थी। कहीं घूमते-फिरते इधर-उधर बैठते-उठते उनका परिचय मुरलीबाबू से हो गया। उनसे कुछ रेटाये जुमले सुनकर, उन पर मुग्ध होकर, वे उनको अपने घर ले आये, एक बार—दो बार—दस बार। अन्त में उन्होंने जमना से भी उनका परिचय करवा दिया। फिर क्या था, मिस्टर राजहंस आर्टिस्ट का भविष्य स्वर्णिम होने लगा। वे स्वप्न देखने लगे कि मुझे जमना के साथ बम्बई पहुँचकर किसी फ़िल्म-कम्पनी का डायरेक्टर बनना है। फिर तीन वर्ष के अन्दर लक्षाधिपति, मकान, कार, नौकर-चाकर...सब कुछ !

चुटकी बजाने में भी उतनी देर नहीं लगती, जितनी देर में कल्पना का स्वर्ग मूर्तिमान हो उठता है !

एक दिन राजहंस साहब ने चाय का प्याला कण्ठगत करने के बाद अपना सिगार सुलगाते हुए फ़रमाया—“आज एक बड़ा फ़र्स्ट-क्लास पिक्चर आया है।”

“कौन-सा ?” जमना ने पूछा।

राजहंस साहब बोले—“राजाजानी।”

“नाम तो अच्छा है।”—उसके पति रायचन्द्रनाथ ने जमना को शह देते हुए कहा।

“भगर मैं नाम पर नहीं जाता। मैं तो काम देखता हूँ।” राजहंस साहब ने कुछ इस तरह कहा, जैसे वे किसी वेद-मंत्र का भाष्य प्रकट कर रहे हों !

“तो पिक्चर आपकी देखी हुई है।” जमना ने चप्पल के भीतर से पैर निकालते हुए पूछा।

“जी।”

“तो क्या हुआ ? एक बार फिर सही ।” रायचन्द्रनाथ ने कह दिया ।

“लेकिन बेकार में पैसा क्यों खोया जाय ?” राजहंस बहुत सम्हल-सम्हलकर, बड़े इतमीनान से चाल, चल रहा था ।

“पैसा तो खोने के लिए कमाया ही जाता है ।” रायचन्द्रनाथ को भी इन टुकड़ों से कुछ उंसियत हो गयी थी ।

तीनों सिनेमा देखने गये । पिक्चर राजहंस का देखा हुआ न था । एक स्थल पर रायचन्द्रनाथ ने जब प्रश्न कर दिया—“ज़रा सुनियेगा । यह लड़की जो इस युवक से नफ़रत करती है, फिर इससे प्रेम कैसे कर सकती है ?”

राजहंस साहब बोले—“यही तो इस कहानी की खूबी है । आप देखते तो जाइये, पहले से बतला देने में फिर आगे का सारा मज़ा मरडर हो जायगा ।”

और पिक्चर देखने के बाद जब जमना लौटी, तंगि पर बैठी, तो चित्र का एक गीत गुनगुनाने लगी—

“सबरे मैं जग पायी नहीं—प्यास की बाँह सुलाती रही ।”

राजहंस साहब की तबियत न मानी । बोल उठे—“वाह ! क्या कण्ठ पाया है आपने । बम्बई में होती तो प्लेबैक देने में आपको हज़ार रुपये रोज़ाना की इनकम हो सकती थी ।”

सपनों में हम सोते रहते हैं । मगर यहाँ जगाये जा रहे थे !

चार दिन बाद जब जमना को मुरलीबाबू ने उनकी सूनी बैठक में पाया, तभी कार्यक्रम बन गया । पहले दस-पॉंच दिन छिपकर कहीं-न-कहीं रखा जाय—अच्छी तरह ट्रेण्ड कर लिया जाय । उसके बाद बम्बई ।

और जमना के पास दस हज़ार का ज़ेवर तो ऐसा था, जिसे वह अपने ख़ास ट्रंक में रखती थी और तबियत होने पर अक्सर पहनती रहती थी । विशेष रूप से उस समय, जब कहीं बाहर निकलती थी ।

मैं तो जानता था आज की रात यों ही बीतेगी ।

इन मकानों, बँगलों और कोठियों में जो सीढ़ियाँ आजकल बनायी

जाती हैं, उनमें मोड़ होते हैं। इनसे दो लाभ स्पष्ट हैं। एक तो सीढ़ियाँ चढ़नेवालों को उन मोड़ों पर खड़े होकर एक-आध मिनट विश्राम लेने का अवसर मिल जाता है। दूसरे अगर कोई व्यक्ति सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते थिर भी पड़े, तो चोट कम लगती है।

हमारे देश का समाज-संगठन, हमारी संस्कृति कुछ इस तरह की बनी है, हमारी ऐतिहासिक मर्यादा कुछ ऐसी पावन और गौरवमयी है कि हम पतन की पहली सीढ़ी को ही सहन नहीं कर पाते। क्योंकि हम जानते हैं हमारी मान्यताओं का राज-प्रासाद कुछ ऐसा बना है कि सीढ़ियों उसकी सीधी गयी है। एक बार ऊपर से गिरने भर की देर है और पतन का गह्वर गर्त निश्चित है! साधारण मानवी दुर्बलता कहकर हम जिन बातों की उपेक्षा कर दिया करते हैं, वे अन्त में हमारे आदर्शों की युग-युग संचित निधियाँ हमसे लूटकर चल देती हैं।

उन पत्रकार-बन्धु ने अन्त में जिस एक्स्ट्रा-सप्लायर को बुलाया, कहते हैं, उसके सात बीवियाँ थीं !

वे बन्धु इन एक्स्ट्रा-सप्लायर्स से जब बातें करने लगते, तभी लालाजी उस कमरे से बाहर चले जाते। पर एक दिन उन्होंने साहस करके कहा—“आज मैं बाहर नहीं जाऊँगा। सभी बातें अपने इन कानों से सुनूँगा। मैंने बहुत अमृत पिया है। थोड़ा-सा विष भी पी लूँगा, तो सहसा मर नहीं जाऊँगा। मेरा हृदय लोहे का स्तम्भ है—एक-आध बार का वज्रपात तो सह ही लेगा।”

जब वह अवसर आया, तब लालाजी बैठे रहे। पत्रकार-बन्धु ने उस एक्स्ट्रा-सप्लायर से वही प्रश्न किया—“कोई नया माल तो नहीं आया सुलतान भाई ?”

“आया तो है लेकिन।”

“लेकिन क्या ?”

“अभी उसकी शर्म पूरी तरह नहीं गयी है।”

“वाह ! क्या बात बतलाई है दोस्त ! बिल्कुल ऐसी ही रकम के फेर में

हूँ इस वक्त । पहले से लाने की ज़रूरत नहीं है । सारा नक़्क़शा बयान तो कर जाओ । देखेंगे बाद को । देखेंगे क्या, बल्कि सामने बैठाकर सब नोट करना होगा । एक माडल के बिना आजकल आर्टिस्टों का काम चलता नहीं है ।”

और सुलतान ने बतलाया—“देखिये पंडित जी, यह सब ग़लत बात है । जब मैं कहता हूँ कि बड़ी-बड़ी हिरोइनें उसके सामने पानी भरेंगी, तब आपको मेरी बात पर यक़ीन क्यों नहीं होता ?”

“अच्छा जाने दो । सिर्फ़ दो-एक बात बतलाओ । उसका चेहरा गोल है या लम्बा ?”

“लम्बा ”

“कलर ?”

“कलर गोरा, कही सफ़ेद कमल—कही सफ़ेद गुलाब और सफ़ेद संगमरमर के मानिन्द ! बस जनाब उसका जवाब नहीं है बम्बई में ।”

“ऊँचाई ?”

“पाँच फ़ीट छै इंच । अभी कल तो अँधेरी के...स्टूडियो में नापी गयी थी ।”

“हेयर ?”

“हेयर बाब्ड । ब्यूटीफुल !”

“और बदन पर कोई ख़ास निशान ?”

“निशान क्या है, कमाले ख़ास है उस पाक परिवरदिगार का । इस जगह पर एक ऐसा तिल है जनाब कि देखकर आदमी का दिल वहशी बन जाता है ।”

तब वे पत्रकार-बन्धु बोले—“नाम क्या है उसका ?”

“फ़िल्मी नाम तो उसका है—शैलजा, लेकिन पुराना नाम है शायद जमना ।”

तुरन्त पत्रकार-बन्धु के मुँह से निकल गया—“मुंशीजी सौ रुपये इनको पेशगी देने होंगे । बस सौदा पक्का ।”



लालाजी ने एक हरा नोट उसी समय निकालकर दे दिया । साथ ही यह भी कह दिया कि उसे इसी वक्त लाना होगा ।

सुलतान बोला—“इस वक्त ! इस वक्त तो मुश्किल है ।...हाँ, अगर टैक्सी-ड्राइवर मिले तो कोशिश कर सकता हूँ ।”

पत्रकार-बन्धु ने कह दिया—“ये सुलतान भाई मेरे खास आदमी है मुंशीजी । इनको आप दस रुपये और दीजिये ।”

और जब एकसौ-दस रुपये जेब में डालकर सुलतान सरोज-मैशन निकला होगा, तब वहाँ किट-कैट-बार में घुस गया होगा ।

लगभग डेढ़ घण्टे बाद सुलतान जमना को साथ लेकर आ पहुँचा । तुरन्त पत्रकार-बन्धु पास के कमरे में चले गये ।

संकेत से उन्होंने लालाजी से पूछा—“कहिये ?”

लालाजी ने पहली ही दृष्टि में जमना को दूर से पहचान लिया था । पर वे उस समय ऐसी अवस्था में थे कि हर्ष और विषाद से परे हो चुके थे । उस दिन जीवन में पहली बार उन्होंने शराब पी थी और उनका कहना था कि पहचान लेने के बाद ही उन्होंने बोतल खाली की थी । उन्होंने यह प्रयोग खूब समझ-बूझकर किया था । क्योंकि उनका कहना था कि अगर मैं ऐसा न करता तो अनर्थ हो जाता । यह भी हो सकता था कि जमना को पिस्टल का पहला निशाना बनना पड़ता !

नशे में धुन्त लालाजी का मुख उस समय तीन कोने का हो गया होगा । वंशगत मर्यादा और उसकी सारी प्रतिष्ठा को, अपने समस्त आत्मगौरव अपने समस्त स्वाभिमान को, ठँग पर मारते हुए उन्होंने कहा होगा—“साब ठीक है...दुनिया के इस कबूतरखाने में साब जस्टीफायड है...! साब कुछ न्येच्युरल—मोस्ट-सुपर-न्येच्युरल है मिस्टर व्यास...भाई डियार फेलो ओ !” और उस समय उनकी हुलिया ने कितना मज़ा पैदा कर दिया होगा !

अब व्यासजी अपने एक अन्य कमरे में आकर उस एक्स्ट्रासप्लायर से बोले—“ठीक है । अब यह गर्ल यही रहेगी । बाक़ी बात हम कल करेंगे ।”

सुलतान कुछ सोचता हुआ बोला—“मगर...।”

“अब अगर-मगर मैं कुछ नहीं सुनूँगा। काफ़ी रुपया तुमको पहले ही दिलवा चुका हूँ। अब तो जो कुछ मुनासिब समझूँगा, वह इनाम के तौर पर थोड़ा दे-दिलाकर निपटा दिया जायगा।”

“बहुत अच्छा पडितजी। जैसा हुक्म। मगर कल तो आप इसको... ?”

“मैंने पहले ही कह दिया है कि नाक़ी बातें कल होंगी। फिर इसके बाद तो कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत रह नहीं जाती।”

“जी, बहुत...बहुत अच्छा। सलाम !”

और तब सुलतान उस कमरे से बाहर हो गया होगा।

लालाजी से मैंने पूछा—“उस दिन जमना से आपने फिर क्या कहा ?”

हुक्के की नली मुँह से लगाए धुआँ उगलते हुए बहुत संक्षेप में वे बोले—“मैंने कुछ भी नहीं कहा।”

मुझे कहना पड़ा—“क्यों नहीं कहा ? जो कुछ भी आपका विचार था, जैसा कुछ आपका हृदय कह रहा था, उसके अनुसार कुछ तो आपको कहना चाहिए था।”

लालाजी ने हुक्के की निगाली को तो ऊपर की तरफ़ मोड़ दिया और वे पलँग पर इस तरह बैठ गये कि जो तकिये उनकी पीठ के पीछे थे, वे अब आगे हो गये। और इसके पश्चात् उन्होंने पुकारा—“जमना !”

जमना पास के कमरे से निकलकर चुपचाप उस कमरे में आ गयी। उसके सिर के बालों में कंधा नहीं लगा था, इसलिए उसकी कुन्तल राशि बिखरी हुई थी। उसकी माड़ी में सिकुड़ने पड़ गयी थीं और ऐसा जान पड़ता था कि वह उसे कई दिन से पहने हुए है। उसके कानों के पास कोयले के छोटे-छोटे कण अब भी झलक रहे थे, जिसका अभिप्राय यह था कि बम्बई से लौटने के पश्चात् अब तक उसने स्नान भी नहीं किया है।

उसकी दृष्टि नीची थी और दोनों हाथ इस प्रकार मिले हुए थे कि उनसे मनोभावों की हीनता स्पष्ट लक्षित होती थी।

जमना खड़ी रही। न लालाजी ने उसे कही बैठने के लिए कहा, न स्वयं उसमें इतना साहस रह गया था कि वह मेरे सामने कुर्सी पर आ बैठती। पर मैं उसे इस दशा में कब तक देखता ?

फिर मैं यह भी देख रहा था कि जमना के नयन सचमुच बड़े-बड़े हैं। यौवन उन्माद की खिड़कियों से भाँक रहा है। किसी भी प्रकार वह नियन्त्रण को स्वीकार कर नहीं पाता है। सुगठित मांसल देहयष्टि का अलस विकम्पन प्रकट हो ही जाता है। मेरे मन में आया—क्या यह यौवन इस-लिए है कि भोग-विलास की चक्कियों में इसे जल्दी-से-जल्दी पीस डाला जाय ! क्या यह सौन्दर्य इसलिए है कि बाज़ार के बीच ट्रक के ऊपर खड़ा करके इस पर बोलियों बोली जायँ !

—मुझे उसी क्षण स्मरण हो आया, लालाजी का किसी समय कहा हुआ यह कथन कि जो भी लड़की विवाह-बन्धनो को त्यागकर किसी पर-पुरुष के साथ भाग खड़ी होती है, उसे मैं बौद्धिक मानता हूँ ! मैं मानता हूँ कि अन्ध-परम्पराओं और रूढ़ियों का परिपालन उसे स्वीकार नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि उसके जीवन में अतृप्ति के जो भी रूप और प्रकार हैं, उनकी पूर्ति के नियोजन में वह यथेष्ट तत्पर है।

तभी मैं यह सोचने लगा कि पति के प्यार की सीमा त्याग देने के पश्चात् क्या इसे क्षण भर के लिए प्रेम का एक कण भी कही मिला होगा ? और कोई भी नारी प्रेम की गोद में सिर डाले बिना और उसके स्नेहाधारों पर मृणाल जैसी अँगुलियों का कोमल कर-किसलय रखे बिना नींद की मीठी-मीठी थकियों पा ही कैसे सकती है ! और फिर प्रेम क्या हलवाई की दुकान पर विकनेवाले रसगुल्लों की चाशनी है, जिसे कोई भी आदमी किसी भी बाज़ार में जाकर, चाहे जब खरीद लेगा ?

पड़ोस में कहीं पास ही किसी व्यक्ति ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी है ! स्त्रियों के करुण-क्रन्दन का मर्म-भेदी स्वर बढ़ता जाता है !

मैं जानता था आज की रात मुझे सोने न देगी ।

हाँ, मेरा ध्यान ज्योंही जमना की इस दुर्दशा पर आकृष्ट हुआ, त्योंही मैंने कह दिया—“बैठो जमना ।”

जमना फिर भी खड़ी रही । लालाजी भी कुछ नहीं बोले ।

“किसी के मर जाने पर भी कर्तव्यों की समाप्ति तुरन्त नहीं हो जाती ।” अब मैंने कहा—“जीवन में चाहे जितने विपर्यय उत्पन्न हो जायें, परन्तु आदमी को समय पर नित्यकर्म और नित्यधर्म-पालन तो करना ही पड़ता है । मैं तुमसे बातें करूँगा जमना, मैं तुम्हारी सुख-दुःख की कहानी भी सुनूँगा; पर अभी नहीं । सबसे पहले तुम स्नान कर लो, कपड़े बदल लो, चाय या जलपान करके स्वस्थचित्त हो लो, तब । मैं शान्ति-पूर्वक तभी तुम्हारे सम्बन्ध में विचार करूँगा । जाओ जमना, भगवान तुम्हारा भङ्गल करेगा ।”

तत्काल जमना अन्दर चली गयी ।

तत्काल लालाजी बोल उठे—“उजागर !”

“जी सरकार” कहता हुआ उजागर सामने आ खड़ा हुआ ।

लालाजी घड़ी देखते हुए बोले—“मुझे पहले से कहने की याद नहीं रही । राय चन्द्रनाथ आ रहे हैं । उनको गाड़ी भेजनी है । हालाँकि अब तक तो उन्हें यहाँ आ जाना चाहिये था ।”

इसी समय नीचे से किसीने पुकारा—“लालाजी ,”

और लालाजी पलंग से उठते हुए बोले—“रायसाहब आ गये ।”

और घंटे भर बाद हमारे सामने तीन व्यक्ति थे—लालाजी, जमना-देवी और उनके पति राय चन्द्रनाथ ।

सबसे पहले लालाजी बोले—“पुरानी परिपाटी तो यह रही है कि अगर बहू-बेटी ने कोई ऐसा कुसूर किया, जिससे खानदान की इज्जत ख़ाक में मिल गयी, तो या तो उसे छिपाकर ज़हर दे दिया गया, या सामने पड़ जाने पर गोली से उड़ा दिया गया । और अगर माता-पिता बहरी हुए, तो उसे किसी तीर्थ-स्थान में पुण्य कमाने लिए सरे-बाज़ार हज़ारों आदमियों की भीड़ के हवाले कर दिया गया ! लेकिन मैं इस ख़याल का आदमी नहीं हूँ ।

मै तो सफाई चाहना हूँ। मै सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि जमना अपने घर से भागो क्या ? उसको वहाँ कौनसो तकलीफ थी।”

तब मैने कहा—“मैने तुमको आज पहली बार देखा है जमैना। लाला जी मेरे पिता, बल्कि पितामह के समान है। तुमको मै बहन के समान मानता हूँ; भले ही तुमसे भयानक भूलें हो गयी हों। मगर मुझे सचमुच इस बात का दुःख है कि तुमने मेरी बहन होने का अच्छा परिचय नहीं दिया। तुमने अपने माता-पिता के मुख पर वह गाढ़ी-गाढ़ी कालिमा पोती है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक धुल न सकेगी।

“तुमको पता है कि तुम्हारे माता-पिता की आज क्या हालत है ? लालाजी सूखकर कौटा हो गये हैं। उनकी आँखें गड्ढों में छँस गयी है, गाल पिचककर दुर्दिन की लपटों में झुलसी हुई सूखी अमिया हो गये हैं ! न दिन को चैन है, न रात को नीद। अगना सर्वस्व न्यौछावर करके जिन्होंने तुम्हें पाल-पोसकर इतना बड़ा किया और हर तरह से तुम्हें योग्य बनाया, जायदाद की बरबादी का खयाल न करके तुम्हारा अच्छा-से-अच्छा ब्याह किया, उन्हींको आशाओं का खून करते हुए तुम्हें शर्म भी न आयी ! कितना अच्छा होता कि तुम पैदा होते ही मर गयी होती !”

“अब भी मै मरने को तैयार हूँ अगर आप मेरे लिए विष-भान का प्रबन्ध कर दें।” उत्तर देते क्षण जमना की आँखों में आँसू तो नहीं झलके, किन्तु कण्टस्वर से प्रतीत हुआ कि वह दुखी अवश्य है।

“मै क्यों प्रबन्ध कर दूँ, तुमने स्वयं क्यों नहीं प्रबन्ध कर लिया ?” गरजते हुए मुझे कहना पड़ा—“लेकिन मै सोच भी नहीं सकता कि ससुराल में तुमको ऐसा कोई विशेष कष्ट रहा होगा। मै पूछता हूँ, तुम जैसा भोजन अपने घर में करती थी, वैसा वहाँ बम्बई में नसीब भी होता था ? मै जानना चाहता हूँ, स्वामी का-सा निश्छल प्रेम वहाँ तुमको कही मिल सकता है ? फिर तुमको कमी किस बात की थी ? मेरे विचार से तुम्हारे पास न तो आभूषणों की कमी थी, न घर पर तुमको ऐसा कोई काम ही करना पड़ता था, जो तुम्हारे लिए दुखदायी होता। कितनी बड़ी तुम्हारे पिता की इज़्ज़त

है—कैसी तुम्हारी ससुराल की मर्यादा है, कुछ तो खयाल किया होता तुमने ! मैं पूछता हूँ—निर्मल गङ्गाजल छोड़कर नाली का गँदला पानी तुमने पसन्द कैसे कर लिया ?”

इसी क्षण राय चन्द्रनाथ साहब उठकर खड़े हो गये । बोले—“अब मैं समझा । तो आपने मुझे ज़लील करने के लिए यहाँ तलब किया है !”

लालाजी ने तड़पने के बजाय रायचन्द्रनाथजी की ठुड्डी पर हाथ लगाकर कहा—“भिगड़ो नहीं, मेरी हालत पर रहम खाओ बेटा । तुम्हारी इज्जत से ही इस वक्त मेरी इज्जत है । जमना ऐसी कोई बात न कहेगी, जिससे आपकी लाज की तौहीन हो । मगर दुनियाँ में अगर सचाई बाक़ई एक क़ीमती चीज़ है, तब तो इज्जत का सवाल भी उसके सामने नाचीज़ होगा ।”

राय चन्द्रनाथ घबरा उठे । बोले—“आप लोगों ने मुझे इसलिए बुलाया था कि हम ऐसे नाजुक मामले पर आपस में बैठकर बहस करें ! तो आप कर लीजिये बहस और मुझे इजाज़त दीजिये । मैं ज़हर खा सकता हूँ, पर यह नहीं बतला सकता कि मेरे इस जगह नासूर है !”

और चन्द्रनाथ इतना कहकर कमरे से बाहर हो गये ! तब अस्थिर चित्त विवश लालाजी भी उनके पीछे-पीछे चले गये । अब उस कमरे में केवल जमना मेरे सामने थी । कमरे का द्वार भीतर से बन्द था और बाहर उजागर बैठा हुआ था । इसी क्षण मन्द-स्वर में जमना बोली—“मैं अगर आपसे कुछ पूछूँ, तो आशा है आप……।”

तत्काल मैंने कह दिया—“अवश्य । बल्कि यही मैं चाहता भी था ।”

जमना बोली—“क्या आप समझते हैं, खाना-पीना, कपड़े-गाहने, स्वामी और लड़कों-बच्चों से परे एक सभ्य नारी की कोई आकांक्षा हो ही नहीं सकती ?”

“हो क्यों नहीं सकती ? इसीलिए तो मैं उन कारणों को जानना और समझना चाहता हूँ, जिन्होंने पति का घर छोड़ने के लिए आपको विवश किया है ।” अपने विषय का जो एक अतिसाधारण प्रश्न आज हमारे

सामने है, बिल्कुल उसी का मुँह खोल देना मैंने अधिक उपयोगी समझा।

अभी तक जमना खड़ी थी। अब वह कुरसी पर बैठ गयी। वह कुछ कहने ही जा रही थी कि उसी समय लालाजी आ गये।

‘तब विवश होकर मुझे कहना पड़ा—“हमा काजियेगा, अगर मुझे आपसे यह कहना पड़े कि थोड़ी देर का एकान्त हमारे बीच में आवश्यक हो गया है।”

लालाजी तब तक दरवाजे की देहली पर आगये थे। अब वे पुनः वापस लौट गये; चुपचाप, बिना एक शब्द कहे हुए। बल्कि मुझे थोड़ा संकोच भी हुआ कि यह मैंने क्या किया! जमना तो मुझे बहुत सम्य लड़की मालूम होती है।

जमना बोली—“आप मेरे साथ अन्याय नहीं करेंगे, कुछ ऐसा मुझे विश्वास हो रहा है।”

“मैं तुम्हारे विश्वास की रक्षा करूँगा।” कहना मेरे लिए आवश्यक था।

“बात यह है कि दुर्भाग्य से मेरे विचार और संस्कार पुरानी पीढ़ी के बच्चों के-से कभी नहीं रहे। जब मैंने कहा कि मैं घोड़े पर चढ़कर घूमने निकलूँगी, तब मेरे लिए बढ़िया-से-बढ़िया घोड़ा पिताजी ने मँगवा दिया। आपसे तो परिचय अभी हुआ है। इसलिए कदाचित् आपको मालूम भी न हो कि विवाह से कुछ ही दिन पहले पिताजी ने हमारे घूमने के लिए नयी गाड़ी खरीदी थी। कहने का अभिप्राय यह कि न सिर्फ यहाँ, बल्कि वहाँ समुराल मे भी मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं रही। इसलिए यह सोचना तो बिल्कुल व्यर्थ है कि मुझे वहाँ किसी भी तरह का कोई कष्ट था।”

पुलकित होकर मैंने कह दिया—“वाह जमना! मैं तुमसे ऐसी ही आशा करता था। भगवान जानता है, तुमने इस वक़्त वह बात कह दी, जिससे मेरी कल्पना मैं तुम्हारे लिए आरोपित अतृप्ति का घाव तो जैसे आपही आप भर गया।”

‘तब उत्साह में आकर जमना बोली—“मैं उन कुल-कलंकिनी नायियों

मे से नहीं हूँ, जो अपने दोस्तों के साथ भाग जाने पर अकसर कह दिया करती हैं कि मेरे पति में स्वामी होने की योग्यता ही नहीं है ! अगर कोई नारी इस तरह की बात ज्ञान पर लाती है, तो मैं साफ़-साफ़ शब्दों में यह कहना चाहती हूँ कि वह ज़िम्मेदारियों में पली, कर्त्तव्य-भावना में कसी, सती नारी नहीं, वरन् निरन्तर मल-मूत्र प्रवाहिनी वह नाली है— जिसका अंत नरक-कुण्ड के गन्दे नालों में होता है !”

आज मेरे हृदय ने वास्तविक आत्मानन्द प्राप्त किया है। आज मुझे यह अनुभव करने का अवसर मिला है कि सन्तोष और शान्ति का जीवन के निर्माण में कितना बड़ा स्थान है।

“कहाँ है लालाजी ? आते क्यों नहीं इस समय ?”

और प्रसन्नता से खिले हुए लालाजी ने कमरे में आते-आते कहा—“मैं हाज़िर हूँ।”

मैंने कह दिया—“जमना ने आपके गौरव की रक्षा की है। मैं इस बात की शपथ ले सकता हूँ।”

जमना बोली—“मैं रास्ते से बे-रास्ते हो गयी थी, यह स्वीकार करने में मुझे ज़रा भी संकोच नहीं है। लेकिन मुझे इस बात का अभिमान है कि...”

और इतना कहकर उसने कमर से एक तेज छूरी निकालते हुए कह दिया—“शक्ति के इस प्रतीक ने मेरे आदर्शों की रक्षा की है ! अभी हाल ही में एक बार तो इसने जीर्ण-मरम्मत खूब पिया है !”

इसी क्षण पान चबाते और मुसकराते हुए राय चन्द्रनाथ भी अन्दर से निकलकर उसी कमरे में आगये और बोले—“आप लोगों की बहस अगर ख़तम हो गयी हो, तो मैं भी जमना से दो-एक बात कर लूँ।”

लालाजी और मेरे मुँह से एक साथ निकल गया—“ज़रूर-ज़रूर।”

पर इसी क्षण जमना बोली—“आप इनसे पूछ लीजिये, केवल कला-प्रेम के नाम पर मैं इस ख़तरे में पड़ी थी। पर मैं पिताजी की एक



लाइली बेनी जो हूँ । ठीक समय पर उन्होंने मुझे उस जाल से मुक्त कर दिया, जिसमें पड़कर आज भारतीय संस्कृति की सारी मान-मर्यादा नारकीय भोग-विलास-पूर्ण षडयन्त्रों का शिकार बन रही है !”

और इतना कहकर जमना अन्दर के कमरे में जाती हुई अपने पति के पीछे पीछे चल दी ।

तभी मैंने लालाजी से कह दिया—“अब मैं आपसे फिर वही प्रश्न करना चाहता हूँ कि संतोष और शान्ति का मार्ग जीवन से लिये अधिक कल्याणकारी है या सोमाहीन अतृप्ति के नाम पर उस क्रांति का मार्ग, जिसमें पड़कर हम निरन्तर पागल कुत्तों की तरह एक दूसरे का कलेबा फाड़ खाने में जीवन को चरम सरलता मान बैठते हैं ! बतलाइये, प्रेम के पावन पथ में आप साधना और त्याग के महत्त्व को स्वीकार करते हैं या उस प्रमाद-वृत्ति को, जो ग्यास के नाम पर इस बात पर विचार हीनही करती कि कमल-वन को विदीर्णकर जिस पुष्करिणी-कूल से अभी-अभी दर्जन-के-दर्जन पशु निकल गये हैं, कर्दम और कलुष से ओत-प्रोत उस स्थल का चंचल जल अभी शान्त और स्थिर तक नहीं हो पाया है !”

लालाजी इसके उत्तर में कुछ कहने ही जा रहे थे कि यकायक इसी समय दरवाजा खुल गया और कमरे के अन्दर जिस व्यक्ति का मुख दिख-लायी पड़ा वे और कोई नहीं, मुरलीवाबू थे !

## इकीस

हमारे समक्ष एक ऐसा अनन्त पथ है, जिस पर हम निरन्तर चल रहे हैं । जैसे इस यात्रा का अन्त नहीं है, वैसे ही इस पथ का भी अन्त नहीं है । कभी-कभी कुछ ऐसा होता है कि हम जहाँ से चले थे, धूम-फिरकर वहीं आ पहुँचते हैं । कभी-कभी जब हम सचमुच बहुत चल चुकते हैं और ऐसा लगना है कि अब तो उस पार पहुँचने ही वाले हैं, तभी ऐसा अवसर, संयोग और दुर्योग सामने उपस्थित हो जाता है कि हम सम्भ्रम में पड़कर

एक ऐसे रहस्यपूर्ण इन्द्रजाल में जा पड़ते हैं कि हमारी सम्पूर्ण यात्रा विफल, सम्पूर्ण उद्योग, परिश्रम और सामयिक सफलताएँ विफल हो जाती हैं और एक पराभूत प्राण लेकर, हम निखिल विश्व के इस अविकल कोलाहल में, अपने आप में सीमित एक अकेले व्यक्ति मात्र रह जाते हैं। मानों रास्ते से दूर खड़े हुए हम निरन्तर यही खड़े-खड़े देखते रह जाते हैं कि वे भी एक दिन थे, जब हम इस पथ पर चल रहे थे। वह भी एक साथी था, जो हमको चलते-चलते इसी पथ पर मिल गया था। उसने कहा था—बड़ी दूर जाना है; चलो, चलते चलो। संग-साथ में कुछ रास्ता ही कट जायगा। हम चलते जाते हैं—चलते जाते हैं। रास्ता है और वह कटता भी जाता है। कभी हमें ग्यास लगती है, तो वह लोटा-डोर निकालकर हमें पानी पिला देता है। कभी उसे ग्यास लगती है, तो अचसर देखकर कहीं-न-कहीं से मोंग-मूँगकर उसे सुराही के शीतल जल के एक गिलास-दो गिलास—तीन गिलास तक पिलाते चले जाते हैं। तब उसकी तृप्ति मानो-मेरी तृप्ति हो जाती है। लेकिन जनाब, यह दुनियाँ ठहरी। तरह-तरह के जीव पड़े हैं इसमें। ऐसे भी लोग हैं, जो साथी की इस ग्यास और हमारे इस साहस पर हँसते हैं। लेकिन हम भी ठहरे एक मौजी जीव हम उस दुनियाँ पर नित्य हँसा करते हैं तिरस्कार और उपहास की हँसी, जो हमारे साहस पर हँसने की चेष्टा करती है। साथी का कोई भरोसा नहीं। आज पट गयी, तो साथ बैठकर खाना खा लिया—कल नहीं पटी, तो खाना खाते समय मुँह फेर लिया। रास्ते में मिल गये तो मुसकराकर नमस्कार कर लिया—दूर जाते देख पड़े, तो पुकारकर यह नहीं कहा कि ठहरो, हम भी आ रहे हैं। साथ निभाना एक हमारा ही नहीं, तुम्हारा भी धर्म है।

भाभी को मैं कानपुर से अपने साथ ले तो आया; पर इस बार मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे वे धोखा दे रही हैं। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, दूसरे जिन साधनों से उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है, उनकी वे उत्तरोत्तर उपेक्षा कर रही हैं। कुछ दिनों तक वे सबेरे पुष्प-बाटिकाओं में धूमने को नित्य मेरे साथ जाती रहीं, पर जब मैंने कह दिया

कि अब तुम लाली के साथ चली जाया करो, तो उन्होंने घूमना ही बन्द कर दिया ।

इधर कई दिन से इस घर में कुछ नयी बातें पैदा हो रही हैं । पता नहीं, उनके आधार क्या है ? नित्य जब माँ सोने को पलंग पर जाती हैं, तब भाभी उनके पैर दाबने लगती हैं । यद्यपि इसमें कुछ बुराई नहीं है; पर मेरी समझ में नहीं आता कि वे क्यों —आग़िर क्यों ऐसा करती हैं ?

माँ भी पहले तो मना कर देती रही । पर अब नित्य पैर दबवाने की उनको भी आदत पड़ गयी है । कुछ यह बात भी है कि उसी समय भाभी को उनसे बात करने का अवसर मिल पाता है ।

यों तो माँ की आदत ही है कि वे साधारण-सी बात पर बहुत प्रशंसा कर बैठती हैं । पर आजकल तो भाभी की प्रशंसा का अन्त नहीं है । कहती हैं—बंशी को ऐसी दुलहिन मिली है, जैसी किसी राजकुमार को भी नसीब न होगी । मेरी तो इतनी सेवा करती है कि मैं कभी उससे उद्धार न हो पाऊँगी । एक बंशी है, जो इस समय उल्टी गङ्गा बहा रहा है ! वह यह नहीं सोचता कि ईश्वर के कितने बड़े-बड़े हाथ हैं !

एक दिन की बात है भाभी माँ के पैर दाब ही रही थी कि यकायक माँ चौंक पड़ी ! बोली—“दुलहिन !”

भाभी ने कुछ उत्तर न दिया ।

तब माँ ने उनके हाथ थाम लिये । बोली—“रहने दो, बहुत हो गया ।”

भाभी फिर भी न मानी । माँ से छिपाकर आँसू पोछ डाले । तब माँ उठ बैठी । कहने लगी—“अगर तुम रोओगी, तो मैं पैर न दबाऊँगी ।”

भाभी ने कह दिया—“मगर मैं कहाँ रोती हूँ ?”

माँ बोली—“मुझसे तुम अपना दुःख छिपा न सकोगी दुलहिन; मैं गेनेवाले का मुख पहचानती हूँ, कण्ठ पहचानती हूँ ।”

भाभी फिर भी न मानी और उनके पैर दाबती ही रहीं ।

तब माँ ने फिर उनके हाथ पकड़ लिये और उसके दाद वे स्वयं भी रो पड़ी । रोती हुई वे कहने लगी—“आज तुम अपना सारा दुःख मुझसे कह डालो दुलहिन, कोई भी बात मुझसे मत छिपाओ ।”

उनकी सिसकियाँ किसी तरह शान्त न होती थी । एक बार वे आँसू पोंछती, पर फिर दुबारा उनकी आँखें भर-भर आती । तब वे बोली—“और मुझे यह भी बतलाओ दुलहिन कि तुम मुझसे चाहती क्या हो ?”

भाभी कुछ नहीं बोली । वे मुँह तक नहीं खोल सकी । बारम्बार वे यही कहती रही कि मैं तो केवल तुम्हारा आशीर्वाद चाहती हूँ मौसी । तब माँ ने कहा—“लेकिन क्या मेरे आशीर्वाद में इतना बल है कि तुम्हारा दुःख दूर हो जाय ?”

भाभी बोली—“मैं यह बात नहीं मानती । तुम आशीर्वाद देना ही न चाहो, यह दूसरी बात है । पर मैं यह कैसे मान लूँ कि तुम्हारे आशीर्वाद में बल नहीं है ?”

भाभी के इस कथन पर माँ चुप रह गयी ।

उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि यह सारी कथा भाभी ने स्वयं मुझे अविकल रूप से बता दी ।

तब मैंने कह दिया—“जिस रास्ते से तुम जा रही हो, उसमें भगवान तुम्हें सफलता दे ।” पर इस कथन के पश्चात् मुझे स्वयं हँसी आ गयी ।

भाभी बोली—“तुम तो प्रयत्न की उस सीमा पर विश्वास करते हो जब असफलता रो पड़े ।”

मैंने कह दिया—“याद है, एक दिन तुमने कहा था कि मैं तुम्हें समझ नहीं पायी । पर यह बात बिना मुझे समझे तुम कैसे कह सकीं ?”

भाभी पास पड़ी दूब की पत्ती को दाँत से दबाती हुई मुसकराने लगीं । बोलीं—“उस दिन की बात दूसरी थी ।”

तब मैंने कह दिया—“चलो, मुझे तो प्रसन्नता इस बात की है कि आजकल तुम्हारा स्वास्थ्य कुछ ठीक हो चला है।”

भाभी फिर मौन हो रही। फिर जो बोलीं भी तो यह—“स्वास्थ्य तो तभी ठीक हो सकता है जब अब तक लिखे हुए सारे पृष्ठ दो आड़ी लकीरों से काट डालूँ और उसके पश्चात् पृष्ठभाग पर जैसा मन कहे वैसा लिख दूँ; चाहे चार पंक्तियों ही लिख पाऊँ !”

मैंने कहा—“अगर वैशाली कुछ दिन यहाँ और टहर जाती, तो तुम्हें पागल बना देती।”

एक निःश्वास को दबाती हुई-सी भाभी बोली—“कोई नयी बात न होती। यह बात तो अकसर मेरे मन में आयी है कि कर्मभोग की चरम परिणति पागल होने में ही है।”

सुनकर मैं सन्न रह गया।

जाड़े के दिनो में प्रायः मैं पैट पहनता हूँ। उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि मेरे पैट के बकलस का बटन टूट गया। पर इस बात का ज्ञान तब हुआ, जब मैंने पैट पहन लिया। इसलिये उसी अवस्था में भाभी के पास जाकर मैंने कहा—“ज़रा इसमें बटन तो टोंक देना भाभी।”

भाभी सुई तागा लेकर पास आ पहुँची। एक तो बदन से सटा हुआ पैट और फिर उसका दो इंच मात्र लम्बा ठहरा बकलस। फल यह हुआ कि भाभी को मेरे बिल्कुल पास आकर खड़ा होना पड़ा। मैंने क्षण-क्षण पर अनुभव किया, भाभी के केशपाश और बदन से इतनी भीनी-भीनी मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही है कि मेरा मन नियन्त्रण से बाहर चला जाना चाहता है। भाभी जब साँस लेती है, वक्ष-प्रान्त उनका दोलन करने लगता है, तब ऐसा प्रतीत होता है, जैसे हम रत्नाकर के कूल पर खड़े हैं और अमृत लहरें हमारी क्षुधित-क्षुब्ध देहसंज्ञा के लोम-लोम को अपने शीतल बुन्द-माल से इस प्रकार परिलावित कर देना चाहती है कि एक ही हिलोर के साथ यदि मन-प्राण और मेरा यह कलेवर भी उसमें बह जाय, तो मैं इसी जीवन में मोक्ष-पद प्राप्त कर लूँ !

बटन टॉकने में देर कितनी लगती है ! अधिक-से-अधिक दो मिनट । पर मैं कुछ ऐसा सोचने लगा कि इन कतिपय क्षणों की सीमा किसी प्रकार बढ़कर यदि युग-दो-युग बन सकती...!

बटन टॉक देने पर भाभी पुनः सामीप्य से विलग हो गयी, तो ज़ेरी आँखें उनकी आँखों से जा मिली । तब निरप्रयास रूप से आप-ही-आप कुछ ऐसा हुआ कि वे मुसकराने लगी । और साथ में मैं भी अपना चिर सयत हास-निरोध न कर सका । भाभी तो फिर भी मौन रही । पर मैं अपनी बात न रोक सका । मैंने कह दिया—“अगर रोज़ ही बकलस की यह बटन इसी तरह टूट जाया करे, तो कभी तुम इनकार तो न करोगी भाभी ?”

“ऐसे अगर पर अब मुझे विश्वास नहीं रह गया !” उत्तर में कहती कमरे से बाहर निकलती भाभी का एक पैर द्वार की देहली के बाहर था, दूसरा भीतर ।

...

...

...

अपनी एक पात्र-कथा कहता हूँ ।

आज मेरा मन बड़ा विद्रोह कर रहा है । क्यों कर रहा है, इस बात को समझने का जग-जग चेष्टा कर रहा हूँ, त्यो-त्यो अधिकाधिक उलझनों में पड़ जाता हूँ । यह कैसी आग है, जिसमें लपटें तो उठती हैं; पर शरीर पर प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रभाव नहीं पड़ता । केवल आत्मा-ही-आत्मा झुलस रही है ! दिल पर फफोले उठते हैं और तत्काल फूट जाते हैं ! खुली आँखें हैं और सम्मुख सभी कुछ स्थूल रूप में दिखलाई पड़ रहा है । पर जीवन-पथ के कल्पना-पट पर कुछ भी स्पष्ट दिखलाई नहीं देता—सब कुछ घना-घना लाल-लाल हो उठा है रक्त-मास जैसा ! जैसे दोपहर होने आयी हो, भगवान भुवन-भास्कर त्रिकुल सिर के ऊपर गगन-मंडल पर विराजमान हो और धूम चारों ओर ऐसी छायी हो कि धरती तप्त तवा-सी जल रही हो । और उसी समय किसी ने आँखों पर ऐसी पट्टी बाँध दी हो कि प्रकाश का प्रतेविम्ब मुँदी पलकों पर एकदम घना लाल-लाल समुद्र-सा लहरें ले उठता हो, एक ऐसे भयानक हाहाकार के साथ कि विश्व भर मिलकर मानो रक्त का ही एक महासागर बन गया हो !

महीनों हो गये, लाली से मैंने, अपनी ओर से बोलचाल बन्द-सा कर रक्खा था। कुछ ऐसा नियम-सा बना लिया था कि जब वह कोई बात पूछेगी, तभी जवाब दूँगा; अपनी ओर से कोई बात न करूँगा। पर यह संकल्प मैंने रक्खा मन ही मैं था। कहा इस विषय में किसी से कुछ नहीं था। पर आज अकस्मात् मेरा सिया हुआ मुँह खुल ही गया।

दरवाजे पर खड़े दो आदमी चने के समूचे पौधे ठेले भर में फैलाये हुए बेच रहे थे। आवाज़ सुनकर माँ ने ऊपरी आँगन में पड़ी लोहे की छड़ों पर बैठे-बैठे नीचे के आँगन में भाँकते हुए कही लाली से कह दिया होगा—  
“लाली न्हिया, बूट तो लेना चार आने के। पैसे यह मैं यहाँ से फँक रही हूँ।”

और लाली जिस समय साड़ी का अचल उठाकर वे पैसे माँ से ले रही थी, उसी समय मैं बाहर से आकर घर के अन्दर प्रवेश कर रहा था। अतएव इस स्थिति में यकायक लाली का निरावरण यौवन-सम्भदा पर मेरी दृष्टि जा पड़ी। वस, तभी से यह हाल है कि अपने को क्या कर डालूँ!

क्यों, आखिर क्यों, ये घटनाएँ होती हैं? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है रे प्रभु?

दुनियाँ में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो ऐसी घटनाओं से प्रभावित होकर इसी जीवन-काल में, केवल कुछ ही घड़ियों के अन्तर से, परम पद प्राप्त कर लेते हैं। और संसार में एक ऐसी भी जाति निवास करती है, जिसकी प्यास कभी बुझती ही नहीं। अक्सर आ जाय, तो उस तलैया का पानी पिये बिना वे चूक नहीं सकते, जिसमें पानी की मात्रा तो कम रहती है, पर कीचड़ और छोटे-छोटे कुलबुलाते हुए कीड़े अधिक रेंगते रहा करते हैं!

कुछ हो, यह लाली की कितनी बड़ी लापरवाही है कि उस समय वह बदन पर कोई एक वस्त्र भी नहीं धारण किये हुए थी! क्या उसको अब अपने तन-बदन का विलकुल होश नहीं रह गया? क्या उसके इस नवनीत यौवन-सौन्दर्य का अब कोई मूल्य नहीं? क्या सृष्टि के ये आदितत्व यो ही

व्यर्थ नष्ट हो जायेंगे ? इस जगत की श्रीवृद्धि में क्या इनकी कोई उपयोगिता नहीं रही ? व्यक्तियों ही के लिए सर्वथा प्राणदायक होने पर भी समाज के लिए ये तत्व क्यों त्याज्य हैं ? इस दिशा में समाज क्यों मौन है ?

लेकिन फिर प्रश्न उठता है कि मैं ही सिर नीचा किये हुए चुपचाप अपने ज़ीने पर क्यों नहीं चढ़ गया ? मैंने उधर देखा ही क्यों ? और देखा भी, तो अपने वस्त्र पर लोहे के घनों की-सी चोटों का मैं क्यों अनुभव कर रहा हूँ ? आखिर लाली का अपना भी तो अस्तित्व है । उसे अपनी आवश्यकताओं का ज्ञान स्वयं होना चाहिये ।

चनों के पौत्रे माँ ने ले लिये । भाभी उस समय वहाँ मौजूद ही थी । बोली—“वाह मौसी, यह चीज़ तो तुमने अच्छी मँगायी । अच्छा लाओ चनों के हरे दानों को निकालकर घी में भूना जाय । क्यों मौसी ?”

चनों का हरापन भाभी को कितना प्यारा लगता है ! एक मैं हूँ कि प्रकृति के हरेपन को छूने से भी डरता हूँ ।

माँ ने कह दिया—“ठीक तो है । राजेन को भी यह चीज़ बहुत पसन्द आती है ।”

क्षण भर चुप रहकर इधर-उधर देखती हुई ऊपर आती-आती लाली बोली—“पर एक चीज़ इसकी और भी बहुत अच्छी बनती है भाभी ।”

भाभी ने पूछा—“वह क्या ?”

लाली बोली—“कचौड़ी ।”

माँ ने कह दिया—“लेकिन घी में नमक-मसाले के साथ तल लेना राजेन ज्यादा पसन्द करेगा ।”

“लेकिन अम्मा, भैया के सम्बन्ध में यह कह सकना बड़ा कठिन है कि वे कब क्या चीज़ पसन्द करेंगे । क्योंकि ऐसा भी हुआ है कि पसन्द की-करायी चीज़ें उन्होंने लौटा दी हैं और जिन चीज़ों को वे कभी पसन्द कर नहीं सकते, मौके से विनय या अनुरोध कर देने पर उन्होंने उनको ले लेने से कभी इनकार भी नहीं किया ।” लाली चनों के दानों को छिलकों से निकालती हुई यह बात कहने लगी, तो भाभी उसकी ओर इकट्ठक देखती



रह गयी और माँ के मुँह से निकल गया — “तू बात बहुत करती है लाली।”

इतने में सोने की आवाज़ आ पहुँची — “अरे लाली, देख तो दिया-सलायी की डब्बी कही पड़ो-पड़ायी है या नहीं; यह डब्बी तो मन्थरा-मार्का प्रचुष्ट नारियाँ की तरह हिन्दू-कोडबिल के भड़कावे में आकर काम ही नहीं दे रही है।”

भाभी हँसने लगी। लाली उठती हुई बोली — “डब्बी में चिकनईवाले हाथ लग जाने से फिर वह बेकार हो जाती है न, उसीकी बात कह रहे है सोने भैया।”

लाली इस प्रकार सिर्फ़ एक मिनट ठहरकर चली गयी।

अपने कमरे में बैठे-बैठे आँगन में होनेवाली बहुतेरी बातें मैं प्रायः सुनता रहता हूँ। इस समय मैं बाहर निकलने की तैयारी कर रहा था। लाली जब नीचे चली गयी, तब एक मिनट रुककर मैं भी नीचे जाने लगा। पर उस समय लाली नीचे से ऊपर आ रही थी। जब हम दोनों एक ही सीढ़ी के अन्तर पर एक दूसरे के समक्ष हुए, तब अपने को कुछ और झुकाकर मैंने धीरे से कह दिया — “तुमसे कुछ बातें करनी हैं लाली। लेकिन यहाँ... यहाँ नहीं।”

लाली प्रसन्नता की स्वाभाविक सरल मुसकराहट को होंठों से दबाती और हृदय में छिपे हुए उदाम ज्वार को मुक्त नयनों की कोरों से काटती मेरे कानों में मुँह लगाकर बोली — “भाभी रानी भी तो माँ के साथ मन्दिर में आरती करने जाने लगी हैं। बस तभी।” और उन्माद से अठिलाती हुई मेरे घर के आँगन को ओर चढ़ती चली गयी।

सायंकाल अभी हुआ नहीं था। और उस समय तक ज़िने में थोड़ा प्रकाश भी था। इसलिये जब वह ऊपर चढ़ने लगी, तब मैंने एकबार मुँह घुमाकर उसे देखा, तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे जीवनयात्रा में भी लाली ऊपर उठती चली जा रही है और मैं नीचे खड़ा-खड़ा केवल उसे ताक रहा हूँ! तब

मैं अपने आसने पहुँचा हूँ, सकलता के नाम पर अधर में लटका हुआ क्या मैं केवल प्रतीक्षा के लिए ही बनाया गया हूँ ? जिसको मेरा मन चाहेगा, समाज सदा उसका विरोध करता रहेगा !” अब अधिक देर के लिए तो मैं घर से निकल नहीं सकता था और जब निकल ही पड़ा था, तो तत्काल घर लौटना कैसे ? इसलिये सड़क पर आकर सोचने लगा कि घंटे-डेढ़-घंटे का समय याहो कहाँ बिता दिया जाय ? पर देखो तो, जिन क्षणों का मूल्य मनुष्य कभी चुका नहीं सकता, कामना के उद्वेलन में उन्हें कैसे निर्ममता से नष्ट कर डालता है ! कहीं संतुलन नहीं, कहीं एकरूपता नहीं । पर क्या हम इस विभेद पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते ?

इसी समय पीछे से दौड़ता हुआ सुखराम आ पहुँचा और बोला—  
“मौ आपको बुला रही है ।”

मेरी समझ में नहीं आया कि अभी तो मैं घर से बाहर निकलकर आया ही हूँ, फिर इस समय मेरी क्या ज़रूरत आ पड़ी ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जीने में लाली से मेरी जो बातचीत हुई है, उसे मौ ने सुन लिया है और वे मेरे कान खींचना चाहती हैं ! अच्छे पकड़े गये नीलकण्ठ-महादेव-ज्योतिर्लिंग-शिवशंकर !

एक-एक सेकंड काटना कठिन हो गया । क्षण-क्षण पर यही कोई कहने लगता —“तुम छिपकर कोई काम कर ही नहीं सकते । तुम कभी बात बना ही नहीं सकते । तुम ठहरे सत्य के शोधक । तुम्हारे लिए इस संसार में गति कहाँ है ?”

सुखराम से मैंने पूछा—“क्या बात है ?”

पर जब तक वह मुँह खोले, तब तक मैं पसीने से लथ-पथ हो गया । ‘अभी पकड़ा जाता हूँ !’ उसने बतलाया —“आपके बाहर आते ही दिल्ली से कोई चिट्ठी आ गयी । उसे पढ़ते-पढ़ते लखनऊवाली बहू बेहोश हो गयी है !”

हे भगवान ! यह तेरी कैसी लीला है ? यह चिट्ठी दिल्ली से कैसी आ गयी ! क्या उसमें कोई ऐसी बात लिखी है, जिसमें मेरे ऊपर कोई कुछ

दोष लगाया जा रहा है ? क्या मेरी विधि-लिपि मुझे कसौटी पर कसना और मेरा परीक्षण करना चाहती है ? क्या मेरे मुँह पर अब कालिमा पुतना ही चाहती है !

और, तत्काल मैं घर पहुँचा। माँ, लाली और उसकी भाभी ने जैसे तैसे उठाकर भाभी को पर्लिंग पर लिटा दिया था। केशों के चुस्त बन्धन ढीले पड़ गये थे। मस्तक, नासिका, चिबुक और ग्रीवा पर श्रम-बिन्दुओं के मोती झलक रहे थे और बाम बाहु पर सिर कुछ इस भाँति टिका हुआ था, जैसे वे सहज स्वभाव से लेट रही हों। हलके आसमानी रंग के शाल से सारी देहलता आवृत थी। हाँ, बायें पैर का अँगूठा कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा हिल उठता था।

माँ ने बतलाया—‘मधू को जौहरी साहब कहीं अपने घर ले गये थे। वहाँ उससे मालूम नहीं क्या बातचीत हुई। उसी पर त्रिगड़कर बड़ी बहू ने जो मन में आया, सो लिख मारा है ! ले, तू खुद चिट्ठी पढ़कर देख ले।’

यही वह पत्र है और मैं उसे पढ़ रहा हूँ।

प्यारे लल्ला,

२४ वियर्ड रोड, नयी दिल्ली

१३-२-५१

उस दिन मैंने कितनी विनती की थी कि मधू को पहले यहाँ ले आना। मैं उसे दो दिन अपने साथ रखूँगी। उसके बाद तुम उसे इलाहाबाद ले जाना। और तुमने वचन भी दिया था कि दीक्षितजी की माताजी से पूछ देखूँगा। अगर उन्होंने स्वीकार कर लिया, तो मधू को ज़रूर ले आऊँगा। पर तुमने वहाँ इसकी चर्चा भी न की। यह बात मुझे यों तो आज ही तुम्हारे भैया से मालूम हुई, पर मैं समझ उसी दिन गयी थी, जब तुम बिना भोजन किये यहाँ से लौट गये थे। क्यों तुमने यह जल्दबाज़ी की, क्यों तुम मधू को यहाँ नहीं ले आये, फिर रानीजू कानपुर में कैसे तुम्हारे साथ होकर इलाहाबाद चली आयी और क्यों बार-बार मेरे अनुरोध करने पर भी वे यहाँ आना नहीं चाहती, उनके मन में रातदिन कौनसे विचार पैदा होते, उठते और गिरते रहते हैं—यह

मैं अच्छी तरह सोच सकती हूँ। मुझसे उनका राई-रस्ती भरभेद छिपा नहीं है। मुँह पर न लाने पर भी मन का चोर कहीं छिपाये छिप सकता है ! उपेक्षा की इन सब बातों का अर्थ ऐसा कठिन नहीं है कि मैं उसे समझ नहीं सकती। इतनी बेकूफ मैं नहीं हूँ। थोड़ा-बहुत तो मैं मझू के ब्याह में ही अपनी आँखों से देख चुकी हूँ। मैं स्वयं भी तो एक -दुखिया नारी हूँ। क्या मेरे आखे नहीं हैं ? क्या मेरे हृदय नहीं है ? यह जो बार-बार हर दूसरे-चौथे उनको मूर्छा आती रहती है, इसका भी मतलब एक डाक्टर से पूछने पर मुझे मालूम हो गया है। ...तो यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैंने उनसे कह दिया कि खर्चा तो तुमको देना ही पड़ेगा। सौ रुपये मैं बीमे से अभी भिजवा रही हूँ और हमेशा हर महीने की पहली तारीख को उन्हें मिलते रहेगे। जिसमें उनको सुख मिले, उसीमें मुझे भी आनन्द है। रह गयी मेरी बात, सो मेरा भी बेड़ा भगवान जैसे-तैसे पार ही कर देगा।

अब इस पत्र के बाद उनसे मिलने की कोशिश करना फ़िजूल है और अब इसके बाद मुझसे भी मिलने की कोशिश करना व्यर्थ है ! जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, सब मामलों में हुकूमत मेरी चलेगी—बात मेरी रहेगी। मैं जो कहूँगी, सो होगा। मेरी आज्ञा के बिना इस परिवार में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

अब इस पत्र के बाद उनका मुझको कोई भी पत्र लिखना व्यर्थ है, और मुझसे मिलना भी व्यर्थ है।

उनका यह विवाह मैंने करवाया था। वह कुल्हाड़ी मैंने अपने पैरों पर मारी थी। मैं सोचती थी—जीवन में कोई ऐसा काम न करूँगी, जिससे उनका जो दुखे। मैंने निश्चय किया था कि मैं उन्हें हमेशा छोटी बहन की तरह मानूँगी। मगर उन्होंने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है, उसे मैं किसी तरह सहन नहीं कर सकती। मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो बात-बात पर बदल जाया करती हैं। मेरा निश्चय जीवन भर का निश्चय होता है।

एक दिन था, जब तुमने मेरे हृदय में स्थान बना लिया था और मैं यह सोचने लगी थी कि अगर हम लोग एक साथ ही रह पाते, तो कितना उत्तम होता ! मगर अब मैं सोचती हूँ, वह मेरी नादानी थी । जब हृदयों के अंदर इतना कष्ट और द्वेष—छल और प्रपञ्च—है, तब ऐसी सम्भावना ही कहाँ है ! साफ़ बात है कि जब उनको मेरा सुख सहन नहीं हुआ, तब मैं ही उनका खयाल क्यों करूँ ?

तुम्हारे लिए भी यह एक उत्तम अवसर है । इसमें तुम्हें जो सुख-शान्ति मिलेगी, उससे मौसी की वृद्धावस्था आनन्दपूर्वक कट जायगी !

इस पत्र का उत्तर देने की ज़रूरत नहीं है । केवल सूचना के लिए भेज रही हूँ ।

तुम्हारी अब तक की—भाभी  
बिमला

अब मैं सर्प-दंश का अनुभव करने लगा ।

सायंकाल हुआ । रात आयी । नौ बजे भाभी की चेतना जाग्रत हुई, तो वे उठकर बैठ गयीं । पर बोली कुछ नहीं । लाली पास बैठी थी । पास ही माँ भी लेट रही थी । किसीने खाना नहीं खाया था । साग रसोई में कटा रक्खा था । चूल्हे में कोयला और उस पर लकड़ी का छीलन पड़ा हुआ था । दियासलाई जलाकर उसमें छुआ देने भर की देर थी । पर सब बेकार पड़ा था । क्योंकि जलती हुई दियासलाई तो मुझ मुर्दा समझकर मेरे शव को छुआ दी गयी थी !

आज तक मुझे कभी क्रोध नहीं आया । आया भी तो घड़ी-दो-घड़ी से अधिक कभी टिक नहीं सका । पर अब मुझे कुछ करके दिखला देना है ।

अब तक मैं भी मरा-मरा-सा लेटा था । पर ज्योंही घर की इस दुर्-वस्था को एक बार मैंने देखा, त्योंही मेरे मुँह से निकल गया—“खाना तो मैं लौटकर खाऊँगा, पर मेरे लिये एक-आध सेर गरम-गरम दूध तो देना माँ ।”

माँ को उठने की आवश्यकता नहीं पड़ी; क्योंकि लाली पास ही बैठी

थी। दुख-सुख में उसके साथ और सहयोग का हमें सदा सहारा रहा है और यह सहारा तो कभी छूटेगा नहीं।

जब गिलास भर दूध मैंने ग्रहण कर लिया, तब माँ से पूछा—“अब तुम्हारी क्या राय पड़ती है माँ?” माँ ने कह दिया—“राय मैं क्या बतलाऊँ ! बहू की जो राय पड़े।”

ऐसा जान पड़ा, जैसे माँ कुछ कहना नहीं चाहती। पहले वे मुझसे कुछ सुनना चाहती हैं। लेकिन मैं बिना लालाजी की सम्मति प्राप्त किये कुछ कहना नहीं चाहता था।

भाभी बोल उठी—“मेरी राय तुमको स्वीकार भी होगी मौसी?”

भाभी का इतना कहना था कि माँ फूट पड़ी। बोली—“पहले तो मैं ऐसा कुछ नहीं सोचती थी; लेकिन अब मेरा मन भी कुछ कहने लगा है। तू सबसे पहले एक काम कर, लालाजी को यही बुला ले। उनकी राय के बिना कुछ भी तू कर लेना जल्दबाज़ी होगी। बड़ी बहू ने मेरे बुढ़ापे को आनन्द से बिताने पर जो ताना मारा है, वह बेकार नहीं जायगा।”

भाभी माँ की इस बात को सुनकर मानो गद्गद् हो उठी। बोली—“मैं जानती थी, एक-न-एक दिन मौसी को हमारे बीच में पड़ना ही होगा। अच्छा तो है, शान्ति के साथ जीने का सुभीता अगर हो जाय, तो मृत्यु को अभी मैं कुछ दिनों के लिए टाल सकती हूँ।”

लाली हम लोगों के बीच प्रायः उसी अवसर पर बोलती है, जब उस विषय के मर्म को पूर्ण रूप से हृदयङ्गम कर लेती है। पर इस अवसर पर यकायक मालूम नहीं क्यों उसके मुँह से निकल गया—“क्यों माँ, आखिर बड़ी भाभी चाहती क्या हैं? जिस मतलब से उन्होंने इन छोटी भाभी को बुलाकर यह महाभारत रचा, क्या उसका ध्यान भी अब उनके मन से उतर गया? ठीक तरह से दवा की जाय, तो क्या भाभी की तबियत जल्दी अच्छी नहीं हो सकती? मैं तो देखती हूँ, यहाँ आने से तबियत में कुछ सुधार ही हुआ है। और जो यह कहो कि यह मूर्छा क्यों आ जाती है,

मुझे ज़िन्दा रखकर तुम करोगे क्या ? मैं पूछती हूँ, अगर मैं मर ही जाती, तो तुम्हें क्या दुख होता ?”

इसी समय किसीके आने का आहट पाकर लाली चुप रह गयी । लालाजी के नाम मेरा पत्र तैयार हो गया था । तभी भाभी ने आकर कहा—“जान पड़ता है, तुम्हारे भाई साहब आये हैं ।”

विस्मय के साथ मेरे मुँह से निकल गया—“कौन बंशीभैया ?”

वे बोली—“तुमको उसी पीछेवाले कमरे में बुला रहे हैं ।”

• तब मैंने लाली से कह दिया—“रहने दो, फिर देखा जायगा ।” और मैं उठकर कमरे के बाहर चला आया ।

भाई साहब का चरण अभी पूर्ण रूप से स्पर्श भी न कर पाया था कि वे बोले—“आँधी-तूफान भरी कोई चिट्ठी आयी होगी तुम्हारे पास .. आयी है न ?”

चिट्ठी मेरे जेब में अब तक पड़ी थी । तत्काल मैंने उन्हे दे दी । उन्होंने ध्यान से उसे पढ़ा । फिर मुसकराते हुए कहा—“अपनी भाभी को ज़रा बुलाना यही ।”

छोटी भाभी चिक के बाहर ही छिपी खड़ी थीं । आह्वान पाकर आ गयीं ।

भाई साहब के मुँह से निकल-गया—“अच्छा, तो तुम दरवाज़े पर ही खड़ी-खड़ी सुन रही थीं कि देखें क्या बातें होती हैं !”

भाभी तब भी चुप बनी रही ।

तब भाई साहब बोले—“अच्छा हो, तुम कुरसी पर बैठ जाओ; क्योंकि इनके खड़े रहने का तो कोई भरोसा है नहीं ।”

भाभी अब पलंग पर बैठ गयीं । मैंने कह दिया—“अच्छा होगा, तकियों के सहारे लेट जाओ ।” मैं कुरसी पर आ गया । भाई साहब ने गरम कोट उतारकर खंटे पर टाँग दिया और शाल अपने ऊपर डाल ली । फिर कुरसी पर बैठते हुए उन्होंने कहा—“खाना तो मैं गोल कर सकता हूँ, पर चाय का एक कप मिल जाता, तो बात करने में कुछ आसानी होती ।”

मैंने कहा—<sup>२८४</sup>“दीक्षितजी, खाना भी आपको गोल न करना होगा और चाय भी आपको दो मिनट में मिल जायगी। पत्र मिलने के बाद हम लोगों की अवस्था चिन्ताजनक हो गयी थी। यहाँ तक कि चूल्हे में कोयला अभी तक ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ है। अब अलवत्ता हम लोग ब्रेक-फ़ास्ट की सोच रहे थे।” कहकर मैं तुरन्त बाहर आ गया और माँ को सब कुछ समझा-बुझाकर लाली से भी माँ की सहायता करने का अनुरोध करते हुए कह दिया—“अरे लाली, माँ तुम्हें कब की याद कर रही हैं। सुनो तो ज़रा। शायद घण्टे-आध घण्टे की दलेल बोल दी गयी है।” और पुनः मैं यथास्थान पहुँच गया।

भाई साहब बोले—“इस चिट्ठी का शायद मुझे पता भी न चल पाता, अगर इसकी प्रतिलिपि मुझे एक जगह पड़ी न मिल जाती। अब तुम पूछोगे कि जिसने इस तरह की चिट्ठी भेजी, उसने इसकी प्रतिलिपि को भी कहीं मज़बूती के साथ क्यों नहीं रक्खा? तब मुझे इस सिलसिले की अन्य बातें भी कहनी पड़ेंगी।”

इसी समय छोटी भाभी उठ बैठी और भाई साहब से बोलीं—“तुम इनसे बातें कर लो। फिर मुझे जो कुछ कहना होगा, मैं तुमसे कह लूँगी।” और इन्हीं शब्दों के साथ वे कमरे से बाहर जाने लगी।

भाई साहब इसी समय भाभी को लक्ष्म कर बोले—“अगर तुम यहाँ हम लोगों के सामने इस तरह आराम से नहीं लेट सकती, तो इस कमरे की दूसरी ओर जाकर लेट रहो। मगर जो मैं कह रहा हूँ, उसको सुनो ज़रूर; क्योंकि उससे हमारे हिताहितों का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है।”

मैंने कह दिया—“हाँ भाभी! यही मुझे भी उचित जान पड़ता है।”

अब भाई साहब बोले—“रामलाल को तो तुम जानते ही हो। कहीं से कतर-ब्योंत करके उसने दस-बारह हज़ार रुपये इकट्ठा कर पाये थे और इस सिलसिले में वह जेल की हवा भी खा रहा था। लेकिन फिर छूट गया किसी तरह। खैर, मुझे तो कुछ मालूम न था, तुम्हारी बड़ी भाभी के पास उसकी धरोहर रहा करती थी। एक दिन उसने मुझसे कह दिया—



रामलाल की रकम जो मेरे पास रखी है, उसे अब तुम बैंक में ही डाल दो, तो अच्छा हो। क्योंकि घर पर जोखिम की चीज़ रखने में मुझे बड़ा डर लगता है। फल यह हुआ कि उसकी बारह हजार की रकम मैंने अपने हिसाब में जमा कर ली।”

इतने में लाली ने एक प्लेट में आलू की कचरी के साथ चाय सुख-राम के हाथ भेज दी। इसके बाद दो प्लेट्स में गजक लेकर लाली स्वयं आ पहुँची। मैंने देखा, लाली की वेश-भूषा इस समय बिल्कुल बदली हुई है। श्वेत परिधान में उसका श्वेत कमल-सा खिला हुआ मुख मुझे उस समय बड़ा प्यारा लग रहा था। लाली प्लेट रखकर जा ही रही थी कि चुपचाप मन-ही-मन मैंने कह लिया—मन अगर उज्ज्वल रहता है, तो उज्ज्वल कपड़ों में आनेवाला व्यक्ति मुझे प्रायः प्रभावित कर ही लेता है।”

लाली ने दरवाज़े से घूमकर पूछा—“ऐं! क्या तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो मैया?” सुनकर मैं हक्का-बक्का-सा हो उठा!—हे भगवान्, तेरी यह कैसी लीला है! और प्रकट रूप में कह दिया—“नही नहीं, कुछ नहीं।” पर उसी क्षण मैंने लज्ज किया, लाली की बात खाली नहीं गयी।

लाली जब चली गयी, तो भाई साहब गजक का एक टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहने लगे—“इस लड़की को मैंने नहीं पहचाना।”

मैंने कह दिया—“नीचे जो किरायेदार पहले से रहते हैं, उनकी यह एक विधवा बहन है और एक विद्यालय में पढ़ने जाती है। माँ इसे कभी-कभी मदद के लिए बुला लेती है।”

भाई साहब बोले—“चाय तो अच्छी बनाती है यह लड़की।... मधू को बड़ी जल्दी चला जाने दिया।... आलू की यह कचरी तुम्हारी भाभी भी अच्छी बनाती हैं।... मौसी कह रही थीं—दीक्षितजी ने जब कहा—यों जब कहोगी, तब भेज जाऊँगा। पर अम्मा कहती है कि सयानी लड़की को तो अपने घर में ही सदा रहना चाहिये। बस, इस बात पर राजेन भूट उसे भेज देने पर राज़ी हो गया।... मालूम नहीं क्यों, यह गजक आज मुझे बहुत पसन्द आ रही है।”

मैंने वहीं बैठे-बैठे कह दिया—“अरे लाली !”

लाली माँ के पास से बोली—“आयी मैया !”

और तत्काल लाली फिर सामने आगयी । मैंने कहा—“यह गजक कौन लाया था ? मैं तो लाया नहीं ।”

लाली ने दृष्टि नीची करली और मैंने लक्ष किया, उसकी अधोमुखी बड़ी-बड़ी आँखें उत्तर के पंख पर उस तरह जमी हुई हैं, जैसे दुलार में रखे हुए कपोत पर प्रायः अनुशासन की कोमल हथेलियाँ रहा करती हैं । इसी समय लाली दीर्घितजी के प्लेट पर दृष्टि डालती उछलती हुई दरवाज़े के बाहर जाती-जाती कह गयी—“मै और लिये आती हूँ ।”

भाई साहब चाय का घूँट घुटककर प्याला टेबिल पर रखते हुए बोले—“रुपया तो खर्च होगा; पर रामलाल को इस बार साल भर जेल में न रखवा, तो मेरा नाम वंशीधर नहीं ।” सुनकर मुझे आश्चर्य तो हुआ, पर अधिक नहीं । क्योंकि जब भाईसाहब ने बातचीत के प्रारम्भ ही में उसका नाम लिया, तभी मैंने सोच लिया था कि कुछ दाल में काला है । फिर भी कुतूहल वश पूछा—“मामला क्या है ?”

वे बोले—“अभी बतलाता हूँ ।” पर उसी समय लाली गजक का दूसरा प्लेट ले आयी, तो भाईसाहब सहसा उसकी ओर देखकर कहने लगे—“यहाँ किस क्लास में पढ़ती हो लाली ?”

लाली शरमा गयी । बोली—“नाम तो कही जुलाई में लिखा जायगा ग्यारहवें दर्जे में । इस समय उसी काकोर्स तैयार कर रही हूँ ...आपको कुछ और ले आऊँ, वैसे भोजन भी अभी तैयार हुआ जाता है !”

भाईसाहब गजक के टुकड़े को दाँत से काटते हुए बोले—“मगर अब इस अवस्था में पढ़ने का विचार मेरी समझ में तो आता नहीं !”

“क्यों ? जीविका के लिए ... ।”

“जीविका के लिए यह ज़रूरी नहीं कि स्त्रियाँ बी० ए० ही पास करें ।”

लाली इसी समय कमरे से बाहर हो गयी ।

“जैसे आभूषण पहनने के लिए यह ज़रूरी नहीं कि वे सोने के ही हों। क्यों ?” मैंने कह दिया।

“बेशक। लेकिन तुम मेरी दूकान देखने तो कभी आये नहीं, तुमसे कहूँ भी क्या ! ख़ैर, इसमें बहस की क्या बात है ! चार चीज़ें मैं तुम्हें एक साथ दिखलाऊँगा। उनको देखकर बतलाना—कौन असली सोने की है कौन नक़ली—एकदम दो कौड़ी की।”

“तो शायद आप कहना चाहते हैं कि जो लोग योग्यता और अनुभव के सहारे जीविका पाने की चेष्टा करते हैं, वे बेवकूफ़ हैं।”

“इसमें भी कुछ शक है ? अजी बाबूसाहब, मैंने ऐसे-ऐसे लोगों को बड़े-बड़े ज़िम्मेदारी के पदों पर काम करते हुए देखा है, जिन्हें उस विषय का रस्ती भर भी ज्ञान नहीं। क्या मैं आपको उदाहरण देकर समझाऊँ कि दुनियाँ में कहीं भी किसी इंजीनियर का कोई लड़का इंजीनीयरिंग पास किये बिना इंजीनियर नहीं हो जाता। लेकिन हमारे देश में पेशेवर नेताओं के साले-दामाद योग्यता और अनुभव में कोरे रहने पर भी महीने की दूसरी तारीख को जेब में अपनी पास-बुक लेकर इम्पीरियल बैंक पहुँच ही जाते हैं !”

“तो ऐसे लोगों की श्रेणी में आप स्त्री जाति की भी गणना करना चाहते हैं !”

इसी समय कहीं से बिल्ली बोल उठी—“म्याऊँ !”

भाई साहब बोल उठे—“ख़ैर, छोटिये इस बहस को।”

मैंने चाय की ट्रे उठाकर एक तरफ़ रख दी। भाईसाहब कुरसी छोड़कर पर्लेग पर आ रहे और कहने लगे—“हाँ, तो रामलाल को जब कभी रुपये की ज़रूरत पड़ती, वह मुझसे चेक ले जाता। उसके हिसाब में कभी गड़बड़ी न हो, इसके लिए मैंने एक कापी अलग से बना दी और उसी में उसका जमा-खर्च लिखा जाने लगा। कुछ दिनों तक इसी तरह उसका काम चलता रहा। इसके बाद कभी-कभी वह ऐसे समय अपनी बुआ के पास आकर रुपये की ज़रूरत बतलाता, जब मैं घर पर

न रहता। कई बार ऐसा हुआ कि वह जब-जब घर पर आया, मैं नहीं मिला।

“तुम्हारी भाभी ने कहा—रामलाल कह रहा था कि तुम फूफाजी से चेक लिखवा लेना। मुझे जब फुरसत मिलेगी—मैं ले जाऊँगा।

“मैं बराबर चेक काटकर घर में दे जाता और वह उसे घर से ले आता। इसमें कभी कोई ऐसी बात नहीं पैदा हुई, जिसमें मुझे शक होता।

“लेकिन संयोग की बात कि एक बार चेक-बुक समाप्त हो चुकी थी। इसलिए मैंने नयी चेक-बुक प्राप्त करनेवाला आदेश-पत्र काटकर घर में दे दिया और समझा दिया कि इससे चेक-बुक मँगवा लेना। वह चेक-बुक ले आया और घर में छोड़ गया। पर फिर महीने भर उसका पता नहीं चला। मैंने भी समझ लिया कि अब उसे रुपये की ज़रूरत न रही होगी।

इसी समय एक बिल्ला कमरे में आ पहुँचा और मूँछों पर जीभ फेरता हुआ बोला—म्याऊँ !

“आप कहेंगे कि उससे चेक-बुक मँगाने की ज़रूरत ही क्या थी ? और आपका यह कहना क़ायदे से ठीक ही है; चेक-बुक तो मुझे अपने विश्वस्त आदमी से ही मँगानी चाहिये थी। लेकिन रामलाल तो तुम्हारी भाभी का सगा भतीजा है। उमे मैं अविश्वसनीय कैसे समझता ? ख़ैर, इधर कुछ ऐसा हुआ कि एक मकान ख़रीदने के लिए मुझे यकायक बैंक से रुपया निकालने की ज़रूरत आ पड़ी। मैंने चालिस हज़ार रुपये का जो चेक काटा, तो चेक तो मेरा कैश हो गया, पर पास-बुक पर मेरी जो दृष्टि गयी, तो क्या देखता हूँ कि तीस हज़ार की एक रक़म और मेरे नाम पड़ी हुई है ! मैंने बहुत सोचा, पर कहीं से भी कोई ऐसी मद नहीं निकली जिसके लिए मुझे रुपया निकालने की ज़रूरत पड़ी हो। इसलिए अन्त में मैं इसी परिणाम पर पहुँचा कि हो न हो, यह रामलाल की ही कृपा का फल है। और संयोग तो देखिये कि कभी-कभी नयी चेक-बुक आने पर उसके पूरे पृष्ठ मैं देखता भी नहीं था। पर उस समय जो देखा, तो यह देखकर अवाक् रह गया कि तीसरे नम्बर का चेक ही ग़ायब है ! अब बतलाइये,

“सिवा इसके कि हम यह साबित करें कि वह चेक मेरा लिखा हुआ नहीं है, उसपर मेरे हस्ताक्षर भी नहीं हैं, बैंक ने भुगतान करने में ग़लती की है— मेरे पास और कौनसा मार्ग रह जाता है ?

इसी समय लाली पान देने आ पहुँची, तो भाई साहब ने पान तो ले लिये; लेकिन वे बोल उठे—“चूना ठीक तरह से लगाया है न ? क्योंकि तुम तो पान खाती न होगी । और अनुभव के बिना खाने-पीनेवाली चीज़ों का ज्ञान....” फिर पान के हाथों को पल्लंग की पाटी पर घिसते और पोंछते, मुसकराहट दबाते मेरी ओर देखते हुए यथास्थान आ पहुँचे और कहने लगे—“मामला दायर तो कर दिया है मैंने । पर फैसला पक्ष में होगा, इसमें सन्देह है । क्योंकि बैंकवालों का कहना है कि मैंने तो फ़ोन से भी आपसे पूछ लिया था । और फ़ोन दूकान में है, उस पर उस दिन किसने जवाब दिया और जवाब में क्या कहा, कुछ भी पता नहीं लग रहा है । इसके सिवा कि रामलाल तो दूकान पर आया ही करता था और ज़रूरत पड़ने पर घर का आदमी अगर फ़ोन करे, तो उस पर कैसे अविश्वास किया जाय ? दस हज़ार के लगभग उसका रुपया हमारे पास जमा था और बीस हज़ार की रक़म उसने हमारी मार दी ? इधर उनका कहना है कि रामलाल कभी ऐसा कर ही नहीं सकता ! ज़रूर तुम्हीं से कोई भूल हुई है ।”

तब कुर्सी से उठकर टहलते हुए मैंने कह दिया—“ठीक तो है । घर के लोग कहीं ऐसा विश्वासघात कर सकते हैं ! जबकि घर के लोग आपसे पूछे बिना मुझे इस तरह की चिट्ठी लिखवा सकते हैं, जिसमें उनके मन के भीतर का सारा संचित विष एक साथ वमन हो पड़ा है !”

इसी क्षण भाभी कमरे के अन्दर आ गयी और बोली—“मैं पूछती हूँ कि ये सब बातें अगर रामलाल से कही नहीं गयी, तो उसने पत्र का ड्राफ़्ट बनाया कैसे ? और अगर रामलाल को ये सब बातें बतायी जाती है, तो मैं नहीं जानती कि जीजी खड़ी कहाँ है !”

“वे चाहे जहाँ खड़ी हों और तुम चाहे जहाँ बैठी रहो, मुझको इस

समय इस बात पर विचार नहीं करना है। मैं तो राजेन्द्र से केवल इतनी मदद चाहता हूँ कि रामलाल के मुख पर न सिर्फ कालिख ही पुतकर रह जाय, वरन् उसका वह मकान भी नीलाम पर चढ़ जाय, जो उसने अभी आर्यनगर में बनवाया है।”

“तुम चाहे जो कार्रवाई करो रामलाल पर, पर ये इस मामले में क्या कर सकते हैं ! रामलाल खूनी आदमी ठहरा। वह कत्ल और फौजदारी की कमाई खाता है। इनको जान-बूझकर इस आग में पड़ने की क्या जरूरत है ?” भाभी ने कह दिया।

तब हँसते-हँसते भाई साहब बोले—“मेरा खयाल है, राजेन्द्र ने अपनी पैरवी के लिए तुमको वक़ील तो बनाया नहीं। और बना ही लिया हो, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन तुम इस तरह रूठी कब तक रहोगी ? घर नहीं चलना है क्या ?”

“घर का मतलब घर ही हो, तो मैं तैयार हूँ।”

“भोजन तैयार है, चलिये।” इसी समय बदन पर शाल डाले हुए लाली ने आकर कह दिया।

## बाइस

दो दिन तक मैंने भाई साहब को रोक लिया। इस बीच एक दिन लालाजी से फिर भेंट हो गयी। मैंने पूछा—“मुरलीबाबूवाले केस में फिर क्या हुआ ?”

लालाजी बोले—“जब तकदीर उसका साथ दे रही है, तब मैं क्या कर सकता हूँ ! सौ रुपये फ़ाइन या एक महीने की सज़ा हुई थी। हुक्म सुना देने के बाद अर्चना ने वही रुपया जमा कर दिया।”

“अर्चना ने रुपया जमा कर दिया !” मैंने आश्चर्य से पूछा।

लालाजी बोले—“मुझे भी इस बात पर आश्चर्य हुआ।... अर्चना का कहना है कि हमारी लड़ाई तो केवल सिद्धान्तों की है। पर जहाँ तक पारस्परिक सहानुभूति का सम्बन्ध है, हम कभी अलग हो नहीं सकते।”

मैंने कह दिया — “अच्छा !”

लालाजी ने पहले सिगरेट जलाकर एक कश लिया । फिर गाड़ी स्टार्ट करवाते हुए कहा — “मेरे विचार तुमने डाँवाडोल कर दिये हैं । इसलिए मैं अधर में लटक रहा हूँ इस समय । लेकिन कुछ हो, मुझे अर्चना लड़की पसन्द आ रही है । जहाँ कड़ा पढ़ने की ज़रूरत है, वहाँ वह टस-से-मस नहीं होती । पर जहाँ मानवता का प्रश्न उपस्थित हो जाता है, वहाँ मैं उसको आगे ही पाता हूँ ।”

“विचार मेरा भी कुछ ऐसा ही है । बल्कि मैं तो यहाँ तक सोचता हूँ कि दोनों इस दशा में एक साथ रह सकते हैं । यद्यपि अर्चना कभी ऐसा पसन्द न करेगी ।”

लालाजी गंगाजी के उस पार भूखी की ओर जा रहे थे । और उस समय हम लोग पुल के ठीक ऊपर थे । मैंने पूछा — “जमना कहाँ है आजकल ?”

लालाजी सिगरेट की राख बाहर फेंकते हुए बोले — “अभी तो यहीं है । राय चन्द्रनाथ अलबत्ता दूसरे दिन ही चले गये थे । लेकिन ये चन्द्रनाथ भी जमना से कुछ दबते-से देख पड़े मुझको । उनसे इतना तक नहीं हो सका कि अपराध उसने किया या नहीं किया, यह बात दूसरी है; पर इतने दिन तक वह घर से गायब जो रही, इस बात पर कुछ तो क्रोध दिखलाते !... मेरे विश्वासों और विचारों में इतनी उथल-पुथल पैदा हो गयी है राजेन कि मेरी पसन्द तक दिन-पर-दिन बहशियाना-सी होती जा रही है । मैं पहले सोचा करता था, क्या ऐसे लोग भी संभ्य हो सकते हैं, जो अपनी बीबी को इतना मारते हैं — इतना मारते हैं कि खाल उधेल कर रख देते हैं ! पर अब मुझे ऐसा लगता है कि जब प्रेम विरोधीपक्ष के लिए हत्याओं तक को जन्म दे सकता है, जब वह अपनी बीबी की रक्षा के लिए जान तक कुर्बान करा सकता है, तब ऐसे मौके पर दो चाँटे क्यों नहीं रसीद कर सकता ? क्या खयाल है आपका ?”

कार को बाहर सड़क पर खड़ा करके हम लोग बालू पर आकर बैठ

रहे। सायंकाल होने में अभी देर थी। झूसी की ओर से एक मालगाड़ी आइंजेंटब्रिज को पार करती हुई दारागंज जा रही थी।

मैंने कह दिया—“लालाजी आप मुझसे सब तरह से बड़े हैं। पर एक बात मैं आपसे अवश्य कहूँगा कि इतनी जल्दी अपना मत बदलते रहने से भी संसार की व्यवस्था स्थिर रह नहीं सकेगी। संक्रान्ति काल में सब कुछ अंधड़ में पड़ जाने की भाँति अनिश्चित हो जाता है, मानता हूँ। पर वह स्थिति ही दूसरी होती है। लेकिन युग-युग तक सदा यही कहते जाना कहीं तक उचित हो सकता है कि हम एक महाक्रान्ति की तैयारी में लगे हैं। हमें तो विध्वंस करना है। सब पुराने महल, पुरानी परम्पराएँ पुरानी रूढ़ियाँ और मान्यताएँ हमको एकदम से नष्ट कर देनी हैं। हम इसमें समझौता नहीं कर सकते। हमें इसमें कोई विचार नहीं करना है। हम यह सोचना भी नहीं चाहते कि उसके पश्चात् क्या होगा!...राय चन्द्रनाथ अगर जमना पर कोड़े ही बरसाते, तो मैं कहता हूँ, आपकी आत्मा शांत और शीतल न होती।

“जब तक हम रग पर नश्वर नहीं मारते, तब तक परिणाम उत्तम हो ही नहीं सकता। सबसे पहले आपको जमना के मन पर जो विश्वास दृढ़ करना है, वह यह है कि जीवन का कोई भी पहलू सर्वथा स्वच्छन्द नहीं रखा जा सकता। कही-न-कही बन्धन तो आपको मानना ही होगा। जमना को आपलोगों ने सारे बन्धनों, कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से मुक्त करके देखा नहीं, क्या परिणाम हुआ? मैंने तो ऐसे लोगों को बिल्कुल पागल होते देखा है, जो समाज के लिए विश्वसनीय नहीं बन पाये। मैंने ऐसे लोगों को आत्मघात करते हुए भी देखा है, जिन्होंने एक लड़की को वचन दे दिया कि मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लूँगा और फिर उन्होंने अपना यह विचार बिना परिणाम सोचे स्थगित कर दिया, केवल इतनी-सी बात पर कि दूसरी लड़की पहली से अधिक सुन्दर थी! किन्तु जब उसे तीसरी लड़की दूसरी से भी अधिक सुन्दर जान पड़ी, तब उसने दूसरी लड़की के साथ भी ब्याह करने से इनकार कर दिया! दोस्तों



ने सुझाया कि इतनी अस्थिर बुद्धि रखने पर तुम इस संसार में कभी सुखी नहीं रह सकोगे। जलना ..निरन्तर जलते जाना तुम्हारे भाग्य में लिखा है। तुम शान्तिपूर्वक कभी रह नहीं सकते, सुख की शान्तिदायक निद्रा तुम्हें अपनी गोद में कभी शरण दे नहीं सकती, निरन्तर मानव-प्रकृति का धिक्कार ही तुम्हें मिलेगा ! निरन्तर दुनियाँ तुमको लम्पट, दुराचारी, धोखे-बाज़ और बदमाश के नाम से ही याद करेगी !”

लालाजी बोले—“बड़ी मुश्किल तो यह है कि इनकी किसी बात का कोई भरोसा नहीं। उसदिन जमना के नाम का एक एग्रीमेंट दिखलाया था, जिसमें उसको एक चित्र की हिरोइन बनने के लिए सात हज़ार रुपये देने का वादा किया गया था। आज कम्पनी से पत्र आया है कि आपका एग्रीमेंट कैंसिल किया जाता है। क्योंकि मुझे यह मालूम हुआ है कि आप विवाहिता हैं और किसी भी समय आपके पति आकर आपको अपने साथ रखने पर मजबूर कर सकते हैं। . आप जानते हैं, इसका क्या मतलब हुआ ? इसका मतलब यह हुआ कि बम्बई में जाकर मुरलीबाबू ने कम्पनीवालों को यह बतलाया कि जमना कुमारी है। और यहाँ आने पर चन्द्रनाथ से कहा कि अगर आपने जमना को अपनी अधीनता के जाल से छुटकारा न दिया, तो सात हज़ार की यह रक़म तो हाथ से चली ही जायगी। इसके बाद दो कम्पनियों में हिरोइन बनने के लिए दस-दस हज़ार के जो वादे हैं, उनका लौदा भी चौपट हो जायगा ! और यह तो आप जानते ही हैं कि आगे बढ़ने का सुअवसर ज़िन्दगी में एक ही बार मिलता है। इसका फल यह हुआ कि वे जमना को बम्बई जाने के लिए यही छोड़ गये। बतलाइये, ऐसी दशा में हम क्या कर सकते हैं !” मुझे तो कुछ ऐसा जान पड़ता है कि इन राय चन्द्रनाथ को भी रुपये के नाम पर मोह हो गया है। वे जमना को पैसा पैदा करने की एक मैशीन बनाना चाहते हैं। आप चाहते हैं सम्यता, आप चाहते हैं नैतिकता; लेकिन आपने देखा, दुनियाँ क्या चाहती है !”

दूर से एक चिता जलती हुई दिखलाई पड़ रही थी। उसकी ओर.

खते-देखते मैंने कह दिया—“मैं तो स्पष्ट देखता हूँ लालाजी कि सभ्यता की जितनी उन्नति होने को थी, वह हो चुकी। अब हम आगे बढ़ने के बजाय पीछे हट रहे हैं, बौद्धिक होते-होते हम बर्बर हो चले हैं। अगर देखते हैं न कि एक चलता-फिरता, ससार के मोह-पाश में निबद्ध मानव, इस चिता के रूपमें लेटा हुआ, अपने समस्त सुख-दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर चुका है। जो देह साबुन और इत्रों से सुवासित की जाती थी, अंगराग से जो शरीर महकाया जाता था, उसका अणु-अणु जल-जलकर भस्म हो रहा है ! सी-सी कर जड़ता हुआ रक्त बोलता है, चट्ट-चट्ट अस्थियाँ बोलती हैं, धू-धूकर अग्नि-शिखाएँ बोलती हुई अपना प्रज्वलन प्रकट कर रही हैं। लेकिन इसी शरीर की दाह-क्रिया की ओट में पता नहीं कितनी स्वार्थ-लित जिह्वाएँ लपलपा रही होंगी ! साला सोचता होगा कि इसकी जीवन भर की कमाई की रकम मेरे हत्ये कैसे चढ़े और बहनोई घात लगाये बैठा होगा कि यह कब आँखों से ओट हो और सारा कार्य-भार मेरे ऊपर आ पड़े। स्त्री सोचती होगी, अब मेरे लिये उन गिनी कौड़ियों के सिवा और रक्खा ही क्या है, जो वे मुझे छोड़ गये हैं। क्यों न ऐसे अवसर पर मैं कह दूँ कि मेरे पास तो क्रिया-कर्म करने को छुदाम नहीं है।”

अपने बनावटी दाँत पीसते हुए-से लालाजी बोले—“इस हराम-झादे को खम्भे में बँधवाकर पिटवाऊँगा, मैंने सोचा था। लेकिन राय चन्द्रनाथ को मुरलीबाबू ने ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि उनका स्वर ही बदल गया। आपने उस दिन देखा नहीं, जब हम उसे गिरफ्तार करवाने पर तुले बैठे थे, उसके घण्टे भर बाद राय चन्द्रनाथ से मिलकर वह किस अकड़ के साथ धड़धड़ाता हुआ हमारे कमरे में चला आया था !”

मैं मुरली बाबू के अनेक रूपों पर विचार करने में लीन हो गया। बैठे-बैठे जब शाम होने आयी, तब लालाजी ने कहा—“चलिये, अब चला जाय।”

उठकर हम जब कार पर बैठने लगे, तभी गौरीशकरजी झूसी से आते देख पड़े। मैंने कह दिया—“आइये गौरीबाबू।”

और लालाजी बोले—“आइये पंडितजी। और कहिये, आजकल”

मामलों-मुकदमों के सिफ़ारिश-पैरवी-विभाग और लाइसेन्स-परमिट-विभाग से तो काफी आमदनी हो जाती होगी !”

गौरीशंकरजी ने गाड़ी में बैठते-बैठते कहा —“हाँ लालाजी, मैंने भी सुना है कि अन्न लेन-देन और क्रिश्तबन्दीवाला ध्यापार तो आपका चलता-चलाता हैनही। इसलिये दिल्ली और बम्बई जा-जाकर चुपचाप कालाबाज़ार की शरण ही एक मात्र बाक़ी बची है। कभी मेरी सेवा की आवश्यकता पड़े, तो याद कीजियेगा। अधिक न सही, एक-आध बार तो पुराने व्यवहारों का नाता निभा ही दूँगा। विश्वास न हो, तो अनुभव करके देख लीजिये। लेकिन एक बात मैं आपको बतला दूँ कि मेरा साथ आपको ज़रा मँहगा पड़ेगा ! क्योंकि पैसेवालों का काम जितनी जल्दी हो जाता है, उतनी जल्दी मैं आपका काम न करा सकूँगा। मेरा बल पैसा नहीं, प्रभाव है; छल नहीं, सचाई है। और ऐसा भी हो सकता है कि इस परीक्षा में मुझे यह विश्वास हो जाय कि आप अनायास नहीं फँसे हैं, बल्कि लोभ में पड़कर जोखिम ले-लेकर अपने को तौल रहे हैं कि देखें, कहाँ तक माल मारा जा सकता है ! तब ऐसा भी हो सकता है कि सत्यका पक्ष अधिक बलवान हो जाय और मुक्ति का वचन देने पर भी मैं हाथ जोड़कर आपसे नमस्कार कर लूँ ! क्योंकि वचन, विश्वास और नाते-रिश्ते का लिहाज़ भी मुझे उतना प्यारा नहीं, जितना मेरा राष्ट्र-धर्म। समझते हैं न ? कभी मौक़ा मिले तो मेरे सम्बन्ध में डी० एम० से पूछ लीजिये; आपका भ्रम निवारण हो जायगा।”

लालाजी बोले—“मैं तो हँस रहा था गौरीबाबू। आप तो जानते हैं, मैं आपका कितना आदर करता हूँ।”

तब गौरीबाबू बोले—“एक बात कहना मैं कहीं भूल न जाऊँ, इसलिये अभी आपको बतला देना चाहता हूँ कि हमारे देश में भी धीरे-धीरे एक ऐसी नयीपौध पनप रही है, जो अपने पिता की आज्ञा भी उस समय टाल सकती है, जब उसकी समझ में आ जाय कि पिता हमें ग़लत रास्ते पर ले जा रहे हैं। अभी उस दिन मेरे एक मित्र बतला रहे थे कि

भारत को स्वतन्त्र बनाने में अपने त्याग की बारम्बार दुहाई देनेवाले प्रायः वही लोग हैं, जो पद और अधिकार के भूखे हैं और जो देशभक्ति को भी एक पेशा बनाये बैठे हैं ।”

उन्होंने नेताजी के जीवन की एक घटना की चर्चा करते हुए कहा—रात के दस बजे थे । नेताजी उस दिन अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण कुछ थके-मादे थे । इसलिए वे शयन करने को जाने ही वाले थे कि उसी समय उन्हें एक बात का ध्यान आ गया । तब वे बापूजी के एक तैल-चित्र के समक्ष जा खड़े हुए । उनके चरणों पर उन्होंने कुछ गुलाब के पुष्प चढ़ाये, धूप-बत्ती सुलगाई और उनकी आरती उतारी । फिर वे उनके चरणों पर गिर पड़े । तभी उनके एक बाल्य बन्धु आ गये । उन्होंने कहा—“क्यों सभाष, तुम्हारे कर्म और भावना में इतना भेद ! जिसने तुम्हारी अक्षय कीर्ति को धूल में मिलाने की चेष्टा की, आज तुम उसीकी बन्दना कर रहे हो ! जिन्होंने तुम्हारी उचित महत्वाकांक्षा का विरोध किया, उसीके चरणों पर तुम्हारा मस्तक झुक रहा है !”

नेताजी जब तक उठे, तब तक उनके नेत्र आँसुओं से तर हो चुके थे ! उन्होंने कहा—“तुच्छ स्वार्थों के बीच से यह कोई प्रतिशोध लेने का प्रश्न नहीं है । यह तो हमारी व्यक्तिगत श्रद्धा, पूजा और भावना का प्रश्न है । तुम इसे क्या समझोगे !”

कहने का तात्पर्य यह है कि त्याग और तपस्या के बदले में अधिकार और अधिकारों का मद भोग करनेवाली जाति वीर नहीं बणिक होती है ।... बस, यही उतार दीजिये । यहाँ मुझे अपने एक बन्धु से मिलना है ।”

जब वे कार से उतरने लगे तब मैंने उनसे कह दिया—“सदा आपही रामलाल का समाचार दिया करते थे । आज मैं आपको यह समाचार देता हूँ कि अबकी बार वे बीस हजार के ग़वन में स्थायी रूप से जेल की हवा खानेवाले हैं ।”

हिवेटरोड पर गाड़ी पहुँचते ही मैंने जो निर्दिष्ट स्थान पर उतरने के लिए कहा, तो लालाजी बोले—“थोड़ा ठहरो राजेन, ज़रा यहाँ एक बात का पता लगाना है।”

सुनकर मुझे कुतूहल हुआ कि यहाँ लालाजी को भला किस बात का पता लगाना है ! अतः तुरन्त मैं भी उनके साथ हो गया । लालाजी ने किसीसे कुछ पूछा नहीं, चुपचाप वे जलपान-विभाग के एक ऐसे कमरे में जा बैठे, जिसमें दूसरी ओर एक जोड़ा बैठा हुआ टिंक कर रहा था । तुरन्त होटल के मैनेजर ने उनके पास आकर उनका अभिवादन किया ।

इसी क्षण लालाजी ने पूछा—“कुछ मालूम हुआ ?”

मैनेजर ने संकेत से ऐसा कुछ कह दिया, जिससे इतना प्रकट हो गया कि हाँ, मालूम हो गया है । तब लालाजी एक ओर उठते हुए बोले—“ज़रा एक बात सुनियेगा ।” और फिर दोनों अलग जाकर परस्पर गुप्त वार्तालाप करने लगे ।

इतने में लालाजी मेरे पास आये और बोले—“दस-पाँच मिनट मुझे लग जायँ, तो ऊब न उठना राजेन ।”

अब भी मैं समझ नहीं सका कि ऐसी कौनसी बात है जो मुझसे गुप्त रखी जा रही है । किन्तु अधिक समय न लगाकर लालाजी तुरन्त मेरे पास आकर बोले—“चलो ।” लेकिन मैनेजर जो उनके साथ थे, कहने लगे—“नामुमकिन । कम-से-कम चाय तो आपको पीनी ही पड़ेगी ।”

मुझे कह देना पड़ा—“क्षमा कीजियेगा, अब चाय-वाय कुछ नहीं । घर में मेहमान आये हुए हैं । और इतना कम है कि मैं आपके साथ मटरगश्ती कर रहा हूँ !”

“ऐसा भी होता है बाबूसाहब । यह तो जगह-जगह की ख़ासियत की बात है ।” मैनेजर ने मुसकराते हुए कहा—“मगर ख़ैर, कोई बात नहीं । काम के वक़्त रोकना, सो भी फ़ारमैलिटी के लिए वाक़ई ठीक नहीं है । अच्छा...” और अभिवादन में उनके हाथ उठ गये ।

लालाजी के साथ हम अभी पहले महले की सीढ़ियों उतर ही रहे थे कि उसी समय निकट के एक कमरे से अट्टहास का स्वर सुनाई पड़ गया। फिर सब कुछ शान्त हो गया। मैं भी ठिठुककर खड़ा रह गया।

• लालाजी बोले—“चलोगे भी, या कुछ और इरादे हैं?”

“क्या करूँ, आदत से लाचार हूँ” विवश होकर मुझे कहना ही पड़ा—“अब या तो इस बगलवाले कमरे में बैठकर हम लोग भी चाय पियें, या यही खड़े-खड़े इस दम्पति के वार्तालाप का अध्ययन करें।”

तब लालाजी कहने लगे—“मगर मैं तो चोर की तरह छिप-छिपकर बाँते सुनना पसन्द नहीं करता।” तब हम लोग पासवाले कमरे में जा बैठे और चाय का आर्डर दे दिया गया। इसी समय वारुणी के भीगे कण्ठ से निकलते स्वरों में, लड़खड़ाती ध्वनियों के साथ, एक कथन मेरे कानों पर गुंजित हो उठा—“अच्छा और जो कुछ हुआ सो हुआ, मगर तुमने अपने फ़ादर को उल्लू खूब बनाया डालिंग!”

कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे यह स्वर विकृत होने पर भी है परिचित। तभी मैंने लालाजी की ओर देखा। कुछ ऐसा जान पड़ा कि उस समय उनका मुँह लाल होने के बजाय एकदम स्याह पड़ गया है!

किन्तु इतने में उपर्युक्त कथन का उत्तर भी सुनाई पड़ गया—“तुम्हें मालूम होना चाहिये सिली डियर कि बात ज़िन्दगी की हो, चाहे मौत की, फिल्म-स्टार की दृष्टि में वह केवल एक संवाद है! उसका प्रभाव उस बात की सच्चाई का लक्षण नहीं—अभिनय-कला का एक गुण है।”

अब यह स्पष्ट हो गया था कि ये दोनों और कोई नहीं, मुरलीबाबू और जमना हैं। लेकिन लालाजी ने सत्य-कृष्ण कुछ नहीं कहा। मैंने भी सोचा—विष-पान ही करना हो, तो लालाजी के लिए शोर मचाने की तो कोई ज़रूरत खास है नहीं। इसलिये मैंने चुप रहना ही उत्तम समझा।

इतने में ऐसा मालूम हुआ कि ब्याय उस कमरे में पहुँचकर फिर कुछ ले आया। क्योंकि मुरलीबाबू बोले—“फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी।”

जमना ने कह दिया—“नौ-नौ डियर, सिक्स ऐण्ड टेन एकारडिंग्ली ।”

“थू मीन नियरली डबल टु मी जमना देवी ।”

“डोएट काल मी एनी डेवी डियर...आइ एम् ए मिस नाऊ, ऐटलीस्ट इन दिस पैराडाइज़ लास्ट !”

हमारी चाय अब तक नहीं आयी थी ।

इतने में लालाजी कहने लगे—“आप तो अभी क्रमा रहे थे, मुझे बड़ी जल्दी है ।”

ऐसा ही होता है । इस समय इस अवस्था में लालाजी ने जमनादेवी को मुरलीबाबू के साथ देखने और उन दोनों की बातें सुनने की सहिष्णुता तक नहीं रह गयी !... वे तुरन्त कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते, जिसमें आगे चलकर उन्हें पछताना पड़े । इसीलिए वे समस्त क्रोध और क्षोभ को पीते चले जा रहे हैं । एक ओर अपने विचार, आदर्श और संस्कारों का प्रभाव उनके मस्तक से टकराता है, तो दूसरी ओर संतान का प्यार उनके हृदय में जोर मारता है । ऐसी दशा में आवश्यकता भी हो, तो मैं लालाजी को कष्ट नहीं देना चाहता ।

मैंने कह दिया—“चलिये ।” और चाय की परवा न कर हम दोनों तुरन्त उठकर चल दिये ।

इस नाटकीय पट-परिवर्तन पर सोचता-सोचता मैं अपने घर आगया ।

घर पर मैं इस उत्सुकता से आया था कि भाभी मिलेंगी, कदाचित् कुछ प्रसन्न, कदाचित् कुछ उदास । प्रसन्न अधिक, उदास कम या उदास-ही-उदास, या ऊपर से प्रसन्न, भीतर से उदास । पर जब भाई साहब मिले, तो उन्होंने फिर वही चर्चा छोड़ दी कि रामलाल को कैसे जेलखाने की हवा खिलवायें । आफत में जान है । तुम्हारी बड़ी भाभी कहती है—“इसमें कुछ नहीं हो सकता । रुपया ही लुटाना है मुक़दमा लड़कर, तो लड़कर देखलो । रामलाल इतना मूर्ख नहीं है । फिर कोशिश-पैरवी में वह तुमसे किस बात में कम है ? उस पर डाके में शरीक होने के मामले चले और वह बेदाग बच गया ! उस पर घूसखोरी का मुक़दमा चला, पर उसमें

भी उसका बाल बॉका नहीं हुआ ! अब एक तुम हो, जो उस पर ग़बन का केस चलाने बैठे हो ! चला के देखलो । न तुम्ही को लेने के देने पड़ जायें, तो मेरा नाम बिमला नहीं ।”

मैने केवल उनका मन लेने की इच्छा से कह दिया—“भाई साहब, बड़ी भाभी बात तो ठीक ही कहती है । जब रामलाल के ऐसे-ऐसे ज़बरदस्त सहायक हैं कि वह कुछ भी करे, उसका बाल बॉका नहीं हो सकता, तब आप कर ही क्या सकते हैं !”

“बको मत राजेन्द्र ! मुझे उल्लू मत बनाओ ! मैं इन बातों को ख़ूब समझता हूँ ।” भाई साहब कुर्सी से उठकर कमरे में ज़रा इधर-उधर टहले और फिर पलंग पर आ गये । चँदिया ने आकर कहा—“सरकार, माँ जी पूछ रही है, खाना लगाये ?”

इसी समय बिल्ली दरवाज़े से निकली और कमरे के उस पार जाती-जाती रुकी, बोली—म्याऊँ ! और जीभ से मूँछें साफ़कर मेरी तरफ़ देख और छुंजे पर से आगे बढ़ गयी । सड़क पर किसी गाड़ी का हार्न सुनायी पड़ा ।

भाई साहब बोले—“खाना खाने को आज मेरी तबियत नहीं करती । जब से आया हूँ, घर ही में घुसा हूँ । चलो कहीं घूम आये । और न सही तो सिनेमा ही देख आयें । अच्छा ज़रा अपनी भाभी से पूछना, चलेंगी ?”

चँदिया अब भी खड़ी थी । भाईसाहब बोले—“अभी खाना नहीं खायेंगे चँदिया । अम्मा से कह दे—परेशान न हो, मेरे पीछे उपवास न करें । प्रेम से खाना खाये—और जो कोई खाना चाहे, उसे भी खिला दें और खाना ढककर रख दें । मानता हूँ कि ये खाने हमारे लिए बनाये गये हैं । पर ऐसा तो नहीं होना चाहिये कि खाना खुद हमी को खाना शुरू कर दे !”

भाभी के पास जो मैं पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि वे सो रही हैं । रेशमी छीट की दुलाई से अपने कलेवर को उन्होंने आपाद ढक रखा है । केवल मुँह तकिशा के ऊपर खुला हुआ है । सिन्दूर से सुशो-



भित मोंग लाल-लाल दमक रही है। अपने सुवासित कुन्तल-राशि के संसार से पृथक् होकर एक लट भाल, पलक और कपोल पर डोरे डालती हुई ग्रीवा पर झूलकती सोने की जंजीर से लिपट रही है। चुपचाप मैं एक मिनट खड़ा हुआ उस सलोने चोंद के मुँदे कमलनयनों को निरखता रहा। मन में आया—जगा, दे। फिर मन में आया—नहीं। कितने दिनों के बाद आज भाभी को अभी से मोठी नीद की एक झपकी लग पायी है ! पता नहीं, इसमें स्वामी के प्यार का अधिक भाग है, या दिनभर के श्रम का। कौन जाने, यह भावी सयोजनाओं की मागलिक भूमिका है, या विलसित अतीत की फलवनी रचना की प्राथमिक झूलक। नहीं जानता, कितनी यात्रा पारकर इस कमनीय गात ने निद्रा के रूप में यह विश्राम-क्षण प्राप्त किया है !—नहीं जानता, कच्ची नीद में जगा देना उन्हें मेरा बचपन लगेगा या दुर्लभ प्यार का आकस्मिक आघात। यही सोचता हुआ मैं जो चुपचाप लौटने लगा तो यकायक भाभी की आँख खुल गयी। झट से उठ बैठी। बोली—“अरे तुम हो !”

मैंने पूछ दिया—“क्यों, क्या तुम मुझे भाईसाहब समझ रही थी ?”

सुनकर वे मुसकरा उठी। फिर बोली—“केवल समझ लेने से क्या होता है इस दुनियाँ में।” फिर दुलाई एक ओर समेट दी और आगे बढ़कर कहने लगी—“समझ लेने के नातों में अगर इतनी शक्ति होती कि वे जीवन के सामने अकड़कर खड़े हो जाते और इतना भर कह देते कि यथार्थ मैं हूँ, आवश्यकता मैं हूँ, विद्रोह मैं हूँ, प्राण मैं हूँ, निश्चित भविष्य मैं हूँ, तुम मेरे सामने से हट जाओ, तुम दूर हो जाओ मेरी नज़रों से, तुम अना-कांक्षा हो वर्तमान के, क्रन्दन हो साधना-कुंज के द्वार के, पशु हो सभ्यता के और राक्षस हो यज्ञ-विध्वंस के—तो कितना सुन्दर होता यह संसार !”

पास ही कुरसी पड़ी थी। उसी पर बैठते-बैठते मेरे मुँह से निकल गया—“मगर भाभी, मैं तो सोचता हूँ, तब भी शरीर और मन के धर्मों में एकता न होती। पुरातन संस्कारों और आधुनिक मन की स्वच्छन्द वृत्तियों में कोई साम्य न होता। जीवन के नाते मन के नातो से तब भी इसी तरह

टकराया करते। अपनी वस्तुओं में रस न मिलता और दूसरे की वस्तुएँ प्राप्त न हो सकतीं। तब उसकी प्रतिक्रिया का बुखार चढ़ा करता। प्राप्त भी हो जाती और बुखार भी उतर जाता, तो वे वस्तुएँ स्वयं इधर की उधर हो जातीं। क्योंकि उनपर एकाधिकार नष्ट हो जाता। तब एक नया बुखार चढ़ता और बहुत दिनों तक तो वह चढ़ा ही रहता। फिर अगर उतरता भी तो नये पथ की मॉग करने लगता। और सभ्यता की वृद्धि तो तब तक इतनी हो न पाती कि पथ के प्रकार बदले जा सकते। “क्या तुम समझती हो कि सीमाओं के बिना कभी तुम मेरी भाभी रह सकती थी?”

“भाभी मैं न रहूँ, कुछ और बन जाऊँ, तो क्या तुम मेरे राजेन्द्र न रहकर उपेन्द्र हो जाओगे? या मैं ही जिस रक्त-मौस-अस्थि-मज्जा की भाभी हूँ, वह न रहकर कुछ कीचड़-मिट्टी-कंकड़-पत्थर और राख की बन जाऊँगी! लेकिन क्या बन जाऊँगी और क्या नहीं बन सकूँगी, इसका निश्चय बने या बनाये बिना केवल अनुमान से समझ लेने मात्र से जब काम चल जाता है, तब और आगे बढ़ने की आवश्यकता ही क्या है? क्योंकि तुम तो उस आदर्श के उपासक हो, जो आज तक होता आया है। कैसे हुआ है, यह बात दूसरी है। तुममें इतना साहस ही कहाँ है, जो मुँह पर साफ़-साफ़ कह सको कि जो अब तक होता आया है, वही सत्य और उपादेय नहीं है, जो नहीं हुआ है लेकिन होना ही चाहिये, वह भी उत्तम और उपयोगी है।”

“उत्तम और उपयोगी समझकर जिन अतिसभ्य बननेवालों ने आगे बढ़-बढ़कर बड़े-बड़े प्रयोग किये हैं, उनके भी चेहरे मैंने देखे हैं भाभी। इस-लिये कभी यह सोचने के भ्रम मे न पड़ना कि जो प्राप्त है, वह विष ही विष है और जो दुर्लभ है, वह अमृत का अगम रत्नाकर है। क्योंकि दुर्लभ भी प्राप्त होकर जब सुलभ, नित्य और साधारण बन जाता है, तब चिरअतीत के अमृत का वह बूँद भी विष बन जाता है, जिसकी प्राप्ति के पीछे युगों की तपस्या और साधना, त्याग तथा बलिदान के अनन्त इतिहास लिपे रहते हैं। अतृप्ति से जिस असन्तोष का जन्म होता है, वह जीवन को आगे बढ़ाता

है, मानता हूँ। परन्तु आमंत्रित अतृप्ति का असन्तोष प्रायः निष्प्राण होता है। और काल्पनिक अतृप्ति का असन्तोष तो जीवन में क्रान्ति नहीं, प्रमाद उत्पन्न करता है। कभी सोचकर देखा है भाभी कि बहुतेरी अतृप्तियों को हम अपनी अयोग्यता अथवा अहंकार से स्वयं ही बुला लेते हैं ! हम उन कारणों, अभावों और दुर्बलताओं को दूर करने की कभी चेष्टा ही नहीं करते, जो हमें अतृप्ति और असन्तोष के निकट पहुँचाती हैं। ...लेकिन हम बेकार बहस बढ़ा बैठे। भाई साहब ने पूछा है सिनेमा देखने चलोगी ?”

“तुम भी चल रहे हो ?”

“मेरा क्या है, चल भी सकता हूँ। यद्यपि चाहता तो यही हूँ कि टाल जाऊँ।”

“क्यों ?”

“इसलिये कि मैंने तुम्हारे शान्त मानसरोवर में हंस की भाँति तैरने के जो नाना प्रयोग किये हैं, अब मैं उन्हें वापस ले लेना चाहता हूँ भाभी। याद हैं वे दिन, जब हम हँसने-बोलने में कोई फोर-कसर नहीं रखते थे ? लेकिन तब तुमको कभी मूर्छा नहीं आती थी। उस समय तुम्हारे जीवन में ऐसी कोई अशान्ति ही न थी जैसी अब मैं निरन्तर देखता हूँ। सच कहता हूँ, मुझे तो आज यह स्पष्ट देख पड़ता है कि तुम्हारी इस दुरवस्था के मूल में मेरे बचपन का काफी बड़ा हाथ है।”

“जानते हो, डाक्टर साहब ने एक ऐसी दवा दी है, जिसे यदि मैं मूर्छा आने की आशंका से आधे मिनट पूर्व ग्रहण कर लूँ, तो फिर मूर्छा अगर आती भी होगी, तो न आयेगी। इसलिये मुझे वैसा कुछ डर नहीं है। अब तुम जो चाहो सो कह सकते हो। मगर एक बात कहो तो मैं ही कह डालूँ। तुम तो कभी उसे कह पाओगे नहीं। पैट के बकलस में जब तुम मुझसे बटन लगवा रहे थे, तब याद है तुमने क्या कहा था ?” और इतना कहते-कहते भाभी ने एक शीशी का कार्ड निकाला, मुँह खोला और शीशी उड़ेलकर गट-गट करके दो घूँट पी लिये।

मैंने कह दिया—“वह भी मेरा बचपन ही था भाभी।”

“तो अपना यही बचपना तुम मुझे क्यों नहीं दे देते ? याद है, उस दिन जब मैं तुमको अपना हाथ दिखाने आयी थी, तब तुमने मुझे अलमारी से थर्मामीटर निकालकर दे दिया था ! आखिर तुम मेरे प्राण क्यों लेना चाहते हो ?”

“मुझे तुम्हारे प्राण लेने की ज़रूरत ही क्या है भाभी ? वे तो कभी के मेरे लिए प्राणपोषक हो चुके हैं ।” इस कथन के साथ मैंने देखा, कई दिनों के बाद आज फिर भाभी की आँखों में आँसू आ गये । रूमाल निकालकर मैंने झट से उनके आँसू पोछ डाले । यद्यपि मैं जानता हूँ, किसी भी तरह मैं उनके आँसू पोछ न सकूँगा । फिर मैंने कह दिया—“तो मैं भाई साहब से कहे देता हूँ कि भाभी सिनेमा देखने नहीं जायँगी ।”

वे बोलीं—“हाँ, कह दो ।”

और तब मैं चुपचाप भाईसाहब के पास चला आया । कमरे के अन्दर पहुँचने पर मैंने देखा, गरम सूट पहने हुए भाईसाहब शीशे में अपना मुँह देख रहे हैं । तब यकायक मेरे मुँह से निकल गया—

देखते क्या हैं वे अपने को,

सत्य को याकि मेरे सपने को !

“क्या मतलब ?” उन्होंने पूछा ।

प्रगल्भ बनकर हँसते-हँसते मैंने कह दिया—“कुछ नहीं, वह और बात थी !”

भाईसाहब के केश श्वेत हो चले हैं, मुख पर कुछ झुर्रियाँ भी झलकने लगी हैं । फिर भी वेश-भूषा से अपनी इस अवस्था को यथासम्भव प्रच्छन्न रखने की चेष्टा किया करते हैं, यह जानकर मुझे सचमुच प्रसन्नता हुई । लेकिन तभी उन्होंने कह दिया—“बात कह तो तुम मेरे लिए रहे थे । लेकिन पूछने पर क्यों टाल गये, यह मेरी समझ में नहीं आया ।”

मैंने उनकी छड़ी उठा ली और किवाड़ के ऊपर उसे टिकाते हुए कह दिया—“एक बात आपसे मुझे कहनी है और मौक़े से याद भी आ गयी है । कहीं ऐसा न हो कि कहना ही भूल जाऊँ, इसलिए अभी कहे

देता हूँ ।...डाक्टर सिनहा, आपको मालूम ही है, भाभी का इलाज कर रहे हैं । आप उनसे ज़रा मिल लेते तो अच्छा होता ।”

भाईसाहब बोले—“तो चलो, उधर होकर ही सिनेमा के लिए चले चले गे ।...तैयार हो गयी तुम्हारी भाभी ?”

मैने कह दिया—“जब मैं पहुँचा, तब तो सो रही थीं । फिर जो जर्गी, तो बहस करने लगी ।”

“तो उन्हें सोने क्यों नहीं दिया ?” कहते-कहते भाई साहब ने सिर का एक सफेद बाल खींच ही लिया ।

“चेष्टा तो मैने ऐसी ही की थी । बल्कि चुपचाप लौट ही रहा था कि अकस्मात् उनकी खुलती आँखों ने मुझे लौटता हुआ देख लिया । धीरे से बोली—सुनो-सुनो, यहाँ आओ ।”

फिर जो मैं सामने आ गया तो बोली—“अरे तुम हो !” और शरमा गयी ।”

मैने कह दिया —“यह ग़लती मेरी नहीं, भाई साहब की है ।”

मुसकराते हुए भाई साहब बोले—“तुम बड़े शैतान हो ।...अच्छा फिर अन्त में तै क्या रहा ? तैयार हो रही है न ?”

तब मुझे कह देना पड़ा—“मैं तो सोचता हूँ उनको खाना-वाना खिलाकर आराम करने दिया जाय । तब तक हम लोग डाक्टर सिनहा के यहाँ हो लें ।”

वे बोले—“अच्छा अभी चलता हूँ ।” और उसी कमरे में चले गये, जहाँ भाभी लेटी हुई थी । तब मैं माँ के पास चला आया, जहाँ मिट्टी की बनी छोटी बरोसी में लाली हाथ सँक रही थी । माँ ने कहा—“अब यह इतनी रात को तुझे बाहर घूमने की सूझ रही है ! अजीब हाल है तेरा । मैं तो इस माया-जाल में इस बुरी तरह फँसी हूँ कि घर से निकलना आफ़त है ।...हाँ, जीजी की कोई चिट्ठी-विट्ठी नहीं आयी लाली ?”

“आयी तो थी । क्या सोनेभैया ने तुमसे कुछ कहा नहीं ?” बंटा जैसी आँखें फाड़कर देखती हुई लाली आश्चर्य से बोली ।

“मुझसे तो कुछ नहीं कहा ।” माँ ने कह दिया ।

तब लाली एक बार मुझ पर दृष्टि डाल कुछ ऊँची हो रही धोती को पैर के अँगूठे तक खिसकाती हुई कहने लगी—“दिल्ली में है आजकल । खिखा था—मौसम बहुत अच्छा है । जीजी की बहुत याद आ रही है ।”

तब अस्त-व्यस्त-सी माँ बोली—“अच्छा, तो मेरी भी याद उन्हें आ जाती है ।”

इस पर लाली तो चुप रह गयी, पर मेरे मुँह से निकल गया—“अच्छा माँ, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम लोग भी दस-पॉच दिन को दिल्ली हो आयें ?”

लाली बोल उठी—“यों जाने मे कोई हर्ज तो है नहीं । पर मुश्किल यह है कि अम्मा का कुछ भी ठीक नहीं है । यह भी तो हो सकता है कि वे मथुरा चली जायें—या किसी साधू-संन्यासी के सत्संग में पहाड़ी गुफाओं और कन्दराओं में स्वयं भी धूनी रमा दें ! क्योंकि इस बार उनका । ऐसा कुछ विचार भी था ।”

इतने में भाईसाहब आते दिखलायी पड़े । साथ में मामी भी थीं । तब मैंने उनकी ओर बढ़ते हुए कह दिया—“जाता हूँ, ज़रा डाक्टर सिनहा से भाईसाहब को मिला ले आऊँ । ज़्यादा देर नहीं लगाऊँगा ।”

इसी समय लाली भी उठ खड़ी हुई । बोली—“अब मैं चलूँगी माँ ।”

सीढ़ी पर जब हम उतर रहे थे, तब लाली मेरे ऊपर थी । भाईसाहब कई सीढ़ी नीचे जा पहुँचे थे और मामी तो उनके भी आगे थी । इसलिये मैंने धीरे से कह दिया—“सम्हल-सम्हल कर कदम आगे बढ़ाना लाली । कही ऐसा न हो कि पैर फिसलें और तू मेरे ऊपर आ गिरे ! मैं कमज़ोर आदमी ठहरा; मर ही जाऊँगा ।”

यद्यपि लाली ने मेरे इस कथन के उत्तर में केवल ज़रा-सा हँस दिया; पर मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह कह रही हो—“हूँ, भले तुमसे

कहते बनता है। जो मुझे जीवन देने के लिए पैदा हुए हैं, वे इतने कमज़ोर कभी हो नहीं सकते।”

अब हम भाईसाहब के साथ सड़क पर आ गये। तोंगा देख पड़ते ही हमलोग उसपर जम गये और मैंने सहसा पूछ दिया—“भाईसाहब सच कहना, आप कभी नदियों में तैरे है?”

“अनेक बार। बचपन में वर्षाऋतु को छोड़कर बाक़ी हर मौसम में गंगाजी को पार करना तो मेरे लिए बाये हाथ का खेल था।”

“और किस नदी में तैरने का अक्सर मिला?”

“यों तो सिन्द नदी को वर्षा में भी कई बार तैरकर पार कर चुका हूँ।”

“अच्छा, जब आप स्नान करने जाते थे, तब सिन्द नदी को कितनी ही बार पार करते होंगे।”

“इतना फालतू आदमी मैं नहीं हूँ कि नदी में तैरने के सिवा मुझे और कोई काम ही न रहा हो। लेकिन काम पड़ गया है तो दो-दो घंटे भी तैरते बीत गये हैं। अभी गत वर्ष ही एक बरात को पार उतारने के लिए मुझे ही आगे बढ़ना पड़ा था।”

“तो आप वीर पुरुष है!” कहकर मैं थोड़ा रुक गया। भाभी मुसकान दबाती हुई-सी मेरी ओर देखने लगीं।

तब मैंने कह दिया—“लेकिन भाईसाहब, सच पूछिये तो इन नदियों का कोई भरोसा नहीं। ऋतु के अनुसार ये घटती-बढ़ती रहती हैं। इसलिये केवल पुरुषार्थ दिखलाने मात्र के लिये इनको अनेक बार पार करना मूर्खता है। और बरात में भी अपनी सवारी की गोई को छोड़कर दूसरी जोड़ी को पार उतारने में आपके मन में शक्ति-प्रदर्शन का ही भाव प्रमुख रहा होगा, यह मैं जानता हूँ। पर संतुलन मनुष्य को कभी खोना नहीं चाहिये; क्योंकि ज़िम्मेदारियों ही हमारी सफलता की सबसे बड़ी कसौटी है।”

तब भाईसाहब यकायक बहुत गम्भीर हो उठे और बोले—“तुम बात बहुत करते हो राजेन।”

मन-ही-मन प्रसन्न होकर मैंने सोचा—तीर ठीक मर्म-स्थान पर लगा है ।

हम डाक्टर साहब के यहाँ पहुँच गये थे । जाते ही मैंने उनसे भाई-साहब का परिचय करा दिया । वे एक इंजक्शन दे रहे थे । बोले—“आप नें बहुत इन्तज़ार करवाया । इनका मरज़ कभी का अच्छा हो गया होता, अगर आपसे जल्दी भेंट हो जाती ।”

भाईसाहब कुछ असमजस में पड़ गये और तभी मैं ओवलटीन लेने के बहाने थोड़ी देर के लिए वहाँ से चम्पत हो गया ।

डाक्टर सिनहा के यहाँ जब हम लौटकर पहुँचे, तो क्या देखते हैं—बेंच पर एक दुबलो-नतनी श्यामवर्ण की नारी बैठी है । अतिसाधारण वेश-भूषा है । हाथों में काँच की नोली-नीली चूड़ियों है । धोती दो-तीन दिन की पहनी हुई । कुरती मारकीन की, सो भी साफ़ नहीं । केश रूखे-रूखे-से, दृष्टि में तरस, लेकिन इतनी स्थिरता कि जिस वस्तु को देखना, एकदम टकटकी लगाकर देखना और देखते ही रहना, कुछ कहना नहीं किसीसे । मुख पर न प्रसन्नता, न उदासीनता, न खीझ, न क्रोध । मुँह सूखा-सूखा-सा, कोई आकांक्षा नहीं—कोई चाह नहीं ।

देखते ही मैंने समझ लिया—बीमार है कुछ दिनों से ।

इतने में भाभी ने पूछा—“कोई इसका धनी-धोरी नहीं है ?”

दूसरी बेंच पर एक मुसलिम मज़दूर बैठा था । बोला—“दिमाग़ सही नहीं है ।”

मैंने अनुभव किया—दुःख की घड़ियों में भी कितनी निर्ममता से प्रकृति की अठखेलियाँ चलती रहती है । प्रश्न कुछ है—उत्तर कुछ !

भाईसाहब बोले—“डाक्टर साहब, अगर आपकी बात सच्ची निकली, तो मैं आपको जीवन भर याद रखूँगा ।”

उसी क्षण वह नारी कुछ ऐसा बुदबुदाने लगी कि मुझे मालूम हुआ, मानो कह रही हो—“मैं किसीको याद नहीं रखती ।” साथ ही मैंने देखा, उसके दाँत खुले हुए हैं । वह हँसी—ऐसी भूखी हँसी—ऐसी वही प्यासी हँसी कि...!



डाक्टर साहब बोले—“यह तो हमारा रोज़ाना का काम है जौहरी साहब । इसमें भूठी राय कितने दिन तक चल सकती है !”

इतने में कम्पाउण्डर आकर उस नारी को दवा पिलाने लगा । लेकिन उसने दवा पीने से इनकार कर दिया । कम्पाउण्डर का हाथ पकड़ लिया उसने । बोली—“मुझे दवा मत पिलाओ, मुझे दवा मत ..मुझे दवा...मुझे... !”

तभी वह मज़दूर बोला—“इसका नादान बच्चा जाता रहा है । तब से यही हाल है । न खाना, न पीना, न सोना । रात-दिन चुपचाप पड़ी-बैठी रहती है । दूध देखकर भाग खड़ी होती, काँपने लगती, और कुछ न जाने क्या बुदबुदा उठती है !”

कम्पाउण्डर बोला—“इसका हाथ तो पकड़ लेना ज़रा ।”

तभी उसका पति आ गया । बोला—“ठहरिये, मैं आ गया । हाँ, क्या हाँथ ?—हाँथ पकड़ना है ?” और उसने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये । लेकिन उस नारी ने तो दाँत बन्द कर रखे थे । फिर भी कम्पाउण्डर उसे दवा पिलाना ही चाहता था । उसने चिमटी से दाँत खोलने की कोशिश की । एक दाँत कुछ छोटा था, समझा खोल ही लेंगे । लेकिन उसने दाँत नहीं खोले और दवा उसकी कुरती पर फैल गयी ।

उसने उसी समय कुरती ऊपर को खिसका ली, तो उसके बदन-कंदुक खुल गये । वर्ण के अनुरूप उतने श्याम नहीं, थोड़े-थोड़े गोरे, गोल-गोल, भूखे, प्यासे और उपवास-दग्ध !

तभी मुझे ध्यान आ गया । एक दिन लाली को इसी रूप में देखा था, आज इसको देख रहा हूँ । लाली श्यामा गैया है और यह दुबली-पतली बछिया !

उसका पति शिकायत करने लगा । बोला—“इस क्रूर परेशान रहता हूँ इसके मारे कि खाना-पीना ही नहीं, काम पर जाना तक मुश्किल हो गया है । खाना नहीं खाती, लेकिन सुग्गा जो पांल रखता है, उसकी जूठन ज़मीन पर गिर पड़ा करती है, उसे चुनने

लगनी है। कहनी है—“मेरा सूरज खा लेता था न?”

और सूरज उसी बच्चे का नाम था।

फिर उसने अपनी उस भाय्या से कहा—“मैं अब चला जाऊँगा यहाँ से। तू अपनी बहिन के यहाँ रह सकती है—लेकिन मैं वहाँ कैसे रह सकता हूँ! तू उसकी रोटियों तोड़ सकती है—लेकिन मुझे तो एक घूँट पानी हराम है। तुझसे छोटी जो है।”

तब दया की भीख-सी माँगती दाँत बाती, बत्तीसी खोलती हुई वह बोली—“ना, तुम कहीं न जाओ।”

पति ने कह दिया—“जाऊँ कैसे नहीं, जाना ही पड़ेगा।”

तब उसने जैसे मुँह लटका कर कह दिया—“सूरज शाम को शायद आ ही जाय। तब मैं तुमको कहीं खोजती फिरूँगी।”

बस, उसका इतना कहना था कि भाभी मूर्छित होकर वहीं लुढ़क पड़ी।

तभी डाक्टर ने एक इंजेक्शन दिया और ऐसे अवसरों पर पहले से पीने के लिये एक दवा का नुसखा लिख दिया।

स्वस्थ हो जाने पर भाईसाहब से भाभी ने कहा—“इसके पति को इसके पास रहने का मौक़ा मिले, वह अपने काम पर तब तक न जाय, जब तक इसका पागलपन दूर न हो जाय—इसके लिए उसे कुछ रुपये देने ही पड़ेंगे। ये लो, उसे पचास रुपये दे दो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह दूध इसलिए नहीं पीती कि उसका सूरज घूँट-घूँट भर दूध के लिए तरस-तरस कर मरा है!” और इन शब्दों के साथ उनका कण्ठ भर आया।

भाईसाहब ने ज़रा भी आपत्ति नहीं की। पचास रुपये उस नारी के मज़दूर पति को दे दिये गये, तब भाभी ने कहा—“कोशिश करो, दवा कराओ, उसे खुश रखो। हो सकता है कि तबियत ठीक हो ही जाय।”

इधर कई दिनों से मैं देख रहा था, भाभी कभी पनडब्बा लेकर मेरे सामने नहीं बैठती। कभी अपने हाथ से मुझे पान नहीं देती। रात को

पीने के लिये दूध चँदिया ही देने आती है। खाना खाने बैठता हूँ, तो भाभी कभी खाना परोसने नहीं आती। अँगूठी सामने रखकर माँ प्रायः हाथ सँकती रहती हैं। काम से लुट्टी पाकर लाली भी वहाँ जा पहुँचती है। पहले भाभी वहाँ बैठने कभी नहीं जाती थी। वे प्रायः अपने कमरे में ही बैठी या लेटी पुस्तक उलटती-पलटती या पढ़ती रहा करती थी ! पर अब वे भी माँ के पास बैठने लगी। अकसर मेरे मन में आया कि क्या यह भी इसीलिये है कि मैं उनसे एकान्त में न मिल पाऊँ।

पर इधर कुछ दिनों से मनुष्य की पूर्ण ऊँचाई के अन्दाज़ से मैंने भाभी के कक्ष में एक दर्पण लगा रक्खा है। इसलिये नहीं कि मुझे अपना रूप देखने की बड़ी हौस है। इसलिये भी नहीं कि मैं शरीर को रँग-चुँगा रखने को कोई बहुत उच्चक्रांति की रुचि माननेवालों में हूँ। वरन् केवल इसलिये कि अपनी वेश-भूषा के प्रति असावधानी मेरी प्रकृति का एक लक्षण बन गयी है, वह किसी प्रकार संयत हो जाय।

पर उस दर्पण के सामने एक दिन भाभी कुछ नृत्य की-सी मुद्रा में खड़ी थी, तब तक मैं वहाँ जा पहुँचा।

मुझे आता देख वे झट स्महल गयी। मैंने उनके नयनों की भाषा पढ़ने की जो चेष्टा की, तो कहने लगी—“जाओ जाओ, अपना काम देखो।”

मैंने पूछा—“क्यों, मैं तुम्हारी कोई चीज़ छीन तो रहा नहीं हूँ ज़बर-दस्ती, जो तुमको मेरे निकट आ जाने से भय लगता हो।”

भाभी कुछ निःश्वास को दबाती हुई-सी कहने लगी—“अब तुम मुझसे छीनोगे भी क्या ?”

मैं उनकी इस बात का मर्म समझता हूँ। मानता हूँ कि हृदय देने के पश्चात् फिर कोई चीज़ देने को रह नहीं जाती। फिर भी कभी-कभी एक बचपन की-सी इच्छा अकस्मात् फूट पड़ने के कारण सहज भाव से मैंने कह दिया—“क्यों, तुम्हारे पास कभी किस बात की है ?”

“कभी मेरा भी ऐसा ही विचार था।” रूमाल से बहते पान के अतिरेक को पोंछती हुई वे कहने लगी—“लो, आज मैं अपने मन का

चोर तुम्हें साफ-ही-साफ़ बतलाये देती हूँ। पर अब इस बात पर मेरा एक अटल दृढ़ विश्वास था, वह कुछ मिट-सा गया है। देखती हूँ, सचमुच तुम मेरे लिये दुर्लभ हो ! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके लिये कभी तुम्हारे मन में कोई लालच उत्पन्न हो सके।”

कभी मैं रोता नहीं हूँ। विशेष रूप से तब, जब मुझे अतिशय क्लेश होता है। पर आज मुझे कुछ ऐसा क्लेश हुआ, जिसे मैं संवरण न कर सका। पर ठीक-ठीक शायद कह भी नहीं सकता कि क्लेश ही हुआ। क्योंकि कुछ ऐसा प्रतीत होता है मानो क्लेश उतना नहीं हुआ, जितना सुख मिला, या यों कह लीजिये कि मेरे अहम् को तृप्ति मिली। जानता हूँ, संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो भावना के सुख को केवल भावुकता कहकर उपेक्षा की हँसी हँस दिया कहते हैं। पर संसार में ऐसे लोग भी तो हैं, जो भगवान की सत्ता पर विश्वास नहीं करते। जो अबसर मिलने पर यह भी कहने को तत्पर हो सकते हैं कि समाज की दृष्टि में मैं जिनका पुत्र समझा जाता हूँ, हो सकता है कि मैं उनके सिवा किसी अन्य पुरुष का पुत्र होऊँ। क्योंकि ऐसी भी माताएँ हैं, जो स्वयं निश्चयपूर्वक ऐसा नहीं कह सकती कि मेरी यह संतान अमुक के ही संयोग की रचना है !

और भी एक बात है। कम-से-कम मैं ऐसा ही अनुभव करता हूँ, दूसरों की बात मैं नहीं जानता। वह यह कि जिन्हे मैं अपने लिये दुर्लभ मानता हूँ, वे जब स्वयं मुझे दुर्लभ मान ले, तब दोनों ओर की इस दुर्लभता को मैं क्लेश कैसे मानूँ ! प्रेम की पावन अमृत-गङ्गा के दोनों किनारे जब एक-दूसरे को अपने लिए दुर्लभ मान बैठें, तब उनके बीच में बहती यह जीवन-धारा अपने दोनों हाथ फैलाकर उन्हें जितना कुछ अपने में समेट लेती है, उसमें दुर्लभ तो कुछ रह ही नहीं जाता।

तब कदाचित् यही सोचकर मेरी ओंखें आपही आप सजल हो उठीं। और मैंने कह दिया—“भाभी, दुर्लभ रहकर ही जब तुम मेरे लिए भाभी बनी हो, तब सुलभ के लोभ में पड़कर मैं अपनी ऐसी भाभी को खो भी कैसे सकता हूँ ! संसार मिट जाय, लेकिन मेरी भाभी की यह भेंट अस्मिन्

बनी रहे। ज़रा सोचो भाभी, इस कामना को मैं कैसे त्याग सकता हूँ !”

तो कहने में यह बात चाहे बहुत साधारण ही क्यों न हो, किन्तु मुझे आज अनुभव हो रहा है कि सचमुच मन के ऊहापोह की कुछ गतियाँ बड़ी विचित्र हैं। देखो तो कभी-कभी कोई संयोग भी इतने अद्भुत हो जाते हैं कि न हम उन्हें क्लेश कह सकते हैं, न आनन्द।

प्रेम के मार्ग में क्लेश और आनन्द दोनों एक ही स्थिति के दो रूप हैं।

उस दिन लाली से एकान्त में बात करने का फिर अवसर ही नहीं मिला। दूसरी बार सीढ़ी उतरते क्षण मिला भी, तो उतने समय में वह बात हो न सकती थी। तभी मैंने सीढ़ी उतरने के सम्बन्ध का वह टुकड़ा उसके सामने पेश कर दिया था। पर आज कुछ ऐसा हुआ कि मैं बैंक से लौटते हुए अग्रवाल-इण्टरकालेज के सामनेवाली सड़क से जो मुड़ा, तो लाली किताबें लिये अपने विद्यालय से लौट रही थी। तोंगा जब उसके सामने पहुँचा, तो मैंने कह दिया—“बस यही रोक दो।” और हम वहाँ से लाली के साथ हो गये।

पास आते ही लाली बोली—“क्यों, आपको तो मकान के सामने उतरना था !”

मैंने कहा—“आजकल बात करने का बिल्कुल अवसर नहीं मिलता। उस दिन आरती के समय बातें करने का निश्चय किया था, सो उस चिट्ठी ने गड़बड़ कर दिया। फिर आ गये भाई साहब।”

चौराहे पर पहुँचते ही लाली ने सामने आते हुए ट्रक से बचाने के इरादे से मेरा हाथ थामकर मुझे रोकते हुए कह दिया—“ए बचियेगा।”

तब वही एक स्थान पर रुककर मैंने एक निःश्वास लेते-लेते पूछा—“सच-सच बतलाओ लाली, आज तक मैं समझ नहीं सका, न पूछने का ही अवसर मिला, न स्वयं तुमने ही बतलाने की आवश्यकता समझी कि उस दिन ऐसी क्या बात थी, जिसके कारण तुमने आत्मघात करना चाहा था।”

बस, मेरा इतना कहना था कि लाली के नयन सजल हो आये ।

परन्तु तुरन्त उसने श्रॉसू पोंछ डाले । फिर इधर-उधर देखती हुई बोली—“बातें ही कान्नी हो, तो फिर कहीं बैठकर की जायें । यहाँ तो...।”

... “हाँ, यह तुमने ठीक कहा । विद्यालय से लौट रही हो । कुछ थकी हुई भी हो । अच्छा चलो, हम तुम्हें एक अच्छे-से रेस्तराँ में बैठकर चाय पिलायें । वहीं बातें भी हो जायेंगी ।” मेरे इस कथन पर लाली ने ऐसी दृष्टि से मुझे देखा, जिसमें चिरतृषातुर की एक भुलसी बल्कि अधमरी कामना का-सा भान हुआ । जान पड़ा जैसे वह अनुभव कर रही है—यही वह व्यक्ति है, जिसने ज़हर पिला देने के बाद मेरे सिर पर प्यार का हाथ रक्खा है ।...यही वह अधिक है, जिसने छूरी मार देने के बाद यकायक कह दिया हो—“अरे ! माफ़ करना”।...जिसने बहती गङ्गा में नहाती हुई शोइशी की टोंग पकड़कर खींच लिया हो और मृत अवस्था में तट पर डालकर आभूषण आदि उतार लेने के बाद यह जानने की चेष्टा की हो कि कहीं जीवन यदि शेष ही रह गया हो, तो उल्टा-सीधा करके जिला ही क्यों न दिया जाय !

ज़ैर, हम अब तंगि पर बैठालकर लाली को एक रेस्तराँ में ले आये । मैनेजर से कहकर झट से घण्टे-आध घण्टे के लिये ऊपर का एक कमरा तै किया और इतमीनान के साथ उसमें जा पहुँचे । बेत की तीन कुरसियों, एक शिशेदार ड्रेसिंग टेबिल, दो पलंग वहाँ पड़े हुए थे । पास ही बग़ल में वार्शिंग-बेसिन था । मैने कहा—“बैठो।”

लाली ने किताबें टेबिल पर रख दी । इतने में ब्वाय आ गया । मैने कह दिया—“चाय, टोस्ट, मक्खन और समोसे ।”

ब्वाय चला गया । लाली बोली—“भाभी तो कल चली जायेंगी ।”

मैने कह दिया—“एक भाभी ही नहीं, हम सभी एक-न-एक दिन चले जायेंगे । लेकिन उस दिन के पहले की अन्तिम घड़ी तक हम चलते रहेंगे—आगे बढ़ते रहेंगे ।”

अपने दोनों हाथ आगे घुटनों पर रखे एक की रेखाएँ-सी देखती-

देखती लाली बोली—“आपने पूछा था कि मैंने क्यों आत्मघात किया था ।”

दरवाजे पर सिमटी हुई चिक का बन्धन खोलकर मैंने कह दिया—  
“हाँ, और उसी दिन से मैंने यह भी देखा कि तुम्हारे रंग-ढङ्ग बिल्कुल बदल गये । न कभी तुमने अपनी वेश-भूषा की स्वच्छता की ओर ध्यान दिया, न अपने स्वास्थ्य की ओर ।”

वह बोली—“क्योंकि मैंने देखा, अब इन दोनों बातों की मेरे लिए कोई ज़रूरत नहीं रह गयी । अब तो दिन ही काटने है । यह नहीं देखना है कि भूख-प्यास के साथ रुचि का भी कोई सम्बन्ध है ।” और मैं सोचने लगा, जैसे कथन के साथ उसने इतना और कह दिया है कि हँसना, खेलना, रुठना, मान करना, मनाना, शिकायत करना, छिप जाना, सोते से जगाना, जागकर ज़िन्दगी से बातें करना, उछलना, कूदना और अन्त में एक सुख की नीद में सदा के लिये सो जाना कैसा होता है ?”

मैं सब कुछ सुन रहा था, सब कुछ समझ रहा था; पर मन-ही-मन रो भी रहा था । मैं यह भूला नहीं था कि लाली तो मेरी श्यामा गैया है ।

लेकिन मैं अपने मन के उस प्रमाद को क्या करूँ, जो उस दिन मुझे हो गया था, जब इसी लाली के बदन पर केवल एक साड़ी थी और चने के हरे पौधे लेने के लिए माँ के पैसे लोकने को उसने अपना अचल उठा दिया था । और मैं अपनी उन आँखों को क्या करूँ, जिन्होंने उस क्षण इसके निरावरण वक्ष को देख लिया था ! एकबार मेरे मन में आया, इस क्षण मैं क्यों न इससे साफ-ही-साफ कह दूँ कि किसी भी अवस्था में अपने शरीर और मन के प्रति इतना असावधान न होना चाहिये कि उसके अन्तर्प्रान्त में भौंकने का अनायास कोई अवसर पा जाय—फिर चाहे वह कोई भी हो । जैसे मन का धर्म है अस्थिरता एवं चंचलता, वैसे ही शरीर का धर्म है नग्नता । और ये जो आवरण हम रखा करते हैं, वे सब सभ्यता की देन हैं । विशेष अवस्थाओं की बात दूसरी है, जब हम

स्थिर और जड़ हो रहे मन की सुषुप्त गतियों में लहरें, तरंगें, कम्पन और आलोड़न उत्पन्न करने के लिए शरीर के साधारण धर्मों में स्पन्दन उत्पन्न करने की चेष्टा किया करते हैं।

२०. ब्वाय चाय-पान की सब सामग्री ले आया। मैंने उठकर हाथ धोये। वार्शिंग-बेसिन के ऊपर साफ़ तौलिया था, उससे हाथ पोंछे। चाय ढालने के लिए मैं कुर्सी पर बैठा ही था कि देखा—लाली सर नीचा किये हुए स्वयं चाय ढाल रही है।

मैंने बिना सोचे-विचारे कह दिया—“तुम ब्याह करोगी लाली?”

लाली के हाथ रुक गये। एक बार स्थिर अपलक दृष्टि से उसने मेरी ओर देखा और उसके नयन फिर सजल हो आये। मैं उठकर खड़ा हो गया, पीछे जाकर उसके सिर को मैंने अपने तालत वस्त्र से लगा लिया। रुमाल से उसके आँसू पोंछे और कह दिया—“मैंने उस दिन तुमको बहुत बुरा-भला कहा था न? उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ तुमसे।”

जान पड़ा, वह मेरी सारी दुर्बलताओं से वह परिचित है। फिर भी सिर नीचा किये हुए वह बोली—लेकिन अभी तुमको ‘‘वह बात तो मुझे ‘‘बतलानी ही है। मैं तुमसे सिर्फ यह कहने आयी थी कि मेरी माँ वह सारी-क़ी-सारी रक़म तो अपने साथ ले ही गयी, जो मकान बेचकर—लालाजी के (रेहन वाले) रुपये चुका देने के बाद—बची थी। उसके साथ वे मेरे सारे-क़े-सारे गहने भी लेती गयी! पर ज़र तुमसे भी मैं यह बात नहीं कह पायी, तबफिर अपने सोने भैया और भाभी से भी मैंने आज तक कुछ नहीं कहा!”

यह प्रसंग भी कुछ ऐसा विचित्र था कि रुदन की घड़ियों में गरम चाय ठंडी हो रही थी। इसलिये मैंने कहा—“अच्छा, पहले चाय पी लो। उसके बाद बातें होती रहेगी।”

लाली की बात सुनकर यद्यपि मैं स्तब्ध रह गया था। पर एक सन्देह मेरे मन पर अब भी जमा हुआ था। चाय-पान के क्षण वह भी चुप रही और मैंने भी एक शब्द नहीं कहा। और कोई चीज़ उसने ग्रहण नहीं की।



मैने बहुत आग्रह किया, फिर भी उसने कोई चीज छुई तक नहीं। ब्याय आया और ट्रे उठा ले गया, तब मैंने पूछा—“लेकिन उस दिन जिस वेश-भूषा में तुम मेरे पास आयी थी, वह तो कुछ और प्रकट कर रही थी।”

वह बोली—“हाँ, मैंने भी सोचा है कि उसीसे तुमको धोखा हुआ होगा। पर उस समय मैं अपनी एक सखी के यहाँ से लौटी थी, जिसने मुझे एक विद्यालय में नौकरी दिलवाने का वचन दिया था। और उसी दिन मुझे मालूम हुआ था कि योग्यता होने से कुछ नहीं होता। दुनियाँ तो सर्टिफिकेट चाहती है। हालाँकि यह मैं जानती हूँ कि सर्टिफिकेट-धारी बहुतेरे आदमियों के चेहरे जैसे चिकने और साफ-सुथरे होते हैं, वैसे उनके कर्म नहीं होते। कभी-कभी तो यह मैंने साफ़-साफ़ अनुभव किया है कि सर्टिफिकेट हीन आदमी अपनी योग्यता और प्रतिभा के दान में जितना प्रवीण होता है, उतना सर्टिफिकेट धारी अकसर नहीं होता। और होता केवल इसलिये नहीं है कि सर्टिफिकेट प्राप्त करने का अभिमान प्रायः जीवनोपयोगी योग्यता और अनुभव प्राप्त करने के मार्ग को बीच ही में रोक देता है।

इस बातचीत से मुझे कुछ ऐसा ज्ञान पड़ा, जैसे वह प्रकारान्तर से कह रही है कि विवाह का प्रमाण-पत्र भी कुछ ऐसा ही अर्थ रखता है। तब मुझे उसकी इस तर्क-बुद्धि पर हँसी आ गयी।

लेकिन यह हँसी भी कितने रुदन—कितने क्रन्दन—को अपने वक्ष में उभरती-गिरती साँसों को लेकर आई हैं, कुछ टिकाना है ! तब उस रेस्तोरो से उठते-उठते मेरे मुँह से निकल गया—“अच्छा लाली, अभी तो मैं कुछ नहीं कहता; लेकिन हो सकता है कि कभी मैं तुम्हारे इस आत्म-दान के श्रृण का ब्याज चुका सकूँ !”

...

...

...

दोपहर ढल चुकी थी और भाई साहब की नीद अभी पूरी नहीं हो पाई थी। तब मैंने भाभी के कमरे में जाकर कहा—“कहो भाभी, अबके बिछुड़े फिर हम कब मिलेंगे ?”

उस समय वे पल्लेग से उठकर दरवाज़े की ओर पीठ किये हुये चप्पल पहन रही थी। मुझे आया जान एकबार मेरी ओर ताककर रह गयी। अधर कुछ हिले, भौह एक उठकर बैठ गयी, पलक कुछ ऊपर उठे और गिरे। निःश्वास भी आया और अन्तरिक्ष में मिल गया। एक कबूतर खुली खिड़की पर आकर बैठ गया। उसने गर्दन हिलाई, मेरी ओर देखा, भाभी की ओर ताका। फिर ज्योंही उसके पास उसका साथी आया, त्योंही उसके साथ फर्र से उड़ गया। यहाँ तक कि उसके पंखों के समीर ने मेरे सिर के केशों में भी कम्पन्न उत्पन्न कर दिया।

भाभी बोली—“कोई कुछ नहीं कह सकता।”

मैंने कह दिया—“लेकिन मैं इतना कह सकता हूँ—हम मिलेंगे और अनन्त बार मिलते रहेंगे।”

वे बोली—“इसी तरह मैं भी कह सकती हूँ—हम न कभी मिल पाये हैं; न मिल पायेंगे। हमारी साँसें ओ आती जाती है, अधूरी हैं! हमारे प्राण जो एक दिन शरीर में पड़ते और एक दिन विदा लेकर अन्तरिक्ष में लीन हो जाते हैं, अधूरे हैं! हमारी भूख-यास नींद, चलना-फिरना, रोना-गाना, तृप्ति, अतृप्ति, सतोष, आनन्द—सब अभूरा पड़ा है और पड़ा रहेगा! मैं अधूरी-की-अधूरी-ही चली जाऊँगी। मेरे प्राण अधूरे छूटेंगे—केवल तुम, केवल तुम्हारा आदर्श पूर्ण रहेगा!”

सोचता हूँ, अगर उस समय मेरा हृदय फट जाता, तो कितना उत्तम होता!

मेरा हृदय भर आया, मेरा कण्ठ भर आया, मेरी आँखें भर आयी। भाभी के चरणों की रज मस्तक से लगाते हुए मैंने कहा—“बस भाभी, तुम्हारा व्यङ्ग्य मैं कहा हुआ यही वाक्य भगवान करे, आशीर्वाद बनकर मुझे सदा जीवित रखे।”

...

...

...

आज शाम को आकस्मात् भाई साहब बोले—चलो, बाज़ार से कुछ

सामान लेना है। और वहाँ बहुतेरे कपड़े और साड़ियाँ खरीदते-खरीदते उन्होंने दस बजा दिये। सबरे मैं जान-बूझकर देर से उठा। चँदिया कमरे के दरवाज़े पर आकर कहने लगी—“छोटी बहू भी भाईसाहब के साथ जायँगी।...मों जी आपको बुला रही हैं।”

मैं झटपट उठकर मों के पास गया, तो उन्होंने बतलाया—“मै किसी तरह ऐसी कोई बात नहीं करना चाहती, जिसमें लखनऊवाली की ज़िन्दगी बरबाद हो। कोई भी नाता हो, बनाने में कितने दिन लगते हैं! और दूट जाने के बाद फिर तो वे जुड़ते नहीं, थोड़ी-बहुत गॉस बनी ही रहती है। अभी जब बंशी खुद आया है, तब बहू के चले जाने में ही शोभा है। बहू जाना नहीं चाहती थी। मैंने बड़ी मुश्किल से उसे राज़ी कर पाया है। तू भी थोड़ा-सा ढङ्ग से समझा देगा, तो और अच्छा रहेगा।”

मैंने झट कह दिया—“यह तुमने बहुत अच्छा किया मों। बल्कि मेरा काम बिल्कुल हलका कर दिया। अच्छा...।” और मैं तुरन्त भाभी के पास जा पहुँचा।

आँसू पोंछती हुई वे अपना सामान सम्हाल रही थी। मुझे देखते ही बोली—ये लो, यह मेवा-नमकीन-मिठाई सब तुम रक्खो। मुझे तो कुछ अच्छा लगता नहीं था। तुम्हीं खिलाते थे, तो खा लेती थी।... यह पेन लो। और यह मेरी पहननेवाली अँगूठी बहू आये, तो अपने हाथ से पहना देना। कहना—कोई तुम्हारे लिए बरसों से सँजोकर रक्खे हुई थी।... अरे मेरे हाथ से एक सँदेस तो खा ले निर्मोही... नहीं मरते समय मुझे...। क्योंकि कौन जाने अब...” कहती-कहती सिसकियाँ भरती हुई भाभी रो पड़ी।

सँदेस खाते और भाभी की ओर देखते-देखते बहुत कुछ दब रहते हुए मैंने कह दिया—“आँसू मेरी कमज़ोरी है, तुम्हे मालूम है भाभी। इसलिये अगर तुमने रोना बन्द न किया, तो मैं अभी-अभी भाईसाहब से कह दूँगा कि इस तरह मैं नहीं भेजता। मैं कहता हूँ, तुम्हारे मुख की यह अभिनव शोभा, मन को मोह लेनेवाली यह रूप-सम्पदा, तुम्हारा हँस-हँसकर बातें करना, तुम्हारी प्राणमयी ठठोलियाँ, सब कुछ मेरे और इस जगत के लिए

पर सुखराम के जाते ही तुरन्त चँदिया आ पहुँची। बोली—“मॉ जी आप को याद कर रही हैं सरकार।”

मैने पूछा—“किसको चँदिया ? सरकार तो तेरे लिए भाभी ही रही हैं इधर जब से आयी है।”

चँदिया थोड़ा शरमा गयी। सिर नीचा करके बोली—“सो तो आप ठीक कहते है। लेकिन मॉ जी ने आपको ही बुलाया है।”

तुरन्त मैं माँ के पास चला आया। माँ बोली—“बेटा, मेरा मन बड़ा दुखिया है।” और फूट-फूटकर रो पड़ी। मैने पूछा—“क्या बात है माँ ?” रोती क्यों हो ? तुम जब रोने लगती हो; तो मेरे प्राण धरती पर लोटने लगते है।”

माँ ने ओसू पोंछ डाले। बोली—“मुझे रात-दिन सोते-जागते यही चिन्ता बनी रहती है कि अपनी भाभी के बिना तू कैसे जियेगा, कैसे इस धरती पर चलेगा।”

“क्या कहा ! यह आज तुम कह क्या रही हो मॉ ! भाभी को जब देखा नहीं था, तब कैसे जी रहा था मै ?” मैने तुरन्त कह दिया।

वे कहने लगी—“सो तो ठीक है। पर मै अपने जी का पाप तुम्हसे कह रही थी।...उसकी गोद भर जाती, तब कोई डर की बात नहीं थी। देखो तो एक दुखिया मज़दूरनी तक का दुख भी उससे देखा नहीं जाता ! तू नहीं जानता, भगवान् ऐसे प्राणियों को अधिक दिनों तक जीने नहीं देता बेटा !”

मैने जब भाभी से जाकर यह बात कही तो, मॉ के पास आकर उन्होंने उनके चरणों पर अपना मस्तक टेक दिया। बोली—“अब मैं मरूँगी नहीं मौसी। तुम्हारा यह भय मुझे जीवित रखेगा।”

तब से मैं बराबर यही सोच रहा हूँ—अपने को उत्सर्ग कर देने की अपेक्षा चिरदिन चिरजीवन तक स्वस्थ रखना तो और भी बड़ा, और महान—एक महान समर्पण है; यद्यपि है बड़ा दुष्कर।

जब चाय आयी तो मैने कह दिया—“मैने अब चाय पीना छोड़

दिया है भाभी !” भाभी ने शाल के पल्लू को बाईं ओर के कंधे पर सम्हालते हुए पूछा—“क्यों ?”

“क्योंकि मैं उन कार्यों से भी अपना सम्बन्ध तोड़ देना चाहता हूँ, जो रह-रहकर मेरे भीतर से मिल की चिमनी का-सा धुआँ उठाने लगती है ।”

“तुम या तो मुझसे इस तरह की बातें ही मत करो । तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ । या तुम मुझे प्राप्त कर लो ।” यद्यपि भाभी ने इतना ही कहा; किंतु मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वे इतना और कह रही हैं—“ओख मूँदलो माँ की ओर से । मर्यादा में डूबे बल्कि उसके हाथ बिके अपने समाज से और अपने भले-बुरे उन संस्कारों से, जिनका मुँह ही केवल तथा-कथित पुरातन है, पर लोम-लोम जिनका आज के औसत नागरिक की भाँति भूखा, प्यासा, लुब्ध, अतृप्त और नंगा है ।”

तब मुझे कहना पड़ा—“अच्छा, तब भाई साहब से क्या कहना होगा-?”

वे मुस्करा उठी और बोली—यह भी मुझी को बताना होगा ! अच्छा लो सुनो । उनकी मुझे छोड़ने में रत्ती भर भी कष्ट न होगा । क्योंकि उनकी प्यास की परिभाषा में बहुत बड़ी गुंजायश है । तुमको विश्वास हो, चाहे न हो, पर यह अर्चना जो वही उन्हीं के निवास-स्थान की परिधि में कहीं रहती है, उसकी ओर उनकी दृष्टि अब तक कभी की पड़ चुकी होगी । यह मत सोचना कि अर्चना कुन्ती-तारा-मन्दोदरी में से है । नारी किस जग कमज़ोर होती है, यह मैं जानती हूँ । किसी भी दिन तुम उसे भाभी कहने का अवसर प्राप्त कर लोगे । रही यह लाली, जो इस घर में कभी-कभी उछलती-कूदती हरिणी सी झलक दे जाती है, यह भी उनकी दृष्टि में पड़ चुकी है ।

“क्या मतलब ?” आश्चर्य के साथ पूछा ।

भाभी बोलीं—“ मतलब बिल्कुल साफ़ है । तुम लगाओ बन्धन, देखें, कितने लगाते हो ! लेकिन प्रकृति के खेल को रोकोगे कब तक ?

इसी मकान में और तो सब ठीक है; पर इसका शौचगृह तो नीचे ही है। रात को वे एक बार शौच गये थे। लगभग पाँच बजे की बात होगी। जब आधा घंटा हो गया और वे नहीं लौटे, तब मै शंका में पड़ गयी। नीचे गयी, तो मालूम हुआ कि नाटक तो समाप्त हो चुका है। यवनिका-पतन ही शेष है। धीरे-धीरे कुछ बातें हो रही हैं। तुम्हारे भैया कह रहे थे—“दिल्ली में एक मकान ठीक कर आया हूँ। वहाँ तुम आ जाओगी, तो ठीक रहेगा।

सुनकर अविश्वास की एक ऐसी कड़वाहट मेरे मन में समा गयी कि जान पड़ा, दुनियाँ में कहीं कुछ ऐसा नहीं है जिसे मैं परमपावन कह सकूँ। लाली को मैं कलोर बछिया समझता था। वह भी अधिक के पास जा पहुँची! और भाई साहब को क्या कहूँ। समाज की इन अन्तःसलिला अन्तर्वाहिनी स्रोतस्विनी नाना वृत्तियों की जितनी छानवीन करता हूँ, उनके प्रति उतनी ही घृणा बढ़ती जाती है। अच्छा, क्या इस शुद्रता का कहीं अन्त नहीं है?

पर भाभी का बचन अब भी मेरे समक्ष ज्यों का त्यों स्थित था—“तुम या तो मुझसे इस तरह की बातें ही न करो—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ—या तुम मुझे प्राप्त कर लो।”

इतने में सुखराम अन्दर आ गया और बोला—“कौन यही ट्रंक है न ?” भाभी ने कह दिया “हाँ!” और सुखराम ट्रंक लेकर चला गया।

अब मुझे निर्भय होकर कह देना पड़ा—

“मैं अगर यह बातें भी न करूँ तो सच कहता हूँ मर ही जाऊँ मैं भी। एक बार पहले भी कह चुका हूँ तुमसे और आज फिर कहता हूँ कि मेरी इन बातों पर भी तुम्हारे मन को डाँवाडोल करने की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। पर दूसरी ओर यह बात भी उतनी ही सत्य है कि इन बातों ने ही मेरी बड़ी रक्षा की है। हम नित्य इस तरह की अनेक बातें एक बार सोच डालते हैं, जिनका अस्तित्व केवल इतना होता है, जितना हवा में उड़ने वाले तिनकों या इस पाट पर रेंगनेवाली चीटी का।

“यह मैं जानती हूँ।” भाभी बोलीं; पर मुझे प्रतीत हुआ, वे आगे

इतना और कह रही है—इसीलिये तो तुमने मेरे मन में श्रद्धा, निमंत्रण और प्रलोभन के तूफ़ान उठाये हैं।” चाय ढालकर भाभी बोलीं—“तो सचमुच तुम चाय नहीं पियोगे ?”

मन में तो आया, कह दूँ—आज तो मैं तुम्हारे हाथ से ज़हर भी पी-लूँगा ! लेकिन फिर कहा दिया केवल—“नहीं।”

मेरे इनकार करते ही भाभी का मुख म्लान पड़ गया। छलछलाये ओसुओं के वेग को रोकती हुई सी बोली—अरे पी लो लाला, अब मैं बार-बार तुमसे ऐसा अनुरोध न कर पाऊँगी।”

मेरे मुँह से निकल गया—“ऐसी निराशा भरी बातें करोगी, तो मैं सग्यासी हो जाऊँगा।” तब आँखों में ओसू भरे हुए भी भाभी हँस पड़ी। फिर भी भाभी के कथन में वाणी की तरलता, कण्ठ की आर्द्रता और भावना की मर्मस्पर्शी निकटता ने एक बार फिर मुझे जैसे कंधे पकड़कर झुकने डाला। तभी मैंने लक्ष किया उसका एक ओसू चाय के प्याले में जा गिरा है। तब साहस करके और भी एक पग पढ़ाते हुए मैंने पूछा—“अच्छी भाभी, अपने समाज के बीच में प्रतिष्ठा खोकर भी जो लोग सिर नीचा किये हुए शरीर और मन की जलन बुझा लेते हैं, क्या तुम समझती हो कि वे बहुत सुखी रहते हैं ?”

फिर इतना कह कर भाभी को प्याला उठाने का अवसर न देकर मैंने वह ओसू भरा प्याला स्वयं ही उठा लिया।

भाभी रूमाल से ओसुओं को होठों के भीतर जाने से मना करती-करती कुछ स्थिर होकर बोलीं—“सुखी चाहे न रहते हों” लेकिन वे तुम्हारी तरह आत्मरति भी नहीं करते। निरन्तर आहों, निःश्वासों और अनदेखे स्वर्णों पर बहस करने की अपेक्षा आग में कूद जाने को वे कभी तैयार होते हैं। और हमारे इस महादेश को सदियों की गुलामी से मुक्त करने का सौभाग्य भी उन्हीं को प्राप्त है।”

“और अधिकार भोगके नाम पर सत्य, न्याय और अहिंसा की निरन्तर हत्या करते रहने की एक परम्परा-सी स्थापित करने का सौभाग्य भी उन्हीं

को प्राप्त है।” यकायक मेरे मुँह से निकल गया तब तुरन्त ध्यान आ गया—इस शुद्धता का आरोप भाभी के सम्बन्ध को लेकर मेरे ऊपर भी तो हो सकता है ! मैं उससे अछूता कैसे रह सकता हूँ ! निरन्तर आदर्श आदर्श की दुन्दुभी बजानेवाला मैं—और स्वयं मेरी यह स्थिति है !

चीनी के सफ़ेद चिकने शुगर-पाट पर कहीं एक चीटी रेंग रही थी । कभी भीतर जाती, कभी बाहर निकल आती । तब कानों से लिफ्ट कोई कहने लगा—जहाँ तक मन के भोग का प्रश्न है आदमी इस चीटी से भी अधिक लुब्ध है ।

चाय का प्याला खाली ही किया था कि भाभी पान बनाने लगी । मेरे मन में आया कि उस समय कुछ कह दूँ । कम-से-कम इतना तो स्वीकार कर ही लूँ कि अच्छा भाभी मैं तुम्हारी इस बात का ध्यान रखूँगा, अगर जीवन में कभी ऐसा क्षण आ ही आ गया कि अब आग बुझाने की अपेक्षा आग लगा देने में ही मेरे जीवन का चरम साफल्य है ।

पर उसी समय भाईसाहब उस कमरे के द्वार पर आकर बोले—“चलो।”

भाभी का दौया हाथ सिर पर पड़ी हुई साड़ी पर जा पहुँचा और मुक्त भाल पर तुरन्त साड़ी खिसकाती हुई वे उठीं, दो बीड़े पान उन्होंने मुझे दे दिये, फिर दो बीड़े भाई साहब की ओर बढ़ा दिये ।

भाई साहब आगे हो गये थे । उनके पीछे भाभी थी । जब दोनों आगे-आगे चल दिये, तब मैंने हाथ में पान लिये हुए कह दिया—“मैंने पान खाना भी छोड़ दिया है भाभी ।” उस समय भाई साहब को ज़ीने में उतगता देख भाभी थोड़ा रुकी मेरी ओर मुड़ी, मेरे हाथ से पान ले लिये और अपने हाथ से उन्हें मेरे मुँह में रखती हुई कहने लगी—“तुम ऐसा नहीं कर पाओगे ।”

कमरे के बाहर खड़ी हुई जिस समय वे मुझे पान खिला रही थी उसी समय उधर से माँ बाहर आती हुई कह रही थीं—“तेरा सूटकेस भी मैंने रखवा दिया है राजेन । कौन जाने वहाँ कोन-सी बात उठ खड़ी हो । इस



लिये बड़ी बहू से निपट लेने को कम-से-कम इस समय तेरा साथ रहना जरूरी है। चलती तो मैं भी, लेकिन इस समय मेरा चलना ठीक नहीं है।”

इसी समय भाभी माँ से लिपटकर रो पड़ी। माँ उन्हें समझाती हुई एकान्त में ले गयीं और कान के पास मुँह ले जाकर कहने लगीं—“मैंने मन की बहुतेरी बातें तुझसे कभी नहीं कहीं बहू। इस समय भी मैं कुछ कह नहीं रही हूँ। पर इतना तो तुम्हें समझ ही लेना चाहिये कि इसी जीवन में अगर कभी अगले जीवन की आशाएँ पूरी किये बिना प्राण न बचते हों, तो यह घर भी तुम्हारा है।”

मेरी समझ में नहीं आता, मेरे अन्तर की वाणी ने माँ को ऐसा प्रभावित कर कैसे लिया ! क्या वे सोचती हैं कि भाईसाहब से कभी-न-कभी उन्हें छुटकारा मिल ही जायगा ! और क्या वे समझती हैं कि मेरी प्रतीक्षा का अन्त नहीं है ? मैं उस क्षण-उस घड़ी-तक टकटकी लगाये उन्हें देखता ही रहूँगा ! लेकिन हो भी सकता है। मेरे पूज्य पिता यदि इस संसार में अब तक जीवित हैं, यदि . . . !

मैं नहीं जानता, इस जगत में मेरी माँ से बढ़कर कोई माँ है। तब से मैं निरन्तर यही अनुभव कर रहा हूँ।

गाड़ी दिल्ली जा रही है। सेकंड क्लास के रिज़र्व डब्बे में हम केवल तीन प्राणी बैठे हुए हैं। भाई साहब ट्रंक खोलकर उसमें से ब्रांडी की बोतल निकालते हुए मुझसे पूछ रहे हैं—“करोगे शेयर ?”

मैंने भाभी की ओर देखते हुए उत्तर दे दिया—“मुझे इसकी जरूरत नहीं पड़ती।” भाभी एक पत्रिका हाथ में लिये हुए थी। उसे रखती हुई बोलीं—“आज मैं भी थोड़ी पीना चाहती हूँ। लेकिन तुम ठहरे आदर्शवादी। तुम्हारी बात और है।”

“मेरा आदर्शवाद तो तुम हो भाभी। मैं अब तक तो यही समझता आया हूँ।”

भाभी ने मुसकराते हुए कह दिया—“डरो नहीं, मैं तो यों ही कह रही थी।”

इतने में भाईसाहब एक साथ कई घूँट कण्ठ के नीचे उतारते हुए बोले—“जिन्होंने कभी पी ही नहीं, मुझे हँसी आती है, जब वे कहते हैं—मुझे इसकी ज़रूरत नहीं पड़ती। हूँ ! अरे मैं पूछता हूँ—भगवान को...मेरे जैसे पापी को...पैदा करने की क्या ज़रूरत थी ? ऐं ! क्या कहते हो ?”

रात को साढ़े ग्यारह बजे है। गाड़ी ने भरवारी स्टेशन अभी-अभी पार किया है। भाईसाहब ने यकायक करवोट बदली है। वे कह रहे हैं—“लाइट आफ कर दो राजेन। मेरा स्वर्ग अब सोना चाहता है।”

थोड़ी देर बाद मैं सोच रहा था, भाईसाहब का स्वर्ग क्या चाहता है, यह तो मैं नहीं जानता; पर यह मैं अवश्य देख रहा हूँ कि मेरा स्वर्ग जो यह पड़ा हुआ कभी-कभी एक-आध वाक्य बोल उठता है कह रहा है—

“कम-से-कम बाथरूम की बत्ती जलने दो। क्योंकि अंधेरे में रात करने में कोई रस नहीं मिल रहा है।”

फिर जब मुझे नींद आ गयी, यह मैं नहीं जान सका। किन्तु जब सबेरे साढ़े सात बजे, और फीरोज़ाबाद स्टेशन आ गया, तो यकायक दरवाज़े पर किसी ने कुट्-कुट् किया। उठकर दरवाज़ा जो खोलता हूँ तो क्या देखता हूँ—चाय की ट्रे में टोस्ट-मक्खन और आमलेट लिये रेस्तोरों के ब्वाय के पीछे लाली सौराष्ट्रीय वेश-भूषा में उपस्थित है।

हे भगवान, त्राहिमाम् !

## तेइस

उस काफ़े का असली नाम क्या है, यह मैं थोड़ी देर के लिए भूल रहा हूँ। लेकिन मैं अगर मालिक होता, तो उसका नाम रखता—प्रेरणा। हाँ, तो कभी-कभी छोटी-बड़ी भाभियों के साथ मैं प्रेरणा में आबैठता हूँ।

एक दिन की बात है, जब मैं वहाँ से उठने लगा, उस समय आठ बजे थे। एक स्त्री लगभग बारह वर्ष के बच्चे के साथ आयी। वह सिर से पैर तक पश्चिमी ड्रेस में थी और दूर से क्रिश्चियन मालूम पड़ती थी। उसकी चाल-ढाल यकायक मुझे परिचित जान पड़ी। बड़ी भाभी साथ में थी। मैं जब उस स्त्री को देखने लगा, तो बड़ी भाभी बोली—“अरे ये तो श्रीमती पांडेय है। इसी काफे की मलका। चलो, तुमसे परिचय करा दूँ।”

मैं अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया। एक तो यों ही मैं कम आश्चर्य में डूबा हुआ न था, तिस पर उन्होंने परिचय में कह दिया—श्रीमती पांडेय ! तब मैंने कह दिया—“क्षमा करना भाभी। मैं चाहता हूँ, तुम इस समय चुपचाप गाड़ी में जा बैठो, तो मैं स्वयं इनसे मिल लूँ। क्योंकि जिनके होने की आशंका से मैं उन्हें देख रहा हूँ, यदि वे निकल आयी, तो इस समय मुझे उन्हीं के साथ चल देना पड़ेगा और फिर उस दशा में तुम्हें अपने स्थान पर अकेला ही जाना होगा।

मेरा इतना कहना था कि वे गाड़ी की ओर चल दीं। बोली—“अच्छी बात है। मैं दो मिनट तक प्रतीक्षा करूँगी। उसके बाद समझ लूँगी कि तुम्हारी आशंका ठीक निकली।”

वह स्त्री तब तक काफ़े के अन्दर वहाँ पहुँच चुकी थी, जहाँ कैशियर बैठता था। मैं भी वही चुपचाप चला गया। अभी मैं उसके पास—बिल्कुल पास—पहुँच भी न पाया था कि उस स्त्री ने पूछ दिया—“आप क्या चाहते हैं ?” पर इतना कहने के बादही उसकी चेष्टाएँ अपने आप बदल गयीं। यकायक मैंने देखा, तो मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ, मैंने जो कुछ सुना, उससे मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन इस दुनियाँ की रचना ही कुछ ऐसी अद्भुत हुई है कि यहाँ सर्वथा सरल, स्वाभाविक और अत्यन्त अद्भुत बिल्कुल पास-ही-पास बैठता और रहता है। यहाँ कंटक पुष्प का बन्धु है, सरिता पहाड़ की कन्या है, पंक कमल का जनक है। तुरन्त वह अपने को सम्हालती और मुझको निहारती

निहारती हुई बोली—“अरे यह तो मेरा राजेन्द्र है ! आओ बेटा, इधर निकल आओ ।” और मुझे ज़ीने से ऊपर के अपने निजी कमरे में ले गयी ।

कमरा बहुत साफ है, बहुत सुन्दर है । फ़रनीचर ऐसा बहुत क़ीमती तो नहीं है, पर एक शैली और आधुनिकता उसमें अवश्य बोलती है । चित्र हैं, रेडियो है, सफ़ेद लाइट है । फ़र्श पर साफ़ दरी बिछी है । एक ओर सोफ़ासेट भी है ।

वहाँ पहुँचते-पहुँचते मेरे मुँह से निकल गया—“तुमने तो मुझे बड़े आश्चर्य में डाल दिया चाची ।” बच्चा दूसरे कमरे में चला गया था । चाची पहले थोड़ा हँसी, फिर ख़ाँसी को सम्हालती हुई-सी बोली —“हाँ, आश्चर्य तुमको हो सकता है; लेकिन फिर ऐसी चीज़ें ही तो जिन्दगी को टिकाऊ बनाती हैं ।...अरे उपेन्द्र, अपने भैया को कुछ खाने को ले आ.. । अच्छा, रहने दे । लेकिन अपने भैया के पैर तो छू ही जा बेटा ।” और उन्होंने वही बैठे-बैठे बटन दबा दिया । जान पड़ा, नीचे किचिन में घण्टी बज रही है । उपेन्द्र के पास आने पर मुझे कहना पड़ा—“क्षमा करना चाची, यह तो लाली का सगा भाई-सा लगता है मुझको ।”

“तुमने ठीक सोचा बेटा । लेकिन यह जैसा लाली का भाई है, वैसा ही तुम्हारा भी छोटा भाई है ।” “अब मेरा सारा भ्रम दूर हो गया है । मेरी सारी आशंकाएँ सच्ची उतर रही हैं । मैं सोच रहा हूँ, यह संसार स्वयं एक मायानगर है । यहाँ सब सम्भव है । मैंने उपेन्द्र के सिर पर हाथ रखकर मन-ही-मन शुभाशीष दिया—“सुखी रहो भैया ।” पर आश्चर्य में डूबते हुए मेरे मुँह से निकल गया—“क्या मतलब ? मैं समझा नहीं ।”

“बहुत-सी बातें अभी तुमको समझनी हैं बेटा । अच्छा है, आज तुम उनको एक साथ समझ लो । इतना तो अब तक तुमको मालूम ही हो गया होगा कि पाँडियजी किस तरह जीवित रहे ।”

इसी समय एक ब्वाय आ पहुँचा । चाची बोलीं—“ये उपेन्द्र के बड़े भाई हैं । इनके लिए काफी-टोस्ट स्पेशल समोसे और जो भी कोई ताज़ी चीज़ बनी हो, ले आओ ।”

ब्बाय ने मुझे विधिवत् नमस्कार किया और कहा—“मैं अभी लाया हुआ हूँ।”

मेरा हृदय उमड़ उठना चाहता है उस उफान की तरह, जो उबलती दाल में पहली बार उठा करता है। मैं नहीं जानता, मैं इसे विषाद कहूँ या हर्ष। हर्ष इससे अधिक क्या होगा कि पिताजी जीवित हैं ! और विषाद भी इससे अधिक क्या होगा कि उन्होंने फिर अपने वेधानिक परिवार में आना भी स्वीकार नहीं किया ! उन्होंने मेरे और माँ के साथ इतना छल—उनका इतना तिरस्कार किया !

लेकिन क्या यह अवसर इस बात पर रोने-धोने और बहस करने का है ? जिनको मैंने अब तक ‘चाची’ शब्द से सम्बोधित किया है, क्या अभी इसी समय उनके मुँह पर फटाफट यह कथन न ड़ूँ कि तुम ऐसी ..हो, तुमसे तो बात करने में भी मुझे शर्म आ रही है ! लेकिन अगर इनको ऐसा कहूँ, तो फिर अपने पूज्य पिताजी को किन शब्दों में याद करूँ ?

हे प्रभू, तेरी इच्छा पूर्ण हो।

तेरी वह रचना पूर्ण हो, जिसमें अनैतिकता का इतना महत्त्व है !

मुझे मौन देखकर वे बोली—“मैं जानती हूँ, मेरी ये बातें तुमको दुख पहुँचायेगी। लेकिन यह तो और भी ज़्यादा दुःख की बात होगी कि तुम इन्हें जानने का मौक़ा ही न पाओ; जैसा कि अब तक हुआ है। पर मेरी जीजी इतनी साधु स्वभाव की है कि अगर उनको कुछ बतलाया भी जाता, तो उसी दिन वे इस दुनियाँ से छुट्टी पा जाती ! न जाने किस तरह से घुमा-फिराकर मैंने उन्हें बड़ी मुश्किल से इतना बता पाया था कि बड़े पोंड्येजी जीवित हैं। वे इसी संसार में हैं। पर इस बातको सुनकर उनको कोई सुख नहीं मिला। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी वेश-भूषा भी बदलना स्वीकार नहीं किया। मानो वे यही सोचती रही कि जब उन्होंने अपनी पुरानी दुनियाँ में आना स्वीकार नहीं किया, तो उस दुनियाँ के लिए तो वे अब

भी परलोकवासी ही ठहरेंगे। जो भी हो, कैसे वे जीवित रहे, इसकी कथा बड़ी विचित्र है।”

मैने फिर भी कुछ नहीं कहा। पर यह भी अच्छा ही हुआ कि वे कहती ही चली गयी। बोली—“हरबंशपुर मे पॉडेजी का शव गाँव के बाहर पड़ा था। उस पर इतना पानी गिरा, ओलों की वर्षा हुई, आँवियों के हमले हुए कि पता नहीं किस तरह उनके प्राण फिर पनप आये। ऐसा कैसे हुआ, वे कारण कौन से है, जिनसे ऐसा हो सका, यह तो डाक्टर ही बतला सकते हैं। मैं तो सिर्फ इतना जानती हूँ कि उस भयावनी रात मे जब आँधी-पानी शांत हुआ, तभी मैं अपने मकान से शौच के लिए बाहर निकली थी। उस समय मेरे शरीर पर भीतर एक गरम जैकेट थी, ऊपर धोती और एक ऊनी रैपर। उस रैपर को मैंने अब तक सम्हाल कर रक्खा है। शौच के लिए मैं एक खेत के अन्दर गयी थी, जिसके पास ढाँख के पेड़ थे। शौच से निपटकर ज्योंही मैं घर को वापस होने लगी त्योंही मुझे एक दबी-मी आवाज़ सुनायी पड़ी—“कौन है यहाँ?”

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

तब फिर वह स्वर फूटा—“जो कोई भी हो, वह इस गाड़ी के पास चुपचाप बिना किसी डर के चला आये।”

मेरे मन में कुछ शंका हुई, कुछ भय का भी संचार हुआ, लेकिन साथ ही मैंने यह भी अनुभव किया कि यह बोली तो कुछ-कुछ हमारे पॉडेज की-सी है। इसलिये भय का कोई कारण न देख मैंने उसी आवाज़ की तरफ अपना पैर बढ़ा दिया।

तब वह स्वर और भी साफ होता चला गया—“भगवान ने मुझे फिर जिला दिया है। मैं कोई भूत-प्रेत नहीं हूँ। मैं बिल्कुल सही-सलामत आदमी हूँ। मेरे बन्धन खोल दो। मैंने नया जीवन पाया है और मैं तो सदा नये जीवन की तलाश में रहा हूँ।”

अब मुझे निश्चय हो गया—ये तो मेरे हृदय के धन का स्वर है।

मैं जब उस शव के पास गयी, तब एक बार फिर मुझे भय लगा। पर

सबसे पहले मैंने उनका मुँह जो खोला, तो मेरा सारा भय जाता रहा। उन्होंने भी मुझे पहचान लिया। उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था, इस विषय में मुझे तुमसे यद्यपि कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम्हारे बच्चे हो। लेकिन मुझे अब इस बात पर किसी तरह का खेद नहीं है। क्योंकि हम लोगों ने अपनी तबियत का एक नया संसार बसा लिया है। यहाँ मुँह बनाकर हमसे कोई यह कहनेवाला नहीं है कि यह तुमने क्या किया? जो हो, उस अवसर पर सबसे पहले उन्होंने जो बात कही, वह यह थी कि अपने जीवन-काल में तो मैं तुम्हें पूरी तरह न पा सका, लेकिन मृत्युकाल में अचानक पाकर अब मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं।

कई लोग उनके शव की तलाश में इधर-उधर भटक रहे थे, दुःख और विषाद में डूबे वे 'हाय-हाय' शब्द करते जंगल की ओर दौड़े चले जा रहे थे, तब मैं आग जलाकर पाँडेयजी के बदनकी कपकपी मिटा रही थी।”

मैं उस समय सोचने लगा—यह कैसी आग है प्रभू कि चालीस-पचास वर्ष की अवस्था के बाद भी कपकपी मिटाने को इस तरह जल उठती है!

वे हँसती-हँसती बोली—“मैं जानती हूँ, जैसा तुम्हारा स्वभाव है, उसको देखते हुए तुमको यह बात पसन्द न आयेगी। लेकिन जब उनके शव को खोजनेवालों का दल इतना दुखी और परेशान था, तब पाँडेयजी आग की लपटों में शरीर और हाथ-पैर सेंकते हुए कह रहे थे—भटकने दो सब को। जब ईश्वर की यह रचना ही ज़िन्दगी के साथ ऐसा मज़ाक करती है, जिसका जोड़ नहीं, तब मैं क्या कर सकता हूँ!”

इतनी देर बाद अब मुझे खयाल आया, भाई साहब जब सुनेंगे कि मैं एक ऐसी वृद्ध महिला के साथ चला गया हूँ, जो इस काफ़े की मलका है, तब पता नहीं, वे इस बात के अन्दर कैसे-कैसे अर्थों और मन्तव्यों की कल्पना करने लगेंगे!

चाची बोली—“उसके बाद पाँडेयजी ने अपनी पुरानी दुनियाँ त्याग दी और मैं भी उनकी नयी दुनियाँ को यहाँ तक खींच ले आयी।”

इसी क्षण काफी के साथ कुछ खाद्य पदार्थ आ गये। चाची बोली—  
“लो, खाओ।”

मेरे मुँह से निकल गया—“इस समय तो लूमा चाहता हूँ चाची।”

“मै जानती थी, ऐसी दशा में तुमको यह रुचेगा नहीं।” चाची दस्ताने उतारती हुई बोली—“खैर, कुछ खाने की इच्छा नहीं है तो न सही; पर काफ़ी तो पी ही लो। रक्खे-रक्खे ठंडी पड़ जायगी।”

पर इसी समय अन्दर से पिताजी आ गये। देखा, अब वे काफ़ी वृद्ध हो गये हैं। शरीर भी दुर्बल है, मुख-कान्ति में भी वह बात नहीं है। केश श्वेत पड़ गये हैं। पर जिस वेश-भूषा की मैं कल्पना भी नहीं करता था, वही चेस्टर और पैट उन्हें पहने देख मैं आश्चर्य में डूब गया। लेकिन इस आश्चर्य को भी नगण्य कर उनको देखते ही मैं उनके चरणों पर सिर रख कर प्रार्थना पर गिरकर रो पड़ा !

उन्होंने मुझे उठाया और छाती से लगा लिया। मेरे आँसू पोंछे, सिर और पीठ पर बराबर वे हाथ फेर फेरकर कहते रहे—“रोओ मत राजेन्द्र, रोने का कोई अबसर नहीं है। जब मैंने देखा, मैंने नया जीवन प्राप्त किया है, तब मेरा मन ही बदल गया। मैं सोचने लगा, जब सामाजिक बड़ापन, मर्यादा, प्रतिष्ठा, कुटुम्ब, इष्ट-मित्रों का समुदाय, सब-का-सब मिलकर आज के व्यक्ति की स्वतन्त्र वृत्तियों को नोच-नोचकर खाये जा जा रहा है, जब अन्धपरम्परा, रूढ़िवाद, धिसे-पिटे रस्म, नाते-रिश्तों की स्वार्थ-लित शोषण-भरी रीतियाँ हमारे स्वतन्त्र मानव को कहीं भी ठहरने टिकने, बैठने—यहाँ तक कि खड़ा भी नहीं रहने देना चाहती, तब मैंने यह नयी दुनियाँ बसा ली। मैंने बुरा किया कि भला किया—मैं इस पर विचार भी नहीं करना चाहता।”

सम्भव है, वे सोचते हों कि मैं उनके इस विचार का समर्थन करूँगा। पर मैंने उनकी बात केवल सुन ली। उस पर मैंने अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की।

काफ़ी का प्याला ज्यों का त्यों पड़ा रहा।



तदनन्तर पिताजी ने सिगार जलाया । दो-चार कश लिये और फिर वे बोले—

“मैंने बहुत चाहा कि तुम्हारी माँ मेरे विचारों का साथ देकर चलें । पर जब मैंने देखा, वे दूसरे विचारों की ही नहीं, भिन्न प्रकृति की भी हैं, तब मैंने जो उचित समझा सो कर लिया । इसमें सबसे अधिक सहायता पहुँचायी भगवान की इस विचित्र माया ने, जिसके कारण मैंने उस दिन नया जीवन पाया । हम लोग तो अकसर अब भी इस बात पर हँसा करते हैं कि जैसे हमको सदा को मिला देने के लिए ही भगवान ने पहले मेरी मृत्यु की रचना रखी, वैसे ही फिर मेरे जीवन और तदनन्तर उन संयोगों की भी सृष्टि की, जिनसे मैंने तुम्हारी इन चाँची को उस अवस्था में अपने निकट पाया !”

तब सब कुछ मेरी समझ में आ गया । मुझे स्मरण हो आया कि चलती हुई मेरी घड़ी जब एक बार बन्द होकर फिर अपने आप चलने लगी थी, तब मैं सुलेमान से बातचीत करने के पश्चात् जिस निष्कर्ष पर पहुँचा था, वह कितना सत्य सिद्ध हुआ !

उस रात मैं पिताजी के पास ही रहा । मैंने जब उन्हें बतलाया कि मधू का ब्याह भी तो यही हुआ है । दीक्षित जी और उनका परिवार बड़ा सुसंस्कृत है । फिर मैंने जब उनसे बंशी भैया के दूसरे ब्याह की चरचा की, तो वे बोले—“सब ठीक है । पर अब तो मुझे इस प्रच्छन्न जीवन में ही रहने दो । जब समाज की सुदृष्टि में मैं एक बार मर चुका हूँ, तब उसकी कुदृष्टि में मेरे जीवित हो उठने में कोई सुख नहीं है ।”

मुझे वैशाली के उस कथन की याद हो आयी, जो उसने एक कापी के फटे पन्ने के सम्बन्ध में प्रकट किया था । फिर उससे प्रभावित मुझे छोटी भाभी के भी इस कथन की याद हो आयी—“जब पूरा-का-पूरा लिखा हुआ पृष्ठ गलत जान पड़े तो दो आड़ी लकीरे खींचकर उसे काट डालो । फिर उसकी पीठपर चाहे चार ही लाइने लिख दो, तो उतना ही काफ़ी होगा ।”

मतलब यह कि ढेर-का-ढेर गुलत-सलत लिख डालने की अपेक्षा यह कही अच्छा है कि थोड़ा लिखा जाय, लेकिन कुछ ऐसा लिखा जाय—जीवन में कुछ ऐसा कर दिखलाया जाय—जिसे अनन्त काल और अनन्त युगों की नयी-नयी पौधें गाती चले—बाहे फैलाती चले ।

यह सब तो ठीक हुआ । मैं मानता हूँ कि गलतियों सुधारने की यह प्रणाली अपनी जगह पर बड़ा महत्व रखती है । परन्तु यह क्या चीज़ है कि मुझे उस समाज से छिपा हो रहने दो, क्योंकि वह मुझे पतित और हीन समझता है ! प्रश्न तो यह है कि समाज की उस दृष्टि को आप कैसा समझते हैं, जिससे आप इतना भय खाते हैं ! और भय ही अगर खाते हैं, तो उसमें आपकी वीरता किस स्थल पर है ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि समाज की जिस दृष्टि को अन्दर-ही-अन्दर आप स्वयं बड़ा मानते हैं, आप स्वयं उसे महान समझते और उस पर श्रद्धा रखते हैं, आप स्वयं समझते हैं कि उसके आगे आने योग्य मुख अब आपका नहीं रह गया है ! अर्थात् आपने जान-बूझकर ऐसा जीवन स्वीकार किया है, जिस पर आपको अब शर्म आती है । मूलतः आप भी उसी आदर्श के उपासक हैं, जिसको अपने त्याग दिया है । और जिन कारणों ने आपके जीवन में इतना परिवर्तन उपस्थित किया है, वे क्षणिक भावोन्मत्त की देन हैं ।

तब क्या यही सत्य है कि जीवन की थोड़ी-सी अतृप्ति भी बड़ मूल्य रखती है ? जिस समय पिताजी ने माँ को सावधान हो जाने की सूचना दी थी, उस समय माँ ने उस सूचना का कोई मूल्य नहीं समझा था । यही कारण है, पिताजी की उस अवस्था को मान, महत्व और सहारा देने में चाचीजी ने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी ।

उस रात मैंने भोजन नहीं किया और यह बात मुझे बाद में मालूम हुई कि पिताजी ने भी भोजन नहीं किया था । हमारे पल्लेग पास-ही-पास बिछे थे और उपेन्द्र उस दिन चाची के पास दूसरे कमरे में सोया था ।

हमारी यह बातचीत कभी बन्द हो जाती, कभी फिर प्रारम्भ हो उठती ।

एक बार कुछ ऐसा हुआ कि पिताजी ने पूछा—“तेरी माँ अच्छी तरह तो हैं रे राजेन्द्र ?”

मेरे मन में आया, कह दूँ—“आपको इस सूचना से प्रयोजन ? आपको यदि उनके प्रति कोई ममता होती, तो आप सीधे घर न आते ।” लेकिन नहीं, मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा । बल्कि उनको और जलाने की इच्छा से कह दिया—“हाँ, आजकल तो उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है । मकान भी अपना निज का हो गया है । चाची ने बतलाया ही होगा । ज़मींदारी कारबार तो अब समाप्त ही-सा है । फिर भी सीर की जो पचासी बीघा ज़मीन है, उसमें खेती होती है । मैंनेजर डेरे पर ही रहता है । अभी पिछले महीने हफ़्ते भर के लिए मैं गया भी था ।”

सुनकर वे कुछ नहीं बोले । एक निःश्वास लिया और कमबल से अपना सिर ढक लिया । थोड़ी देर तक चुप रहे । ओडियन के चौराहे से किसी कार का हार्न सुनाई पड़ा और एक मोटरबाइक की फट-फट की आवाज़ हुई । कमरे में मन्द-मन्द नीली रोशनी हो रही थी । अलमारी के ऊपर से बिस्त्री ऐसी कूदी कि मेरे पलंग की पैतानेवाली पटिया पर आ गिरी । फिर एक सन्नाटा छा गया । फिर ऐसा मालूम हुआ कि पिताजी ने करवोट ली है । फिर उनकी दबी हुई सिसकियों भी स्पष्ट जान पड़ी । मैं उठकर बैठ गया और मैंने कहा — “पिताजी !”

वे भरे हुए कण्ठ से बोले—“हाँ, बेटा ।”

“रो रहे हो ?”

“नहीं तो । यों ही ज़रा-सा... !”

अब मैंने कह दिया — “अभी तो आप कह रहे थे कि कोई बात नहीं है । मैंने जो कुछ किया है; बहुत सोच-समझकर किया है—एक नयी दुनियाँ बसाई है । फिर रोने का क्या कारण है भला ?”

वे बोले—“हाँ, कहने को बहुत-सी बातें हैं । आदमी हर काम के पीछे कोई-न-कोई कारण तो रखता ही है । मेरे पीछे भी कारण रहा ही है । पर आज मुझे कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है राजेन्द्र, जैसे तेरी माँ के साथ अन्याय

मुझसे हो ज़रूर गया है। और मधू तो तब बिल्कुल छोटी थी .. !” और इसके बाद वे रो पड़े।

मैं चुप लगा गया। केवल इस विचार से कि अच्छा है, अगर कुछ आँसू इसी बहाने निकल जाँय। कम-से-कम माँ से इतना तो कही सकूँगा कि एक तुम्ही नहीं रोती हो उनके लिए, पिताजी भी रोते हैं तुम्हारे लिये। ऐसा है इस नयी दुनियाँ का सुनहला स्वप्न !

इस अवसर पर एक विचार और मेरे अन्दर ही-अन्दर उत्पन्न हो आया था। इस मन की विचित्र गतियाँ हैं। किसी भी दशा में उसे पूर्ण संतोष नहीं होता। एक दिन था, जब पिताजी को अपना पुराना समाज चारों ओर और दसों दिशाओं से संगीन-बरछी-भाले की नोक की भाँति छिड़ता हुआ प्रतीत होता था। पर आज उन्हें उसी की याद सता रही है। एक दिन उन्होंने माँ को त्याग्य समझा था, आज वे अनुभव करते हैं कि उनके साथ मुझसे अन्याय हो गया है ! मीठा-ही-मीठा भोजन करने के अनन्तर कुछ खड़ा और नमकीन खाने की इच्छा होती है। तात्पर्य यह कि उस समय पिताजी को अभाव, अतृप्ति और असंतोष उस जीवन में दिखाई देता था, अब इस जीवन में दिखाई देता है। तो जीवन की प्रत्येक स्थिति अपूर्ण है। कहीं गति नहीं है—कहीं तृप्ति नहीं है। सब अधूरा है।

घड़ी ने टन-टन करके चार बजाये। तंगेवाले ने टीप लगायी—  
“नैना बड़े जुलमी !”

फिर एक लम्बा सन्नाटा। इसी क्षण पिताजी बोले—“मैं अपने में सुखी था। मैं अपने में पूर्ण था। तुम बेकार आये राजेन्द्र, मेरे पूर्व जीवन के अधूरे स्वप्न लेकर।...मैंने सोचा था, मैं उस समाज से अपने आपको छिपाये ही रखूँगा। मैं भला हूँ, बुरा हूँ, जैसा कुछ हूँ—हूँ; अपने लिये हूँ। लेकिन अगर मैं हूँ, तो अपने सभी प्रकार के सामूहिक समाज के लिए हूँ। मैंने बुरा काम किया है, तो समाज को उसके प्रभाव से मैं कैसे बचा सकता हूँ ! मैंने अच्छा काम किया है, तो समाज को उसके लाभ से वंचित रखने का मुझे क्या अधिकार है ? कितने

दिन से मैं उस समाज से मिलने को व्याकुल हूँ, जिससे मुझे घृणा हो गयी थी ! कितने दिन से मैं अपने उन मित्रों से नहीं मिला, जो सुख में दुख में सदा मेरे सहायक रहे हैं ! मेरी वह घृणा अपनी जगह पर सही थी, या मेरी यह व्याकुलता ही आज सत्य है—मैं नहीं जानता । मैं सत्य असत्य का शोधक नहीं हूँ । इसीलिए मैं अपने समाज से मिलूँगा और वह जो कुछ कहेगा, उसको चुपचाप सहन भी करूँगा ।”

“तुम नहीं सहन कर पाओगे पिताजी । हमारे पुरातन समाज में लाख बुराइयों हों, पर सात्विक वृत्तियों के प्रति अतुल श्रद्धा उसमें अब तक स्थिर है । मानता हूँ कि आपने पुनर्जीवन प्राप्त किया है । यह भी मानता हूँ कि नयी दुनियाँ में आपकी अपनी एक सामाजिक मर्यादा भी हो गयी है । यद्यपि कोई स्थायी और अचल सम्पत्ति आपने अर्जित की है कि नहीं, मैं नहीं जानता । लेकिन यदि कभी भी हो, तो वह भी सही । पर इतने से ही समाज में एक आदर्श महापुरुष के रूप में आपकी प्रतिष्ठा हो जायगी, इसकी आप कल्पना भी न कीजियेगा ।”

“समाज में आदर्श महापुरुष कहलाने का मुझे कोई मोह नहीं है बेटा !” पिताजी ने एक अधजले सिगार को दियासलाई जलाकर सुलगाते हुए कहा — “मैं तो अपनी पुरानी दुनियाँ को एक बार देखना भर चाहता हूँ । उसका उत्साह, उल्लास, उसके उन्नतिमूलक परिवर्तन, उसकी आजकल की रुचियाँ, उसके आधुनिक कर्मक्षेत्रों और भविष्य के कल्पना-मन्दिरों का मैं एक बार परिचय मात्र चाहता हूँ ।”

इस स्थल पर मैं थोड़ा चुप रह गया । जो मेरे जनक हैं, जिन्होंने मुझे जन्म दिया है, उनके प्रति अविनयशील हो उठने की उत्तेजना का निरोध तो मैं कर सकता हूँ । किन्तु जहाँ विचारों की स्पष्ट विषमता है, वहाँ केवल श्रद्धा-भार से दबकर मैं चुप रह जाऊँ, यह मेरी प्रकृति के विरुद्ध है । एक बार तो मन में आया भी कि कोई ऐसी बात न कहूँ जो पिताजी को बुरी लगे । क्योंकि रात का समय है । चाची सम्भव है, सो रही हों और बातें करते-करते उत्तेजनावश स्वर में प्रखरता आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है

निद्रा भंग होते समय जब उन्हें इस बात का परिचय मिलेगा कि पुत्र पिता से लड़ रहा है, तब मूल बात का औचित्य तो पीछे पड़ जायगा वार्ताकार की अशिष्ट प्रगल्भता ही स्पष्ट मुखरित हो उठेगी। उपेन्द्र मेरा अनुज है। उसको भी मेरे प्रथम परिचय में जिस बात का बोध होगा, वह होगी मेरी यह ग्रामीणता कि लड़ने में मैं समय-कुसमय तक का विचार नहीं करता !

परन्तु इसी समय घड़ी ने टन-टन करके बजाये छै। और काफी की एक लड़की ने तुरन्त आकर कहा—“काफ़ी तैयार है फ़ादर, ले आऊँ ?”

पिताजी बोले—“ले आ। लेकिन देख एलन, यह यङ्गमैन जो इस पलङ्ग पर लेटा है, शायद तुम्हारे हाथ की बनायी कोई चीज़ छूना भी स्वीकार न करेगा। इसके सिवा तुम्हारे यहाँ मुर्गी के अण्डे और दूध चाहे बिल्कुल पड़ोसी की तरह रहते हों, पर इनके पुराने जगत् में वे आगस में शत्रु-तन्त्र के प्रतिनिधि है। तू समझ रही है कि नहीं एलन ?

एलन क्रिश्चियन लड़की है। इतना तो मैं उसी समय जान गया था। बाद में पता चला कि वह निवासी भी गोआ की है। खैर, वह बोली—“यस् फादर। इनके लिए काफी मैं रामदास से बनवा दूँगी।”

तभी पिताजी के होंठों पर थोड़ा हास फूट पड़ा। बोले—“लेकिन उसके हाथ की बनी काफ़ी भी इसकी कुलीनता स्वीकार न करेगी। जानती हो क्यों?—क्योंकि चमार जाति का वह हिन्दू भी बहुत निम्नकोटि का है।”

“ऐसा क्यों है फ़ादर ? अपने को रामदास कहलाने पर भी कोई हेन्दू निम्नकोटि का ही बना रहता है !”

“हाँ एलन, हमारा हिन्दूधर्म ऐसा ही विचित्र है। खैर, इस सम्बन्ध में विस्तार से मैं फिर कभी बतलाऊँगा। इस समय तो तुम उपेन्द्र की माँ से ही इसके लिए काफ़ी बनवा दो, तो ठीक होगा।” पिताजी के इतना कह लेने के बाद मैं बोल उठा—“क्षमा कीजियेगा पिताजी, आपने मुझे समझने में भूल की है। मैं एलन के हाथ की बनी काफ़ी सहर्ष पीने को तैयार हूँ।”

इस पर मुसकराती एलन जब चली गयी, तब मैंने कह दिया—  
“पिताजी, आप सदा यही सोचते होंगे कि पुरानी दुनियाँ के लोग आपको मृत समझते हैं। और यह सोचते-सोचते आप उस समाज को शोचनीय भी समझने लगते होंगे।”

सिगार की राख को ऐश-ट्रे में डालते हुए पिताजी बोले—“हाँ बेटा। यह बात अक्सर मेरे मन में आया करती थी।”

इस अवसर पर मैं जान-बूझकर ऐसे प्रश्न करना चाहता था, जिनसे पुरानी स्मृतियों की वेदना पिताजी के मन में एकदम से जग उठे। इस लिए अब मैंने कह दिया—“आप सोचते होंगे पिताजी कि जिस समाज के अन्दर मेरी कामनाएँ अपूर्ण रह गयी, उसीमें जा मिलने में अब कोई रस नहीं है।”

“जान पड़ता है, तूने मेरे मन की ग्रंथि को ही देख लिया बेटा।” कहकर पलङ्ग से उठकर छड़ी के सहारे वे दरवाजे पर आकर नवीन दिवस के प्रभात का उजाला देखने लगे।

“और पिताजी, किसी व्यक्ति के साथ समाज का यह कितना बड़ा अन्याय है कि वह उसकी प्यास तक को सीमाओं में घेरकर रखना चाहता है।”

मैंने पुनः जान-बूझकर ऐसी बात कही जो पिताजी के विचारों का मूल स्रोत थी। इसलिए पिताजी उस समय पहले तो विस्मय से इकटक मेरी ओर देखते रह गये। फिर बोले—“मैं तो कभी सोच भी न सकता था राजेन्द्र कि एकदिन तुम्हारे जैसे पुत्र से मुझे इस भाँति अपने गौरव का अनुभव होगा। क्योंकि कुछ ऐसी बात है कि जीवन-भर मैंने केवल समाज के इसी अन्याय का अनुभव किया है।”

इस क्षण कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अब तक मानो मैं पिताजी के इसी कथन की प्रतीक्षा कर रहा था। इसलिए मुझे इसी अवसर पर कह देना पड़ा—“परन्तु क्षमा कीजियेगा पिताजी, पुत्र होकर मैं आप से ऐसा कह रहा हूँ। क्या आपने कभी यह भी सोचा कि समाज अगर आपको

मृत समझता है, तो उसका तो एक आधार भी है। किन्तु आपने उसी समाज को मृत समझ लिया, उसका क्या आधार है? हृदय पर हाथ धरकर सच-सच बतलाइये पिताजी, आपने मुझको ही नहीं, मेरी माँ और मेरी छोटी बहन मधू को भी जो मृत समझ लिया, उसका आधार क्या था? ब्याह के अवसर पर आपकी याद कर-करके वह कैसी रोई थी, अगर आप सुन पाते, तो आप का यह पत्थर-हृदय मोम की तरह पिघल उठता ! लेकिन क्या मैं आपसे स्पष्ट कहूँ कि आप को तो समाज के धर्म की अपेक्षा व्यक्ति का धर्म अधिक प्यारा था ! मन की छोटी-बड़ी अनन्त तरङ्गराशि की अपेक्षा शरीर के स्थूलधर्म की मॉर्ग का महत्व आपके लिए बढ़ा था !”

यकायक पिताजी की भृकुटियाँ तन गयीं और एक कड़कीले स्वर में वे बोल उठे—“अब तुम बहुत आगे बढ़ रहे हो राजेन्द्र ! पिता की दुर्बलताओं पर आक्षेप करने का अधिकार पुत्र को उसकी अन्तेष्टिक्रिया के बाद भी नहीं होता ।”

जैसे प्रेम के नयन नहीं होते, कल्पना के पैर नहीं होते, सौन्दर्य के जाति नहीं होती, कला के आचार नहीं होता—वैसे ही आलोचक के शील नहीं होता। इसलिये बिना किसी हिचक के मैंने कह दिया—“मेरे मुँह पर थप्पड़ मार दीजिये पिताजी, लेकिन सत्य बोलने का मेरा मानवी अधिकार मुझसे मत छीनिये !”

“साधारण मानवी धर्म-पालन से पहले तुमको पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये बेदा ।”

“उस पिता के प्रति, जिसने अपनी संतान के हिताहितों तक की परवा नहीं की; जिसने उसके सुख को अपना सुख नहीं समझा और उसके दुःखों की तो कभी कल्पना भी नहीं की !”

मेरे इस कथन पर पिताजी मौन रह गये। एक शब्द उनके मुँह से नहीं निकला।

इस स्थल पर मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि किसी व्यक्ति को यह सोचने का



अधिकार नहीं है कि मैं ही अपना कर्तव्य-पालन क्यों करूँ, जब और लोग नहीं करते। क्योंकि कर्तव्य का स्थान जीवन में उस व्यापारिक सौदे का-सा नहीं, जो लेन-देन में अनिवार्य होता है। कर्तव्य किसी भावना का प्रतिदान नहीं, वह तो व्यक्ति का अपना धर्म होता है।...लेकिन मुझे तो अपनी बात कहनी थी।

इसी समय चाची आकर बोल उठी—“ऐसा मत कहो बेटा राजेन्द्र। तुम नहीं जानते, वे तुमको कितना प्यार करते हैं !”

इस समय कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई मुझे संकेत करके बता रहा है—अब साफ-ही-साफ चुका दो राजेन्द्र। जानते हो, सत्य के माँ नहीं होती।

“हो चाची, यह तुमने ठीक कहा”। मैंने परिणाम की ओर ज़रा भी ध्यान न देकर कह दिया—“राम को बन-गमन के लिए विवश करके माता कैकेई ने उनके प्रति जैसे प्यार का परिचय दिया था, तुम शायद उसी तरह के प्यार की बात कह रही हो ! क्योंकि उस दिन लाली भी तुम्हारे इसी तरह के प्यार की एक कथा मुझसे कह रही थी !”

पिताजी इसी समय बोल उठे—“जाने दो राजेन्द्र। इनसे क्या बात करते हो ! मेरी बात सुनो। मैं पूछता हूँ तुमसे। बोलो, क्या सभ्यता के भवन-निर्माण में प्रत्येक ईंट उन्हीं लोगों की लगाई हुई है, जिनका जीवन सीमा, मर्यादा और प्रतिष्ठा से बने आदर्श ! आदर्श ! प्राणहीन, जर्जर, खोखले आदर्श और दम्भ, पाखंड, मिथ्याडंबर के कीड़ों के चहबच्चे की तरह भीतर ही-भीतर सड़े-गले और ऊपर से चिकने, उजले और शोभन आदर्श से परिपूर्ण रहा है !”

“नहीं पिताजी, सभ्यता के भवन-निर्माण की समस्त ईंटें शायद उन्हीं लोगों के शरीर के अस्थि-चूर्ण, रक्त-मांस की देन है, जिन्होंने आज तो कह दिया—तुम मेरे प्राणों की प्राण हो, मेरी सास-सांस में बोलती हो। तुम मेरे अतीत की साधना, वर्तमान की सफलता और भविष्य की कल्पना हो। केवल आज की नहीं, युग-युग की मेरी रजनीगन्धा-सी महकती देह-

लता हो और कल उनकी ओर से पीठ फेर ली, केवल इस आधार पर कि रात को जब मुझे प्यास लगी, तब पानी यदि नहीं था तो तुमने अपने हृदय का रक्त मुझे क्यों नहीं पिला दिया ! हम ठहरे आज़ाद पंछी, एक पेड़ की डाल-डाल और टहनी-टहनी पर कब तक निर्भर रह सकते हैं ! हमारी कोई शर्त नहीं, हम कोई बन्धन नहीं मानते। तुम जाओ चूल्हे-भाड़-खन्दक में, हमारी बला से ! हम ये चले, ये गये—अलविदा ! इस स्पष्ट शब्द-जाल, प्रवञ्चना, छल-छद्म और विश्वासघात में कितनी आज़ादी है !—कितना गौरव है ! और शायद आज की यह सभ्यता इसी गौरव की देन है ! क्यों पिताजी ? ... कहाँ गयीं वे चाची, जो इस नयीदुनियाँ की रचना करने में अपनी नव-विधवा कन्या लाली के सारे स्वर्णभरण लेकर चम्पत हो गयी थी और एक दिन जब उसे डबल निमोनियाँ हुआ था, तब उसकी हत्या करने में जिन्होंने कोई बात नहीं उठा रक्खी थी !

ज्वालामुखी का विस्फोट-सा हो उठा उसी क्षण । पिताजी बोल उठे—“बको मत राजेन्द्र” ! मानो इतना कहना बाक़ी रह गया—निकल जाओ हमारे घर से । अब हम तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहते !

इसी समय एलन ट्रे में काफी और टोस्ट लेकर आ पहुँची । चाची बोलीं—“अच्छा पहले काफ़ी पी लो । फिर और जो कुछ कहना हो, उसे भी कह लेना ।”

मैं तत्काल उठकर खड़ा हो गया और मैंने कह दिया—“क्षमा कीजिएगा चाची, मैं उस प्यार पर विश्वास नहीं करता, जो इतने छल-छद्म के बीच में पलता है । काफी ज़हर पी चुका हूँ ! अब यह अमृत मेरे लिए काफ़ी न होगा ।”

और इन्ही शब्दों के साथ मैं उस काफ़े से बाहर हो गया । पिताजी के शब्द लगातार मेरे कानों में पड़ रहे थे—“सुनो राजेन्द्र, मेरी बात सुने जाओ बेटा । लौट जाओ राजेन्द्र । राजेन्द्र... राजेन्द्र . राजे— !

पिता की पुकार का स्वर धीरे-धीरे मन्द पड़ता जाता था । लेकिन गति के मेरे क़दम उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते थे ।

## चौबीस

दुधर मुझे कई दिन से आत्म-निरीक्षण का अवसर कम मिला है। निरन्तर मैं काम में ही लगा रहा हूँ। कभी यह सोचने का भी अवकाश मैंने नहीं पाया कि कब कहाँ मुझसे भूल हुई है। मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ, जो सदा यह सोचकर चलते रहते हैं कि मेरा कदम कभी ग़लत पड़ ही नहीं सकता। ग़लतियाँ मैं नित्य करता हूँ। यह बात दूसरी है कि ग़लतियों के बीच में पड़कर भी मुझे सही रास्ता मिल जाता है। ... कहीं ऐसा तो नहीं है कि दो-चार ग़लतियाँ एक सही रास्ते को जन्म दिया करती हैं !

मैं पहले तो अपने को देखता हूँ। मैं सोचा करता हूँ कि जिन लोगों की जीविका का मुझसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, उनकी शान्ति, रक्षा और उन्नति का ध्यान मुझे कितना रहता है। मुझसे सम्बन्धित किसी व्यक्ति को आज कही यह शिकायत तो नहीं है कि मैं उसकी बात नहीं सुनता ?

लेकिन आज मैंने पिताजी की आलोचना कर दी, इसका मुझे कोई दुःख नहीं है। केवल एक उपेन्द्र की ओर मेरी दृष्टि जाती है। वह मेरा छोटा भाई है। उसके मन में कभी ऐसी बात नहीं उठनी चाहिये कि वह अकेला है। लेकिन अभी तो वह विद्यार्थी है। इसके सिवा उसे इतने आधुनिक माता-पिता की छत्रछाया भी प्राप्त है। ...लेकिन मेरा कोई अपना यदि अन्यत्र रहता है, तो उसकी ओर दृष्टि तो मुझे रखनी ही होगी। और दृष्टि मैं उसको मानता हूँ जो उस प्रकाश को भी ग्रहण करने से नहीं चूकती, जो अन्धकार से फूटता है ! ...अच्छा, यह एलन नाम की अति भोली लड़की कौन है, जो पिताजी को 'फ़ादर' कह रही थी और वचन देने पर भी जिसके हाथ की काफ़ी पिये बिना मैं चला आया हूँ ! ...होगी कोई। रेस्तोराँ में काम करती है। इतना जान लेना काफ़ी है।

तिनके जो हवा में उड़ते हैं, मैं उनको कैसे पकड़ सकता हूँ !

उस दिन मैंने जमना की बड़ी प्रशंसा की थी।' जब उसने अपनी

आचार-सम्बन्धी पवित्रता और आदर्श-निर्वाह की बात अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त की थी। लेकिन यह भी खूब रहा कि वह तो उसका अभिनय मात्र था !...तो मैं अभी तक इतना भोला बना हूँ कि कोई अभिनय करके मुझे ठग सकता है।

ठीक तो है। हमारा यह आज का जीवन भी अभिनय-मात्र रह गया है !

यह लाली भाईसाहब के साथ क्यों चली आयी ? भाभी उसके सम्बन्ध में जो कुछ कह रही थी, क्या वह सब सत्य था ? क्या लाली भाई साहब के वाक्-जाल में फँस चुकी है ? उन्होंने उससे साथ चलने को कहा होगा। उन्हीं के संकेत पर वह यहाँ चली आयी है। उन्हींके आदेशानुसार वह ज्ञानाने डब्बे में बैठकर आयी थी। प्रसन्न भी वह यथेष्ट है। तो इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पंछी के दाना चुगने का प्रवन्ध हो गया है।

वाह भाई साहब, क्या कहने है !

बड़ी भाभी की बड़ी-बड़ी बातें हैं। मैंने जब उनके चरण छुए, तो सिर पर हाथ रखती हुई बोली—“प्रसन्न रहो।” फिर मेरे सिर उठाते ही—“कहो कैसी रही ? आखिर बुला ही लिया न तुमको, सिर्फ एक चिट्ठी डालकर।”

बचपन में व्यायाम के सिलसिले में हिलमास्टर साहब एक संकेता-देश दिया करते थे—‘राइट एवाउट टर्न।’ उसी का ध्यान आगया।

मैं उनकी ओर इकट्ठ देखता रह गया। यह नैनो में काजल खूब भरा है। और चेस्टर के भीतर से झोंकती हुई साड़ी की यह आसमानी-काली-स्लेटी किनारी, अनामिका में नीलम की अँगूठी, परों में दो-दो तोले वाली ग्रीन कलर पर सुनहले काम की जूतियों उनकी रुचि से खूब मिलती जुलती हैं। पान मुँह में इतना ज़्यादा दबा है कि कहना पड़ता है—पान लाल—पान की पीक लाल—पीक की लीक लाल !

खैर, यह सब तो हुआ। भाभी के इस कथन पर मैंने कुछ नहीं कहा। तब उन्होंने झट से मेरा हाथ पकड़ लिया। बोली—इधर आओ, चलो पहले गाजर का हलुआ खा लो। ...क्या कहा ? भैया के साथ खाओगे ? जैसे हमारे भैया, वैसे तुम। अच्छा, यह गद्दर अब्बिया कहाँ से

फटकार दी ! ...“गद्दर अँबिया ! कहती क्या हो ! अरे विधवा है बेचारी । अपने घर में जो किरायेदार रहते हैं, उनकी बहन है । पढ़ी-लिखी है । कहीं एक अच्छी-सी सरविस लगा देने के विचार से शायद... !”

“पुराना तरीका है । .. खैर, तो चिट्ठी तो पढ़ी ही होगी । अच्छा बातें उसमें जो लिखी थीं, उनमें माना कि थी कड़ता । पर—यह हमारी बिल्कुल निजी बात है—उसमें... उसमें असत्य बात क्या थी ? .. अरे हटो, हमसे उड़ते हो ! हमने तुम्हारे ऐसे बहुतेरे महात्मा पुरुष देखे हैं । तुम्हारे ये भाईसाहब भी तो, जब मेरा व्याह हुआ था, दोनों वक्त संध्या किया करते थे ! और साथ ही दोनों वक्त दड-बैठक भी चला करती थी । एक नाई नित्य तेल मलने आता था । सूर्योदय गङ्गाजी के स्नान में होता था । नित्य नियम से नौ बजे सो जाना और पाँच बजे उठना । मगर अब पूछो, दूध गिलास-भर पियोगे, तो कहेंगे—दूध भी कोई पीने की चीज़ है !”

स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ कि भाभी आज उस पत्र के ज़हर को साफ़ करने पर तुल गयी है ।

छोटीभाभी से जब मिली, तब तो अभिनय की हद हो गयी । बोली—“आ गयी रानी । चलो अच्छा हुआ । मुझे तो नींद ही न आती थी, तुम्हारे बिना । अच्छा, गरदन पर यह हरे रूमाल की पट्टी भी खूब ज़ेब दे रही है । और कण्ठ पर उसके ये लाल-लाल रक्त के छीटे ! मार डालो हमको । अरे छवि, सुन्दरता और सुकुमारता में मेरे लिए भी कुछ छोड़ दिया करो जानेमन । स्वास्थ्य तो अब पहले से, जान पड़ता है, ठीक है । मौसी के यहाँ खाने-पीने में कभी कोई ख़ास कमी नहीं रहती । जाओ जाओ, अभी पाइप आ रहा है... । लेकिन ठहरो, मैं पानी गरम करवाये देती हूँ । ... हाँ, यह भी ठीक है । पहले चाय पीलो । आओ, फिर वहीं चलो । ... इस मिश्री की डली का क्या नाम बताया ?—ओः लाली । अच्छा तो है । आओ लाली, तुम्हारा भी साथ हमारे यहाँ निभ जायगा । यहाँ किसी चीज़ की कमी नहीं है । बस, उनको एक बात से चिढ़ है । ज़रा

उसीका खयाल रखना । किसी काम के लिए कभी ना न करना । बाक़ी फिर डोंट फिकर । आओ आओ, शरमाओ मत ।”

अब रह गये भाईसाहब । सो उनसे भी वही शान । कहने लगी—  
 “मैं जानती थी, तुम अब रानी को लाये बिना न मानोगे । मगर रामलाल कहता था— दो लाख तक की ज़मानत भी अगर माँगी जाती, तो वह भी दिलवायी जा सकती थी । साठ हज़ार क्या चीज़ है ! केस फ़ौजदारी चल ही नहीं सकता, मैंने पहले ही कह दिया था ।...थके हुए बहुत होंगे, वह तो चेहरे से मालूम पड़ता है । मगर चाय बनने में इतनी देर क्यों ?... ख़ैर आयी तो । लल्ला, तुम्ही बना दो एक कप मेरे लिए । चीनी ज़रा कम छोड़ना मगर । ज़्यादा मिठास मेरे लिए कड़वाहट हो जाती है ! • लो, रानी मुसकरा रही है । अरे मैं कहती हूँ, मिठाई-विठाई क्या चीज़ है ! जो स्वाद नमकीन में है वह • ।...चटनी रानी को थोड़ी और परोसना । पसन्द आयेगी । • पराठा बिल्कुल ख़स्ता है । • तुम यह ले लो मुझसे, ख़ूब खरा सिका है—कुरकुरा-भुरभुरा ।

चित्त ऊब गया इस प्रदर्शन से । ऐसा मालूम होने लगा, जैसे उस पत्र का भेजनेवाला कोई अन्य व्यक्ति था । अधिक ठहरने की गुंजाइश तो थी नहीं । दूसरे अभी हमको मधू, वैशाली और अर्चना से भी मिलना था । इसलिये जब कभी इधर-उधर से धूम-धामकर हम वहाँ पहुँचते, तभी सर्वत्र बड़ी भाभी की छाप दिखलायी देती ।

अर्चना के सम्बन्ध में छोटी भाभी का कथन अभी तक सही नहीं उतरा । जब-जब मैं उसके यहाँ गया, वह मुझे अध्ययन में लीन मिली । ग्रुप लड़ाते या ताश-कैरम में वक्त काटते मैंने उसे कभी नहीं देखा । परन्तु पता नहीं क्यों, वह मुझे अधिक प्रसन्न कभी देख पड़ी नहीं । प्रायः कुछ ऐसा हुआ कि मेरे अचानक आ जाने पर गम्भीरता का स्थान प्रसन्नता की झलक ने अवश्य ले लिया । बात करते क्षण उल्लास की अमन्द मुद्राएँ और बात समाप्त हो जाने पर पुनः गम्भीर चिन्तन ।

एक दिन की बात है, वह कपड़ों पर लोहा कर रही थी । मैंने

पूछा—“मुखली बाबू का कोई पत्र-वत्र आता है ?”

वह पहले तो चौंक पड़ी। फिर हँसने का उपक्रम कर कहने लगी—  
“हम लोगों में पत्र-व्यवहार की कभी नौबत ही नहीं आयी। और अब तो बात ही दूसरी है। अब तो जो स्मृतियाँ हैं भी, चाहती हूँ उन्हें भूल जाऊँ।” और इतना कहते-कहते उसका कण्ठ भर आया। जी में आया, अब चलना चाहिये। पर इधर मुखली बाबू का कोई समाचार नहीं मिला था। तभी पूछा—“आजकल है कहों, कुछ पता नहीं दिया ?”

जाकेट की तह बनाती-बनाती वह हँस पड़ी। कहने लगी—“प्रायः उनका पता तो तब मिलता है, जब कहीं से पुलिस की इन्कवायरी आती है।”

अब भी मन को सन्तोष नहीं मिला। बार-बार कुछ असंगति-सी झलकने लगती थी। शरीर की ओर ध्यान गया, तो ऐसा जान पड़ा, मानो चाँदनी अवश्य है, लेकिन बदली से घिरी हुई !...पर जब कोई जान बूझकर अपनी व्यथा छिपाना चाहता हो, तब उसके पीछे पड़ जाने में मुझे अपने प्रति कुछ हलकापन का भान होने लगता है। इसलिये बस दो-चार मिनट की भेंट के पश्चात् मैं चल खड़ा हुआ।

मैं अभी उसके क्वार्टर के बाहर हुआ ही था कि वह भट से मेरे पास आ गयी। बोली—“सम्भव है, अबकी बार मैं आपको यहाँ न मिलूँ। स्थान बदलने की चिन्ता में हूँ। शीघ्र ही कहीं-न-कहीं चला जाना है।”

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—“क्यों ?”

अर्चना ने अपनी दृष्टि नीची कर ली। बोली—“मैं अब यहाँ रह नहीं सकती।”

अब मुझे पूछना पड़ा—“क्यों ? ऐसी क्या बात है ?”

अर्चना मेरे पास आ गयी। एक बार भाईसाहब के बँगले की पोर्टिको की ओर दृष्टि डाल कहने लगी—“जौहरी साहब से दूर रहने में ही कुशल है।”

अब मुझे छोटी भाभी के कथन का स्मरण हो आया। अतएव मैंने कह दिया—“अर्चना, तुम सचमुच मेरी बहन हो। इसलिये अगर तुमको

कभी थोड़ा-सा भी कष्ट हो, तो तुम इलाहाबाद में मेरे यहाँ सहर्ष रह सकती हो।”

ऑसुओं की भाषा में अर्चना बोली—“मैं अपने भैया को पहचानती हूँ।”

तब से मैं बराबर यही सोचता रहा—“अर्चना तो भाईसाहब के माया-बाल से बच जायगी। लेकिन इस लाली की रक्षा कौन करेगा?”

अब जलपान की सामग्री प्रायः लाली ही लेकर आती है। मैं तभी उसके मुख पर उसके मनोभावों की भाषा पढ़ने की चेष्टा करने लगता हूँ। लेकिन अब तक मैं यही समझ रहा हूँ कि लाली को कोई शिकायत नहीं है। न अपने आप से— न जीवन से।

कल कुछ ऐसा हुआ कि छोटी भाभी को जुकाम के साथ-साथ ज्वर भी आ गया। दिन भर हो गया, न वे देख पड़ी, न मैं ही उनके कमरे में गया। इसलिए नहीं कि उनके साथ अपनी आत्मीय घनिष्टता की बात छिपाना अब मेरे लिए अनिवार्य हो गया है। इसलिए भी नहीं कि अपने अहंकार की तृप्ति मैं इसमें देखता हूँ कि भले ही कोई मुझे खोजता रहे; पर मैं कभी कहीं किसी की प्रतीक्षा भी न करूँ। वरन् इसलिए कि अब धीरे-धीरे बड़ी भाभी मुझे पुनः अपना विश्वासपात्र समझने लगी हैं। उनका यह पक्का विश्वास हो गया है कि अबसर आने पर मोम की भाँति पिघल जाने पर भी क्षण भर का मौक़ा पाकर मैं पुनः लोहा बन सकता हूँ।



एक छींक के साथ प्रवेश करती हुई बोली—“मौसी ने चलते समय कुछ कहा था तुमसे ?”

मैने मुसकराते हुए कह दिया—“मुझे तो इतना ही खयाल है कि उन्होंने कहा था—“अगर कोई ज़रूरी बात कहनी हो, तो उसी वक्त कहना ठीक होगा, जब यकायक छींक आ जाय ।”

बड़ी भाभी हँस पड़ी । और गम्भीर होने पर भी छोटीभाभी के अरुणारे अर्धर विकसित हो उठे ।

किन्तु तत्काल छोटीभाभी हँसी पर नियमन करती हुई बोलीं—“मज़ाक छोड़ो । अच्छा क्या उन्होंने यह स्पष्ट नहीं कहा था कि साथ तो मैं भेज रही हूँ; लेकिन उसे भेज देना, दो दिन बाद ही ।”

मै जानता था— ऐसी कोई बात माँ ने नहीं कही । फिर भी मैंने कह दिया—“हाँ याद पड़ता है— कहा तो था ऐसा कुछ । बल्कि साथ मे इतना और जोड़ दिया था कि अगर छोटीबहू की तबियत वहाँ गड़-बड़ हो जाय, तो उन्हें साथ ही लिये आना । हम लोग यहाँ इ स समय इसी विषय पर गुप्त मन्त्रणा कर रहे थे । नाहक़ तुमने बीच में आकर बिग्न डाल दिया ।”

बड़ी भाभी ने मालूम नहीं किस अभिप्राय से मेरी इस मज़ाक का समर्थन कर दिया । नीलम की अँगूठी को अनामिका के ऊपर घुमाती हुई वे बोल उठी—“हाँ हाँ, ठीक तो है । तुम यही तो देखने आयी थी कि मैं कुछ ज़्यादा नाराज़ तो नहीं हो गयी हूँ । सो तुमने देख ही लिया कि ‘यहाँ न ब्यापहि राउर माया’ । इसलिए अगर तुम जाना चाहो, तो बिना किसी संकोच के जा भी सकती हो । क्योंकि जब तक तुम्हारी तबियत बिल्कुल सुधर नहीं जाती, तब तक... । बड़ीभाभी इसके आगे कुछ कहे कि छोटी भाभी बोल उठी—“मेरी तबियत तो अब सुधरने से रही ।”

लाली इसीक्षण आकर बोल उठी—“मेहतरानी खड़ी है । आपको बुला रही है बड़ीभाभी ।”

“मुझको बुलारही है ?” बड़ी भाभी बोली ।

“हाँ ।”

तब बड़ीभाभी कमरे से बाहर चली गयी । लाली भी उनके पीछे हो गयी । मेरा मन नही माना । मैंने छोटीभाभी से कह दिया—“क्यों, क्या मेरे यहाँ रहने से तुमको कुछ कष्ट होता है ?”

“तुम आज ही यहाँ से चले जाओ । अब कदाचित् तुमसे मिलना न होगा । बस, यही अन्तिम भेंट समझो ।” कहते-कहते छोटीभाभी बिल्कुल मेरे पास आकर कहने लगी—“मैंने आज बैंक से अपना सब रुपया निकलवा लिया है । यह मेरी निजी सम्पत्ति है । इसके अधिकारी इस जगत में एक मात्र तुम हो । तुम इसे ले लो चुपचाप । नही लोगे , तो मैं ज़हर खाकर सो रहूँगी !”

मैंने—पूछा “ड्राफ़्ट है या कैश” ?

“ड्राफ़्ट है इम्पीरियल बैंक का ।”

“कितने का ?”

“पचास हजार का ।”

“प्रलोभन तो बुरा नही है ।” मेरे मुँह से निकल गया ।

“तुम इसे प्रलोभन कहते हो ? शर्म नही आती!... देखो, ज़्यादा समय नही है । आठ बजे हैं । नौ-दस की गाड़ी तुमको मिल जायगी । साढ़े नौ बजे सबेरे बहुत आराम से इलाहाबाद पहुँच जाओगे । मधू से मिल नही पाये । वैशाली के साथ भी अन्याय हो रहा है । लेकिन जाओ तुम, छोड़ो दिल्ली । यह मेरा आग्रह है” । इतना कहकर वह ड्राफ़्ट उन्होंने मेरे कोट के जेब में छोड़ दिया और दो बीड़े पान मुझे खिला दिये ।

आज तक कभी ऐसा अवसर नही आया कि मेरे वह प्रान्त तक उनका यह कोमल हाथ पहुँचा हो ! आज तक मैंने उनकी कोई भेंट बस रहते स्वीकार नही की । पर आज भी मेरा मन भारी है, बोझ से दबा हुआ । लेकिन केवल यह सोचकर इसे स्वीकार किये लेता हूँ कि एक तो यह आत्मदान है । इसको ठुकराने का अधिकार मुझे नही है । दूसरे यह ऐसी सम्पत्ति है, जिसका उपयोग सम्भव है, मेरे द्वारा कुछ अच्छा हो जाय

तथापि एक हीन भावना मन से हट नहीं रही है। छोटीभाभी इतनी ऊँची हैं कि उन्होंने मुझे बौना बना दिया है ! और यह विडम्बना भी कैसी तीव्र और पैनी है कि सर्वस्व-समर्पण की इस पावन घड़ी में वे कहती है—“मेरे सामने से हट जाओ !”

आँसुओं के प्यारे झरने, चुपचाप अश्रुकोष में पड़े रहो ! संसार नहीं चाहता कि चिर-विदा की इस पवित्र बेला में मैं तुम्हारा अवलम्ब ग्रहण करूँ !

सब कुछ समाप्त हो जाना चाहता है। भाईसाहब से विदा ले आया हूँ। कहते हैं—रात को दो बजे सोये थे। उसके बाद सबेरे नौ बजे उठकर कुछ नाश्ता किया था। उसके पश्चात् फिर अब तक सो रहे हैं। मेरे बहुत जगाने पर थोड़ी देर के लिए उठकर बैठे थे। मैंने कहा—“मैं जा रहा हूँ। लाओ, पैर छू लूँ !”

अन्दर से फर्श पर कप गिरने की आवाज़ आ रही थी।

भाईसाहब बोले—“मेरे पैर छूने से तुम कहीं तेज-हत न हो जाओ। इसलिये दूर रहो मेरी छाया से। यही अच्छा है। मैं इस क्राबिल नहीं कि तुम्हें आशीर्वाद दूँ। सिर्फ एक चीज़ मैं तुमको दे सकता हूँ।... मगर तुम इतनेबड़े हो कि उसे भी लोगे नहीं। मैं जानता हूँ।”

इसके बाद एक निःश्वास छोड़ते हुए बोले—“अच्छा जाओ, खुश रहो।”

लोभ फट पड़ा मेरे मन में। पूछा—“किसके लिए कह रहे हो भैया ?”

वे बोले—“मगर उसे मैं तुम्हें दूँगा क्या ? वह तो तुम्हारी हो चुकी है।”

भाईसाहब जो कुछ जानते हैं, नहीं जानता, वह मेरी प्रशंसा का विषय है या निन्दा का। पर आज पहली बार मुझे इस बात का अनुभव हो रहा है कि मनुष्य का प्रयत्न कुछ नहीं, कोई वस्तु नहीं है। सारा खेल वस्तु-स्थितिओं का है। छोटी भाभी क्या करने जा रही हैं, कौन कह

सकता है ! पर उनका विसर्जन तो उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जा रहा है । और मेरी यह विवशता भी कितनी निर्मम है कि मैं अब उनका आज्ञाकारी मात्र रह गया हूँ ! वे मेरे जितनी निकट आ रही हैं, मैं उनसे उतनी ही दूर चला जा रहा हूँ । दुर्भाग्य, हँसो जी खोलकर मेरी विवशता पर ! हा हा हा हा ! हा हा हा हा !! • मैंने कल से ही कह रखी थी — “मैं जब गाड़ी में बैठूँ, तब मुझे विदा करने न आना । डरता हूँ, कहीं मेरा दिल बैठ न जाय ।” इसलिये केवल बड़ीभाभी मुझे भेजने आयी । न चाहते हुए भी मैंने उन्हें प्रणाम किया — इच्छा न होने पर भी मैंने उनके पैर छुए ।

सिर पर से खिसकती साड़ी को मस्तक पर खींचती हुई वे बोली— “इस समय तो मैं कहीं आ-जा नहीं सकती । लेकिन निश्चिन्त होते ही मैं मौसी के पास आऊँगी । तभी तुम्हारी शादी मैं कहीं-न-कहीं तै कर दूँगी । जाओ, खुश रहो ।”

गाड़ी चली । दिल्ली छूट रही है दिल्ली के प्राण । ... मधू मैं तुम्हारा भाई हूँ और तुमसे मिले बिना चला जा रहा हूँ !—वैशाली, मैं तेरा भाई हूँ । यद्यपि तू मुझसे मिलकर पागल हो उठती ? मगर मैं तेरा भाई जो हूँ, इसीलिये तुझसे मिल नहीं रहा हूँ । मैं नहीं चाहता तू पागल बने । मधू, तू वैशाली के पागलपन से परिचित है । .. ए, टहरो ड्राइवर । यह कौन जा रहा है ? अरे ! यह तो मुझे .. नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता । ऐ... जमना !!! गाड़ी खड़ी हो गयी ।— “कौन हो तुम ? क्यों मेरे टेढ़े-मेढ़े रास्ते में आ खड़े हुए ? हा हा हा हा ! भाईसाहब ! भाईसाहब ! !”

मलिनवसना जमना ! धूल में मिली हुई जमना ! नष्टप्राय उन्मत्त-विद्विप्त जमना ! रेशमी सलवार, कुरता, चुन्नी— लेकिन चिथड़ों में परिणत ! यह सब हो क्या गया ! !

“जमना, तुमको हो क्या गया ?”

कौन सुनेगा ! कौन सुनता है ? किसकी पुकार उस मर्मस्थल तक पहुँच सकती है, जो स्वयं विकृत हो चुका है ! जिसको हमारी आज की सभ्यता ने मद्यपान से, अनियंत्रित अनुचित आकांक्षाओं से, छल-छन्द में

लिपटे विषाक्त भोग से, नाना प्रकार की उत्तेजनात्मक असंगतियों के वाक्-जाल से नष्ट किया है, कुचल-कुचल कर मसला है !

“चलो हटो ! मुझे डाँटने चले हो ! मैंने कब कहा था कि मैं इनकार करती हूँ। तुमने एक बार भी मुझको माँगा था ! ह ह ह ह भाई साहब !”

विवश होकर पुनः गाड़ी में बठना पड़ा। कुछ समझ में नहीं आया। मेरी चेतना मुझे धोखा दे रही है ! मेरा विवेक शून्य हुआ जा रहा है ! छोटी भाभी छूट रही है। पर उनके पचास हजार के ड्राफ्ट से मेरा जेब गरम है। .. मों, तुमने कहा था—“मैं तुम्हें छोटी बहू की रक्षा के लिए भेज रही हूँ। ... गाड़ी इतनी तेज़ मत चलाओ ड्राइवर कि कोई दुर्घटना हो जाय। मैं दुर्घटनाओं से यो ही कौन कम घिरा हुआ हूँ !” क्या लालाजी ने कोई ऐसा रुदम रक्खा है, जिसका यह दुष्परिणाम हुआ है ? यह राय चन्द्रनाथ के तिरस्कार का फल है—या मुरली बाबू का कोई प्रयोग ? क्योंकि ऐसा आदमी क्या नहीं कर सकता ? कहीं कोई रकम मारकर उसने उसे कुछ ऐसा खिला-पिला तो नहीं दिया ! क्योंकि पापी मस्तिष्क सब कुछ कर सकता है। .. सिर में दर्द है। खाना तो दोपहर ही खाया था। उसके बाद चाय चलती रही, छोटीभाभी के साथ। ... मगर यह क्या बात है कि अब चाय भी बड़ीभाभी अपने सामने बल्कि प्रायः स्वयं बनाकर भेजती है ? क्या उनको छोटीभाभी और दासी आदि पर विश्वास नहीं रह गया ? और अबसर पाते ही अब भी वे छोटीभाभी को वापस भेजने को क्यों तत्पर हो गयी ! भगवान जाने क्या होनहार है ! .. उस दिन लालाजी उस रेस्तराँ में मुझसे जो कुछ छिपा रहे थे, उसी का यह परिणाम जमना की इस दुर्गति के रूप में तो नहीं हुआ है ? .. लेकिन यह मैंने क्या किया कि जमना को छोड़ दिया ! उसे गाड़ी पर बैठाकर पागलखाने में तो कर ही देना चाहिये था। लालाजी की लाइली बेटी है वह ! ... ए ड्राइवर ! गाड़ी रोकना। मैं आजकल ग़लती बहुत कर रहा हूँ। वहीं चलो, जहाँ वह पगली मिली थी। वह हमारे एक आदरणीय मित्र की लड़की है। उसे ठिकाने

लगाना ही होगा मुझे । चाहे इसके लिए मुझे रात की यह गाड़ी छोड़ भले ही देनी पड़े ।

“मगर अब वह मिलेगी भी बाबूजी !”

“खोजने से मिल सकती है ड्राइवर ।”

हम चले जा रहे हैं—चले जा रहे हैं । क्योंकि हम किसी की खोज कर रहे हैं । हम खोजते रहते हैं लक्ष्मी को, धन को, खोये हुए मन को, बिछड़े हुए प्राण को, छूटे साथी को, बहन और बराती को । दूल्हा को, दुलहिन को ।... ठहरो, यह भीड़ कैसी लगी है यहाँ ?... ओः ! जादूगर का खेल हो रहा है ! अच्छा चलो । बाहरे जादूगर, तेरे सब खेल अनोखे हैं । डाल-डाल पत्ती-पत्ती में अनोखापन है !... देखो ज़रा सम्हलकर गाड़ी निकालना । कोई बेचारा... बहुत अच्छा ड्राइव करते हो ड्राइवर, इस कुत्ते को कितना बाल-बाल बचाया है तुमने ।... लेकिन हम ज़मना को इस दुर्गति से नहीं बचा पाये । मुरलोबाबू जैसे सोंपों के विषैले दांतों से हम उसकी रक्षा नहीं कर सके; क्योंकि लालाजी ने ज़मना की शादी में सम्पत्ति की ओर अधिक देखा—यह नहीं देखा कि राय चन्द्रनाथ की सम्यक्ता कैसी है ?... ठहरो ड्राइवर, इन मँगतों में कहीं ज़मना तो नहीं बैठी है ?”

“बाबूजी मैंने तो कहा था, अब उसका मिलना कठिन है । यहीं तो वह मिली थी । दूसरे, हमको गाड़ी समय पर पहुँचानी है । इधर उस पगली का पता लगाना भी बहुत कठिन है । आप नहीं जानते बाबूजी, इन लोगों का कुछ ठीक नहीं रहता । फिर अगर उसको तकलीफ भोगनी न होती, तो आप उसको उसी वक्त छोड़ ही क्यों देते !”

“यह तुम ठीक कहते हो ड्राइवर । मैंने अनेक बार यह अनुभव किया है कि मनुष्य का विवेक भी उसी समय चेतन रहता है, जब भगवान की इच्छा होती है । ऐसा न होता, तो आज संसार की उन्नति का इतिहास कुछ दूसरा होता । अच्छा, तो तुमको जाना है ।... ठहरो, हमको इसी जगह उतार दो । मगर किसी से यह मत कहना कि हमने गाड़ी छोड़ दी है; पर अभी दिल्ली नहीं छोड़ी । ये लो दो रुपये, पान खाने को” ।

अरे यह तो वही काफे है, जहाँ मेरे पूज्य पिताजी निवास करते हैं !

उपेन्द्र पहले मिला । हाथ जोड़कर मुझे नमस्ते किया । नौकर को भेजकर मेरा बेडिग, ट्रंक और सूटकेस गाड़ी से निकलवाकर अन्दर रखवाया ।

मैंने पूछा—“पिताजी हैं घर पर ?”

वह बोला—“हैं तो । मगर इस वक्त मिलना न होगा ।”

मेरे मुँह से निकल गया—“और चाची क्या कर रही हैं ?”

“वे भी उन्ही के पास बैठी है ।” बहुत संयत वाणी में उसने कह दिया—“मगर इससे क्या ? आपको मैं अभी काफ़ी, नाश्ता, भोजन... भोजन आज तो करेंगे न ?”

मैंने अभी सायकाल का भोजन किया नहीं था । इसलिए मुझे कहना पड़ा—“हाँ, भोजन आज मैं यही करूँगा । मगर नाश्ता-वाश्ता कुछ नहीं । समझे ! अच्छा, ऐसा करो, ऐस्प्रो की गोलियाँ मँगवालो चार । मेरे सर में ज़रा दर्द है । ये लो पैसे ।”

“पैसे आपके आशीर्वाद से मेरे जेब में भी रहते हैं । एरी एलन, ऐस्प्रो की गोलियाँ ला दो ।” वह एलन के पास जाकर बोला, जो उस समय पावरोटीपर चाकू चला रही थी । इसके बाद उपेन्द्र ने मेरे पास आकर कहा—“उस दिन जब आप फ़ादर और मदर से बिगड़कर बिना काफ़ी का एक घूँट पिये यहाँ से चले गये थे, तब फ़ादर बहुत रोये थे ।”

“फ़ादर बहुत रोये थे ! अच्छा !” कहकर मैं सोचने लगा—“मैं सोचता था, यह मेरी ज़्यादती थी उनके साथ । पर अब यह सिद्ध हो गया कि हर एक कोमल भावना के पीछे कठोरता का हाथ अवश्य रहता है । ✓

हम कमरे के अन्दर बैठे हों । दरवाज़े पर चिक पड़ी हुई हो । कमरे के अन्दर छाया हो, जिसे हम थोड़ा अँधेरा भी कह सकते हैं । बाहर तो दिन का प्रकाश होगा । कमरे के अन्दर से सड़क पर चलने फिरनेवाले आदमियोंको देखकर हम उन्हें पहचान लेंगे । पर वे आदमी हमको नहीं देख पायेंगे ।

अर्थात् प्रकाश छाया का भेद नहीं पा सकता; परन्तु छाया प्रकाश का सारा भेद जान लेती है। अर्थात् अन्धकार तो प्रकाश को पूर्ण रूप से देख पाता है—पर प्रकाश उसके हृदय-देश को देख नहीं पाता।

मैंने पूछा—“और चाची क्या कहती थी?”

“वे क्या कहेगी!” उपेन्द्र कहने लगा—“आप तो जानते हैं, वे मेरी माँ हैं!” कहते-कहते उपेन्द्र ने अपना सिर नीचा कर लिया।

“देखो उपेन्द्र।”

“हाँ ददा।”

“मालूम है, तुम्हारा असली घर कहाँ है?”

“इलाहाबाद सुना करता हूँ।”

“वहाँ तुम्हारा कौन-कौन रहता है, यह भी मालूम है?”

“सुनता हूँ बहन है एक, जो विधवा है। और सुनता हूँ एक भाई भी है आपके सिवा।”

“लेकिन तुम्हारे एक माँ भी और है उपेन्द्र। ऐसी माँ कि अगर एक बार देख भर ले, तो तुम उसके वरद हस्त का प्यार पाकर धन्य हो जाओगे।”

“अच्छा! तो वे मुझे मेरी इन माँ से भी अधिक प्यार करेंगी! .. लेकिन माँ मुझे वहाँ ले ही क्यों जाने लगी! वे तो सोचा करती हैं कि अब उनको इलाहाबाद कभी जाना ही नहीं है।”

“कदाचित् तुम नहीं जानते उपेन्द्र कि एक माताजी ही नहीं, हमारे पूज्य पिताजी भी ऐसा सोचने के लिए विवश है। पर उनका यह सोचना तुम्हारे प्रकृत अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता छोटे भैया। तुमको मालूम होना चाहिये कि इलाहाबाद में तुम्हारा घर ही नहीं, पचीस-तीस हजार रुपये वार्षिक आय की ज़मींदारी भी है।”

“लेकिन ददा, इन लोगों का कहना तो यह है कि उस जायदाद में मुझे एक पाई भर भी हिस्सा नहीं मिल सकता।”

“न्याय-विधान से नहीं मिल सकता। यह बात सही है। लेकिन



उनके आगे मैं आँसुओं के रूप में अपना आत्म-रस उँडेल रहा हूँ । मैंने उनको कष्ट दिया है, मैंने उनका जी दुखाया है, यही सोचकर मैं अपनी आत्म-वेदना के उद्दाम वेग को किसी तरह रोक नहीं सका । उस अवस्था में मेरे मुँह से निकल गया—“मैं उस दिन अनायास आ गया था । यह तो मैं जानता था कि आप इसी संसार में हैं । पर भेट आप से नहीं हो रही थी । भगवान ने कुछ ऐसा सयोग उपस्थित कर दिया कि भेंट भी हो गयी । मेरे अन्दर ज्वालामुखी के जितने विस्फोट इकट्ठे हो रहे थे, आँधियों के जितने हाहाकार पल रहे थे, बिना किसी भय और संकोच के मैंने उन्हें आपके समक्ष रख दिया । आपने तो मुझे बुलाया नहीं था, फिर भी मैं आ गया था । आपने मुझे बोलने से मना कर दिया; फिर भी मैं बोला । मैं केवल यही देखना चाहता था कि आपके ऊपर मेरे कथन की कैसी प्रतिक्रिया होती है । उससे मुझे इस बात के अनुमान करने का अवसर मिला कि आदर्श के प्रति आपके अन्दर कितनी आस्था है । हम गाली उसी समय देते हैं, जब हमारे पास सत्याधारो का कोई उपयुक्त तर्क रह नहीं जाता और हमारा तूणीर रिक्त हो जाता है । आपने मुझे अपमानित किया, तभी मैं समझ गया कि मैंने आपके अहम् को विचलित कर दिया है ! पर आपने सोचा भी न होगा कि पुत्र का धर्म-पालन उस समय मेरा उद्देश्य ही नहीं था; समाज के साधारण मानव की-सी एक आलोचक दृष्टि-मात्र मैं आपके समक्ष रखना चाहता था । इस परीक्षा में किसी स्पष्ट दृष्टिकोण की अपेक्षा केवल अमान पाकर मैंने समझ लिया, समाज का मुँह बन्द कर सकने योग्य कोई बात आपके पास नहीं है । पर अब मैं सोचता हूँ कि यही—बस इतना ही—जान लेना और तब आपके भावी जीवन-मार्ग के सम्बन्ध में कुछ तै करने की बात सोचना मेरे उस व्यक्तित्व का ही धर्म है, जिसे आपके पुत्र होने का गौरव प्राप्त है । इसीलिए मैं उपेन्द्र को समझा रहा था कि पिता का तिरस्कार भी प्रकारान्तर से उसका ग्यार ही होता है ।”

उस क्षण पिताजी की आँखों में आँसू आ गये थे और चाची आँखों

के आँसू पोंछने और स्वस्थ होने के लिये दूसरे कमरे में चली गयी थी। तभी मुसकराते हुए आँसू गिराते-गिराते पिताजी बोले—“आज मुझे वे दिन याद आरहे हैं राजेन्द्र, जब ऊधम मचाने पर मेरे पास आने के बजाय तुम अपनी माँ की गोदी में जा छिपते थे !”

“पर इस अवसर पर इतना और बतला देना आवश्यक हो गया है कि शातव्य-राशि के इस द्वार तक पहुँचना मेरे लिए मँहगा बहुत पड़ा है। आपही सोचें पिताजी कि जब पुत्र को युगों के बाद पिता का दर्शन होता है; युगों के बाद पिता को अपना प्यारा पुत्र ऐसे सुकुमार क्षणों में मिलता है, तब सलोने प्यार के पावन प्रयोगों का मुँह बन्द कर मैंने आपके प्रति अपनी चिरसंचित श्रद्धा के उदास म्लान अश्रु-मुख की परवा नहीं की। वृद्धावस्था के संबल रूप में मानसिक स्वास्थ्य-दान की मागलिक घड़ियों में शांति-कलश उपस्थित करने के स्थान पर क्रोध और रोष की जो ज्वलनशील धूम्र-शिखाएँ मैंने उपस्थित की, उनसे कितनी पीड़ा और वेदना मुझे हुई होगी ! हृदय पर होनेवाले दारुण मर्माघात के चीत्कार को आँसुओं के बूँद तो अपनी सिसकियों से प्रकट कर देते हैं; किन्तु कर्म-मार्ग में अकस्मात् सम्मुख आ-पड़नेवाले जो कर्तव्य हमारी श्रद्धा, पूजा, अर्चना के पवित्र अनुष्ठान का भी गतिरोध हमसे बरबस करा ही लेते हैं, उनका प्रतिदानजन्य मूल्याकन अन्तर्यामी के सिवा और कौन कर सकता है !”

“आज मुझे वह दिन याद आरहा है राजेन्द्र, जब तुम खेल में पड़कर पाठ न याद करने पर डाँटे जाते, तब मेरे पास आते हुए अकड़कर बोल उठते थे—“जब तक पाठ याद न कर लूँगा, तब तक मैं खाना न खाऊँगा !”

मैं बात करता जाता हूँ और आँसू पीता जाता हूँ। केवल इसलिये कि रुदन मेरा स्वभाव नहीं है। मैं उपवास कर सकता हूँ, लेकिन किसी बन्धु के आगे हाथ नहीं फैला सकता ! मेरी आँखें भर आ सकती हैं, किन्तु मेरा सत्य कथन रुक नहीं सकता। मेरा उद्देश्य पूर्ण होने में देर हो सकती है, किन्तु देर हो जाने के डर से मैं अपने उद्देश्य की रूप-रेखा में अन्तर लाना स्वीकार नहीं कर सकता।

इसी समय एलन ट्रे में काफी ले आयी। साथ में टोस्ट और समोसे।

मैंने कह दिया—“मुझे इस समय एक बहुत आवश्यक काम करना है पिताजी।”

वे बोले—“पहले काफ़ी पी लो और साथ में कुछ खा भी लो, तब काम की बात सोचना।”

चाची कहने लगी—“उपेन्द्र कहता है, होली मैं अबकी बार इलाहाबाद में मनाऊँगा।”

मेरे मुँह से निकल गया—“मैं उसे साथ ले जाना चाहता हूँ चाची।”

कप में काफी ढालती हुई चाची बोली—“तू मुझे अब भी चाची ही कहता रहेगा राजेन्द्र। पता है, तेरे मुँह से माँ सुनने के लिए मैं कब से अधीर बैठी हूँ।”

मैं स्पष्ट देख रहा था कि इस कथन के साथ सचमुच छोटी माँ का हृदय उमड़ उठा है। फिर भी मैं यही कहने जा रहा था कि तुम्हें माँ कहते हुए डर लगता है चाची। किन्तु फिर यही सोचकर रुक गया कि उनकी भावना को ठेस पहुँचाना मेरा धर्म नहीं। तब मैंने कह दिया—“उस दिन भी जब मैं छोटीभाभी के हार की लड़ी मुधरवाने के लिए सोने के पास गया था, तब तुम्हारा असीम प्यार देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था। पर उस समय मैं यह नहीं जानता था कि तुम्हारा इस भाँति छोटी माँ बनना ही मेरे प्रति होनेवाले प्यार का आधार है। लेकिन अपनी छोटी माँ बनाने में यदि मैं तुम्हें कभी कुछ कष्ट दूँ, तो बच्चा समझकर तुम मुझे क्षमा तो कर दोगी न?”

“ऐसी बात मत कहो राजेन्द्र बेटा। माँ को कष्ट देना तुम्हारे स्वभाव का धर्म कभी हो नहीं सकता।”

“सो तो ठीक है छोटी माँ। पर जैसे उपेन्द्र मेरा भाई है, वैसे ही लाली मेरी बहन होती है। उसे अब तुमको अपने साथ रखना ही होगा।

“पर वह तो……।”

“इलाहाबाद में नहीं है छोटी माँ। वह आजकल इसी दिल्ली में है, भाईसाहब के पास।”

“भाईसाहब ? कौन भाईसाहब ?” शंका, आश्चर्य और भय की मुद्रा में चाची बोली ।

पिताजी बोल उठे—‘एक बंशीधर है, राजेन्द्र का मौसेरा भाई । अच्छा पैसेवाला है । मगर...।’

“उसको आज ही वहाँ से ले आना है, जैसे भी हो वैसे । और मुझे तुरन्त इलाहाबाद चला जाना है । पर उससे पहले एक और काम करना है उपेन्द्र । तुम्हें मेरे साथ चलना होगा अभी ।”

काफ़ी का कप खाली करते हुए मैंने जब ऐसा कह दिया, तो पिताजी बोले—“अब इतनी रात को कहाँ जाओगे ! कल चले जाना ।”

“आज के काम को कल पर छोड़ देने में मुझे नीद नहीं आती पिताजी । आपको मालूम होगा, लाला साँवरे की एक लड़की थी जमना । वह पागल हो गयी है । उसी को खोजना है । कहीं-न-कहीं सड़क पर भिल ही जायगी । मुझे अभी रास्ते में मिली थी, जब मैं स्टेशन जा रहा था । पर उस समय मैं इतना आत्मगत था कि मुझे अपने कर्त्तव्य का ध्यान ही न रहा । लालाजी को अभी फ़ोन पर बुलाना है और इसी सम्बन्ध में आवश्यक बातें करनी हैं ।”

बिना किसी अन्य आपत्ति के पिताजी बोले—“फ़ोन तो अभी कर लो । उपेन्द्र, इनको मिस्टर पिल्ले के फ़ोन पर ले जाओ । पर जमना का पता कल लगाओ, तो कैसा हो । सरदी के दिन टहरे । रात को कहाँ भटकते फ़िरोगे ।”

“पिताजी, आपतो जानते हैं—कर्त्तव्य दुर्घटना की भाँति समय-कुसमय का विचार नहीं करता । मुझे जाना ही होगा ।”

“लेकिन तुम दोनों एक पगली को पकड़कर लाओगे कैसे ! फिर उसका विश्वास क्या ? कौन-सा ऐसा दुष्कर्म है, जिसको ये पागल नहीं कर सकते !”

तभी चाची बोल उठी—“ना राजेन्द्र, इस तरह खोजना ठीक नहीं । मेरी राय में तो जब लालाजी आ जायँ, तभी जाना ठीक होगा । क्योंकि

मान लो वह मिल भी गयी, तो उसको इस काफे में तो रक्खा जा सकेगा नहीं ।”

“हॉ, यह भी एक सवाल है, जिसकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया था ।” कहता हुआ मैं कुर्सी से उठा और सोचने लगा—मनुष्य के प्रत्येक निश्चय के पीछे प्रकृति का विरोधी कार्य चला करता है । पर जमना मिल जाय, तो हम उसे मधू के यहाँ तो रख ही सकते हैं । फिर ध्यान आया, लेकिन लाली को अब कैसे यहाँ लाया जाय । ऐसा जान पड़ता है, चारों ओर नैतिकपतन की आग लगी हुई है और मैं अपने आत्मीय स्वजनों को उससे बचाता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूँ ।...पर उपेन्द्र के साथ जब मैं पड़ोस के मिस्टर पिल्ले के यहाँ फ़ोन करने जा रहा था, तभी काफे के आगे एक गाड़ी खड़ी थी और उससे बड़ीभाभी लाली को साथ लिये उतर रही थी !

...

...

...

इधर कई दिनों से कुछ विचित्र मनोदशा चल रही है । स्पष्ट जान पड़ता है कि मैं नहीं, मेरा स्थान भर चल रहा है । अर्थात् मैं स्वयं तो नहीं चल रहा हूँ, पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर मैं पहुँच अवश्य जाता हूँ । यद्यपि मुझमें कोई गति नहीं है, किन्तु गति के साथ लटका या जुटा हुआ मैं अवश्य गतिमय हूँ । प्रायः लोग अपनी गाड़ी के पीछे एक खिलौना लटका लेते हैं । गति में आकर जब गाड़ी उछलती है, तब वह खिलौना भी उछलने लगता है । जब गाड़ी दौड़ती है, तब उसके अन्दर लटका हुआ वह खिलौना भी यत्र-तत्र-सर्वत्र चक्कर लगा आता है ।

आजकल बिल्कुल यही स्थिति मेरी भी हो गयी है । माँ ने कह दिया —“तुम्हें दिल्ली जाना है ।” और मैं दिल्ली चला आया । यहाँ आने पर दो-तीन दिन बाद छोटी भाभी ने कह दिया—“तुमको इलाहाबाद आज ही लौट जाना है ।” और फलतः मैं इलाहाबाद लौटा जा रहा था । पर बीच में मिल गयी यह जमना । फिर इसी कारण मुझे यहाँ रुक जाना पड़ा । यद्यपि दुनियाँ को इस बात की चिन्ता नहीं है कि लोग

पागल क्यों हो जाते हैं; किन्तु मुझे तो यह सोचना ही पड़ेगा कि जमना क्यों पागल हुई ! और हो ही गयी, तो अब वह कैसे स्वस्थ हो सकती है !

मैने जब फोन पर लालाजी से कहा—“जमना पागल हो गयी। वह मुझे मिली भी थी। पर जब तक मैं अपनी साधारण चेतना में लौटूँ, तब तक वह स्थानान्तरित हो गयी। खोजने पर वह मिल तो जायगी ही। उसे तुरन्त या तो पागलखाने में दाखिल करवा देना है, या उसका घर पर ही इलाज कराना है। पर यह तो तभी तै होगा, जब आप आयेंगे।”

मैने एक सॉस में लालाजी से यह सब कह दिया। मैं फोन पर उनकी प्रतिक्रिया नहीं सुनना चाहता था। मैं तो केवल उनका निश्चित कार्यक्रम जानना चाहता था। मैं इसीलिये उनका उत्तर सुनने को अधीर था। पर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने एक क्षण रुके बिना जवाब दे दिया—“चलो यह बहुत अच्छा हुआ राजेन्द्र। पतित होकर कुटुम्ब की सारी प्रतिष्ठा खो देने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि जमना पागल हो जाय, या मर जाय !”

तभी मैं सोचने लगा, यह भी तो हो सकता है कि लालाजी ऐसा समाचार सुनने के लिये पहले से तैयार बैठे हों। जो हिंसा पर विश्वास करते हैं, उनसे सब हो सकता है !

लाली को मैने ज्यों ही एकान्त में बुलाया, त्यों ही मुझे सामने आता देखकर वह झट चेस्टर का बटन लगाकर आश्चर्य से बोली—“भैया तुम इलाहाबाद गये नहीं !”

और बड़ीभाभी बोली—“हमारे साथ यह छल-विद्या कब से सीख ली लल्ला ?”

तब अत्यन्त संकोच से दबकर मैंने कह दिया—“छल-विद्या मैं क्या करूँगा भाभी। और करनी भी होगी, तो उसके लिए तुम न होगी कभी। विश्वास रखो। अकस्मात् एक घटना के जाल में पड़ जाने के कारण मुझे यहाँ रुक जाना पड़ा है।

तब मैने जमना को खोजने की बात उन्हें विस्तार-पूर्वक समझा दी।

सोचता हूँ, मुझे दुःख इस बात का नहीं है कि जमना क्यों पागल हो गयी। क्योंकि यही या इसी तरह की दुर्गति उसके लिए निश्चित थी। कदाचित् इसीलिए मैं यह भूल ही गया कि लालाजी की लड़की होने के कारण उसके साथ मेरा निजी कर्तव्य हो जाता है कि मैं तत्काल उसके नीरोग होने की कोई उचित व्यवस्था करूँ। अधिक दुःख तो मुझे इस बात का है कि आज भी व्यक्ति का दुःख ही मेरे लिए अधिक निकट बना है। जमना की इस दुर्दशा पर मैं ध्यान इसीलिए तो दे रहा हूँ कि वह लालाजी की लड़की है। पर यदि वह किसी अन्य व्यक्ति की लड़की होती, तो मैं अपनी यह यात्रा कदापि स्थगित करता।...मैं नहीं जानता, वह कौन सा दिन होगा, जब जमना की स्थिति में मिलनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए मेरा मन-प्राण ऐसा ही व्याकुल हो उठेगा !

फिर मैंने लाली की ओर ध्यान देते हुए कहा—“अरे लाली, चाची भी तो यही है !”

“कहाँ भैया ?”

“वे ही इस काफ़े की मलका हैं। और मेरे पिताजी भी सदेह-सप्राण उन्हीं के साथ हैं।”

“तुम झूठ तो कभी बोलते नहीं और मज़ाक मुझसे कर नहीं सकते। तब सचमुच . . ?”

“चलो न, मैं उनसे तुमको अभी मिलाये देता हूँ।”

बड़ी भाभी से मैंने कह दिया—“इसको ऊपर भेजकर मैं अभी आया।”

अब आगे-आगे मैं, और पीछे लाली। हँसती-सी लाली कह रही थी—“यह तो मैं नहीं जानती थी कि वे चाचाजी के साथ रहती हैं। पर उनकी इसी तरह की किसी न-किसी रचना की बात हम लोग सोचते ज़रूर रहते थे। लेकिन भाग्य की बात तो देखो भैया कि उन्हें चाचाजी मिल गये। कौन जानता था कि उनकी मृत्यु भी इस रचना की भूमिका बन जायगी !”

बड़ी भाभी के आ जाने से बड़ा काम बन गया। लाली अपनी माँ के पास रह गयी और मैं बड़ी भाभी के साथ चला आया। किन्तु जब

बँगले के अन्दर न जाकर मैंने भाभी से कह दिया—“जमना को खोजना ही पड़ेगा बड़ी भाभी । इसलिये मुझे गाड़ी देनी होगी, एक-आध घण्टे के लिये ।”

वे सड़क पर गाड़ी से उतरकर जब अन्दर जाने लगीं तब मैंने उनसे यह भी कह दिया—“छोटीभाभी को मेरा यह भेद न बतलाइयेगा ।”

इस पर वे हँस पड़ी । बोली—“रानी को ड्राइवर पहले ही सब कुछ बतला चुका है ।”

अब मैं लज्जित हो उठा । मेरे मन में आया—क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं यदि कोई बात छिपाना भी चाहूँ, तो छिपा नहीं सकता ?

—अच्छा, तो यह बात है ! हर बात का मूल्य होता है । इस बात को छिपाने के लिए भी मुझे ड्राइवर को दस-पॉच रुपये देने चाहिये थे ।

तो मनुष्य का विश्वास आज कोई वस्तु नहीं रह गयी । आज उसको भी इस पैसे ने खरीद लिया है । जो भी हो, मैं छोटीभाभी से बिना मिले जमना को खोजने निकल पड़ा । ... पर मैं भी खूब हूँ । संसार ज्ञानी को खोजता है; पर मैं आजकल एक पगली को खोजता हूँ !

सोचता हूँ, पता नहीं जमना कहाँ मिलेगी ! यह भी हो सकता है कि न मिले । पर वह तो ओडियन के पास ही मिल गयी । फुटपाथ पर ही एक पत्थर पर बैठी गाना गा रही थी—“मर जायँ तो अच्छा हो !” नहाने का अवसर न मिलने के कारण ग्रीवा पर मैल की रेखा-सी जम गयी थी । उनसे गंदे हो रहे रेशमी कपड़ों में कहीं-कहीं चिथड़े जो लटक रहे थे । फिर भी उसकी देह की गठन और उसका सौन्दर्य-मार्दव वर्ण के निखार के साथ-साथ स्पष्ट झलकता था । तैलसिक्त केशों में मिट्टी इस क्रूर भर गयी थी कि कोई-कोई लट जटा की तरह लटक रही थी । कभी गायन की कड़ी पूरी करती-करती चुपचाप गाना बन्दकर वह पास से गुज़रने वाले व्यक्तियों को धूर-धूरकर देखने लगती और कभी-कभी तो किसी व्यक्ति के पीछे भी थोड़ी दूर चल पड़ती ।



ऐसा ही एक व्यक्ति जब आगे से निकल गया, तो वह उसको ताकती खड़ी रह गयी। मेरे मन में आया—क्या यह किसी को खोज रही है ? क्या जीवन-पथ में चलते-चलते किसी ने इसका साथ छोड़ दिया है ? फिर राय चन्द्रनाथ का स्मरण आ गया। उनके रहते हुए यह नारी अन्य किसी व्यक्ति की ओर दृष्टि ही क्यों डालती है ? फिर उनका यह कथन कि मैं जहर खा सकता हूँ, पर यह नहीं बता सकता कि मेरे इस जगह नासूर है ! क्या इसका यह स्पष्ट अभिप्राय नहीं कि वे जमना की यौन-लिंसा शान्त करने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं !

निकट जाकर मैंने पूछा—“मुझे पहचानती हो जमना ?” प्रश्न तो मैंने कर दिया, पर मुझे स्वयं इस प्रश्न में निहित एक भोली लज्जा ने ग्रहण कर लिया। क्या इस प्रश्न के द्वारा मैं उसके उस छूटे हुए साथी के बदले में अपने आपको नहीं पेश कर रहा हूँ ?

जमना हँसी, उसके अधर मन्द प्रकाश में भी हिलते हुए दिखलायी पड़े। बोली—“कौन किसको पहचानता है ? आप मुझे पहचानते हैं ? फिर, जब बिना जान-पहचान के काम चल जाता है, तब किसी को पहचानने की ज़रूरत ? अच्छा जाने दीजिये। कहिये, आप क्या चाहते हैं ? किस तरह चाहते हैं ? भला चाहते हैं कि बुरा चाहते हैं ? भीतर से चाहते हैं कि बाहर से ? सबकी देख में चाहते हैं कि चुपके-से चाहते हैं ? तन चाहते हैं कि मन चाहते हैं ? फूल चाहते हैं कि चमन चाहते हैं ? शरबत चाहते हैं कि लेमन चाहते हैं ? रात चाहते कि दिन चाहते हैं ? फालसा चाहते कि जामुन चाहते हैं ? चूरन चाहते कि चटनी चाहते हैं ? चाय चाहते कि काफी चाहते हैं ? ठण्डा चाहते कि गरम चाहते हैं ? चना चाहते कि चाशनी चाहते हैं - ? पिस्ता चाहते कि बादाम चाहते हैं ? कैथा चाहते कि सेब चाहते हैं ? मुसम्मी चाहते कि नाशपाती चाहते हैं ? संतरा चाहते कि खरबूज़ा चाहते हैं ? ख़ास चाहते कि आम चाहते हैं ? अकेला चाहते कि मेला चाहते हैं ? अरे कुछ तो बोलिये कि आप क्या चाहते हैं !”

कुछ लोग इधर-उधर से घेरकर खड़े हो गये हैं। जमना ने प्रश्नों की झड़ी लगा रखी है। इन प्रश्नों का मेरे पास क्या उत्तर है, मैं नहीं जानता। लेकिन मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि कवि की नाना कल्पनाएँ भी इस प्रकार के प्रलाप से कुछ निकटता रक्खा करती हैं। कही ऐसा तो नहीं है कि जब कला अपनी उच्चतम सीमा को प्राप्त कर लेती है, तब वह भी इसी प्रकार निरावरण हो जाती है !

लेकिन यह प्रश्न भी खूब रहा कि मैं क्या चाहता हूँ ! यों चाहने को तो मैं बहुत कुछ चाहता हूँ। मेरे मधुर जीवन की वासंती कलियों अभी ऐसी खिली ही कहाँ है ? मेरे जीवन-तरु की डालियों पर बैठ-बैठकर प्राण-पक्षियों ने ऐसे गान ही कहाँ गाये हैं; जिनसे मेरा मधुवन एक बार चहक उठता !... फिर मुझे याद आ गयी छोटीभाभी की यह बात कि पागलपन हमारे कर्म-भोग की चरम परिणति है। फिर याद आ गया उनके पचास हजार रुपये का वह ड्राफ्ट, जो अब तक मेरे जेब में पड़ा है। जान पड़ा, जब से मैंने उनकी यह निधि स्वीकार की है, तब से मैं कुछ हीन-सा हो गया हूँ। कुछ ऐसा देख पड़ता है, जैसे मैं नाना प्रकार के प्रलोभनों के जाल में पड़ गया हूँ। संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए मेरे मन में स्थान हो गया है। अच्छा, तब क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं किसी एक का नहीं हूँ ? उसका भी नहीं हूँ, जिसकी यह निधि मैंने स्वीकार की है !... पर यह तो स्पष्ट प्रवृत्ति है। जब मैं किसी का कुछ स्वीकार करता हूँ, तब मन-ही-मन क्या यह नहीं स्वीकार करता कि मैं उसके मन का सन्तोष हूँ, उसके हृदय का अटूट विश्वास हूँ और समय आने पर मैं भी उसके लिए कुछ उत्सर्ग कर सकता हूँ ? तब छोटीभाभी की इस निधि के स्वीकार करने का भी स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं उनका हो गया हूँ। मैंने अपना सब कुछ खो दिया है। अब मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं रह गयी, जिसके बल पर मैं यह कह सकूँ कि मैं निर्लित हूँ, मैं निर्विकार हूँ।

अब याद आते हैं वे क्षण, जब मैंने अपनी लिप्सा के अनन्त पथ पर चुपचाप एकान्त में खड़े होकर नव-नव अधर-पल्लवों के विकास स्वीकार

किये हैं, तब यही तो अनुभव किया है कि मेरा सब कुछ खो गया है, मैं एकदम से रिक्तमन हो गया हूँ !

सोचता हूँ, मन की दुनियाँ के ये खेल कितने निराले हैं ! स्वीकार करो या न करो, मुँह से कुछ कहो चाहे न कहो, पर यदि तुम किसी का कोई भी वस्तु लेना स्वीकार करते हो, तो उसमें यह अभिप्राय अन्तर्निहित होते हुए भी बिल्कुल स्पष्ट है कि समय आने पर तुमको उसका अभीष्ट बनना ही होगा, लेने का अर्थ यहाँ देना और पाने का अर्थ यहाँ खोना है ।

अरे ! मैं कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचा । रात भीग रही है । सड़क पर आने-जानेवालों की भीड़ छूट गयी है । कुछ थोड़े आदमी यत्र-तत्र दिख-लायी पड़ते हैं । तागा-टैक्सीवाला पुकार रहा है—‘फौवारे को ।’

लेकिन इस जमना को मैं क्या जवाब दूँ, जो चिह्ना-चिह्नाकर कह रही है—“बोलिये, आप क्या चाहते हैं ?” तब अत्यन्त भारी और बोझिल हो रहे मन को परिस्थित के अनुकूल बनाते हुए मैंने कह दिया—“मैं तुम्हारा चेतन रूप चाहता हूँ जमना । इस वक्त इसके सिवा मेरे पास कोई उत्तर नहीं है । देखता हूँ, तुम्हारी तबियत बहुत खराब है । तुम्हारे प्राणों में आग लग गयी है । तुम्हारा सारा हृदय-देश जल उठा है ।” इतने में यकायक मेरी दृष्टि जमना की सलवार पर पड़े रक्त के छींटों पर जा पड़ी । फिर यह भी प्रतीत हुआ कि ये रक्त-चिह्न तो कई दिन के हैं शायद । पर क्या यह सोच लेने मात्र से संतोष हो जाता है कि वे चिह्न वास्तव में कई दिन के हैं ! और क्या यह मान लेने से भी समस्या हल हो जाती है कि हो सकता है ये चिह्न उसकी देह-प्रकृति के ही परिचायक हों ?

इसी समय पास से निकलते हुए एक सज्जन बोल उठे—“किसी भले घर की लड़की है बेचारी ।”

“हाँ भई, भले घर की लड़कियों का अब यही हाल हो रहा है !” जब दूसरे ने उत्तर दे दिया, तब मैं सोचने लगा—“वे कैसे भले घर हैं जो अपनी लड़कियाँ पागल हो जाने देते हैं !”

और इसी समय मेरे मुँह से निकल गया—“हमारे साथ चलो जमना । हम तुम्हारी दवा करवायेगे और तब तुम्हारी तबियत बिल्कुल सुधर जायगी ।”

मेरा इतना कहना था कि जमना ने मेरी तरफ घूरकर कुछ इस तरह देखा कि मैं सहम गया । ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके रूप में मेरी समस्त आत्म-गरिमा ही क्षत-विक्षत होकर मेरा परीक्षण कर रही है ! वह मेरे अन्दर प्रविष्ट होकर मुझे पूरी तरह पढ़ लेना चाहती है ।

इतने में जमना फिर हँसी । बोली—“हूँ ! . तुम हो कौन ? तुम्हारा विश्वास क्या ? आज की दुनियाँ में विश्वास है कहाँ ? तुम मुझे अपना विश्वास दे सकते हो ? जिस-जिसको तुमने विश्वास दिया, उसका फिर क्या परिणाम हुआ ? बड़े देनेवाले विश्वास के । तुम मुझे अपने साथ ले जाना चाहते हो, जब मैं यह जानती हूँ कि साथ चलते-चलते तुम मुझे ऐसी जगह छोड़ दोगे, जहाँ मैं अन्धे कुएँ में जा गिरूँगी ! तुमने अन्धा कुआँ देखा है ? ना भई, मैं तुम्हारे साथ वहाँ नहीं जाऊँगी, जहाँ प्रेम की जगह पाखण्ड है और प्यार के नाम पर धोखा, छल, कपट आक् थू ! तुम मुझे उनके पास ले जाओगे, जो कहेंगे—मैं जूटन हो गयी हूँ ! मुझमें छूत लग गयी है । मैंने पाप किया है ! मैं घृणा—घृणा के योग्य हूँ ! मैंने अपना धर्म खो दिया है । पर वहाँ कौन बतलायेगा कि मुझ पर क्या व्रती है । कौन कहेगा कि मुझ पर डोका डाला गया है—मैं लूटी गई हूँ ! मेरी लूट हुई है । कौन इस बात पर यक़ीन करेगा कि लूट के वक़्त मैं मार डाली गयी थी । मैं होश में नहीं थी—मैं होश में नहीं थी । आप यक़ीन करेंगे ? वह यक़ीन करेगा ? तुम उसको जानते हो, जिसका अच्छा सा नाम है । मगर नाम से तुमसे मतलब ? समझलो—यक्स-वाई-जेड । लेकिन हाय तुम नहीं जानते, मैं क्या थी ! तुम अब भी नहीं जानते, मैं क्या हूँ । मगर मैं इतना जानती हूँ कि मैं क्या हूँ । मैंने अपने को खो दिया, मगर विश्वास कभी नहीं खोया ! क्या तुम मेरा विश्वास खोने आये हो ! कभी मैंने

अपना कुछ नहीं छिपाया । तुम मेरा कलेजा देखोगे ? देखोगे मेरा कलेजा ? यह लो, देखो !”

और बस, इतना कहते ही जमना ने दोनों हाथों के पूरे पंजों को कुरती की दोनों दिशाओं में लगाकर उसे बीच से फाड़ते हुए कह दिया—“देखो ! देखो !”

हे प्रभू, पता नहीं, मुझे ऐसे दृश्य दिखलाने में तेरा क्या प्रयोजन है ? अब मैं कहाँ भाग जाऊँ इस समय ! मैंने तो कभी सोचा नहीं था कि मेरे एक नन्हे-से प्रश्न का यह परिणाम होगा ! क्या अब मैं किसीसे बात भी न करूँ ? क्या मैं उससे भी बात न करूँ, जिससे आज कोई बात करना पसन्द नहीं करता ! क्या मैं अब आँखें बन्द करके चला करूँ ! मैं क्या करूँ—क्या न करूँ ! नयन-हीन को राह दिखा प्रभु !

वह ठठामार कर हँस रही है; यद्यपि मैं नहीं जानता, यह कैसी हँसी है । ये गोल-गोल सुनहले मांसल कन्दुक, जिन पर नखों की खरोच ने रक्तिम रेखाएं बना दी है ! ये नीले-काले चिह्न, जिन्होंने पशु-वृत्तियों का पोषण किया है ! कोई बतलाये मुझे, क्या आज की सन्यता ने इन्हीं दृश्यों के नाम पर तृप्ति की डकार लेना नहीं स्वीकार किया है ?

सर पर एक सफेद साफा बाँधे, ब्राउन गरम कोट और सफेद जूतों का पैट धारण किये एक साहब बोल उठे—“पागल ज़रूर है, मगर क्या बदन बना है साहब, जिसका जवाब नहीं !”

क्या कहने है ! एक क्षत-विक्षत नारी-वत् के सम्बन्ध में आपकी इस गुण-ग्राहकता ने अपनी जिस बर्बर पशु-प्रकृति का परिचय दिया है, उसे हमारी संस्कृति सदा रखेगी ! ... यकायक चौराहे पर पुलिस के सिपाही की ओर दृष्टि जा पड़ी । मैंने उसके निकट जाकर कहा—“आपको मेरी थोड़ी-सी मदद करनी होगी ।”

आश्चर्य से उसने पूछा—“क्या ?”

मेरे मुँह के निकल गया—“एक खानदानी लड़की पागल हो गयी

है । आपने उसे देखा भी होगा । वह खड़ी-खड़ी बक रही है । उसे अपनी गाड़ी पर ले जाना है । दो-एक तगाड़ी स्त्रियों साथ के लिए चाहिए, जो मौक़ा पड़ने पर उसे सम्हाल सकें । आप इस गाड़ी का नम्बर नोट कर लीजिये । हम उन स्त्रियों को यही भेज जायेंगे ।”

सिपाही पहले तो सोच-विचार में पड़ गया । फिर बोला—“मैं इस मामले में आपकी कोई मदद नहीं कर सकता । पता नहीं, असली वाक़या क्या है । माफ़ कीजियेगा, आजकल किसी पर भरोसा करना एक परेशानी मोल लेना है ।”

सिपाही को क्या दोष दूँ ! जब हमारा सांचा ही ऐसा है, जिससे ढलनेवाले पात्रों में छिद्र रह जाना स्वाभाविक है, तब आज़ाद हिन्दुस्तान की पुलिस को पहला पाठ यही क्यों न पढ़ाया जाय कि हर एक आदमी पर सन्देह करो । समझ लो कि वह झूठ बोलता है—और मुझे जानबूझकर धोखा देना चाहता है । हर सम्य नागरिक को अवारा समझो । जो अपनी नवभार्या को साथ लिये जा रहा हो, उसका चलना रोक दो । उससे कहो—“टहरो । मुझे तुम पर शक है । तुम इस औरत को कहीं से भगा लाये हो । पहले सबूत दो कि यह स्त्री वाक़ई तुम्हारी है !”

पर जब वास्तविक जगत में आ पहुँचा, तो लाचार होकर मुझे .. पुलिस-स्टेशन जाना ही पड़ा । पहले तो सब-इन्स्पेक्टर साहब ने भी टालना चाहा—“अरे साहब, जाने भी दीजिये । इन बातों में क्या रक्खा है ! बैठे-ठाले बेकार में आप एक परेशानी मोल ले रहे हैं ।”

सेवा के क्षेत्र में इस प्रकार के उपदेश और परामर्श प्रायः मनोरंजक बन जाते हैं । हँसते हुए उत्तर में मैंने कह दिया—“पर वह मेरे एक बहुत अज़ीज़ की बेटी है । उसको इस हालत में छोड़ा नहीं जा सकता ।”

तब उन्होंने दो सिपाही मेरे साथ कर दिये । उनको लेकर मैं फिर

जमना के पास जा पहुँचा। संयोग से वह उस समय चुप थी।

कहा - “चलो, मेरे साथ चलो जमना।”

“कौन ? तू मुझे अपने साथ ले जायगा ! तू !!” कहते-कहते दाँत पीसते हुए जमना ने आवागिना न ताव, मेरी कनपटी पर तानकर एक ऐसा तमाचा जड़ दिया कि मुझे चक्कर आ गया !

तत्काल मैंने मन-ही-मन कह लिया—“प्रभू, तेरी इच्छा पूर्ण हो !”

दो में से एक सिपाही बोला—“बतलाइये, अब क्या करना होगा ?”

मेरे मुँह से निकल गया—“दोनों हाथों पर उठा लीजिये और गाड़ी पर बैठाकर रस्सी से कसकर बाँध दीजिये।”

पाँच मिनट में इन सिपाहियों की सहायता से मैंने परिस्थिति पर पूरा नियंत्रण कर लिया।

यद्यपि हम जमना को गाड़ी में कसकर बाँधे मधू के यहाँ लिये जा रहे हैं, मेरी कनपटी अब भी दर्द कर रही है। उसमें थोड़ी सूजन भी आ गयी है। उधर गाड़ी पर ज़बरदस्ती बैठालते समय जमना ने मेरे हाथ पर काट भी खाया है। खून तो नहीं आया, लेकिन दाँतों के निशान अब भी बने हैं। सोचता हूँ, मेरी इस कनपटी पर जो थप्पड़ लगा है—और मेरे हाथ पर ये जो दाँत लगे हैं वे भी—आज की सभ्यता की देन हैं।

बारम्बार मेरे अन्दर का शैतान मुझ से कह रहा है—“और सुधारक बनोगे ? दीन-दुखियों के साथ और सहानुभूति रखोगे ?”

पर मुझे शैतान के इस बचपन पर हँसी आ रही है। वह सोचता है, जब आदमी पर संकट आये, तब उसे अपमानित किया जाय, उसके समस्त स्वाभिमान को लातों से कुचलकर उसका मिज़ाज दुरुस्त कर दिया जाय !

लेकिन मैं आदमी कुछ अन्य धातु का बना हूँ। मेरा मूल्य तो तभी लग सकता है, जब मुझ पर विपत्ति आये। आज यद्यपि ऐसा कुछ

नहीं है फिर भी सोचता हूँ— हमारे राष्ट्रपिता बापू ने जिस भावना से अपनी छाती पर गोली सही, क्या उन भावनाओं के पोषण के लिये मैं अपने मुँह पर एक थप्पड़ भी नहीं खा सकता !

कुछ नहीं । तुमने बहुत उत्तम पुरस्कार दिया है जमना ! जब इस थप्पड़ के लिये तुम्हारा हाथ उठा, तब मेरा मस्तक भी गौरव से थोड़ा-बहुत ऊँचा उठ ही गया । संसार मुझे चाहे जो समझे ।

अजीब पहेली है । दुनियाँ समझती है—थप्पड़ अपमान का चिह्न है । किन्तु मैं समझता हूँ, वह मेरी सेवा का एक प्रमाण है ।

अपमान और सम्मान एक ही भावना के दो रूप हैं । भेद केवल दृष्टिकोण का है ।

जमना को सिपाहियों के साथ गाड़ी पर छोड़कर हमने पहले सब लोगों से मिल लेना ही उत्तम समझा ।

आशीर्वादोपरान्त दीक्षितजी बोले—“तुम्हारे आने की खबर तो मुझे लग गयी थी । यही सोच रहा था, यहाँ आने की फुरसत नहीं मिली होगी । यद्यपि मुझसे भी अकसर ऐसा हो जाता है; फिर भी बुरा तो लगता ही है ।”

मैंने जमना की बात संक्षेप में उपस्थितकर उसके लिए एक कमरा खाली कर देने का अनुरोध किया, तो उन्होंने उसी समय एक कमरा खोल दिया और साथ ही सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले ली ।

मधू हँसते उलहने के साथ कहने लगी—“अब फुरसत मिली है भैया को !” और आगे कुछ न कहे, इसलिए मैंने तत्काल पास जाकर कह दिया—“धीरे से बात करो । साथ में लालाजी की बड़ी लड़की जमना भी आयी है । बेचारी पागल हो गयी है । रात किसी तरह कट जाय, तो कल ही आगरे भेज दूँ । लालाजी भी कल आ जायेंगे ।”

इसी समय हमने जमना को उस खाली कमरे में ठहरा दिया । उसमें एक पलंग बिछा था । जमना ने उस पर पड़े सारे वस्त्रों को



एक ओर फेंक दिया । खुली चारपायी पर वह बैठ गयी और खिड़की के उस पार देखने लगी । तब विशेष व्यवस्था के लिए कमरा बाहर से बन्दकर हम अन्दर चले आये ।

चरण छूने पर माँ ने सिर पर वृद्ध-दुर्बल हाथ रखकर कहा—“सुखी रहो । लेकिन बेटा, यह भ्रंशट यहाँ बेकार ले आये । कौन रात-भर रखवाली करेगा !”

“रखवाली मैं कर लूँगा मों । आप बेकार परेशान हो रही हैं ।”

“हाँ, तुम तो खूब कर लोगे और मैं तुमको उसके पास छोड़ भी दूँगी !...देखती हूँ, कर क्या रही है !”

कहकर वे जमना को देखने के लिए चल दी ।

इसी क्षण “कोई न करे, मैं कर लूँगी ।” कहती-कहती, चेस्टर के भीतर से अभिवादन के दो दुर्बल हाथ निकालती हुई वैशाली आ पहुँची । बोली—“जोड़ अच्छा चुना है !”

“पगली कही की । अरे वह हमारे लालाजी की बड़ी लड़की जमना है, शहादरे के राय चन्द्रनाथ की विवाहिता पत्नी ।”

“तो उसको वहीं क्यों नहीं ठेल आये !” उत्तर के साथ वैशाली अब भी हँस रही थी ।

मैंने कह दिया—“मैंने सोचा, वैशाली के लिए एक ऐसा तोहफ़ा इस बार ले चलना चाहिये, जिसे वार्तालाप में, उदाहरण के समय, सजीव रूप में पेश किया जा सके । क्योंकि, एक-न-एक दिन उसकी भी यही गति होगी, यह निश्चित है ।”

वैशाली सर हिलाती, अपलक आखें धुमाती और फिर भी जैसे अपने को छिपाती हुई-सी कहने लगी—“अब आप ऐसा नहीं कह सकते । इतने दिन हो गये, मैंने आपको एक भी पत्र लिखा ?”

“लेकिन वैशाली, मैं तुम्हे कैसे समझाऊँ कि अपनी इस तीव्र इच्छा को रोकने का पहले तो निरन्तर ध्यान रखना, फिर अवसर आने पर उसे

अपने निर्मोह का अस्त्र बनाने की चेष्टा करना—ये दोनों ही बातें अपने-विषय में पत्र लिखने से कहीं अधिक महत्व रखती हैं।” मुझे कह ही देना पड़ा।

“मैं समझ गयी। अच्छा, तब कुछ ऐसा उपाय कीजिये भाईसाहब, जिससे ऐसी जितनी भी छोटी-बड़ी इच्छाएँ हम मन में उत्पन्न करते हैं, उनका अस्तित्व ही मिट जाय। केवल समाज की पुरातन गतियाँ स्थिर बनी रहें। नित्य वेद-ध्वनियों के साथ, गाजे-बाजे के रूप में, हम ऐसे प्रेम-रोगियों की अर्थी प्रभात-फेरी के आगे-आगे ले जाकर गजघाट में विसर्जित कर आया करें। आत्मघात पर प्रतिबन्ध उठा दिया जाय। जहाँ सुरा-पान वर्जित है, वहाँ विष-पान प्रचलित हो जाय। जैसे मनुष्य अपनी इच्छा से जीता है, वैसे ही वह अपनी इच्छा से मर भी सके।”

“तुम कुछ भी कहो वैशाली, सभ्यता की किसी भी स्थिति में ऐसा सम्भव नहीं होगा। इच्छाएँ हमें नियंत्रित करनी ही होगी। कोई हमें चाहे जितना प्यार करे, पर यह सदा हमारे ऊपर ही निर्भर रहेगा कि हम उसके प्यार को स्वीकार करें या न करें। और उन लोगों की यह भावना सदा दूषित ही मानी जायगी, जो यह कहा करते हैं कि या तो मेरा जीवन, मेरे प्राण स्वीकार करो, या मेरा मरण। क्योंकि यदि प्रेम की नव-नव ज्योति-रश्मियाँ सदा हमारे चिरनिश्चित सम्बन्धों को क्षीण, हीन, विवश और विपन्न बनाने में समर्थ होंगी, तो उससे शाश्वत-चिरन्तन सम्बन्धों की होने वाली हिंसा समाज के लिए एक भयानक अभिशाप और अमानुषिक व्यापार बन जायगी।”

हम अभी ये बातें कर ही रहे थे कि दीक्षितजी आ गये। बोले—“कोई ऐसी दवा फ़्लर्टएंड के रूप में जमना को दी जानी चाहिये, जिससे उसे नीद आ जाय। फ़ोन कर दिया है मैंने डाक्टर शर्मा को। अभी थोड़ी देर में आये जाते हैं।”...वैशाली जा रही थी कि.....

इतने में एक पुड़िया निकालकर उसमें से चुटकी-भर मैमपुरी मुँह में छोड़ती हुई माँ आ पहुँची। बोली—“चलो पहले खाना खा लो, फिर

और बातों में लगना । सब लोग खा चुके । सिर्फ मैं बची हूँ; सो तुम्हारे साथ बैठ के खाऊँगी । वह तो बड़ी गनीमत हुई कि तुम ऐन वक्त पर आ गये । नही तो रसोई बड़ा ही दी गयी होती ।”

जी में तो आया, माँ से स्मृत कह दूँ कि “मेरे सोये हुए भाग्य अब कहीं जग पाये हैं—एक युग के बाद मेरे खोये हुए पूज्य पिता मिल गये हैं । और प्रसन्नता की बात यह है कि उन्होंने मेरी एक छोटी माँ भी बना ली है । इतना ही नहीं, उनसे उत्पन्न बारह-तेरह साल का मेरा एक भाई भी है । इसलिये मुझे आज वहीं भोजन करना है । देर ज़रूर हो गयी है; पर जब वहीं खाना खाने के लिए मैं कह आया हूँ, तब यहाँ खा लेने के लिए मुझे मजबूर मत करो ।”...अब दीक्षितजी भी चले गये ।

फिर मैं इस विचार में पड़ गया कि जिस जीवन को पिताजी ने स्वयम् इतना छिपाकर रक्खा, उसको इस तरह प्रकट करके उनका रागात्मक साहस और सुयश चारों ओर फैला देना मेरे लिए उचित न होगा । इस लिये फिर इस विचार की बाग मोड़कर मैंने कह दिया—“तुम्हारे चरणों के पुण्यप्रताप से कुछ ऐसी मंगल-भूमि में पैदा हुआ हूँ कि रसोई अगर बड़ा भी दी गयी होती, तो इस अन्नपूर्णा-भंडार में लड्डू-मेवे, दूध-खड़ी और मिठाई-नमकीन की कोई कमी न होती । और इन सब चीज़ों के एक एक कौर से ही मेरा भजन बन जाता !”

मेरे इस उत्तर से माँ प्रसन्नता के मारे गद्गद् हो उठीं । बोलीं—“तुम जब चले जाते हो बेटा, तो तुम्हारी यह बातें मैं हफ्तों नहीं भूल पाती । मैं अगर बात करने में तुम्हारी आधी मिठास भी पैदा कर पाती, तो सच कहती हूँ, एक-न-एक दिन भगवान को भी वश में कर लेती ! खैर चलो, यों भी काफ़ी देर हो चुकी ।”

देर तो वास्तव में हो ही गयी है । लेकिन फिर सोचता हूँ, अगर मैं यहाँ खाना खा लूँगा, तो उपेन्द्र क्या कहेगा ? कहीं वह मेरी प्रतीक्षा में बिना खाये ही बैठा रह गया तो ?...धीरे-धीरे कुछ ऐसा हो रहा है कि कभी-कभी मैं स्वयं अपने विरोधी तत्व इकट्ठे कर लेता हूँ । मैं स्वयं अपने

बचन का मोल घटा देता हूँ। शील में पड़कर मैं ऐसी बात कह देता हूँ, जिसका पालन आगे चलकर मेरे ही लिए दुष्कर हो जाता है। गलतियों से बचते-बचते भी मैं अकसर गलती कर बैठता हूँ। ऐसा भी होता है कि जिसको मैं पहले बहुत सही समझता हूँ, बाद में उसीको गलत समझ लेता हूँ। और ऐसा भी होता है कि जो पहले गलत जान पड़ता था, बाद में फिर वही मेरे लिए सही बन जाता है। समझ में नहीं आता, यह कैसा चक्कर है ! कहीं ऐसा तो नहीं है कि विचारों की अस्थिरता मेरे लिए स्वाभाविक बन गयी है ?...पर सड़क पर जो यह आदमी जा रहा है, इसकी खाँसी की आवाज़ खतरे की घण्टी बजाती चल रही है। और इसके पीछे वह गुर्गता हुआ कुत्ता ! दोनों अस्वस्थ हैं। मैं अस्वस्थ नहीं बनूँगा। इसलिये मैंने कह दिया—“पर आज तो खाने की मुझे ऐसी कोई ज़रूरत नहीं जान पड़ती माँ। बल्कि टाल ही जाऊँ, तो ज़्यादा अच्छा रहेगा।”

“नही-नही, खाना खाने के मामले में मुझे टाल-मटोल नहीं सुहाती।” माँ ने कहा ही था कि अन्दर से फ़र्श पर कप और प्लेट्स गिरकर चूर-चूर हो जाने की आवाज़ सुन पड़ी। तब—“वैशाली को मैं अभी भेजती हूँ” कहती हुई माँ अन्दर चली गयी।

...अच्छा, छोटी भाभी ने यह बात जो उस समय कह डाली थी कि अब भेंट नहीं होगी और यह रक़म तुम्हें लेनी ही पड़ेगी। इन दोनों विषयों पर मैंने तत्काल विचार क्यों नहीं किया ? और भाभी से अब भेंट नहीं होगी, क्या यह कोई साधारण बात है !

यदि कही ऐसा हो गया तो मैं जिऊँगा कैसे ? उस दिन माँ तक ने इस बात का अनुभव किया था !...ऐसा जान पड़ता है, मैं भी हार्ट फेल्योर से ही मरूँगा। रुपये तो मैं भाभी की याद में बम्बई जाकर, जुहू के समुद्र-तट पर आकाश के तारों की भोंति बिखरा दूँगा और सबेरे वहाँ मेरी लाश पड़ी मिलेगी ! इस दुनियाँ की जलन तो बुझ जायगी, जिसने उन्हे भाईसाहब के जंगलीपन के अहम् को सन्तुष्ट करने के लिए उनके अङ्कपाश में डाल दिया है !

पर अब मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इस दुनियाँ की जलन कभी नहीं बुझेगी। व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्रता के नाम पर समाज से सदा शिकायत बनी रहेगी। ... ब्रिटेन में जो पन्द्रह लाख स्त्रियाँ अविवाहित हैं, क्या उनकी यह इच्छा न होती होगी कि वे एक सद्गृहस्थ का-सा जीवन व्यतीत करें ? पर वहाँ एक पत्नी की उपस्थिति में दूसरा विवाह वर्जित है। इसीका परिणाम यह हुआ है कि स्त्रियों की यह सेना निर्भय होकर सभ्यता की श्रीवृद्धि करती रहती है ! ... लेकिन लंदन में चोरियों की संख्या तो नहीं के बराबर है। मकान खुले पड़े रहने का अर्थ होता है, गृहस्वामी बाहर घूमने गये हैं और फिर कोई उस खुले मकान के अन्दर प्रवेश करने का साहस नहीं करता। इसके विपरीत हमारे इस नवस्वतन्त्र देश के नैतिक स्तर का यह हाल है कि डिप्टी-क्लेक्टर साहब के यहाँ भी उस अवस्था में चोरी हो जाती है, जब घर पूर्णरूप से बन्द रहता है और सब लोग आराम से पड़े सोया करते हैं ! और कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि सबूत के अभाव में असली अपराधी गिरफ्त में आ जाने पर भी छोड़ दिये जाते हैं !

अच्छा, अगर भाभी को लेकर मैं अपना एक अलग प्रेमनगर बसाऊँ, तो कैसा हो ! नीचे सरिता बह रही हो, जैसी प्रयाग में जमना बहती है। उसीके तट पर अपना घर हो, जैसा वहाँ अकबर का बनवाया क़िला है। उसीके अन्दर अपना एक ऐसा उद्यान हो, जिसे नन्दन-कानन कहा जा सके। फिर उसीमें एक पारिजात की सृष्टि की जाय !

स्वप्न-कितनी जल्दी हम देख लेते हैं ! काश उनको जीवन में चरितार्थ भी कर पाते !

कहीं से वंशीरव आ रहा है। खुश रहो प्यारे ! तुम्हारी इस तबियत की हम हृदय से सराहना करते हैं। अपरिचित से काल्पनिक परिचय प्राप्त कर लेना कितना सरल है !

और कल्पना का नन्दन-कानन ?

क्या बात है उसकी !

लो छल्ले उछालती हुई वैशाली आ पहुँची। यह जो बॉट्लग्रीन कलर होता है न, इसीका गरम मुलायम चेस्टर है। साड़ी सफेद है, जिसके शुरू के बोल हैं—कलफ़ की सरसराहट से उठते हुए। चप्पल हरी ज़मीन पर लाल पट्टीवाले। लाली नखों पर चमकती और ओठों पर बिहँसती हुई। अँगुलियाँ पतली-पतली ककड़ियों के बचपन की शोख़ी लिये। यह सब मुझको जलाने का आयोजन है! मेरी एक-एक रुचि को, तृष्णा और लोभ की लपक को, मोह और उसकी अगणित तरंग-राशि को उत्तेजित करने का अनुष्ठान है।

नृत्य करती हुई-सी आ रही है वैशाली। पर मुद्रा ऐसी बनाये है, मानो मैं देख नहीं पड़ रहा हूँ। फिर निकट आते ही यकायक चौंक पड़ती है।

—“ओः भाई साहब!” कहकर मुसकराती है। फिर जिस मतलब से आयी है उसीकी भाषा में बोल उठती है—“चलिये भाई साहब खाना खाने।...और कुछ सुना आपने? अम्मा ने भाई साहब मुझको और भाभी को, अपने सामने खड़े-खड़े जमना को कुए के पानी से नहलाने के लिये नियुक्त कर दिया। सच कहती हूँ, भाई साहब, उस वक्त टंड के मारे मैं काँप गयी। बल्कि थोड़ी-सी कपकपी मेरे बदन में अब भी आपको मिल रही होगी। अच्छा, मिल रही है या नहीं, सच-सच बतलाओ।”

और इतना कहते कहते वैशाली सचमुच थर-थर काँपने लगी। फिर आप-ही-आप मुसकराई और बोली—“नहाने-धोने, सिर में मौलश्री का तेल मलने, कंधी करने और कपड़े बदलने के बाद—सच कहती हूँ भाई साहब—जमना बिल्कुल परी बन गयी है। जान पड़ता है, मैं तो उसके सामने बिल्कुल नाचीज़ हूँ! और भाई साहब मेरा वह कुछ-कुछ ढीला सा जाकेट था न, हलके स्लेटी रंग का, वह उसके उमरे वक्ष पर इतना फ़िट बैठ गया कि कुछ न पूछिये। और कोट तो उसके ऊपर ऐसा जँच गया, जैसे उसीके लिए बना हो।”

“इस सारे कार्य-व्यवहार में भाई साहब जमना ने बिल्कुल इनकार नहीं किया । पर ज्योंही कंधी-चोटी के लिए शीशा उसके सामने कर दिया गया, त्योंही वह धीरे-धीरे बुदबुदाने लगी :

“मैंने जब उनसे कुछ कहा नहीं, तब उन्होंने मुझसे सब कुछ कह डाला । पर मैंने जब उनसे कुछ कह दिया, तो वे बिगड़ खड़े हुए । बिगड़ जाओ, मेरी बला से । एक युग, दो युग, दस युग । अरे कभी तो मिलोगे !”—भाईसाहब आप फ़ालो कर रहे हैं कि नहीं ?—और फिर वह चुप रह गयी । संयोग से मेरा हरा रेशमी रूमाल उनकी तकिया पर पड़ा रह गया । आप जानते ही हैं, उसमें हिना का इत्र पड़ा रहता है । जमना ने उसे उठाया, सूँघा और फूँक से इस तरह उड़ा दिया कि वह मेरे सिर पर आ गिरा ! इस पर जमना पहले तो यकायक हँस पड़ी; पर फिर तुरन्त गम्भीर होकर मुझे धूर-धूरकर देखने लगी । मैंने पूछा—“भूख लगी कि नहीं ?”

इस पर पहले तो वह अपना सिर खुजलाने लगी, फिर बोली भी तो यह कि ‘मालूम नहीं ।’ और आप-ही-आप मुसकरा उठी ।

मेरे इस चेस्टर के ऊपर बाएँ कन्धे पर कहीं से उड़कर मोर के पंख का टुकड़ा आ गिरा था, उसे अपनी अँगुलियों की चुटकी से निकाल देने के लिए वैशाली मेरे बिल्कुल ही पास आ गयी और थोड़े से आगे खिसक आये चरमों को नाक के ब्रिज पर स्थिर करती-करती बोली—“सच कहती हूँ भाई साहब, अगर उस ‘मालूम नहीं’ शब्द-कथन के क्षण तुम कहीं जमना की उस मुसकान-माधुरी को देख पाते, तो तुम्हें बिल्कुल ऐसा मालूम होता, जैसे वृन्त से धरती पर गिरते क्षण बेला के फूल को बीच में ही लोककर तुम उसे ध्यानस्थ होकर निरख रहे हो । अच्छा, सच कहना भाई साहब, तुमने कभी बेला की कली को चिटककर फूल बनते और फिर उसे वृन्त से धरती पर गिरते क्षण इस तरह हथेली में प्राप्तकर ध्यान से देखा है !... इधर मेरी ओर देखकर बतलाओ ।”

कोई मेरी जैसी स्थितियों में पड़कर देखे तो उसे पता चले कि चिनगारियों और जलते अंगारों से घिरे हुए इस जगत में मनुष्य के शील-सौजन्य की क्या स्थिति है ! अन्य कोई मुझे कैसे समझ पायेगा, जब मैं स्वयं अपने को समझने योग्य नहीं बना पाया हूँ। वैशाली स्वयं तो पगली है ही, वह मुझे भी पागल समझ बैठी है। वह समझती है कि उसकी इन बातों का आन्तरिक अभिप्राय और अर्थ-भाव मैं कुछ समझ नहीं पाता। और यहाँ स्थिति यह है कि निरन्तर यही सोचा करता हूँ, कि फूलों का हास और सौरभ प्राप्तकर क्या करूँगा मैं, जब इस अनोखी सृष्टि में कली से लेकर फूल तक की जाति की नारियाँ इतनी दयनीय बना डाली जाती हैं कि उनकी भूख लगने-न-लगने की चेतना ही नष्ट हो जाती है ! यह बात कहते समय मैं अपने देश की उन कोटि-कोटि नारियों के उदास-उदास, सूखे, मुरझाये, क्षीण-दुर्बल, म्लान और अश्रु-सिक्त मुखों को नहीं भूल रहा हूँ, जो अपने शिशुओं को स्तन्य-पान कराते-कराते उनकी पीठ पर दो-चार धौल इसलिये जमा देती हैं कि दूध के अभाव में वे अपनी माँ के शुष्क दुग्धाधारों पर दाँत मार देते हैं !

तब अनायास मेरे मुँह से निकल गया—

“धरती पर गिर जाने के क्षण फूल को हथेली पर धारण करते-करते तुरन्त उसे सूँघ-सोंघ मसलकर इधर-उधर फेंक देनेवाले व्यक्तियों की इस दुनियाँ में कमी नहीं है वैशाली। कमी तो केवल उस समाज की है, जो यह भी सोचने की चेष्टा करे कि उनकी इससे भी बड़ी उपयोगिता है उनका धरती में न मिलकर संसार को अपना सौरभ देना। .....अरे-अरे तुम जा रही हो वैशाली ! अच्छा जाओ, लेकिन कहीं मेरी इस बात का बुरा न मान लेना। क्योंकि मैं जो कुछ भी कहता हूँ, वह केवल तुम्हारी भलाई के विचार से।”

तुरन्त लौट पड़ी वैशाली। पढ़ने के से ढंग से एक बार नीची दृष्टि



को ऊपर कर मेरी ओर देखा और कह दिया—“तुम शायद एक बात नहीं जानते भाईसाहब ।”

मैने पूछा—“क्या ?”

उसने कह दिया—“मुझे तुम्हारी कोई बात कभी बुरी नहीं लगती ।”

सोचता हूँ जिस बात को सुनकर दुनियाँ पागल हो उठती है उसका आज मैं कोई मूल्य नहीं दे सकूँगा । माना कि धरती पर सौन्दर्य और प्यार की सीमा नहीं है । फिर भी उसको लाभ करने की घड़ियाँ मनुष्यके जीवनमें सदा सुलभ नहीं रहा करती । किन्तु हमारी अपनी यह जो छोटी-सी दुनियाँ है, छोटा-सा आत्मीय समाज है, उसकी आन्तरिक अकल्पित अभिलाषाओं और प्रकट-अप्रकट कर्मधाराओंके साथ हमारे अटूट सम्बन्ध भी तो है । तब क्षणिक भावोन्माद में आकर यत्र-तत्र बिखरे सौन्दर्य और प्यार का स्वागत करते जाना और अपने चारों ओर एक जाल बना लेना अपनी सामाजिक निष्ठा के साथ एक छल, कपट और विश्वासघात ही न होगा !

अतः मैंने कह दिया—“समझदार बहनें जेठे-बड़े भैया की बात का कभी बुरा नहीं मानती वैशाली ।”

तब अपने मनोभावों को फूलों के हास में लपेटती वैशाली बोली—“लेकिन तुम तो चुपचाप बैठे हो ! अरे मैं पूछती हूँ, आज तुमको खाना नहीं खाना है !”

अब यकायक मैंने कह दिया—“एक बात और याद रखना वैशाली, आज्ञा की बात तो दूर रही, अनुरोध और प्यार के नातों से भी कर्तव्य-भावना की जो अनन्त ध्वनियाँ समय-समय पर नित्य हमारे हृदय-देश से निकला करती हैं, निरन्तर उनकी उपेक्षा और अवहेलना करके जो लोग सदा प्रेम के नाम पर दैहिक मिलन में ही जीवन की चरम सफलता देखा करते हैं, वे उन चील्हों और गिद्धों के समान हैं, जिनकी प्यास

जागृत-ज्वलन्त दुर्वहजीवन के घर्ष और संघर्ष से उतनी नहीं बुझती, जितनी सड़ी-गली, बदबू से भरी लाशों की चीथानोचन से !”

मेरी इस बात को सुनकर वाण-विद्ध सी वैशाली चुपचाप लौट गयी । सोचता हूँ, पहले एक ज़रा-सी बात पर मैंने उससे कह दिया था—“बुरा न मानना ।” पर अब इस समय उसीसे ऐसी कठोर बात मैंने क्यों और कैसे कह दी ! यही मेरे इस असफल जीवन का सबसे बड़ा अन्त-विरोध है । मैं जिस किसीको अत्यधिक प्यार करता हूँ, कुछ ऐसी बात है कि समय आने पर उसकी उतनी ही मरम्मत भी कर देता हूँ ।

वैशाली अभी गयी ही थी कि मधू आकर कहने लगी—“यह बात क्या है भैया कि आज खाना खाने के लिए तुमसे बार-बार कहना पड़ता है, फिर भी नतीजा कुछ नहीं होता ।”

आज बारम्बार अनुभव कर रहा हूँ कि नाटकीय जीवन के इस महापर्व में सत्य का निर्वाह कितना दुर्वह हो गया है ! उस द्राइवर से मैंने कह दिया था—“किसीको यह मत बतलाना कि मैंने जान-बूझकर गाड़ी छोड़ दी, दिल्ली नहीं छोड़ी ।” फिर ऐसा ही कुछ व्यर्थ ही बड़ी भाभी से भी कहना पड़ा था । अब यहाँ भी स्पष्ट रूप से यह बात छिपा रहा हूँ कि मुझे आज उपेन्द्र के साथ बैठकर खाना है । इसीलिये खाने की बात को मैं बराबर टाल रहा हूँ । इसका मुख्य कारण है केवल यह गोपनीय प्रसङ्ग कि पिताजी मिल गये हैं, और उन्होंने अपनी एक अलग दुनियाँ बसा ली है ।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या मैं इस प्रसंग को किसी प्रकार गुप्त रख पाऊँगा ? उमंग में आकर मैंने उपेन्द्र को इलाहाबाद ले जाने के लिए छोटी माँ से कह तो दिया, पर यह नहीं सोचा कि दुनियाँ भर से मैं अपना सांसारिक रूप चाहे जितना छिपाऊँ, पर उस माँ से कैसे छिपा सकूँगा, जो मेरी क्षण-क्षण की आन्तरिक प्रेरणाओं तक के केवल मेरा मुख देखकर सहज ही जान लेती है !

सोचता हूँ—ऐसी संकटापन्न परिस्थितियों की उत्पत्ति का मूल

कारण है सबको सन्तुष्ट रखने की ढुलमुल नीति। अकसर हम इसी लिए चारों ओर के उलहनों से इतने अधिक घिर जाया करते हैं कि एक अप्रिय सत्य को छिपाने के लिए दस बार असत्य के चरणों पर नाक रगड़ते हैं। और तारीफ़ यह है कि मन-ही-मन अपने आपको परम बौद्धिक मानकर—मूर्ख तो रह नहीं गयी—क्लोनशेन्ड होठों पर ही हाथ फेरकर तथाकथित त्याग-वीर पुरुषों की तरह फूल उठते हैं !

इसलिए थोड़ा साहसकर मैंने इतना कह दिया—“कुछ ऐसी ही बात है मधू; उसे समय आने पर बतलाऊँगा। पर इस सिलसिले में इतना जान लो कि इस समय एक तो मैं यहाँ खाना न खाऊँगा, दूसरे आज रात को मेरा यहाँ ठहरना भी न हो सकेगा।”

इसी समय पोर्टिको में किसी गाड़ी के आने की आवाज़ हुई। पर उसकी ओर ज़रा भी ध्यान न देकर मधू आश्चर्य और चिन्ता के मिश्रित स्वर से बोल उठी—“पर ऐसी क्या बात है भैया, जो तुम रात को ऐसे जाड़े में किसी दूसरे के घर खाना खाने जाओगे और फिर वहीं ठहरोगे भी !”

“वह दूसरा घर नहीं है मधू। वह भी अपना ही घर है। लेकिन अभी मैं कुछ और अधिक तुम्हें बतलाऊँगा नहीं।” मैंने कह दिया।

जान पड़ा, मधू को इस बात पर दूसरी तरह का संदेह हो रहा है। वह सोच रही है, जैसे मैंने अपने लिए कहीं एक घोंसला बना लिया है। इसलिये वह प्रसन्नता से उल्लुल पड़ी और बोली—“यह तुमने बड़ी अच्छी बात सुनाई भैया। अब मैं माँ से कह दूँगी कि भैया अपने किसी दोस्त के यहाँ ठहरे हैं। इसलिये ज्योही डाक्टर साहब आकर जमना की व्यवस्था कर जाँयेंगे, त्योंही वे वहाँ चले जाँयेंगे।”

यही हमारे जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है कि एक सत्य पर परदा डालने के लिए हम निरन्तर कुटिल से-कुटिल और प्रगल्भ असत्यों के आगे आत्म-समर्पण करते रहते हैं। इसलिये अब पिताजी से भेंट होने की सारी कथा मैंने संक्षेप में मधू को बता दी। सुनकर मधू पहले तो एक दम से सन्न रह गयी। फिर उत्तरंग भावुकता से रो पड़ी। मैंने

समझाया कि रोने का कोई कारण नहीं है मधू। पिताजी वृद्ध अवश्य हो गये हैं, पर वे अब भी काफी स्वस्थ बने हैं। इस पर आँसू पोंछती हुई मधू बोली—“जब तुम कह रहे हो, तब विश्वास न करूँ तो तुम्हारे साथ अन्याय हो जायगा भैया। इसी डर से सब कुछ सही माने लेती हूँ। लेकिन और कोई एक बार पिताजी के मर जाने पर फिर उनके इस तरह जी उठने की बात को सही मानेगा नहीं; यह मैं तुमसे स्पष्ट कहे देती हूँ।”

“मैं जानता हूँ कि एक यही नहीं, ऐसी ही और भी बहुत-सी बातों को दुनियाँ सही नहीं मानती। लेकिन दुनियाँ के सही न मानने पर भी सत्य के अचल, चिरस्थिर और शाश्वत अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पहले तो मुझको भी ऐसा ही सन्देह था मधू। लेकिन जब मैंने उन्हें साक्षात् देख लिया, तब मेरा भी सारा भ्रम दूर हो गया। इसके सिवा एक बात और भी तो है कि इस जगत और सृष्टि में ऐसी अद्भुत बातों, प्रसंगों और घटनाओं की कमी नहीं, जो कल्पना में कभी आ नहीं सकतीं और यदि आती भी है तो हमारे यहाँ उनके कर्ता और कारण का मुँह नोच लिया जाता है!”

इतने में वैशाली ने आकर अपने चेस्टर की जेब से दस्ताने पहने हुए रोयेंदार हाथ निकालते हुए कह दिया—“लीजिये, आप यहाँ बातें करते रहे और वहाँ डाक्टर साहब आकर जमना को देख भी गये!”

आश्चर्य से मैंने कह दिया—“तो तुमने मुझे बुलाया क्यों नहीं?”

कोई उत्तर न देकर वैशाली मुझे चुपचाप देखती रह गयी।

मधू तो अन्दर चली गयी। मैं वैशाली के साथ डाक्टर साहब के समीप जाने लगा।

तब साथ चलती-चलती वैशाली बोली—“ऐसा जान पड़ता है, जैसे युग-युग से मैं तुम्हें बुला रही हूँ। पर तुम कुछ हो ही ऐसे निर्मोही कि मेरे आह्वान के स्वर शून्य में समाकर व्यर्थ हो जाते हैं।”

ऐसा जान पड़ा, जैसे वृन्त से गिरनेवाला पुष्प धरती पर न गिरकर मेरे पलकों पर आ गया है।

कथन कितना मादक है, इस पर और ध्यान न देकर मैंने कह दिया—  
“भाई को इतना अधिक बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ा करती वैशाली !”

डाक्टरसाहब एकदम नये नहीं है। फ्रॉचकट छोटी-सी दाढ़ी के कुछ-कुछ श्वेत हो रहे केश उनकी प्रौढ़ता का परिचय देने के लिये यथेष्ट है। मुझे देखते ही बोले—“मेरा खयाल है, आप इसके पति नहीं है।”

अर्थ-भाव सोचते हुए मेरे मुँह से निकल गया—“भगवान न करे कि मेरे जीवन में ऐसी कोई घटना हो !”

तब डाक्टरसाहब मुसकराते हुए बोले—“खैर, जो कोई भी हों, उनको हमेशा इसके साथ रहने की ज़रूरत है। आप तो पढ़े लिखे आदमी हैं। इतना ही कहना काफ़ी होगा कि ‘कन्टीन्युअस सेक्सुअल डिस्टर्बेंसेज़ विद आइडियलिस्टिक डिज़ॉरेंसेज़’ से ही इसकी यह दशा हुई है। क्योंकि जब मैं यहाँ आया, तब यह बुदबुदा रही थी—“मैंने कितनी ही बार कहा, यह सब मुझसे न होगा। मैं विवाहिता नारी हूँ। मेरे पति मुझे बहुत चाहते हैं—कम-से-कम कहते यही है।” और इसके बाद यह टट्टामार कर हँस पड़ी। खैर, चिन्ता की कोई बात नहीं है। आप जानते हैं, पागलों को नींद नहीं आती। पर इस दवा से इसे नींद आ जायगी। लेकिन हर हालत में दो आदमी इसके पास मौजूद रहने चाहिये; क्योंकि अपराधियों की दुनियाँ में पागल का स्थान सब से बड़ा और भयानक माना गया है। इस विषय में एक घटना ही बतला देना काफ़ी होगा।

अब दूसरी चारपाई पर इतमीनान से बैठकर दीक्षितजी, वैशाली और हम डॉक्टर साहब की ओर ध्यानस्थ होकर देखने लगे।

डाक्टर साहब बोले—“एक बार ऐसा हुआ कि उत्तर प्रदेश के असनी ग्राम में अघरन नाम का एक नवयुवक पागल हो गया। कहावत प्रसिद्ध,

है कि मार से भूत भागता है। इसलिए जब अधरन का पागलपन कष्ट-कारक और चिन्ताजनक हो उठा, तो उसके बड़े भाई ने निश्चय किया कि किसी दबंग पहलवान की देख-रेख में उसको छोड़ दिया जाय। खोबने पर ठाकुर जगमोहनसिंह एक ऐसे ही व्यक्ति मिल गये। उन्होंने बड़ी शान के साथ कह दिया—“कैसा भी पागल क्यों न हो, मेरी डाँट के आगे भीगी बिल्ली बन जायगा। आप अब बेफ़िकर हो जाइये।”

स्वस्थ दशा में दूध के साथ भात खाना अधरन बहुत पसन्द करते थे। परन्तु इस अवस्था में जब उन्हें दूध के साथ भात दिया जाता, तब वे दूध-दूध तो पी जाते और भात को निचोड़कर गोली बनाकर उसके चावलों को मुँह में रखे रहते और जब कोई उनके आगे से निकलने लगता या सामने पड़ जाता, तब उसके मुँह पर सारे-के-सारे चावल बिलेर देते और कहने लगते—“पुष्पस्थाने अक्षतम् समर्पयामि।” जो समझदार होते, वे बिचारे चुपचाप सहन कर लेते। पर कुछ लोग ऐसे भी होते, जो उन्हें गाली दे बैठते और कोई-कोई तो ईंट-पत्थर तक का प्रयोग करने को तत्पर हो जाते। इसका परिणाम यह होता कि अधरन को डाँट के साथ-साथ ठाकुर साहब के बेत भी सड़ासड़ सहने पड़ते !

अपनी परिहास-कल्पना को चरितार्थ कर लेने पर अधरन को हँसने का जितना अवसर मिलता, उससे कहीं अधिक अन्त में उन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोना पड़ता। इस तरह अधरन ठाकुर साहब से बहुत डरने लगे। जब-जब वे कोई ऐसा उपद्रव करते, तब-तब मार तो उन्हें खानी ही पड़ती। पर इसके साथ उनका खाना भी बन्द कर दिया जाता ! प्यास लगने पर पूरे गिलास भर पानी की जगह उन्हें सिर्फ़ दो घूँट पानी पीने दिया जाता और गिलास छीनकर बाक़ी पानी उनके सामने ही गिरा दिया जाता ! अपनी यह हालत देखकर अधरन की आँखों में खून उतर आता ! पर जब इसकी प्रतिक्रिया में कुछ भी करते न बन पड़ता, तो वे दाँत किटकिटाकर या भीतर-ही-भीतर उन्हें पीसकर रह जाते और कभी अपने सिर के बाल नोचने लगते !

अधरन जिस घर में रहते थे, उसकी बाहरी दालान में कुछ तख्ते खूँटों के ऊपर बिछा दिये गये थे। इस तरह वे खूँटे ही तख्त के पाये बन गये थे। परन्तु कुछ खूँटे इन तख्तों के नीचे ऐसे भी रह गये थे, जो तख्त की सतह से नीचे पड़ते थे और इस कारण बेकार हो गये थे। पागल के सामने जब कोई काम नहीं होता, तब वह अपनी सीमाओं के अन्दर ही कोई-न-कोई काम खोज निकालता है। अतएव रस्सी में बँधे रहने पर भी अधरन ने इस तख्त के नीचे से दो खूँटे हिलाहिलाकर ढीले करते-करते उखाड़ लिये।

जैठ मास के दिन थे और संयोग की बात कि उस दोपहर के समय टाकुर साहब को नींद आ गयी थी। दुनियाँ में ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो प्रायः मुँह खोलकर सोया करते हैं। उधर अधरन ने इस परिस्थिति से लाभ उठाने की कल्पना उसी समय कर ली थी, जब उन्होंने खूँटे उखाड़े थे।

फिर क्या था, अधरन के सिर पर शैतान सवार हो गया !

कहते हैं, प्रकृति की ममता बड़ी विलक्षण होती है। तभी तो बच्चे को जन्म दे लेने के बाद माँ की छाती दूध से फूट पड़ती है ! लेकिन वही प्रकृति कभी-कभी इतनी निर्मम भी हो जाती है कि बच्चे को जन्म देते ही माँ के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं ! स्वस्थ और धनी-मानी माता-पिता की उपस्थिति में एक दूध क्या, पालन-पोषण के सभी साधन रहने पर भी हमारे देश में निरन्तर नित्य लाखों बच्चे समाप्त होते रहते हैं। पर माँ का दूध न पाने पर भी गरीब अहीर-गड़रियों के बच्चे भी अकसर पनप जाते हैं ! तात्पर्य यह कि

प्रकृति जहाँ ममता में माँ से भी अधिक सदाय है, वहाँ कठोरता में वह पाषाण से भी अधिक जड़ और निर्मम भी है।

अब अधरन को वे क्षण याद आ गये, जब दाल पी लेने के बाद उसने अपनी घी चुपड़ी रोटियाँ कुत्ते को डाल दी, तब इसी व्यक्ति ने उसकी नंगी पीठ पर—सड़ासड़ !—एक-दो नहीं पोंच-सात बेत मारे थे, जिनके

नीले चिह्न अब तक उसको पीठ पर बने थे। पीड़ा के मारे उस दिन वह दिन-रात कितना छटमटाता रहा था और उसके उस क्रन्दन पर इस आदमी के मुँह से सान्त्वना का एक शब्द भी नहीं निकला था !

तब उस दृश्य की याद करके अधरन ने क्रोध से अपने होंठ इतनी ज़ोर से काट लिये कि खून छलछला आया।

उसी समय अधरन ने दोनों खूँटे हाथ में ले लिये।

अब अधरन को वे क्षण भी याद आ गये, जब उसने अपनी थाली के थोड़े से चावल कौवों को चुगाने को छोड़ दिये, तो इसी बात पर ठाकुर साहब उसके गालों पर तड़ातड़ तमाचे-पर-तमाचे जड़ते चले गये और साथ में यह भी पूछते रहे—“मुटाई सूझी है ?”

उन पहलवानी जड़ हाथों के तमाचों से उसका मुँह इतना सूज गया था कि कई दिन तक उससे खाना भी न खाया गया था ! और जिस समय उसकी कनपटी पर वे तमाचे पड़ रहे थे, उस समय—उफ !

तब अधरन ने एक खूँटा सोते हुए ठाकुर साहब के उस खुले मुँह के कंठ में इतमीनान से खोंस दिया ! और जब उन्होंने आँखें खोलकर हाथ हिलाने की चेष्टा की, तभी दूसरे को भी उस पर दो तीन बार बिल्कुल उस तरह टोंक दिया, जिस तरह कोई बड़ई लकड़ी पर सुराग्न करने के लिए बसूला ठोकता है ! रक्षार्थ ठाकुर साहब के उठे हुए वज्र जैसे जड़ हाथ तख्त पर गिर पड़े। उनकी खुली हुई आँखें सदा के लिए खुली रह गयी ! तख्त पर बहता हुआ खून धार बोंधकर धरती पर गिरने लगा और अधरन इतने ज़ोर से अट्टहास कर उठा कि मुहल्ले भर के लोग दौड़ पड़े।

लेकिन अफ़सोस कि तब तक खेल समाप्त हो चुका था !

यवनिका-पतन के समय अधरन उस लाश से पूछ रहा था—

“मुटाई सूझी है !

मुटाई सूझी है !

मुटाई सूझी है !!”



जान पड़ा, जमना को एल्लु भ्रूयकी-सी लग गयी । डॉक्टर साहब उठकर जब चलने लगे, तब मैं भी दीक्षितजी से विदा लेकर उपेन्द्र के पास चल दिया ।

भाईसाहब की गाड़ी मैंने उसी समय वापस कर दी थी । इसलिये थोड़ी दूर तक फिर डाक्टर साहब के साथ आना पड़ा । रास्ते में उन्होंने यह भी बतलाया कि इस घटना के बाद अधरन जीवित रह नहीं पाये । कहते हैं, उन्हे घर के लोगों ने ही पानी में डुबोकर इस संसार से विदा कर दिया था !

## पच्चीस

काफे बन्द हो चुका था । द्वार पर केवल एक पहाड़ी, फ़ौजी पोशाक में, टहर-टहर कर भारी कदम रखता और बीड़ी सुलगाता हुआ पहरा दे रहा था । नीम का पेड़ चुपचाप खड़ा था; लेकिन उसकी पत्तियाँ पवन-भूकरोँ से डोलती हुई साँय-साँय बोल रही थी । उनसे एक अति शीतल, अमन्द-मर्मर स्वर निकल रहा था, कुछ ऐसी अभिधा के साथ, कि कौन इतनी परवा करता है ! कह गये थे कि जल्दी ही लौट आयेगे । इसलिये दस-ग्यारह बजे तक इन्तज़ार कर लिया । इतना काफी है । सरदी के दिन हैं; कौन बैठा रहे ! बस, इसके आगे यही तो कहना रह गया कि जाओ चुपचाप अपना रास्ता पकड़ो । तुम्हारे जैसे सनकी आदमी के लिए अब यहाँ कोई उठनेवाला नहीं है !

जान पड़ा—इस स्वर में पिता का सदय हृदय नहीं, उनकी स्पष्ट उपेक्षा है । जान पड़ा—इस मूक, जड़, स्तब्ध अर्धरात्रि के सन्नाटे में प्रतीक्षा की खुली दृष्टिवाली माँ की ममता भी नहीं, एक अप्रासंगिक बाधा जैसी मुखरित हो उठनेवाली बड़बड़ाहट है । स्वर भले ही उसका मूक हो, पर मूल भाव तो स्पष्ट लक्षित हो रहा है ।

तभी लोहे की एक पतली जंजीर के साथ नीम की जड़ से एक कुत्ता

बँधा हुआ था, जिसके ऊपर किसी पुराने कम्बल का एक टुकड़ा पड़ा था। उसके घने काले बालों वाले कान इतने बड़े थे कि उस मन्द प्रकाश में भी वे बड़े सुन्दर लग रहे थे।

ताँगे से उतरकर काफ़े के द्वार के समीप पहुँचते ही जब इस कुत्ते ने नाक-मुँह उठा पूँछ हिलानी शुरू की, तभी वह पहाड़ी पहरेदार बोला—“शब बन्द हो चुका। आजकल शरदी ज्यादा पड़ता।”

‘स’ के स्थान पर ‘श’ का प्रयोग पहाड़ी उच्चारण की विशेषता समझ लेने पर उतना बुरा नहीं लगा।

मैने पूछा—“तुमसे किसीने मेरे आने पर दरवाज़ा खोल देने को नहीं कहा?”

बीड़ी फेंकता हुआ वह बोला—“हम कहने का काम नहीं करता। हमारा रात का ड्यूटी। बश।”

चुपचाप लौटकर ताँगे पर आ बैठा और कह दिया—“कैरोलबाग।”

घड़ी पर दृष्टि डाली, तो देखता हूँ—बारह बज गये हैं। ठंडी हवा के झकोरे खाकर पेड़ों की पत्तियों से एक मर्मर संगीत-सा फूट रहा है। श्रम-शिथिल क्लिन्नमन मानव, रुई की मुलायम फुहियो से भरी रजाई के भीतर, नींद की कोमल प्यारी बौह अपनी ग्रीवा के नीचे लगाये, विश्व के शून्य मूक पारावार में पलक झपकाये चुपचाप पड़ा सो रहा है। एक मै हूँ कि समय पर न खाने का ध्यान है, न विश्राम के खेलों का आकर्षण। एक मात्र अपना उत्तरदायित्व देखता और निमाता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूँ! कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि सच्चे और कर्तव्यनिष्ठ आदमी ही अधिक कष्ट पाते हैं और अति गम्भीर, सरल और ईमानदार आदमी का मुँह कुत्ते चाटते हैं!

तब चेस्टर के कालर से कान टकते हुए मेरे मुँह से निकल गया—

“चले चलो ताँगेवाले। मुझे अभी बहुत भोगना है—बड़ी दूर जाना है”

“यह भी अच्छा हुआ कि वचन का मोल चुकाने के लिए स्नेह के अत्यधिक आग्रह और अनुरोध का भोजन जब स्वीकार नहीं किया, तब अन्त में रात भर निराहार रहना पड़ा। पर इस सम्बन्ध में सब से अधिक स्मरणीय रहेगी यह बात कि उस समय भी तू जग रही थी वैशाली।”

“एक कल की रात ही नहीं, मैं तुम्हारे लिए अनन्त युगों तक इसी तरह अपलक जगती रहूँगी भाई साहब।” फिर कुछ ठहरकर दस्तानों के मुलायम रोश्रों से अपने अरुण कपोलों का शीत निवारण करने की विलस चेष्टा करती हुई वैशाली बोल उठी—“पर यह खूब हुआ कि कल रात तुम्हारा भोजन ही गोल हो गया ! लेकिन तुम मानोगे नहीं भाई साहब; तुम्हारे जाते समय मेरा मन बार-बार यही कह रहा था—“ये जहाँ जा रहे हैं, वहाँ इनके लिए इतनी रात तक प्रतीक्षा में कोई बैठा तो रहेगा नहीं। इसलिये इनका लौट आना ही निश्चित है।”

“कर्तव्य का प्यार ऐसा ही कटोर होना है वैशाली।”

“और प्यार का कर्तव्य?” वैशाली ने जब पूछा, तब मुझे छोटीभाभी का ध्यान आ गया। सोचा—ऐसा न हो कि वे किसी दिन... ! फिर तत्काल सम्हलकर कह दिया—“प्यार का कर्तव्य असमय में भी भाई की आवाज़ पहचानकर अपने कक्ष से लेकर मुख्य फाटक तक के कपाट खोल देता है !

“विवाह होने से पूर्व जो व्यक्ति भाई होता है, वही विवाह के बाद पति बन जाता है। इस तरह कभी भाई और कभी पति बननेवाला व्यक्ति नहीं बदलता, उसका मनोभाव मात्र बदलता है। अर्थात् प्रत्येक भाई पति हो सकता है और प्रत्येक पति भाई।

“सम्यक्ता की आँखें फूट जायेंगी वैशाली, यदि मनुष्य की भावना मर जायगी। तर्क उस समय अन्ध साधु की सी लकड़ी टेक-टेककर चलेगा। अनुभव की आँखों से देखो, तो तुम्हें पता चलेगा कि हमारे सामाजिक संस्कार सहोदर भाई को ही नहीं, अन्य भाइयों को भी जीवन-भर भाई ही बनाये रखते हैं। पति बन जानेवाले भाई उनकी छाया भी

नहीं पा सकते। क्योंकि अन्ध व्यक्ति की दृष्टि छाया और प्रकाश के भेदाभेद से परे होती है।”

इतने में चाय आ गयी और लिहाफ की गरमाहट का मोह त्यागकर मुझे उठना ही पड़ा। दीक्षितजी से रात को उस समय भेंट नहीं हो पायी थी। इसलिये उन्होंने निकट आते ही सम्यक् विस्मय से पूछा—“अरे ! तुम कब आ गये ?”

मैंने कह दिया—“रात को ही।”

इसी समय मों आ गयी। हाथ दुशाले के भीतर ढके हुए थे और आगे का दाँत आज गायब था ! कुछ गम्भीरता के साथ यकायक बोली—“पिताजी के यहाँ हो आये ?” अब मुझे ध्यान आया—“पिताजी के सम्बन्ध की बात अभी किसी से कहना नहीं, मधू से यह बात कहना तो मैं भूल ही गया था। शिव-शिव ! कितना अनर्थ हो गया मुझसे ?

दीक्षित जी अधीर आश्चर्य के साथ बोले—“क्या कहा ! पिताजी के यहाँ !!”

“हाँ, बात चाहे जितनी आश्चर्यजनक हो, पर है सही।” कहते-कहते अब मुझे पिताजी के सम्बन्ध की सारी कथा उनको भी बतलानी पड़ी, जिसे सुनकर वे मों की ओर देखकर स्तब्ध रह गये !

वैशाली इसी समय टोस्ट के ऊपर लिपटे मक्खन की तह पर दाँत जमाती और फिर दो-तीन बार मुँह चलाती हुई बोली—“मुझे तो इस समाचार को सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। नवयुग और नयी पौध को रात-दिन कोसनेवाले लोगों को एक बार यह सोचने का अवसर तो मिलेगा कि जहाँ तक जीवन की आधारभूत आवश्यकता और भूख-प्यास का प्रश्न है, मनुष्य न कभी नया है, न पुराना। वह जहाँ का तहाँ खड़ा है। चाचाजी ने वही किया, जो हम लोग सदा सोचते रहते हैं।”

माँ इसी समय व्यग्रता-सी प्रकट करती हुई रोष के साथ बोल उठी—“इस मामले में तुझे ज़बान खोलने की ज़रूरत नहीं है वैशाली। समझती है कि नहीं !”

दीक्षितजी बोले—“मगर उनसे मिलना तो पड़ेगा ही माँ ।”

“माना कि मिलना पड़ेगा ।” कहकर दायों हाथ दुशाले से बाहर न तो हुई माँ बोली—“पर मिलने-मिलने में अन्तर होता है । बहू ने जबसे सुना है, तब से वह बिचारी सोच-विचार में पड़ गयी है । रात-भर उसे नींद नहीं आयी । बारम्बार वह यही कह उठती थी कि मालूम नहीं, क्या होनहार है !”

इतने में मधू चेस्टर के भीतर से निकली हुई साड़ी के बार्डर को सिर से मस्तक तक बढ़ाती-बढ़ाती झूट सामने आ पहुँची । उसकी आखें उनीदी हो रही थी । उसके पलक यद्यपि नीचे को झुके हुए न थे; फिर भी जान पड़ता था, मानों वह सो नहीं पायी है ।

वैशाली के पासवाली कुरसी खाली पड़ी थी । मधू उसी पर आकर बैठ गयी । दीक्षितजी का आधा कप समाप्त हो चुका था, पर मुझे तो यह जानने की उत्सुकता थी कि जमना की रात किस तरह कटी । यद्यपि वैशाली से मैं यह सुन चुका था कि वह इस वक़्त भी सो रही है ।

माँ बोल उठी—“तीन बजे तक तो दुलहिन को नींद आयी नहीं । क्यों ?” तभी वैशाली चाय का दूसरा दौर शुरू करती हुई बोली—“चाहे आपसब लोग एक तरफ से असहमत हो जायें; लेकिन मै, ... मैं चाचाजी को ज़रूर मिलूँगी । मै उन्हें विश्वास दिलाऊँगी कि हम सब लोग आप के साथ हैं ।”

जान-बूझकर इसी समय मैंने मधू से पूछ दिया—“जमना को देखने गयी थी मधू ?”

उदास-उदास मधू बोली—“गयी थी मैया ।” फिर वैशाली की ओर देख कर—“साथ में बिटिया भी तो थीं । मालूम नहीं क्यों, इनसे वह बड़े प्रेम से पूछ रही थी—“ह्याट काइंड अफ़ लाइफ़ यू प्रिफ़र—मैरिड ऑर अनमैरिड ?”

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—“अच्छा, तो जमना अँगरेज़ी बोल रही थी !”

इसी समय कमरे के दरवाज़े के सामने श्रवण आ पहुँचा । सींग एक

दिया। लेकिन उन्होंने अगर एक अन्य स्त्री के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ ही लिया, तो यह कोई ऐसा अमानवीय अपराध नहीं है, जैसा तुम समझती हो। आखें पसारकर देखो, तो तुमको पता चलेगा कि हमारे राजनीतिक प्रभुओं में अनेक इसी तरह के अज्ञात पंछी हैं।”

तब माँ ने तर्जनी उठाते हुए अत्यन्त दृढ़ होकर कहा—

“अकेले वे ही नहीं, सारी दुनियाँ वैसी ही हो जाय, लेकिन इस घर में बात मेरी ही चलेगी। हमारा कोई आत्मीय साथ बैठकर खाना तो दूर रहा, उनसे मिलने भी नहीं जायगा। अगर मेरी इस आज्ञा का पालन न हुआ, तो उसी दिन मैं नहीं, मेरी लाश इसी जगह पर पड़ी मिलेगी।” और इसके बाद तुरन्त वे कमरे से बाहर हो गयी।

कमरे में सन्नाटा छा गया। सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। मधू फटकर रो पड़ी। दीक्षितजी वहाँ से चले गये और वैशाली बोली—  
“देखा भाई साहब आपने एक इसी घर में नहीं, सभी घरों में इसी तरह का एक-न-एक नाटक नित्य होता रहता है।”

तब मधू को लक्ष्मण ने कह दिया—“रोने का कोई प्रयोजन नहीं है मधू। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कोई-न-कोई रास्ता निकलेगा ही।”

“रास्ता तो निकला-निकलाया है। हम सब ने मिलकर उस पर चलना भर अभी नहीं प्रारम्भ किया है।” वैशाली ने जब्र कहा, तब श्रवण सामने पल्ल उटाकर हम लोगों की ओर साभिप्राय देख रहा था।

...  
मेरे सामने यह देहली जंकशन है। दिन के ढाई बजे हैं। सियालदा-देहली एक्सप्रेस के आने का समय है एक-चालिस, लेकिन गाड़ी आयी है अब। मैं गेट के पास खड़ा हुआ हर आदमी के मुख पर लालाजी के चेहरे की छाप देख रहा हूँ। ज्यों-ज्यों आदमी आते जाते हैं, त्यों-त्यों मेरी उत्सुकता चिन्ता और अधीरता में परिणत होती जाती है। अन्त में लालाजी और राय चन्द्रनाथ एक साथ मिल गये। यह भी मालूम हुआ कि लालाजी ने रायसाहब को तार से सब कुछ सूचित कर दिया था।

रायसाहब चेष्टा से बहुत चिन्तित से जान पड़ते थे । उनका चेहरा पीला पड़ गया था और उनके नथुने, होंठ और भृकुटियों में पैलाव, कम्पन और उतार-चढ़ाव आ-जा रहा था । उनका कहना था कि मैं तो समझ रहा था कि जमना बम्बई में है; और मुझे इस बात की आशंका भी न थी कि होनहार इस सीमा तक निर्दय होती है !

मेरे मन में आया कि इसी समय क्यों न साफ़-ही-साफ़ कह दूँ कि जिस दशा में मुझे जमना मिली थी, अगर आपको मिलती, तो आपकी छाती फट जाती । लेकिन उस समय ऐसा कुछ कहना मैंने उचित नहीं समझा । वरन् कह यह दिया कि घबराइये नहीं, कल से आज उसकी हालत कहीं सुधरी हुई है ।

लालाजी का मुख यद्यपि लपट खायी हुई अमिया की तरह झुलसकर सिकुड़-सा गया था; लेकिन अपने जामात्र की ओर वे जब तिरछी दृष्टि से देखने लगे और नीचे के होंठ पर उनके दाँत आ जमे, तब उससे एक प्रकार के निर्मम प्रतिशोध का-सा भाव लक्षित हो उठा । संयोग से जब मैं उनसे बात करने लगा, तो गय चन्द्रनाथ आगे जाते हुए हम लोगों से कुछ दूर हो गये थे । इसलिये अवसर पाकर लालाजी बोल उठे—“इस आदमी को समझने में इतनी बड़ी भूल मुझसे हो गयी है कि मुझे जीवन भर पछताना पड़ेगा !”

मैंने कहा—“पता नहीं किस सम्बन्ध में आपको इतनी बड़ी भूल का अनुभव हो रहा है !” तब हाथ में लटकाये हुए चेस्टर को कन्धे पर रखते हुए लालाजी बोले—“यह तो फुरसत में बतलाने की चीज़ है राजेन । यहाँ इस वक़्त कैसे ... !”

बात अधूरी रह गयी । क्योंकि इसी समय क्रमागत रूप से उन्हींके गेट से निकलने का अवसर आ गया ।

इतने में उनका कुली जो हम लोगों की निरीक्षण-सीमा से आगे बढ़ने लगा, तो मैंने कह दिया—“ये नम्बर ३२०, ज़रा ठहरो !”

कि एक साहब जो ओवरकोट का लबादा कसे हुए थे, मेरी ओर

देखते और मुसकराते हुए बोल उठे—“वाह साहब, आपने तो एकदम से एक-सौ की सख्या कम कर दी !” तब अनायास मेरे मुँह से निकल गया—“ओः आप है, तब तो ज़रूर गलती हो गयी !”

बात मुँह से निकल चुकी थी और उसको वापस लेने का कोई साधन न था ।

वे महाशय अपनी बात कहकर कुछ आगे बढ़ गये थे, फिर भी मेरे उत्तर पर एकदम से लौटकर क्षणभर मेरी ओर देखते रह गये । यद्यपि वह मसकराहट अब तिरोहित हो गयी थी और आँखें औसत से कुछ छोटी हो गईं जान पड़ती थी, ऐसा जान पड़ा, जैसे जवाब खा जाने के कारण कुछ खिसिया गये हों । कदाचित् इसीलिये भैंस मिटाने के उद्देश्य से मेरे कुछ पास आकर आगे हाथ बढ़ाते हुए बोले—“आपने मुझे ला-जवाब कर दिया, इसलिये कम-से-कम हाथ तो मिला ही लूँ ।”

“इस उदारता के लिए घन्यवाद” कहते हुए मैंने भी हाथ बढ़ा दिया । पर फिर साथ-ही-साथ इतना और कह दिया कि हो सकता था, आपकी इस टिपणी को अनसुनी भी कर जाता; पर इस विनोद के भीतर मुझे एक और चीज़ मिली । ऐसा जान पड़ा, जैसे आप यह भूल ही गये कि आपका यह मज़ाक उस आदमी के मत्थे पर चोट कर रहा है, जो एक तो आपसे मर्यादा में हीन है, दूसरे इस समय बोझ से दबा हुआ है ! ज़रा सोचिये, क्या यह अवस्था उसके प्रति इस तरह का मज़ाक करने की है ?

मैं सोच रहा था, वे उत्तर देंगे—“सैंस-अफ़ ह्यूमर’ यह सब कुछ नहीं देखता ।” परन्तु वे महाशय तो मेरी ओर ताककर रह गये । यहाँ तक कि जब हमारी तांगा-टैक्सी मुख्य सड़क की ओर बढ़ने लगी, तब तक वे मेरी ओर देखती ही रहे ! मैं भी रास्ते भर अपने इस रूप की आलोचना करता रहा । ... हम लोग जब दीक्षितजी के बँगले पर पहुँचे, तब जमना अकेली लान पर चुपचाप बैठी थी । उसके सामने फलों का ढेर पड़ा था और एक अधखाया हुआ सेब उसके हाथ में था ।

एक अमरूद को लक्ष्यकर वह कह रही थी—“तुम हमारे देस से



आये हो, हमारे नगर से। इसलिये ना भई, मैं तुम्हारा भक्षण न करूँगी ! तुम्हारा हाल-चाल भर पूछूँगी और तुमको देखती रहूँगी प्यार से—दुलार से। क्योंकि तुम प्रकृति के खिलौने हो !”

लान के उत्तरी कोने में श्रवण खड़ा था और उसके एक सींग पर हरी दूब लटक रही थी।

लालाजी ने निकट जाते ही जमना को अपनी छाती से लगा लिया। उनकी आँखें सजल हो आयीं और वे बोले—“तुमने बहुत दुःख पाया बेटा। मैं जानता हूँ। लेकिन ..।”

जमना लालाजी को पहचान गयी थी। बोली—“आप कभी रोया मत कीजिये बाबू। आज तक मैंने किसी पहाड़ को कभी रोते नहीं देखा।”

इस पर लालाजी रो पड़े।

इतने में रायचन्द्रनाथ सामने आ गये। उनको समझ देखते ही जमना की चेष्टा बदल गयी। बोली—“अच्छा तो आप अभी ज़िन्दा हैं ! अरे ! मैं तो कुछ और समझ रही थी। लो भई राजहंस, आप भी आ गये। ...मगर राजहंस कहाँ !—आप लोगों में से किसी को राजहंस का कुछ पता चला ? कुछ मालूम हुआ कि वह किस दशा में है ? ...अच्छा तो आप को कुछ नहीं मालूम ! चलती ट्रेन में उसे मैंने ...मगर मैंने कुछ नहीं किया ! क्योंकि मुझे कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। वह तो खुद ही शराब में डूब गया था। है-है ! शराब में डूबने पर गेट पर से क्या कोई मुसाफ़िर गिर नहीं सकता !” जमना इसके बाद इतने जोर से अट्टहास करने लगी कि अन्दर से मों तथा मधू भी बाहर आ गयी। सशंकित लालाजी मेरी ओर देखने लगे। तब एक पर्यटि के पेड़ के पास मैं उन्हें एकान्त में ले गया। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया—“हो सकता है कि किसी प्रतिक्रिया में पड़कर जमना ने सचमुच ...क्योंकि खयाल आता है, भौंसी और ...के बीच मैं कही रात के वक्त ट्रेन से किसी के गिर जाने का समाचार किसी पत्र में आया था।”

पहले सिर को खुजलाते और फिर उसे हिलाते हुए लालाजी

बोले—“हाँ-हाँ, याद पड़ता है, आया था। मैंने भी पढ़ा था। इसके सिवा तुमने देखा नहीं—और तुमको देखने का मौक़ा भी क्यों आने लगा—जब कभी जमना को गुस्सा आता है तो वह काट खाती है !”

तब मुझे हँसी आ गयी और मैंने कह दिया—“मुझे भी काट खाया है उसने, जब मैं उसे गाड़ी पर ज़बरदस्ती बिटाल रहा था ! इसलिये अच्छा तो यही होगा कि इसे सीधे मेंटल हास्पिटल भेज दिया जाय ।”

इतने में मैंने देखा, जमना ने अपना सिर और दायाँ हाथ रायचन्द्रनाथ की छाती से लगा लिया है और रायचन्द्रनाथ उससे कह रहे हैं—“तुम ज़रा भी चिन्ता मत करो। हम तुमको बहुत जल्दी अच्छी दशा में देखेंगे। विश्वास रखो। धीरज धरो ।”

धूप की सारी उष्णता शान्त हो चुकी थी। समय भी सवातीन के ऊपर हो गया था। वैशाली मेरे पास आकर कह रही थी—“माँ कह रही हैं—सब लोग कमरे के अन्दर हीन चल के बैठें ।”

तभी मधू ने आकर हाथ जोड़कर लालाजी को नमस्कार किया, तो लालाजी ने उसे आशीर्वाद देते हुए कह दिया—“हमेशा खुश रहो बेटी ।”

इतने में वैशाली मुसकराती हुई बोल उठी—“ऐसा ही कुछ मुझे भी आशीर्वाद दिया होता बाबा” ।

छड़ी से गिट्टी हटाते हुए सिर ऊँचाकर लालाजी बोले—“रामायण में एक चौपाई आती है—‘सुनु सिय सत्य असीस हमारी—पूजहि मन-कामना तुम्हारी ।’ याद है ?”

वैशाली मुसकराती हुई बोली—“जी” ।

तब लालाजी ने कह दिया—“तो बस, यही आशीर्वाद तेरे लिए रहा !”

वैशाली इस आशीर्वाद को सुनकर प्रसन्नता से जैसे उछल पड़ी हो। पहले तो उसने मेरी ओर साभिप्राय देखा, फिर लालाजी से कह दिया—“आप धन्य है ।”

इस समय मेरे मन में आया और गया कि क्या कुछ अच्छा होनहार है ? क्या कहीं से हर्ष-सवाद मिलनेवाला है ? सामने देख रहा हूँ, गया

बछड़े को दूध पिला रही है। बछड़ा अपनी पूँछ हिला रहा है और गैया उसका बदन चाट रही है !

मधू ने आगे कमरे की ओर सकेत किया और वैशाली जमना और उसके पति को ले आने के लिये उनकी ओर बढ़ गयी।

श्रवण उस समय वैशाली का सिर सूँघ रहा था।

अब मैं विचार-मग्न हो गया। अभी-अभी यह जमना जो कुछ बतला रही थी, उसमें झूठ तो कुछ हो नहीं सकता। तब प्रश्न उठता है—मुखली-बाबू किसी हास्पिटल में पड़े जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं—या वे किसी अन्य लोक की शोभा बढ़ाने लगे !...लेकिन क्या इस नारी में अपनी रक्षा के लिये शक्ति के साथ-साथ इतना तेज अभी बाक़ी है ?...बाक़ी नहीं है, तो उसने मेरे गाल पर अभी कल जो तमाचा जड़ दिया था, जिसकी थोड़ी-बहुत पीड़ा मैं अब भी अनुभव कर रहा हूँ, वह क्या था ? और हाथ में उसने यह जो काट खाया था, यह...यह क्या था ? हाथ पर तो दाँत के चिह्न अब मिट भी गये हैं; पर हृदय पर तो वे अमिट हो चुके।

कमरे में हम लोग कुछ इस तरह से बैठ गये कि मेरे बायें ओर हुए लालाजी और सामने जमना और उसके दायें ओर रायसाहब। बीच में रहा हमारा टेबिल।

मैंने देखा है, बहुधा लोग रूप-लावण्य को आँखों से पीते हैं। मैं पीता नहीं हूँ, प्याले के स्पर्शमात्र से यह अनुभव कर लेता हूँ कि वह ठण्डा है या गरम—लेमन है या काफी। रंग भी अब मैं नहीं देखता। क्योंकि उसमें भी धोखा है। शीशे के सफेद गिलास में श्वेत पेय को देखकर कौन कह सकता है कि वह रम है ? क्योंकि रंग में तो वह गंगाजल से भी उज्ज्वल जान पड़ती है। तब परीक्षा की तीन ही कसौटी रह जाती हैं—गुण, कर्म और स्वभाव।

मैंने कहा न था कि मैं विचार-मग्न हूँ। इसलिये इस स्थल पर पहुँचते-पहुँचते जब कलेवा की सामग्री आती जान पड़ी, तब लालाजी ने जमना से पूछा—“क्यों जमना, हमें मालूम हुआ, तुमने कल अपने

राजेन्द्र भैया के हाथ में काट खाया था ! ऐसी कटो तो तू कभी थी नहीं ।”

लालाजी के इस कथन पर जमना सिर उठाकर कम्पित अधर और विस्फारित नयनों से मेरी ओर कभी झुककर, तिरछी होकर, कभी नाक-भों सिकोड़कर, कभी दृष्टि को नीचे से ऊपर उठाकर और कभी इकटक होकर देखती रही । फिर धीरे-धीरे बुदबुदाती हुई बोली—“मैंने आपको पहचाना नहीं था । मैं...मैं आपसे ज़मा की भीख माँगती हूँ । आपने कान्ता देखा है ? और कभी मृगी के सामने आ पड़ने पर आपकी बन्दूक धरी रह गयी है ?” और बस, इतना कहकर दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर वह राय चन्द्रनाथ की गोद में गिर पड़ी । इस भाँति अब यह स्पष्ट हो गया कि जमना इस समय कुछ चेतन अवस्था में है और उसको अपने इस प्रमाद पर दुःख है ।

इसी समय दासी चाय और उसकी कम्पनी की सामग्री भी ट्रे में ले आयी और वैशाली पीछे से आती और एक सचित्र साप्ताहिक के पन्ने उलटती हुई कहने लगी—“डाक्टर साहब को मैंने फोन किया था । यही बिल्कुल पड़ोस में आये हुए हैं । अभी आये जाते हैं । और भैया ने कहा है—‘पॉंच बजे से पहले शायद मेरा आना न हो सके ।’”

लालाजी ने उत्तर में कह दिया—“कोई बात नहीं । डाक्टर साहब तो आ ही रहे हैं, जिनसे हमें मुख्य काम है ।”

यकायक जमना चौंक पड़ी । बोली—“फूल के एक काँटे ने मुझे बुलाया है । मेरे कान में एक भ्रमर बोल रहा है । मैं उस काँटे को निपटाकर आती हूँ ।” वह उठकर जाने लगी, तो रायसाहब ने उसे अपनी ओर खींच लिया । फिर कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे जमना सिसकियों भर-भर कर रो उठी है । राय साहब उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए थे और बार-बार हम लोगों की ओर देखने लगते थे । जान पड़ा, जैसे वे जमना से कुछ-न-कुछ कहना चाहते हैं, पर संकोच के कारण कह नहीं पाते ।

उधर वैशाली संयोग से वही आ खड़ी हुई और यह दृश्य देखती हुई

तुरन्त बोल उठी—“ओः मुझमें एक गलती हो गयी। अब ? अच्छा भाई साहब एक काम कीजिये कि इन जमना बहिन और जीजाजी को यहाँ थोड़ी देर एकान्त में रहने दीजिये। और आप लोग इधर इस कमरे में आ जाइये। ठीक है न ?”

वैशाली की बुद्धिमत्ता तो अपनी चीज़ है। मै क्षण भर उसे देखता रहा। उस समय कुछ ऐसी कल्पना मेरे मन में पकती हुई खिचड़ी की तरह खुद-बुद करने आ पहुँची कि मैं स्वयं अपनी दृष्टि में ही हीन, लुप्त और पतित होकर कॉप उठा !

हम लोग जब तुरन्त उठकर दूसरे कमरे में जाने लगे, तब रायसाहब जमना से कह रहे थे—“रोओ मत, देखो, ये लोग क्या कहेंगे !” तब कुछ ऐसा हुआ कि उस समय मैं अपने को रोक न सका और मेरे मुँह से निकल गया—“लोग क्या कहेंगे, इस बात की चिन्ता जमना के बजाय यदि थोड़ी भी आपको होती, तो आज यह दिन न देखना पड़ता ! इसलिये जमना अगर रोना चाहती है, तो उसे जीभर रो लेने दीजिये। क्योंकि आप को पता होना चाहिये कि जब पगली रोती है, तब धरती के नयन गा उठते हैं और...”

इतने में हम आगे बढ़कर बगल से लगे दूसरे कमरे में जा पहुँचे। अब उधर के कपाट बन्द कर दिये गये और बात अधूरी रह गयी। लेकिन लालाजी तब न भी माने; पूछ ही बैठे—“और क्या ?”

जिस कारण बात मैंने जान-बूझकर अधूरी छोड़ दी थी, अब उसका भय जाता रहा था। इसलिये मैंने कह दिया—“और मूर्ख जब उपदेश देने लगता है, तब देवताओं को उपवास करना पड़ता है !”

इसी समय वैशाली दासी के साथ, चाय और उसके रिश्ते की सामग्री लिये इस कक्ष में आ पहुँची। पाँचाल देश की चुन्नी उसके कंधे से खिसकी पड़ रही थी। उसे सम्हालती-सम्हालती फिर लालाजी के आगे कप रखकर उसमें चाय ढालती मुसकराती हुई वह कहने लगी—“डॉक्टर

साहब भी खूब है। बिल्कुल पास के कमरे में खड़े-खड़े छिपकर दोनों की बातें सुन रहे हैं।”

इसी क्षण लालाजी बोल उठे—“मैं तो कुछ लूँगा नहीं बेटी।”

वैशाली ने कन्धे-से खिसकती चुन्नी को उठाकर फिर से कन्धे पर डालते हुए कहा—“क्यों बाबा, ऐसी क्या बात है?”

“इच्छा नहीं है बेटी।”

“इच्छा भी तो आवश्यकता का ही दूसरा नाम है बाबा।” कहती हुई वैशाली चीनी घोल रही थी।

“है, पर हमेशा नहीं। क्योंकि हो सकता है, आवश्यकता होने पर भी इच्छा न हो। और मुझे तो आवश्यकता भी नहीं है।”

“आप शायद सोचते होंगे कि कौन जाने, जमना दीदी ने कुछ खाया हो, न खाया हो। पर आपको मालूम होना चाहिये बाबा, कि आज हमारे यहाँ खाने योग्य बढ़िया-से-बढ़िया चीज़ें बनायी गयी थी। और दीदी को तो आग्रह कर-करके खीर-पूड़ी मैंने खुद अपने हाथ से खिलाई थी। सो भी तब, जब वे अपने मन का भोजन कर चुकी थीं। आपने देखा नहीं, वे आपके आते समय कितनी खुश थीं! मुझे भी उनसे बात करने में बड़ा मज़ा आता है।...लीजिये, यह कप तो आपको पीना ही होगा।”

लालाजी ने आधा कप मुश्किल से पी पाया होगा कि इसी समय मधू आ गयी। बोली—“जमना बहन को राय साहब अभी इसी समय लिये जा रहे हैं। उनका कहना है कि ढेरदार कर देने से फिर रात हो जायगी।”

इस पर जब लालाजी कुछ नहीं बोले; केवल मेरे मुँह की ओर देखने लगे।

तब मैंने कह दिया—“ले जाने को हम उन्हें मना तो कर नहीं सकते; लेकिन जमना को तबियत कैसे सुधरेगी, मुख्य प्रश्न तो यह है।”

तब लालाजी उठ बैठे और कमरे के बाहर जाते हुए जब बिल्कुल द्वार पर आ गये, तब बोले—“ज़रा इधर आना राजेन।”

मैं जब उनके पास पहुँचा, तो आग्नेय दृष्टि से उन्होंने कह डाला—

“मुझे तो कुछ ऐसा ज्ञान पड़ता है, जैसे यह चन्द्रनाथ पूरा गणूनाथ है। इसके सिवा यह भी हो सकता है कि वह...।” और इसके बाद बिल्कुल कान के पास मुँह ले जाकर उन्होंने कह दिया—“इम्पोटेंट भी हो। नही तो जमना जैसी लड़की को कोई भी पति ऐक्ट्रेस बनाने को कभी तैयार हो नहीं सकता था।”

“कुछ ऐसी ही बात सोचता मैं भी हूँ” मैंने कह दिया। और हम फिर उगी कमरे में लौट आये। मधू से मैंने कह दिया—“राय साहब को यहाँ भेजना तो मधू।”

लालाजी बोले—“मैं कुछ न बोलूँ, यही ठीक है। बोलने पर खैरियत नहीं है। मैं चाहता हूँ, किसी तरह जमना की सेहत ठीक हो जाय, उसके बाद तो मैं उसे हर तरह से सुखी देखने की कोशिश करूँगा। समाज का डर पालकर कोरे आदर्शवाद का खोल अब मुझसे न पहना जायगा।”

राय साहब ज्यों ही अन्दर आये, त्यों ही मैंने पूछा—“क्या अभी चले जाने का विचार कर लिया?”

वे आते-आते पास ही शीशे की खुली अलमारी में झलकते हुए ब्रश को निकालकर पहले तो अगनी टोपी साफ़ करने लगे, फिर बोले—“हाँ, डाक्टर साहब को जब घर पर ले ही जाना है, तब सोचा—उनकी गाड़ी पर ही क्यों न चला जाऊँ?”

इतने में मधू पान ले आयी।

राय साहब पान लेकर चलने लगे, तो लालाजी भी पीछे हो लिये और बोले—“आज तो मैं बहुत थका हूँ। कल आने की कोशिश करूँगा।”

पोर्टिको में गाड़ी खड़ी थी। जमना और राय साहब पीछे बैठ चुके थे। स्टियरिंग ग्रहण करते हुए डाक्टर शर्मा बोले—“आप लोग विशेष चिन्ता न करें, हमने इस मामले को भली प्रकार समझ लिया है और जल्दी सुधार हो जाने की हमें पूरी आशा है।”

पर जब उन्होंने गाड़ी स्टार्ट कर दी, तब जमना अभी बिल्कुल पास

खड़ा पाकर कहने लगी—“कल मैंने आपको काट खाया था, पर अब आप मुझे काट रहे हैं !”

उसके नेत्र विस्फारित थे, केश विश्रुंखलित और होंठ फटे हुए !

## छब्बीस

**जी**वन में जो घटनाएँ प्रायः हुआ करती हैं, उनमें हमारे कार्य-कलाप

का योग बिल्कुल नहीं होता, ऐसी मेरी मान्यता नहीं है। इसलिये जिन घटनाओं के साथ मेरा थोड़ा भी सम्बन्ध नहीं, वे मेरे साथ जुड़ी क्यों और उनका फल मुझे भोगना क्यों पड़ा, यह प्रश्न कभी-कभी मेरे मन में उठा और उभरा है। कितने ही स्त्री-पुरुष मुझे मिले और फिर मिलते रहे। कभी-कभी उनका संग-साथ भी हो गया। अवसर पड़ने पर मैंने उनके लिये कभी-कभी कुछ किया भी। इस इच्छा से नहीं कि हमें उसका प्रति-दान मिलेगा। इस उद्देश्य से भी नहीं कि मैं उनके ऊपर कोई कृपा कर रहा हूँ। बस, केवल इसलिये कि ऐसे कार्य तो मैं स्वभाववश करता ही रहता हूँ। जब कभी ऐसे कार्यों का परिणाम उलटा हुआ, तब मान-वी सहृदयता भी मेरे लिए एक दुःखद प्रसङ्ग बन गयी, सोचा और निरन्तर सोचता रहा—यह संसार ही मेरे अनुकूल नहीं है। और जैसा हम उसे देखना चाहते हैं, वैसा तो वह बनने से रहा !

उस दिन की बात याद आती है, जब छोटीभाभी की इच्छा से ही मैं उनके यहाँ से चला आया था। वैसे अभी मैं वहाँ कुछ दिन और अधिक रह सकता था। मैं चाहता था, कोई ऐसी व्यवस्था कर दूँ, जिसमें उन पर कभी संकट न आये; कोई दुःखद प्रसङ्ग उपस्थित न हो सके।

उस दिन की बात भी अभी वैसी ही ताज़ी है, जब उपेन्द्र के साथ खाना खाने की इच्छा से, अनेक विपरीत स्थितियों को पारकर, मैं जो अर्द्धरात्रि के समय उतनी दूर भटकने गया, तो उसका फल यह मिला कि मुझे भूखा ही सो रहना पड़ा ! और यदि संयोग से वैशाली जग न रही



होती, तो यह भी सम्भव था कि मधू के यहाँ से भी लौटकर दूर कहीं-न-कहीं अन्यत्र शरण लेनी पड़ती !

और अभी उस दिन जमना को साथ ले आते क्षण मुझे जो पुरस्कार मिला, अब उसे दोहराने में कोई रस नहीं रह गया है !

ऐसे ही अगणित प्रसङ्गों को लेकर अनेक बार मेरे भीतर यह प्रश्न उठा है कि भलाई के साथ क्या प्रकृति का कोई बैर-भाव है ? पर कभी मैं इसका समाधान नहीं कर पाया ।—केवल इस उत्तर के सिवा कि प्रकृति जड़ है, बिल्कुल उस अग्नि की भाँति कि चाहे तो उससे भाप बनाकर यात्रा का यान चला लीजिये, चाहे उसके ब्वाइलर में अपने आपको भोकेकर अन्तरिक्ष में मिल जाइये !—उस सरिता की भाँति कि चाहे तो उससे सहस्रों मील खेती हरी-भरी कर लीजिये, चाहे बाढ़ के प्रकोप का शिकार बनकर घर-द्वार और सारी चल-सम्पत्ति स्वाहा करवा डालिये !

इसी प्रकार यह विश्व भी अपने लक्षणों, गुणों और मूक प्रयोजनों में इतना केन्द्रित है कि मनुष्य के सुख-दुःख की समस्याओं के सम्बन्ध में वह सर्वथा मौन है । अतः जो कुछ करना हो, स्वयं करो; आशा किसी से कुछ मत रखो ।

किन्तु आज कुछ ऐसी बात हो गयी है कि मैं स्वयं चकित हूँ । मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा हो कैसे गया ! कही ऐसा तो नहीं है कि जिसको मैं अचल, दृढ़ और अक्षय सत्य समझ लिया करता हूँ, वह भी समयानुसार सापेक्ष हो जाता है ।

लालाजी के विशेष आग्रह पर मैं अभी इलाहाबाद लौट नहीं पाया था; इसलिये मधू के यहाँ ही उस समय उपस्थित था । सायङ्काल के पाँच बजने में अभी दो मिनट कम थे । दीक्षितजी दफ्तर से लौट नहीं पाये थे; यद्यपि उनकी साइकिल आ गयी थी और यह मालूम हो गया था कि वे अपने एक मित्र की गाड़ी पर आयेंगे । थके-मादे होने के कारण लालाजी को झपकी लग गयी थी और वे मेरे पास ही एक पर्लिंग पर पड़े खर्राटा भर रहे थे । मधू ने सायङ्काल का खाना बनाना प्रारम्भ कर दिया था

और हरी मेथी का साग छौंकते का-सा भान मुझे अभी-अभी हुआ था ।

इसी समय पोर्टिको में एक ऐसी गाड़ी आकर खड़ी हो गयी, जिसको मैं पहचानता था । कुतूहलवश कमरे के बाहर आकर जो देखा, तो यह जानकर कम आश्चर्य नहीं हुआ कि सदा पैदल या आंशिक रूप से बस पर आने-जानेवाली अर्चना आज इस गाड़ी पर कैसे आयी ! पर जब वह मेरे पास आगयी, तो उसकी आँखें भरी-भरी सी थी और होंठ कॉप-कॉप उरते थे !

मैं यकाएक कुछ घबरा उठा । एक अनिष्ट की आशंका ने मेरा मस्तक थाम लिया और तीव्र चिन्ता के साथ मैंने पूछा—“कहो, कुशल तो है ?”

अर्चना बोली—“कुशल ही तो नहीं है । भाईसाहब...!” और बस, इसके आगे जो कुछ शेष रह गया था, उसे उसकी सिसकियों ने पूरा कर दिया । मैं समझ गया कि भाईसाहब जान पड़ता है, इस संसार से विदा हो गये ! पर कुछ ऐसी बात है कि दुःख का प्रभाव मेरे ऊपर तुरन्त बहुत तीव्रता के साथ नहीं पड़ता । उसका अनुभव तो मैं धीरे-धीरे ही करता हूँ । जैसे-जैसे उसका अनुभव बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मैं उसकी गहनता में डूबता जाता हूँ ।

क्षण भर तो मैं चुपचाप खड़ा रहा । अन्दर की ओर चलते क्षण श्रवण अपना मुँह उठाकर मुझे कुछ इस तरह देखने लगा, जैसे वह संकेत कर रहा हो कि जल्दी करो । उसकी कजरारी आँखें जो सदा मुझे प्यार करती थीं, इस समय द्रवित-सी जान पड़ी और अन्दर के रास्ते की भूमि, जान पड़ा, पिघल-सी रही है ।

अर्चना मेरे पीछे-पीछे चल रही थी । थोड़ा टिठुक्कर मैंने जो कहा—“अभी उस दिन जब मैं उनसे मिलकर आया था, उस समय तो वे विल्कुल चगे थे । फिर ऐसी क्या बात हुई, जो... ?”

मैं अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि आँसू पोंछती हुई अर्चना बोली—“उनकी मृत्यु अपने पीछे एक रहस्य छोड़ गयी है; यद्यपि डाक्टर साहब का तो कहना है कि हार्ट फेल हो गया है ।”

इतने में काजू टूँगती वैशाली बाहर आती हुई मिल गयी और पूछने लगी—“किसका ?”

पर तब तक अर्चना कह चुकी थी—“पर मै... अब मुझसे कुछ कहा नहीं जाता भैया ।”

मै आशंकाओं में डूबने-उतराने लगा । कुछ ऐसी अवस्था हो गयी, जैसे अँधेरी रात में घर से निकल पड़ा हूँ, तो सड़क पर आकर देखता हूँ कि लाइट कहीं से फेल हो गयी है पानी बरसने लगा है, बादल गरज रहे हैं और बिजली गिरने ही वाली है कहीं !

अन्दर पहुँचकर मैने मधू को जो यह संवाद दिया, तो वह यकायक रो पड़ी । माँ पूजन कर रही थीं । जान पड़ा, मुन सब रही है, पर गीता-पाठ उन्होंने बन्द नहीं किया—न एक शब्द मुझसे कहा ।

मैने कह दिया—“मै वही जा रहा हूँ मधू” और फिर बाहर चला आया ।

मैं जब गाड़ी की ओर बढ़ने लगा तो वैशाली ने पूछा—“मैं भी चलो भाई साहब ।”

मैने अनुभव किया, उसका कण्ठ भरा हुआ है और साथ चलने का अभिप्राय और कुछ नहीं, केवल ऐसे संकटकाल में अपेक्षित सहयोग-मात्र है । फिर भी मैने कह दिया—“नही वैशाली, अब खाना बनाने और सब लोगों को खिलाने की व्यवस्था यहाँ विशेषरूप से तुम्ही को सम्हालनी होगी । लालाजी भी तो ठहरे हुए हैं ।”

वैशाली बोली—“ठीक है, ठीक है—लेकिन तुम कल एक बार यहाँ हो ज़रूर जाना ।”

पोर्टिको से जब गाड़ी चलने लगी तो वैशाली ड्राइंगरूम-वाले दर-वाज़े पर खड़ी थी । उसकी आँखें भर आयी थी और वह जेब से रुमाल निकाल रही थी । श्रवण दूर खड़ा हुआ थूथुन उठाये शून्य गगन की ओर देख रहा था और पूँछ उसकी डोल रही थी !

...

...

...

गाड़ी के अन्दर बैठा हुआ मानव-चरित्र की विचित्रता पर जितना विचार करता था, उतना ही अधिक दुःख मुझे इस बात पर हो उठता था कि मैं तो इन भाई साहब में एक भी विशेष गुण नहीं देख पाता था। फिर आज यह सब सम्भव कैसे हो सका ! तभी मैंने पूछा—“आत्मघात तो भावुक व्यक्ति करता है और भावुक व्यक्ति अपने प्रति अत्यधिक सच्चा होता है।” ✓

अच्छा अर्चना, उस दिन तुमने भाई साहब के सम्बन्ध में मुझसे जो शिकायत की थी... !” मैं अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि वह बोल उठी—“मुझे उसके लिए दुःख है भैया। वह कुछ ऐसा प्रसंग था कि मुझे ही भ्रम हो गया था। मैं स्वयं भी आपसे कहनेवाली थी, पर संकोचवश फिर कुछ कह नहीं पायी।”

सड़क की बात ठहरी, कहीं-न-कहीं ऊँची-नीची हो ही जाती है। और गाड़ी की स्प्रिङ्गदार सीट का धर्म ही है हमें उछाल देना, सो • “माफ करना अर्चना” मुझे कहना पड़ गया और मैं कुछ और बायी ओर खिसक गया। गाड़ी चली जा रही थी; पेड़, इमारतें, दूकानें, तार के खम्भे, गाड़ियाँ, बसेज, ताँगा, टैक्सी, पैदल स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, व्यापारी, पुरोहित, अध्यापक, कनफटा, बकील, भिखारी आदि गुज़र रहे थे और अर्चना कह रही थी—“माफ़ी की तो कोई बात नहीं है भैया। हम लोग सहोदर भाई-बहिन ज़रूर नहीं हैं, पर यदि कभी ऐसा अवसर आये कि तुम्हें मुझे मुखाम्मि देनी पड़े, तो तुम इनकार तो कभी कर नहीं पाओगे।”

बात मुझे बहुत प्यारी लगी।

“तुम ठीक कहती हो अर्चना। बहिन की कोई बात, उसकी कोई भी आशा, कोई भी भाई कभी अधूरी नहीं रखता। रात के पलक झपकते और खुलते हैं—दिन के पलक उड़ते और जुड़ते हैं—खेतों में चलते बैलों की पूँछ उठती और गिरती है—मैंसा ठेला खींचता हुआ अपनी जीभ निकालता, हाँफता और पीट पर डबे सहता है। मैंसे बैठी-बैठी जुगाली करती हैं। सारसों की जोड़ी है; एक का सिर आसमान की शोभा की

और ताक रहा है—दूसरा कीड़े खा रहा है ! लेकिन इन सब बातों से मानवता का एक अलग रास्ता है । भाई साहब चाहे जितने पापी रहे हों, पर उन्होंने किसी के साथ—मेरा खयाल है—कभी कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती या अत्याचार नहीं किया । उनके पास पैसा था, वे पैसे का लोभ मोह रखते थे और रूप तथा रूपवाली दुनियाँ के लिए उसे दौंव-पेच के रूप में पेश भी करते रहते थे । पर वे चोरी, डाका, लूट, बेईमानी और हत्या से कोसों दूर थे ।... अरे ड्राइवर, ये छोटे-छोटे मेमने हैं इन्हें .. बकरियों है इन्हें...और ये मोटे-ताज़े बकरे भी तो हैं ।...हाँ, इनका उपयोग सभ्यभोजन का एक अङ्ग जो हो गया है !...हटो जाने भी दो । चलो बढ़ाओ ।...लो, यह ताँगा सामने आ गया, जिसमें सरदारजी सपरिवार बैठे हैं ।...ठहरो, यह बुढ़िया बेचारी, यह अंधा भिखारी ! चलो, अब तो बढ़ो आगे ।...वह आया बिअर्ड रोड और यह आया भाईसाहब का प्रवास-गृह ।...हटो, निकलने दो । कहाँ हैं भाईसाहब ? ओः सो रहे हैं । सोओ-सोओ; लेकिन ठहरो, पहले चरण छू लूँ । बस, अब सोओ ! लो, सब लोग चुपचाप बैठे हैं ! क्या किसी के पास कुछ कहने को है ही नहीं ?... अरे, इतने ज़ोर से इनका बदन मत कसो रामलाल कि सोंस लेने में भी असुविधा हो !...मैं प्रमाद भला क्यों करूँगा ! मैंने सब देखा है । ओ अन्तरिक्ष के देवगण, तुम साक्षी हो । ओ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—तुम्हें तो मेरे पिताजी की जीवन-कथा का पूरा ज्ञान है ।...हाँ, लाओ लाओ, फूल चढाओ, मालाएँ पहनाओ ।...इत्र है ? लाओ, सौरभ के अनन्य पारखी राजकुमार पर इत्रदान ख़तम करो ! बस, उठाओ इस विमान को । हृदय के टुकड़े, ठहरो ! भावना के निर्भर, रुको ! ओसुओ के बूँद, तुम आज मानवी समवेदना का मूक गान गाओ ! ..आ गयीं छोटी भाभी ! जियो मेरी कल्मना ! आओ, साथियो, उठाओ अब इस विमान को । वाह ! स्वर्ग का राजमय कितना प्रशस्त है ! देवगण कहाँ छिपे हो ! सत्य के पावन अन्वेषण में जिसने इस हरी-भरी दुनियाँ से विदा ली है, वह हमारा पूज्य भाई है ! अर्चना, अर्चना करो भाईसाहब की । कन्वा

लगाओ । बोलो—“लोभ-मोह-अहङ्कार—द्वेष-दम्भ-छल अपार—क्रोध-शोक-अनाचार—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार !” मैं न कही आस हूँ—मैं न कही पास हूँ—हृदय से निकाल दो—हौसले निकाल लो—तुम मुझे बुरा कहो—तुम मुझे भला कहो—मान दो कि तिरस्कार—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार !”

सब लोग ‘आज नहीं अस्वीकार’ को दोहरा रहे हैं ।

रामलाल कहो—“मैं न देखता कही—मैं न रोकता कही—आज खुली छूट है—दिन-दहाड़े लूट है—ब्रना रहे चीत्कार—ब्रना रहे अन्धकार—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार !”

रामलाल चुप है, लेकिन स्वर बढ़ता जाता है ।

“अरे गौरीशंकर तुम ! तुम यहाँ कहाँ ? अच्छा, आओ-आओ, कन्धा लगाओ, कहो—“तुम सदा जियो जगो—तुम सदा सुखी रहो—पर विवाद मत करो—मुझे याद मत करो—हटो-दचो आने दो—मुझे निकल जाने दो—मौत के तराने दो—ज़िन्दगी को गाने दो—दोस्त मेहरवाँ रहे—दूर खशनुमा रहे—दुस्न बेवफा रहे—खुश रहे, खफ़ा रहे—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार !”

स्वर दूर निकल गया है । धीरे-धीरे मन्द होता जान पड़ता है ।

मैं अर्थी के साथ तो हूँ—पर दूर खड़ा पीछे से भी सुनता हूँ !

## सच्चाइस

प्रकृति की कुछ ऐसी विलक्षण गति है कि जिन अवसरों से हम भागते रहते हैं, वे हमारा पीछा नहीं छोड़ते और कभी-कभी तो हमारे सामने आ खड़े होते हैं; जिन परिस्थितियों से हम डरते और भय खाते हैं, वे अकस्मात् हमारे ऊपर आ बैठती और अपने भयावने नख-दन्त गड़ाकर हमारा मुँह नोच लेती और कलेजा चीर डालती हैं !” किसी अन्य व्यक्ति

को सुखी बनाने की कल्पना जिसके लिए प्राण-त्याग का विषय बन जाय, क्या ऐसा व्यक्ति भी कभी लम्पट हो सकता है ? भाई साहब की विधन-बेला के अनन्तर मैं निरन्तर यही सोच रहा हूँ ।

बड़ी भाभी तो ऐसी स्थिति में थी नहीं कि सशरीर भाई साहब के इस अन्तिम संस्कार में सम्मिलित होती । वे रोना चाहती थी, पर रो नहीं पाती थी । वे मूर्छित अवस्था में दो-एक दिन पड़ी रहना चाहती थी; पर उस अवस्था के फलाफल को सहन करने का साहस उनमें न था । वे उठकर बाहर आकर एक हृदय-द्रावक चीत्कार करना चाहती थी, पर उन्हें उपस्थित लोगों के बीच आने में कुछ भय-सा लग रहा था । कहते हैं, वे भीतर से बाहर निकली भी थी, पर दरवाज़े की टोकर खाकर गिरती-गिरती बची । बल्कि एक घुटना फूट ही गया और पिड़लियों में खरोंच आ गयी ।

गिरती-पड़ती हुई भी हम लोगों के साथ चलती हुई छोटी भाभी की आँखों में आँसू न थे—हृदय की भट्ठी में जो अग्नि धधक रही थी, उसमें आँसुओं का स्रोत ही जैसे विलीन हो गया था ।

राजघाट पहुँचते-पहुँचते अधेरा हो गया था । मुझे ऐसा लगा, जैसे भाभी के लिए यह अधेरा स्थायी हो गया है । पर जब प्रश्न उपस्थित हुआ—“अग्नि संस्कार कौन करेगा ?”

तब तत्काल वे बोल उठी—“मैं करूँगी ।”

उत्तर ने बिजली के बटन का-सा परिचय दिया और ऐसा जान पड़ा, मानों बल्व में सौ कैडिल पावर का प्रकाश फूट पड़ा हैं ।

स्वभावतः मेरे मुँह से निकल गया—“तुम नहीं, मैं करूँगी । तुम्हारे साथ और भी जिम्मेदारियाँ हैं । तुम्हें अपनी जीजी को भी देखना है; भले ही तुम्हारी दृष्टि उधर न हो, लेकिन मुझे तो रखनी पड़ेगी । इसलिए भाई साहब का अग्नि-संस्कार मुझे करने दो । ...अरे हंडेवाले, ज़रा बत्ती ठीक करो ।

मेरा इतना कहना था कि आठ-दस आदमियों ने अनेक स्वरों से कहना शुरू कर दिया—

“यह हण्डेवाला मर कहाँ गया ?—आप नहीं जानते, ये लोग बड़े पाजी होते हैं जी !—अरे साहब, जब हमको इनकी जरूरत पड़ती है, तब कभी तो ये चरस की दम लगाते मिलते हैं; और कभी फ़लास खेलते हुए !

ज़ैर, वहाँ जो हण्डेवाला था, वह कैप्टन-सिगरेट के कश-पर-कश झाड़ रहा था । चख-चख सुनकर तुरन्त दौड़ा ।

जब बत्ती ठीक हुई और छोटी भाभी की ओर दृष्टि गयी, तो देखा—उनका मुख मुरझाया हुआ है । शुष्क केश बिखरे हुए हैं । रोते-रोते आँखें सूज-सी गयी हैं । कभी-कभी ऊपरवाले भीगे पलक खुलकर जो समझ हो जाते हैं, काली-काली आर्द्र पुतलियों बादल भर लाती हैं और कानों में पड़े हीरे चमक उठते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो मृत्यु उनके कान के पास मुँह ले जाकर कुछ कहती-कहती दौट निकालकर ‘ही-ही’ कर के हँस पड़ी है, और तभी बिजली-सी चमक उठी है । पांडु रङ्ग की रेशमी साड़ी का डार्क-ब्राउन बार्डर भी इस शोक-सताप के अवसर पर काला पड़ गया है । बदन पर पूरी आरतीन की गरम सफेद जाकेट कुछ ढीली पड़ गयी है और कन्धों पर पड़ी शाल सिकुड़ने को तैयार न होकर जब गिर-गिर पड़ती है, तब भाभी को ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे स्वयं गिरी जा रही हों । मानो शाल आज उनकी लाज बन गयी है और बारम्बार इसी बात की सूचना दे रही है कि अगर मुझे समझालोगी नहीं, तो मैं इसी तरह तुम्हें गिराकर मानूँगी । कदाचित् इसीलिये वे सामने एक ईंट देख-कर उस पर बैठ गयी हैं ।

तभी मैं सोचने लगा—“अच्छा, यह ईंट मैं हूँ ?”

पर इसी क्षण मेरे उपर्युक्त कथन के उत्तर में छोटी भाभी बोली—  
“दुःख की बात है कि तुम ऐसा कह रहे हो ! जब यह जानते हो कि इस समय जो कर्तव्य मेरे सामने है; उससे बड़ी मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं ।”

इतने में रामलाल की आवाज़ सुनायी पड़ी—“चिता तैयार हो गयी ।”



सुनकर मुझे एक धक्का-सा लगा और मेरे मन में आया—कही ऐसा तो नहीं है कि इसी रामलाल ने भाई साहब के जीवन की चिन्ता भी तैयार की हो !

तदनन्तर भाई साहब के शव को स्नान कराया गया । छोटी भाभी ने यमुना जल से उनके चरण धोये, देह धोयी, उजली तौलिया से उसे पोंछा और फिर चन्दन के इत्र का लेप किया । इसमें उन्होंने किसी अन्य पुरुष को भाग नहीं लेने दिया । उस समय मैं यही सोचता रहा कि आत्मघात के सम्बन्ध में हम नित्य यही तो सुनते आये हैं कि वह मृत प्राणी की कायरता का सबसे बड़ा चिह्न है । फिर एक बार यह भी मेरे कानों में कोई कह गया कि जो व्यक्ति जीवन भर दुर्बलताओं का शिकार रहा हो, क्या वह किसी स्थल पर इतना उज्ज्वल नहीं हो सकता कि कोई अलौकिक आघात उसके प्राण-त्याग का कारण बन जाय ? तब बचपन में लिखी हुई इन दो पक्तियों का मुझे स्मरण हो आया—

जब इस जीवन से पूर्ण न हो, जीवन की तृष्णा नवल-नवल,

तब क्यों न अजीवन ही पाकर मैं निज को कर जाऊँ अविफल !

अन्त में जब छोटीभाभी ने भाईसाहब को सुखाग्नि दी और उनका शरीर जल उठा, तब मैं क्या देखताहूँ कि शैतान रो पड़ा !

दो मिनट, चार मिनट, दस मिनट—अन्त में आधा घण्टा जब बीत गया और मैंने देखा कि वह अब कुछ स्वस्थ हुआ, तब मैंने उससे पूछा—  
“क्या सोच रहे हो रामलाल ?”

रामलाल एक आह भर कर बोला—“आज तक न मैंने कभी कोई बात इनसे कही—न कभी इन्होंने । इनको मुझसे कोई विशेष प्रेम भी नहीं था । लेकिन, अब मैं सोचता हूँ कि इनसे अधिक आत्मीय मेरे लिये इस संसार में था कौन ?”

रिवाज़ की गोली की भाँति मेरे मुँह से निकल गया—“क्या मतलब ?”

“अब यह मतलब आप मुझसे मत पूछिये पाण्डेयजी ।” कहकर

रामलाल एक 'दम से उठकर खड़ा हो गया। मैंने भी दृढ़ता से उसका हाथ पकड़ कर कुछ गम्भीरता के साथ कह दिया—“ऐसा नहीं होगा रामलाल। अब तुमको यह बात बतलानी होगी।”

रामलाल मेरी बात सुनकर रुका नहीं। उसने एक झटके के साथ कह ही दिया—“हम लोगों के सामने कभी एक वाज़ी आ गयी थी। मैं उसमें हार गया था। और उस हार का कारण ये थे; क्योंकि जीत इन्हीं की हुई थी।”

रामलाल इतनी बात कहकर चला गया। मैंने भी फिर उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि तब मेरा ध्यान उसकी इस कथन-पहेली ने खींच लिया था।

रामलाल चला तो गया, पर जान पड़ा, मानो वह ऐसा डंक मार गया है, जिसका ज़हर जल्दी न उतरेगा। इसलिये थोड़ी देर में मुझे स्वयं उसके पास जाना पड़ा। उस समय भी वह घुटनों के बीच में अपना मुँह छिपाये सिसकियाँ भर रहा था। मैं उसे अलग अपने पास उठा लाया। तब मैंने उससे कहा—“आज बहुत दिनों बाद एक ऐसे रास्ते पर तुम आ मिले हो रामलाल, जहाँ मैं तुम पर अपनी नाराज़ी प्रकट करना भी चाहूँ, तो नहीं कर सकता। इसलिये, इतना और बतला दो कि भले या-बुरे जो कुछ भी तुम बन गये हो, उससे तुमको पूरा सन्तोष है?”

“न हो पूरा सन्तोष। मैं कहता हूँ अधूरा ही सही; पर है तो वह अपनी जगह पर सन्तोष ही। क्योंकि कुछ भी हो, मैं तो सम्पूर्ण जीवन को—उसके क्षण-क्षण के उतार-चढ़ाव को—किसी-न-किसी महत्वाकांक्षा में मिलने वाली असफलता की प्रतिक्रिया मानता हूँ।”

जितनी दूर तक सोचता हूँ, जान पड़ता है, आज रामलाल का यह कथन कुछ अर्थ रखता है।

संस्कार पूर्ण हो जाने पर छोटी भाभी को लौटती बार हम गाड़ी पर ले आये थे। स्वयं मेरा मन इतना दुखी था कि बात करने की इच्छा न होती थी। और छोटी भाभी की अवस्था तो उस रुचिहीन योगी की-सी हो गयी

थी, जो अपने मन से खाना-पीना दूर रहा, कोई बात करना भी पसन्द नहीं करता। पर बँगले पर पहुँचते ही उन्होंने जब पूजागृह के पासवाले कमरे में अपने रहने की व्यवस्था कर ली, भूमि पर पयाल, उसके ऊपर टाट और फिर कम्बल बिछाकर उस पर चद्दर डाल ली गयी, तब वहीं बैठे-बैठे वे बड़ी रात तक उपस्थित कार्य की सारी योजना बनाती रहीं। ग्यारह बजे के लगभग तो हम लोग आये ही थे। उसके बाद साढ़े बारह साधारण कार्य-प्रन्वध में बज गये। फिर जब दो बज गये और बँगले भर में मूक-शून्य शान्ति स्थापित हो गयी, तब मुझे ध्यान आ गया कि अगर प्रेतात्मा का कहीं अस्तित्व है, तो भाई साहब यहाँ किसी-न-किसी कमरे में चुपचाप खड़े-खड़े हम लोगों के कार्य-कलाप को अवश्य देख रहे होंगे।

इसी समय छोटी भाभी ने लेटे-लेटे कम्बल के भीतर से अपना दायाँ हाथ निकालकर एक ताली देते हुए मुझसे कहा—“सेफ़ में लकड़ी का एक ऐसा बाक्स रक्खा है, जिसमें पुरानी चाल की सुन्दर खुदाई की हुई है। उसमें कुछ ज़रूरी कागज़-पत्र रक्खे हैं। अवकाश मिलने पर उन्हें देख लेना। उन्हीं में तुम्हारे नाम का एक दान-पत्र भी है, जिसकी रजिस्ट्री की जा चुकी है।

दान-पत्र की बात मेरे लिए आश्चर्यजनक थी। अतः मेरे मुँह से निकल गया—“दान-पत्र ! दान-पत्र कैसा ?”

भाभी एक क्षण के लिए सोच-विचार में पड़ गयी; फिर बोली—“दान-पत्र कैसा है, यही देखने के लिए तो मैंने तुमको यह ताली दी है।”

“मगर इस दान-पत्र की ज़रूरत क्या ? तुम सामने हो ही; बड़ी भाभी भी मौजूद ही है। तब झगड़े की जड़ इस दान-पत्र की मेरे लिए उपयोगिता ही क्या है ?” मैंने तत्काल उत्तर दे दिया।

अब छोटी भाभी उठकर बैठ गयी। मेरे सामने हीटर रक्खा हुआ था। उसी पर दोनों हाथ सँकती हुई वे बोलीं—“उनके बिदा होते ही तुम ऐसी फटी-फटी बातें करोगे, तो मेरी डगमग डोलती यह जीवन की

नाव कैसे पार होगी ? जो शकाए तुम पैदा कर रहे हो, तुम समझते हो, उनकी ओर उनका ध्यान न गया होगा ? तुम्हें शायद यह न मालूम होगा कि वे जानते थे, अगर उनकी उपस्थिति में यह विषय तुम्हारे सामने रक्खा गया, तो तुम इसे कभी स्वीकार न करोगे ! तुम्हें यह भी मालूम नहीं है कि अवस्था में बड़े होने पर भी वे मन-ही-मन तुमको कितना मानते, कितना अधिक तुम्हारा आदर करते और किसी-किसी विषय में तुमसे कितना डरते थे !

“भाई साहब—और मुझसे डरते थे ! यह क्या कह रही हो तुम !!”

“क्यों, प्रेम में भय होता नहीं क्या ? क्या मुझे तुम्हारा डर नहीं और कहीं-न-कहीं तुम भी क्या मुझसे डरते नहीं ?”

मैंने विस्मय के साथ पूछा—“पर डर उत्पन्न करने योग्य मैंने उन्हें अपना कुछ परिचय तो कभी दिया नहीं । फिर क्या बात थी जो...!”

वे पनडब्बा अपने पास मँगवाकर उसमें से अपने लिए स्वयं पान लगाकर खा लेने और फिर एक लवंग निकाल कर उन्हें दे देने की बात कुछ कहती और कुछ संकेत से प्रकट करती हुई बोली—“परिचय दिये बिना तो तुम रहते नहीं; यही कहलो कि उनके निकट सम्पर्क में रहने का ऐसा अवसर ही तुम्हें नहीं मिला ।”

मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो भाभी सचमुच ठीक कह रही है । इसलिये मैं जो चुप हुआ, तो वे कहने लगीं—“अभी उस दिन की बात है, वे कह रहे थे—“भाग्य को अगर मैं अपने हाथ का खिलौना बना सकता, तो मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही होती कि राजेन्द्र जैसा मेरे पुत्र हो ! और यह बात कहते समय उनकी आंखें सजल हो आयी थी ।”

सुनकर मैं फिर अवाक रह गया । रुदन हमारी दुर्बलता अवश्य है; पर दुख को मूर्तित और मुखरित करने का और माध्यम ही क्या है ? बात की बात में मेरा कण्ठ भर आया । आत्म-स्वर आँखों का मार्ग पाकर प्रकट हो उठा !

तब वे बोली—“उस दिन जब मैंने ड्राइवर से सुना कि तुम इलाहा-

बाद नहीं गये, किसी पगली लड़की के पीछे पागल की तरह घूम रहे हो, तब मुझे अच्छा नहीं लगा था। किन्तु मैं सोचती हूँ, कैसे भी हुआ, यह हुआ कितना अच्छा कि जब वे बिदा होने लगे, तब तुम यहाँ मौजूद रहे !” लेकिन अरे, तुम तो रो रहे हो ! देखो, अब यह रोना बन्द करो। सुनते हो कि नहीं ! जानते हो, देवता कभी रोया नहीं करते। क्योंकि एक हृदय ही नहीं, उनकी आँखें भी पत्थर की होती हैं !”

छोटी भाभी की इस मर्मवाणी का क्या अर्थ होता है, इतना मैं समझता हूँ। किन्तु जीवन में उन बातों का भी कम महत्व मैं नहीं मानता, जो केवल सुन लेने की वस्तु हुआ करती हैं, जिनका उत्तर केवल मौन—एक स्थायी मौन मात्र होता है।

भाईसाहब के वंश में उनके चाचा-भतीजे तो थे ही, नाते-रिश्ते में मामा, बुआ और बहन के यहाँ भी बहुत बड़ा वृन्द था। सवेरे सभी जगह उनके निधन हो जाने की सूचना भेज दी गयी। बड़ी भाभी का मत था कि हम लोगों को अब कानपुर चला जाना चाहिये; पर हमारे दिल्ली के आचार्य पंडित जीने बतलाया कि जब मृतक का दाह-संस्कार यहाँ हुआ है, तब उनका शान्ति-संस्कार भी यहीं हो, तो अच्छा है। क्योंकि यह भी एक मत है कि इस अवधि-पर्यन्त प्रेतात्मा अपने तत्कालीन निवास-स्थान के आस-पास ही डोलती रहती है। जिस समय पंडित-प्रवर अपनी यह सम्मति दे चुके, उस समय मेरे मन में आया कि भाईसाहब की प्रेतात्मा चाहे न भी डोले, पर इन पंडितजी के अन्दर लोभ-मोह-छल-प्रपंच के नाना रूपों में जिस प्रेतात्मा का वास है कम-से-कम वह तो दान-दाक्षिण्य के विविध प्रकारों पर अवश्य डोलती, चकर काटती और जीभ लपलपाती रहेगी !

उसदिन सवेरे नौ बजते-बजते पहले गौरी बाबू आये, फिर दीक्षितजी भी मधू, वैशाली तथा लालाजी को लेकर आ गये। पिताजी के यहाँ मैंने सवेरे गाड़ी भेज दी थी। उसपर उनके साथ लाली भी आई गयी। पर उसने आते ही ऐसा घनघोर क्रन्दन किया कि उसके आर्तनाद से

बैंगले भर में हाहाकार मच गया। इतने पर भी उसको जब सतोष न हुआ, तो उसने अपना सिर एक खम्भे में इतनी ज़ोर से दे मारा कि वह फट गया और रक्त की धारा बह चली, जिसका परिणाम यह हुआ कि लाली अचेत होकर वहीं फैल गयी !... मैं निरन्तर सोचता रहा कि दुःख शोक और पीड़ा भी क्या इस तरह प्रदर्शन करने की वस्तु है ? जो हो, इस घटना ने कुछ दिनों के लिए मुझे अध्ययन का एक विषय दे दिया। इस सम्बन्ध में बड़ी भाभी से बातें हुई, तो वे बोली—“यह तो अपनी-अपनी भावना की बात ठहरी। यदि लाली उनको मुझसे अधिक चाहती हो, तो मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है !”

उसी दिन बड़ी भाभी ने भाईसाहब के लीला-संवरण की कथा सुनायी। उन्होंने बतलाया कि मामूली तौर से अपना कार्यक्रम वे पहले से कभी घोषित करते नहीं थे। पर इधर कई दिन से यह कहने लगे थे “अब मैं संन्यास लेनेवाला हूँ। यह सप्ताह जहाँ बीत गया कि वस, किसी दिन अनिश्चित दिशा को आर चला दूँगा।” मैं उनकी इन बातों को कोई महत्व नहीं देती थी, क्योंकि अक्सर उनकी बहुतसी बातें लोगों में चञ्चल पैदा करने के लिये हुआ करती थीं। पर उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि सायंकाल होते-होते वे बोले—“आज तबियत कुछ भारी-भारी-सी लग रही है।

मेरे मुँह से निकल गया—“तो चलो आराम करो।”

इतने में रामलाल आ गया, तब मैं उनके पास से उठ आयी।

इस क्षण मेरे मन में आया कि मैं बड़ी भाभी से पूछूँ कि बीस हज़ार रुपये खर्च कर लेने के बाद भी भाई साहब के सामने उपस्थित होने योग्य साहस उसमें बना कैसे रहा ! लेकिन यह बात मैंने इसलिये नहीं पूछी कि सम्भव है, कोई ऐसी कुंजी मिल ही जाय, जिससे इस रहस्य का भेद अपने आप खुल जाय।

इसी क्षण वे बोली—“यह सोचती हुई मैं निश्चित-सी थी कि साधारण रूप से ही तबियत भारी है और मैं ज़रा रेडियो सुनने लगी।

खबरें सुन लेने के बाद, साढ़े नौ बजे तक, जब कोई बात नहीं मालूम हुई, तब मैं उनके पास गयी। रामलाल तब तक चला गया था और उनको ज्वर बढ़े वेग से चढ़ आया था। कई बार उन्हें इस तरह का ज्वर आ चुका था। पर कौन जानता था कि वह ज्वर नहीं, यमदूत है और उन्हें साथ लेकर ही जायगा !... उसी समय मैंने डाक्टर भाटिया को बुलाया, तो उत्तर मिला कि इस वक्त तो वे एक मरीज़ को देखने गये हैं, ज्योंही लौटे, त्योंही भेज देंगे। तब मैं यह सोचती रही कि वे आ ही रहे होंगे। पर जब वे घंटे भर तक नहीं आये, तो मैंने फिर उन्हें फ़ोन करवाया। तब मालूम हुआ कि वे अब चल ही रहे हैं। मैं फिर उनकी प्रतीक्षा करने लगी। जब वे आये, तब पौने ग्यारह बजे थे। हालाँकि उस समय ज्वर का वेग बहुत था, पर उन्होंने डाक्टर साहब की हर बात का ठीक-ठीक जवाब दिया। इसलिये मुझे तब भी चिन्ता की कोई बात नहीं जान पड़ी। डाक्टर भाटिया ने भी कहा—“और तो सब ठीक है। पर बुखार अब बढ़ना नहीं चाहिये। क्योंकि टेम्परेचर एक-सौ-तीन पहुँच गया है। प्रकाशन के लिये मैं एक इंजक्शन दिये देता हूँ।” डाक्टर भाटिया इंजक्शन देकर चले गये। साथ ही एक मिक्स्चर का प्रिस्क्रिप्शन भी लिख गये, जो उन्ही के मेडिकल-स्टोर से मँगवा लिया गया। उस मिक्स्चर को दो-दो घंटे बाद पिलाने के लिए उन्होंने कहा था। वैसा ही किया भी गया। पर हालत जो बिगड़ी, तो फिर बिगड़ती ही चली गयी। सबेरे हमने और भी बड़े डाक्टरों को बुलाया। डाक्टर कटियार, डाक्टर मोहिले और डाक्टर त्रिवेदी आदि दस बजे यहाँ मौजूद थे। सबकी सलाह से आध-आध घंटे पर इंजक्शन दिये गये; पर फल कुछ न हुआ और बारह बजे के उनचास मिनट पर उनका प्राण-पंछी उड़ गया !

बड़ी भाभी की ये बातें पिताजी भी सुन रहे थे। दियासलाई जलाकर उसकी जलती सलाई से पाइप की तम्बाकू सुलगाते और धूम्रपान करते-करते वे बोल उठे—“यह रामलाल वही लड़का तो नहीं है, जो अपने छोटे मामा की लड़की से प्रेम करता था ! पर जब उस लड़की की शादी

...खैर, हाँ ठीक है। अच्छा फिर क्या हुआ, रामलाल ने ब्याह किया या नहीं ?”

गौरी बाबू बोले—“बाबूजी, ब्याह तो रामलाल ने नहीं किया।”

पिताजी की इस बात से आज जिस बात का परिचय मिला, उससे इस उलझी हुई कथा का सूत्र अपने आप सुलभ गया। तभी स्पष्ट हो गया कि रामलाल बड़ी भाभी को इस सीमा तक प्रेम करता है ! स्मशान पर रोता रोता वह कह रहा था—“मैं हार गया था—ये जीत गये थे !”

सोचता हूँ विधि का यह कैसा विधान है ! कहों, कब किसके हाथ से उड़ाई हुई पतंग कटकर कितने युग के बाद आज यहाँ आकर गिरी है !

...

...

...

लालाजी से इधर बहुत दिनों से विचार-विनिमय करने का अवसर ही नहीं मिल रहा था। उसका कारण यह था कि वे स्वयं बहुत अशांत थे। पर कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो अब वे मनकी साधारण स्थिति पर आ गये हैं। बँगले पर फैले हुए काम-काज के बीच जब अत्यधिक भीड़-भाड़ हो जाती तभी वे मुझे साथ लेकर सड़क पर टहलने चल देते। आज कुछ ऐसा हुआ कि टहलते-टहलते पहले तो उन्होंने सिगरेट सुलगायी, फिर वे अपने आप कहने लगे—“यह डाक्टर शर्मा बड़ा भला आदमी निकला राजेन। जानते हो, इसने क्या किया ? अरे इसने तो जमना के साथ-साथ रायचन्द्रनाथ का भी इलाज शुरू कर दिया। क्योंकि उसकी दृष्टि में भी हम लोगों का अनुमान बिल्कुल सही साबित हुआ। और इधर जमना भी काफी ठीक हो आयी है। जान पड़ता है, दो-चार दिन में उसकी सेहत बिल्कुल सुधर जायगी !

इसी क्षण टहलते हुए देखा कि हास-परिहास में रत एक जोड़ा हथ-में-हाथ डाले चला जा रहा है। तब मैंने साधारण रूप से कह दिया—“चलो, यह समाचार आपने बहुत अच्छा दिया। जमना की चिन्ता दूर हुई। अब भगवान चाहेगा, तो उसका जीवन सुखमय हो जायगा



और फिर आपके लिये अनुताप का कोई कारण न रहेगा।”

इस पर लालाजी पहले तो चुप रहे, फिर कुछ सोचकर बोले—“हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो। लेकिन जमना को इस घरातल पर ले आने में मुझपर क्या-क्या बीती, इसका भेद अभी तुम्हें नहीं मालूम है।”

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—“अच्छा, तो इसके अन्दर भी कोई भेद की बात है?”

सिगरेट का धुआँ उगलते हुए वे बोले—“हाँ, जिस होटल में राजहंस नाम का वह जानवर ठहरा हुआ था, उसमें उसकी चोरी हो गयी। जो कुछ नक़द रुपया उसके पास था, वह सब-का-सब तो चोरी चला ही गया, साथ में उसका सारा सामान भी किसी ने उड़ा दिया! कई दिन जमना और वह दोनों बहुत परेशान रहे और साथ में मैं भी लटका-लटका फिरता रहा। हालाँकि फल उसका कुछ नहीं हुआ।”

मैं सोचने लगा, इस चोरी में भी ज़रूर कोई भेद की बात होगी!

तब लालाजी बोले—“इस चोरी ने दोनों का सारा कार्यक्रम चौपट कर दिया बम्बई जाने की सारी तैयारी ठप्प हो गयी और वे नबाब-बे मुल्क राजहंस साहब रुपये के लिए इधर-उधर टापने लगे।”

मैंने पूछा—“इस अवसर पर जमना ने आपसे रुपया नहीं माँगा?”

वे बोले—“रुपया! मैं ऐसे वक्त उसे रुपया देकर साँप को दूध पिलाना! तुम मुझे इतना बेवकूफ़ समझते हो! मैंने जमना से कह दिया कि जो गहने तेरे रोज़मर्रा पहनने के हैं, उनके सिवा कोई भी कीमती चीज़ अगर तेरे बदन पर रहेगी, तो वह राजहंस का बच्चा अपना शौक़ पूरा करने के लिए उसको भी बिकवा लेगा!... पर यहीं मुझसे ग़लती हो गयी। उसी दिन जमना राजहंस के साथ बम्बई खाना हो गयी।”

लालाजी तो इतना कहकर चुप हो गये; पर मैं सोचने लगा—इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि जिस परिस्थिति से बचने का मार्ग लालाजी ने जमना को सुझाया, अन्त में वह उत्पन्न होकर रही। उसके रहे-सहे गहने भी साफ़ हो गये। जिस वक्त ये दोनों बम्बई पहुँचे होंगे, उस वक्त उनके

पास मुश्किल से सौ-दो-सो रुपये बच रहे होंगे। फिर दस-पाँच दिन में जब ये रुपये भी उड़ गये होंगे, तब उनकी दशा कितनी शोचनीय हो गयी होगी ! तो उसका पागलपन इसी स्थिति की प्रतिक्रिया से सम्बन्धित तो नहीं है ? और यह भी तो हो सकता है कि रुपये बनाने के लिए मुरलीबाबू ने किसी ऐसे हथकंडे से काम लिया हो, जिसे जमना स्वीकार करने को तैयार न रही हो ! तब मुझे उस दृश्य का ध्यान हो आया, जिसमें मैंने उसे प्रथम बार देखा था।

तब सिगरेट का बचा-खुचा टुकड़ा एक ओर फेंकते हुए लालाजी बोले—“ज़ैर, जो कुछ उसका फल हुआ, सो तो अब हो ही गया। पर पर इस सिलसिले में एक बात साफ़ हो गयी कि अगर इन दोनों के पास पैसा रहता, तो ये दोनों फिर उसी वातावरण में जा पहुँचते, जहाँ से मैं उन्हें बड़ी मुश्किल से निकाल लाया था। मतलब यह कि थोड़ा पैसा बहुत पैसे की भूख पैदा करता है और एकदम से बहुत पैसा आ जाने पर साधारण आदमी का मन वश के बाहर चला जाता है।”

अबसर पाकर मैंने कह दिया—“दिखता हूँ, अब भी प्रतिक्रिया के प्रभाव से आप मुक्त नहीं हो पाये लालाजी। प्रथम और मुख्य कारण पर ध्यान न देकर आप बीच की उन परिस्थितियों से उलझ रहे हैं, जो एक तो क्षणिक हैं, दूसरे जीवन के सामूहिक रूप से जिनका कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है। मुख्य कारण जहाँ एक ओर रायचन्द्रनाथ की संस्कृति और उसकी वर्तमान व्यक्तित्व-सम्पदा है, वहाँ दूसरी ओर जमना के साथ एक ऐसे व्यक्ति की संगति भी तो है, जो मिथ्याकथन, छल, प्रपंच, जालसाजी और गैरज़िम्मेदारी को बौद्धिक तत्व मान बैठा है।”

लालाजी बोले—“यह सब भी मैं सही मान लूँ राजेन; फिर भी एक बात बाक़ी रह ही जायगी। वह है हम लोगों का यह छोटा-सा दायरा, जिसके भीतर-ही-भीतर उछल-कूद मचाते हुए हम संसार भर को एक ही लकड़ी से हॉकना चाहते हैं। जब हम यह कहते हैं कि यह हमारी संस्कृति है, इस पर हमको अभिमान है तब प्रकारान्तर से क्या हम यह नहीं कहते कि

तुम हमसे कोसों दूर हो जी, हम तुमसे बिल्कुल अलग हैं। अब आँखें खोलकर देखो और हृदय पर हाथ रखकर कहो कि आज दुनियाँ में कौन देश ऐसा रह गया है; जिस पर संसार की गति ने प्रभाव न डाला हो। मैं पूछता हूँ—आज ऐसा कौन-सा देश बाक़ी बचा है, जो अभिमान के साथ यह कह सके कि हमारी संस्कृति पर किसी भी अन्य देशीय संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ा। मतलब यह कि आज सभी देशों के धर्म और उनकी संस्कृतियों पर विश्व-भर की मिली-जुली सभ्यता अपना एक ऐसा सम्पर्क स्थापित कर रही है, जिससे हम बच नहीं सकते। और भय तो इस बात का भी है कि सदो बचते रहने की ज़िद में आकर उन्नति की दौड़ में कहीं हम इतने पीछे न रह जायें कि दुनियाँ की नज़रें हमें असभ्य ठहरा दे ! इसलिये मैं दूर क्षितिज की ओर दृष्टि डालता हुआ यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब अपने धर्म और अपनी सभ्यता तक ही सीमिति न रहकर हमको विश्व-धर्म और विश्व-संस्कृति की ओर देखकर चलना पड़ेगा।”

लालाजी की इस बात के समर्थन में कुछ कह देना उचित समझकर भी मैं थोड़ी देर के लिए चुन हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि हम लोग अब उन क्वार्टर्स के सामने आ पहुँचे थे, जहाँ अर्चना रहती थी और जो इस समय उदास बैठी हुई सूने आकाश की ओर देख रही थी।

इसके बाद लालाजी बोले—“पर असली बात तो अभी तक मैंने तुमको बतलायी ही नहीं।”

मैंने पूछा—“क्या ?”

वे बोले—“राजहंस की वह चोरी मैंने करवायी थी।”

मैं लालाजी की ओर इकटक देखता खड़ा रह गया।

इतने में पुनः किसीके रोने का स्वर सुन पड़ा, तब अर्चना के पास जाकर मैंने पूछा—“क्या बात है अर्चना ?”

उसने कह दिया—“आज इटारसी रेलवे-हॉस्पिटल से पत्र आया है कि तारीख़ सात दिसम्बर को उनकी मृत्यु हो गयी। वे चलती हुई ट्रेन से गिरे थे और एक पैर रेल से कटकर बिल्कुल अलग हो गया था !”

सदा मेरे मन में आया है कि क्यों न मैं ऐसे व्यक्ति को चुपचाप जाकर शूट कर दूँ ! पर यही सोचकर हाथ मलकर रह गया हूँ कि ऐसा करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। क्यों मैं किसी की स्वतंत्रता में बाधा डालूँ ? किन्तु मेरी यह क्षमा मन्त्री को आज खा जाना चाहती है ! वह ऐसी विषधर नागिन है, जिसने मुझे क्षण-क्षण पल-पल करके वर्षों तक लगातार डसा है ! और अब तो उसका पूरा विष मेरी नस-नस में व्याप्त हो गया है ! इच्छा तो नहीं थी कि मैं ऐसी स्थिति में विदा लूँ, किन्तु किसी भी भाँति तबियत मान नहीं रही है। केवल इसीलिये कि सम्भव है, मेरे न रहने पर उन व्यक्तियों का जीवन और अधिक सुखी हो जाय !

धीरे-धीरे मृत्यु की काली अँगुलियों ने मेरे सिर पर हाथ फेरना शुरू कर दिया है। मैं अनुभव कर रहा हूँ, वह मेरी माँ है और मैं उसके अंक में जा रहा हूँ। \*\*\* तुम्हारे मार्ग में कटक बनकर मैं नहीं रहूँगा विमला, जिसमें तुमको सुख मिले, मैं अब वही करूँगा। तुम्हारा कहना है कि रामलाल ऐसा आदमी है, जो मुझे धोखा दे ही नहीं सकता, जब कि मैं जानता हूँ, उसने मेरी आँखों में धूल भोंककर ग़बन किया है। मैं उसकी शकल से नफ़रत करता हूँ ! पर वही मेरे घर में आता है, घण्टों तुमसे अटखेलियाँ करता और फिर अपनी इच्छानुसार चला जाता है। मैं पूछता हूँ वह मेरी अनुपस्थित में यहाँ आता ही क्यों है ? क्या स्वतंत्रता का यही अर्थ होता है ? केसी तमाशे की बात है कि जो मुझे अप्रिय है, वही तुम्हारे लिये प्रिय; जब कि तुम सती हो, पतिव्रता हो !

विधि की यह कैसी विडम्बना है कि सच्चा और आडम्बरहीन व्यक्ति इस दुनियाँ के लिये बेवकूफ है ! क्षमाशील, निष्कपट और निर्मल व्यक्ति अयोग्य और असफल है—और आचारहीन व्यक्ति राजनीतिज्ञ !”

दान-पत्र मेरे नाम है। उसमें लिखा है—मेरे पिता मेरे लिए इतना ही छोड़ मरे थे, जिसमें मैं एक सप्ताह तक खाना खा सकता था। उसके बाद जो कुछ किया, वह मैंने किया। इसलिये इस सारी सम्पत्ति में हिस्सा बटाने का अधिकार किसी को नहीं है। अगर मेरे विश्वास का

कोई कानूनी मूल्य है, तो विमला के गर्भ से उत्पन्न कोई भी बच्चा मेरी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता ।

यह सारी सम्पत्ति मैं एक राजेन्द्र के न्यायशील हाथों में सौंपता हूँ । वह उसका जैसा चाहे वैसा उपयोग करे । हाँ, विमला मेरी पहली पत्नी है । वह चाहे जैसी हो, पर गुज़ारे भर के लिए उसे पाँच सै रुपये मिलते रहे, यह मेरी इच्छा है ।

मैंने जीवन भर अपनी तबियत की ज़िन्दगी बितायी है । मैं जानता हूँ, द्वितीय पत्नी रानी को लाकर मैंने उसके साथ अन्याय किया है । पर अब मैं उसको राजेन्द्र को सौंपे जा रहा हूँ । मेरा सदा से यह विश्वास रहा है कि मेरे जीवन-काल में दोनों केवल आत्म-मिलन तक सीमित रहे हैं । पर अब मैं उन्हें देह-धर्म के नाते से भी सुखी और सन्तुष्ट देखना चाहता हूँ । सोचता हूँ, जो बात मेरे देह-धारण से सम्भव नहीं हो सकती, जन-कल्याण के लिए मृत्यु का आलिगन करके क्यों न अब मैं उसे भी सम्भव कर जाऊँ !”

यह दिव्यस्वरूप उस व्यक्ति का है, जिसको मैं सदा एक लम्पट समझता रहा !

किन्तु इस समय यह आ कौन रहा है ! यह छाया किसकी है ?—  
“ओ: तुम हो, लाली । कहो, तुम्हारे सिर की चोट का क्या हाल है ?”  
अरे ! तुम रो रही हो ! देखो, सुनो । मैं अब किसी की आँखों में आँसू नहीं देखना चाहता ।”

लाली बोली—“भैया, मैं तुमसे सिर्फ एक बात कहने आयी हूँ । क्योंकि अब दो-चार दिन में तुम फिर इलाहाबाद चले जाओगे । इधर कभी तुमसे बात करने का अवसर मिला, न मिला । एक दिन तुमने मेरे विवाह के लिए कहा था—मैं भी सोचती थी, देहधर्म तो निम्नान्नी ही पड़ता है । लेकिन अब मैं सोचती हूँ, आत्मा का धर्म ही श्रेष्ठ है । देह कुछ नहीं है—कुछ नहीं है ! सो भैया, तुम जहाँ कहीं रहना, वहीं

मुझे भी ले चलना ।.. माँ के साथ मेरा रहना ? नहीं-नहीं, मैं वैसी नहीं बनूँगी ।’

मैंने कहा—“बस, इतनी-सी बात थी तुझे मुझसे कहनी !”

उसकी देह दुर्बल हो गयी थी । मुख पर भी दुःख की म्लान छाया स्पष्ट देख पड़ती थी । लेकिन मेरी इस बात पर वह कुछ प्रसन्न हो उठी । बोली—‘मुझे सब मालूम हो गया है ।’

मैंने पूछा—“क्या ?”

तो वह हँसने लगी । उस दुर्बल काया की हँसी भी मुझे प्यारी लगी । तभी वह बोली—‘भाभी कहती थीं—हम सब एक साथ रहेगे; कानपुर मे ।’

मैंने पूछा—“और क्या कहती थी ?”

वह बोली—

“कुछ उत्साह के साथ कहती थी—आगे की बात मैं नहीं जानती । प्रभू की इच्छा को कौन टाल सकता है ?”

...

...

...

दिल्ली से हम लोग सदल-बल कानपुर लौट रहे थे । मेरे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प आ-जा रहे थे ।...मेरे हाथ में कुछ अधिक सम्पत्ति आ गयी है । यह तो मैं नहीं कह सकता कि उसका मोह मुझमें जागृत नहीं हो गया है । पर मुझे क्षण-क्षण पर वे दीन-हीन बच्चे दिखलाई पड़ रहे हैं, जो उचित संरक्षण से हीन बनकर कीट-पतंग का जीवन बिता रहे हैं ! वे नर-नारियाँ और विधवाएँ याद आती हैं, जिनका इस संसार में कोई नहीं रह गया है ! हाँ, आस-पास ऐसा समाज अवश्य है, जो उनके स्वास्थ्य, रूप और सौन्दर्य पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ने को आतुर है ! सोचता हूँ, इस सम्पत्ति को इस समाज के उद्धार और पुनर्निर्माण में क्यों न लगा दूँ ?...कर तो सकता हूँ अब मैं ऐसा कुछ ।

इलाहाबाद-स्टेशन पर मोदी साहब मिल गये । साथ मे हीरा भी थी । डार्क चश्मे में उसका रूप और अधिक निखर आया था । अपने आप बोली—“हम लोग वियना जा रहे हैं । साथ चलेंगे आप ?”

मेरे मुँह से निकल गया—“किसके-किसके साथ चलें, पहले यह तै कर दो, तो कुछ सोचा भी जाय !”

हीरा हँसने लगी । बोली—“आप भी खूब है !”

घर पहुँचने पर मैंने एक खान देखा । पिताजी पुनः घर पर आ गये और माँ ने फिर हाथों में लाल-लाल लाख की चूड़ियाँ पहन लीं । लेकिन यह सब तब हुआ, जब उन्होंने विधिवत् छोटी भाभी को मेरे लिए रानी बना दिया ।...छोटी माँ दिल्ली से नहीं लौटें—न उपेन्द्र । लेकिन उन्हें लाना तो पड़ेगा ही ।

...

...

...

पुनः कानपुर पहुँचने पर एक दिन लाली मेरे पास फिर आ बैठी । मैं पुनर्निर्माण की योजना में लीन था । सिर उठाकर मैंने लाली की ओर देखा । देखा, उसकी आँखों में आँसू हैं । जान पड़ा, फिर यह कोई सर-दर्द लेकर आयी है । पूछा—“क्या बात है लाली ?”

लाली बोली—“भैया, मुझसे कुछ भूल हो गयी थी एक दिन ।” और यह बात कहते क्षण उसने अपना मुँह ढक लिया ।

मेरे मुँह से निकल गया—“मुझसे ‘भैया’ कहनेवाली से ऐसी कोई भूल होनी तो नहीं चाहिये, जिसके लिए मुझे सोचना पड़े ।”

अब लाली रो पड़ी ।

कमरे के अन्दर रानी बैठी टाइप कर रही थी । उठकर पास आयी और लाली को उठाकर उसने छाती से लगा लिया ।

बोली—“इसमें रोने की अब कोई बात नहीं रह गयी । हम सब नित्य इस तरह के भूलें करते हैं; कोई तन से, कोई मन से ।”

अब मैं समझा, उस दिन इसी लाली ने जो कहा था—“मैंने सोचा था—देह-धर्म तो निभाना ही पड़ता है ।” उसका सम्बन्ध शायद इसी भूल से था ।

लाली जब चली गयी, तब मैंने उस दिन का दिया हुआ वह पचास

हज़ार रुपया रानी को लौटा दिया ।

उसने पूछा—“क्यों, अभी तक इसको जमा नहीं करवाया ?”

मेरे मुँह से निकल गया—“चाहे जमा करवाओ, चाहे अभी से लगा दो, उस बच्चे के नाम पर, जिसको लाली अभी अपनी भूल बतला गयी है और अभी के उस भविष्य के नाम पर, जो उनके गर्भ में है ।”

रानी मुसकराती हुई बोली—“हाँ, यह ठीक रहेगा ।...यह तो मानना ही पड़ेगा, तुम सोचते खूब हो ।”

“लेकिन यह रुपया क्या तुमने भाईसाहब से छिपाकर मुझे दिया था ?” मैंने पूछा ।

तब वह उदास हो गयी । बोली—“हाँ, इस बात ने भी उन्हें प्रभावित किया था !” और फिर टाइपराइटर बोलने लगा ।

...

...

...

कुछ मास बाद—

“हाँ, जब मैं उस नन्हे मुन्ने को नहला चुकी और साफ तौलिया से उसका बदन पोंछने लगी, तभी मुझे ऐसा कुछ जान पड़ा, जैसे बिल्कुल इसी शकल का एक आदमी मैंने यहाँ देखा है ।”

इतना कहकर दायी फिर अपने इधर-उधर देखने लगी ; इस भय से कि कहीं कोई खड़ा हुआ सुन तो नहीं रहा है । और बोली—“बस, फिर बाबूजी मैंने अपने कान पकड़े कि ऐसी बात सोचने में भी पाप लगता है !” और इसके बाद दायी को मैंने एक रुपया इनाम देकर विदा किया ।

सामने फ़ायलों का ढेर लगा है । बैकों का हिसाब-किताब सब देख लिया है । नक़द रुपया उनमें अब भी तीनलाख-सत्तर हज़ार पड़ा हुआ है ।... बीमा-कम्पनियों की पालिसियों के तीस हज़ार रुपये तो असली होते हैं । बोन्स और प्राफ़िट मिलाकर लगभग आठ हज़ार और निकलेगे । इसके सिवा कई कम्पनियों में शेयर भी हैं । उनका मूल्य दसलाख के लगभग होता है । दूकान जिस हालत में चल रही है, उसका माल भी दो लाख



तो होगा। इसके बाद यह कोठी और दो मकान तथा काफ़ी सम्पत्ति है।

मैंने खज़ानेवाले कमरे को बन्दकर उसमें ताला लगा दिया और चुपचाप मैं बड़ी भाभी के पास चला आया। उस समय वे पूजा-गृह से लौट रही थीं। सफेद खादी की साड़ी उनकी देह पर थी। हाथ-पैर बिल्कुल सूने। बदन पर तन्त्रेब का ब्लाउज़ और भाल पर चन्दन। हाथों में आरती और ठाकुरजी का निर्माल्य।

मुझे समझ देखकर वे बोलीं—“क्यों, हिसाब-किताब सब देख लिया? कहीं कोई गड़बड़ी तो नहीं मिली?” मेरे मुँह से निकल गया—“सब ठीक है। एक रामलालवाली रकम अट्की पड़ी थी, सो वह भी जमा हो गयी है। लेकिन मुझे ताज्जुब है, तुम तो कह रही थी—वह लापता है।”

मेरा इतना कहना था कि आरती और निर्माल्य उनके हाथ से छूट पड़ा! और मुख इतना श्रीहीन हो गया, जैसे उस पर कालिख पुत गयी हो! बड़ी मुरिकल से उन्होंने अपने आपको समझाला। फिर भी आँखों में आँसू आ ही गये और हाथ-पैर काँपने-से लगे। थरथराती ज्योति-सी अत्यन्त मर्मवाणी में वे बोली—

“रामलाल का नाम मत लिया करो लल्ला! वह मेरे इस जीवन का एक ऐसा नासूर है, जो मरण के बाद ही अच्छा होगा।”